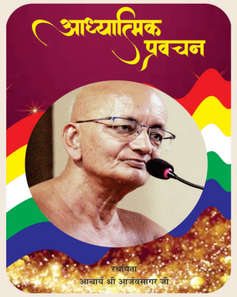

आध्यात्मिक प्रवचन

यह दिव्य अलौकिक पुस्तक 'आध्यात्मिक प्रवचन' आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज द्वारा उपदेशित इस कृति में साधना, संस्कृति और अध्यात्म का समागम है। जिसमें गुरुदेव के अनेक प्रेरणादायी प्रवचनों का संग्रह है।

इस कृति में अहिंसा, संस्कृति, ध्यान, योग-विज्ञान, अध्यात्म, आत्म-साधना तथा कर्म-विज्ञान जैसे विविध विषयों के विभिन्न धर्मों एवं आज के विज्ञान के साथ सामञ्जस्य करते हुए गहन चिंतन प्रवचन के रूप में प्रस्तुत किया है। इस कृति का अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग रूप स्वध्याय जीवन को अध्यात्म की ऊँचाई का स्पर्श कराते हुए निर्ग्रन्थ पद से शिवधाम रूप सिद्ध पद का साधन बन सकता है।

साहित्यिक प्रतिभा संपन्न आचार्य श्री आर्जवसागर जी की विशेष उपलब्धियाँ

आध्यात्मिक प्रवचन (भाग-1)

आचार्य श्री आर्जवसागर जी

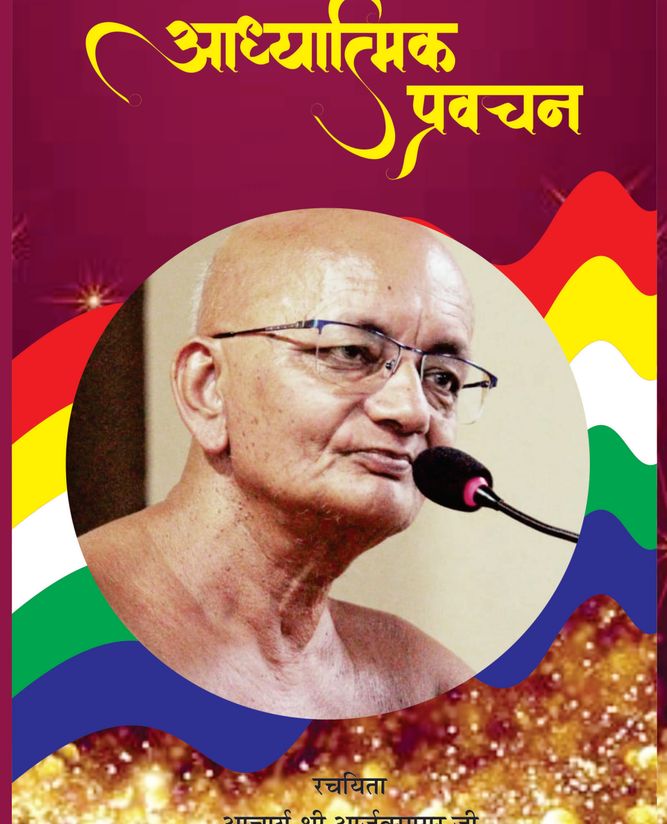

रचयिता
आचार्य श्री आर्जवसागर जी

आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज का

जीवन परिचय

पूर्व नाम : पारसचंद जैन
पिता एवं माता: श्री शिखरचंद जैन, श्रीमती मायाबाई जैन
जन्म: 11 सितम्बर 1967, फुटेरा कलां, जिला दमोह (मध्यप्रदेश)
शिक्षा: बी.ए., डिग्री कॉलेज, दमोह (मध्यप्रदेश)
ब्रह्मचर्य व्रत: 19 दिसम्बर 1984, अतिशय क्षेत्र, पनागर, जबलपुर(मध्यप्रदेश)
क्षुल्लक दीक्षा: 8 नवंबर 1985, सिद्धक्षेत्र अहाराजी, टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश)
ऐलक दीक्षा: 10 जुलाई 1987, अतिशय क्षेत्र थूबोन जी, अशोकनगर (मध्यप्रदेश)
मुनि दीक्षा : 31 मार्च 1988, महावीर जयंती, सिद्धक्षेत्र सोनागिरी जी, दतिया (मध्यप्रदेश)
दीक्षा गुरु: संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज
आचार्य पद: 25 जनवरी 2015, इंदौर (समाधि पूर्व आचार्य श्री सीमंधरसागर जी महाराज द्वारा)

कृतियाँ एवं रचनाएँ

आचार्यश्री की साहित्य साधना अत्यंत व्यापक और प्रेरणादायी है। उन्होंने दो दर्जन से अधिक कृतियों के सृजन किया है, जिनके माध्यम से आचार्य श्री ने जैन दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को सरल और व्यवहारिक रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

1. आगम ग्रंथ- आगम अनुयोग भाग (1-2), जैनागम संस्कार (हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, तमिल कन्नड़), आध्यात्मिक प्रवचन, पर्युषण पीयूष।
2. काव्य व शतक- तीर्थोदय काव्य, सदाचार सूक्ति काव्य, मोक्षप्रदायक काव्य (आत्मोद्धार शतक, सन्मार्ग प्रभावना काव्य, तीर्थंकर स्तुति शतक, सम्यक् ध्यान शतक, श्री अंतादि शतक, गुरु-गुण महिमा काव्य, आशीर्वाद शतक, धर्म भावना शतक, अध्यात्म समयोदय काव्य), ज्ञान वर्धन काव्य आदि।
3. पद्यानुवाद- पद्यानुवाद मंजरी (गोमटेश थुदी, भक्तामर स्तोत्र, द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, समाधितंत्र, वारसाणुवेक्खा, तत्त्वसार, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
4. अन्य विशेष- आर्जव कवितायें, लोक कल्याण विधान, योग ध्यान आदि।

विशेष उपलब्धियाँ-

आचार्य श्री को Chania International University द्वारा भारतीय दर्शन, जैन आगम के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक जागरण के क्षेत्र में किए गये अद्वितीय योगदान हेतु Doctrate of Philosophy की मानद उपाधि प्रदान की गई। डॉ. आचार्य श्री आर्जवसागर जी को अनेक आध्यात्मिक, साहित्यिक एवं मानवीय योगदान के लिए यूएसए, लंदन, एशियन, यूएन, इंडिया, गिनीज, इंटरनेशनल, वर्ल्ड वाइड बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड के संस्थानों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत किया गया है। इसके माध्यम से पूरे विश्व में आचार्य भगवन् की कृतियों की कीर्ति सर्वव्यापी फैली है। अनेक संस्थाओं द्वारा आपको ''ब्रह्माण्ड के देवता'', ''जैन धर्म के गौरवान्वित संत'', ''अहिंसक प्रचारक'',''आध्यात्मिक संत'',''आहारौषध विज्ञान के ज्ञाता'',''साहित्यिक प्रतिभा संपन्न'',''20 वीं सदी के हिंदी साहित्य के, सर्वोच्च शिखर'',''विश्व के भगवान'',''वर्ल्ड गॉड'' जैसी उपाधियाँ देकर स्वर्ण भारत सम्मान राष्ट्रीय प्रतिष्ठा पुरस्कार, भारतीय रत्न अवार्ड, पद्मश्री गौरव सम्मान आदि अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी सम्मानित किया है।

प्रवचन और प्रेरणाएँ-

डॉ. आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज अपने ओजस्वी, तार्किक और हृदयस्पर्शी और आध्यात्मिक प्रवचनों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके प्रवचन अनेकों जेल, स्कूल, विश्वविद्यालय, आश्रम आदि अनेक संस्थानों में भी हुए हैं। आचार्य श्री का उपदेश समाज में नशामुक्ति, शाकाहार, नैतिकता, अहिंसा और शिक्षा के प्रसार का माध्यम बन चुका है। आचार्य श्री विशेष रूप से जनमानस को सम्यग्दृष्टि बनाकर संयम, सदाचार और आत्मानुशासन की ओर प्रेरित करते हैं।

आध्यात्मिक योगी, बहुभाषाविद्, 20 शिष्यों के दीक्षा दाता आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज का जीवन तप, त्याग, साधना और सेवा का आदर्श उदाहरण है। समाज में उनकी साधना के माध्यम से आध्यात्मिकता, संस्कृति और मानवीय मूल्यों पर निरंतर प्रकाश फैल रहा है। गुरुदेव ने देश की संस्कृति की संपदा को उद्घाटित करते हुए कीर्तिमान स्थापित कर भारत देश को गौरवान्वित किया है।

आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग-1)

संस्कार, संस्कृति, कर्त्तव्य और ध्यान-विज्ञान
आदि विषयों पर विशिष्ट प्रवचन

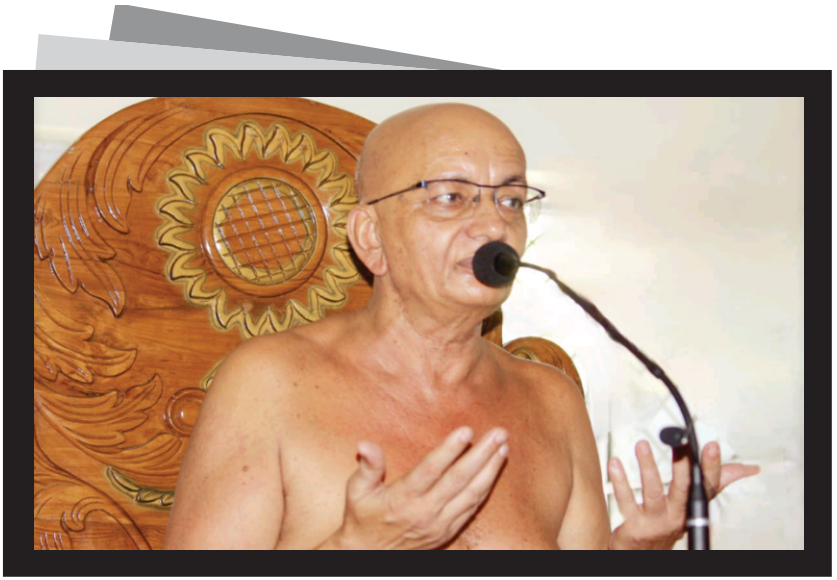

कृतिकार
आचार्य श्री आर्जवसागर जी

कृति – **आध्यात्मिक प्रवचन (भाग-1)**

प्रवचनकार – आचार्य श्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

संपादन – बहिन ऋषिका जैन दमोह(**B.E., M.A., P.H.D.** संलग्न)

संस्करण – प्रथम, सन् 2025

पावन सन्दर्भ – भव्य पिच्छिका परिवर्तन 2025, इंदौर (म.प्र.)

पुण्यार्जक –
- श्री कैलाशचंद, हिमांशु, दीपांशु जैन हिमदीप रत्न भंडार सपरिवार, गुड़गांव, हरियाणा
- राकेश जैन लालाजी सपरिवार, अशोकनगर

प्रतियाँ – 1000

प्रकाशक – आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास
बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357,
9425601161, 9425601832, 7222963457

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

मुद्रक – पारस प्रिंटर्स, भोपाल
207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1
एम.पी.नगर, भोपाल
फोन : 0755-4260034, 9826240876

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	धार्मिक संस्कृति संरक्षण (13 प्रवचन)	1–81
2.	ध्यान और विज्ञान (16 प्रवचन)	82–183
3.	परमार्थ साधना (13 प्रवचन)	184–268
4.	जैन शासन का हृदय (9 प्रवचन)	269–352
5.	संस्कार और कर्म (5 प्रवचन)	353–399

आमुख

–बहिन ऋषिका जैन, दमोह
(B.E., M.A., Ph.D.)

हमारा परम सौभाग्य है कि हम भव्यों के पुण्य से गुरुओं के ज्ञान का, उनके चिंतन मंथन से आर्य परंपरा से आयी आगम की वाणी का अनेक रूपों में हमें लाभ मिलता रहता है। कभी प्रवचन के रूप में, कभी काव्य के रूप में, कभी सूक्तियों के रूप में तो कभी पद्यानुवाद के रूप में।

ये सभी विधायें हमें भगवान की वाणी को, आध्यात्मिक लाभ को प्राप्त कराती है। हमारे मन को पावन पुनीत करती हैं।

आचार्य भगवन् श्री आर्जवसागर जी महाराज ने भिन्न–भिन्न समयों में समयानुकूलता से अनेक कृतियों जैसे– बचपन का संस्कार, जैनधर्म में कर्म व्यवस्था, जैन शासन का हृदय, नेक जीवन, परमार्थ साधना इन नाम वाली कृतियों के और ध्यान–विज्ञान, पाश्चात्य देश परंपरा आदि के विषयों पर प्रवचन दिये। परंतु समय की मांग से गुरुदेव को अब छोटी–छोटी कृतियों को संग्रहित कर बड़ी पुस्तक के आकार में रखने के हम सबके मनोभाव बने और इन कृतियों में मुख्यतः से गुरुदेव ने संस्कार, संस्कृति, कर्त्तव्य और ध्यान, विज्ञान आदि विषयों पर विशिष्ट प्रवचन देकर भव्यात्माओं के अंतस् में उच्च स्थान प्राप्त किया है।

हम सभी कृतियों को संग्रहित कर इस पुस्तक का बड़ी कृति के रूप में गुरुदेव आर्जवसागर जी महाराज द्वारा आध्यात्मिक प्रवचन नाम दिया गया है।

इसका सबसे प्रमुख लाभ यह होगा कि अब गुरुदेव की वाणी को छोटी छोटी कृतियों में न ढूँढकर एक विशाल कृति के रूप में प्राप्त कर सकेंगे और जिसको ज्ञानियों के बीच मे अच्छे मूल्यांकन के रूप में जान सकेंगे।

इन कृतियों के प्रवचन रूप विषय के संकलन में मेरे साथ–साथ डॉ. अजित जैन, डॉ.सुधीर जैन, डॉ. अल्पना मोदी, श्रीमती अनीता जैन ने अपना अमूल्य समय देकर विशिष्ट पुण्यार्जन किया। एतदर्श आप सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा करते हैं कि आप सभी इस बहुमूल्य कृति 'आध्यात्मिक प्रवचन' के विषय को एक जगह पाकर इसका सदुपयोग कर इसका बहुमान कराएँगे और अध्यात्म और मोक्षमार्ग के क्षेत्र में आगे बढ़कर अपने जीवन को सफल बनाएंगे।

कृति प्रकाशन में सहयोग देने वालों को भी बहुत–बहुत धन्यवाद। 'शुभम् भूयात्'

''इत्यलं''

सभी को सादर ''जय–जिनेन्द्र''

प्रवचनकार का आचार्य पद

आगम में कथित है कि पंचमकाल में निर्बाध रूप से मुनि परम्परा चलती रहेगी यथा काल मुनि होते रहेंगे और अन्तिम मुनि वीरांगज मुनि होंगे। लेकिन जो लोग कथन करते हैं कि पंचमकाल में मुनि दर्शन का अभाव है और कुछ लोग पंचमकाल की आड़ में शिथिलाचारी होकर आगमिक चर्या से दम तोड़ हिम्मत हारते हैं; उन्हें आचार्य सीमंधरसागरजी जैसे साधु एक चुनौती सिद्ध होते हैं। ऐसे धीर-वीर साधुओं की चर्या देखकर लगता है कि हम कहीं चौथेकाल में तो नहीं बैठे हैं; संयमी जीवन भर जिन्होंने नमक, शक्कर का आजीवन त्याग किया हो, वर्षों से एक अन्न के साथ आहार लिया हो और अनेक प्रदेशों में हजारों किलोमीटर पद विहार किया हो और उपवासों के साथ णमोकार मंत्र और तत्त्व चिंतन पूर्वक 90 (नब्बे) वर्ष की उम्र में समाधि प्राप्त की हो ऐसे महातपस्वी आचार्य सीमंधरसागरजी को कौन भुला सकता है।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी की परम्परा के पुराने आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी का परिचय चम्पाबाग मन्दिर, लश्कर, ग्वालियर की दिगम्बर जैन समाज ने दिनांक 23 मई 1995 में आराधना प्रिंटिंग प्रेस, दाना ओली, लश्कर वालों ने जिस तरह प्रकाशित करवाया था उसी तरह यहाँ शब्द सह प्रस्तुत कर रहे हैं। जिस परिचय को जानकर आप सभी का हृदय प्रफुल्लित हुये बिना नहीं रहेगा। समाधि सम्राट-स्वर्गीय परम पूज्यनीय बाल ब्रह्मचारीश्री 108 सुपार्श्वसागरजी (आचार्यश्री 108 चा.च. शान्तिसागरजी महाराज की परम्परा में) के शिष्य बाल ब्रह्मचारी, तपोनिष्ठ चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी महाराज का जीवन चरित्र एक सिंहावलोकन निम्नानुसार है:-

प्रिय धर्म स्नेहीजन,

यह हमारा परम सौभाग्य है कि अपने नगर में आचार्यश्री 108 सीमंधर सागरजी महाराज का 30 वर्ष के पश्चात् पुनः पदार्पण हुआ। आचार्यश्री चम्पाबाग मन्दिर, दानाओली, लश्कर में विराजमान हैं।

जो बुजुर्ग हैं वे; आचार्यश्री का लश्कर में सन् 1964 में वर्षायोग एवं उस अवधि में सम्बोधित अमृतमयी वाणी में धर्म-उपदेश को भूले नहीं होंगे। नई पीढ़ी के लिए उनका परिचय आवश्यक प्रतीत होने से, यहाँ अत्यन्त संक्षिप्त में, आचार्यश्री से यदा-कदा वार्ता के आधार पर उपलब्ध जानकारी के अनुसार दिया जा रहा है।

जन्म, गृहस्थ-अवस्था के माता-पिता-

आचार्यश्री का जन्म 26 मई 1926 में ग्राम हलगे, जिला बेलगांव कर्नाटक प्रान्त में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री मलप्पा साह (भगवान मल्लिनाथ के नाम पर मलप्पा) एवं माताजी का नाम श्रीमती पद्मावती था। सम्पन्न एवं धार्मिक वातावरण में जन्मे श्री बालक ''जिनप्पा'' के चार भाई और दो बहिनें थीं और ये दूसरे पुत्र थे।

क्षुल्लक, एलक एवं मुनि-दीक्षा-

बालक ''जिनप्पा'' का बचपन में ही धर्म के प्रति रुझान था। युवावस्था प्राप्त होने पर विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत कर अखंड-आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले श्रावक धर्म का निर्दोष पालन करने लगे। संसार शरीर भोगों से विरक्तता रूप सप्तम प्रतिमा व्रत के लिये कार्तिक शुक्ल दोज सोमवार सन् 1953 में ग्राम 'देवरसिंगी हल्ली' कर्नाटक प्रांत में आचार्यश्री 108 वीरसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ली एवं मल्लिसागर नाम धारण किया। अब आपका अधिकतम समय धर्म ध्यान में लगने लगा। एक वर्ष तक गुरु के साथ देश भ्रमण किया एवं शिखरजी की वंदना की।

पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1958 (आषाढ़ शुक्ल) आचार्यश्री 108 सुपार्श्व सागरजी महाराज से जालना (महाराष्ट्र प्रान्त) में एलक दीक्षा एवं उसी वर्ष मंगसिर शुक्ल पूर्णिमा की कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र में सम्पूर्ण परिग्रह छोड़ मुनि दीक्षा ली एवं आपका नाम ''सीमन्धर सागर'' प्रसिद्ध हुआ। समाधि सम्राट स्व.प.पू. श्री 108 आचार्य सुपार्श्वसागर जी, चा.च. आचार्यश्री 108 शान्तिसागर जी महाराज की परम्परा के थे।

आचार्य पदवी-

आपके पावन प्रवचनों एवं पंचाचार का आचरण करते कराते हुए देख श्री 108 आचार्य सुबाहुसागर जी, श्री 108 मुनि सिद्धसागर जी, आर्यिकामाता श्री सुमति माताजी, समाजसेवी विद्वान श्री बाबूलाल जी जमादार बड़ोद, श्री नारेजी प्रतिष्ठाचार्य बम्बई की सानिध्य एवं श्रावक-श्राविकाओं ने एकत्रित हो मार्च 1974 को त्रिलोकपुर, वाराबंकी जिला बिहार प्रान्त में शुभ मुहूर्त्त में ''आचार्य पदवी'' से विभूषित किया।

नगर-नगर, डगर-डगर भ्रमण एवं चातुर्मास-

मुनि अवस्था में प्रथम चातुर्मास कन्नड़ (महाराष्ट्र) में किया। तदन्तर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, शिरड सापुर, अतिशय क्षेत्र नवागढ़ अनसिंग (महाराष्ट्र)

चातुर्मास लौटकर शिरड सापुर चातुर्मास, संघ सहित श्री सम्मेद शिखरजी की यात्रा लौटकर यवतमाल, वर्धा, रामटेक अतिशय क्षेत्र, सुशिवनी, जबलपुर, कटनी, रीवा, मिर्जापुर, बनारस, ईसरी में चातुर्मास, वैजनाथजी, श्री मंदारगिरि, भागलपुर, नवादा, पावापुरी, गुणावा, पटना, आरा, कटनी (चातुर्मास) दमोह, कुंडलपुर, अतिशय क्षेत्र-पपोराजी, अहारजी, टीकमगढ़, सोनागिर, लश्कर (ग्वालियर) (चातुर्मास), शौरीपुर, अलीगढ़, मेरठ (चातुर्मास)-गिरनारजी के लिये प्रस्थान, दिल्ली होते हुए-जयपुर, अजमेर, सिद्धक्षेत्र तारंगाजी, मेहसाना, राजकोट, जूनागढ़, गिरनारजी, अहमदाबाद (चातुर्मास) सिद्धक्षेत्र शत्रुन्जय से श्रवण वेलगोल (गोमटस्वामी के अभिषेक के समय) पावागढ़, मांगी तुंगी, गजपंथा, औरंगाबाद, कचनेर, कुंथलगिरि, मैसूर, हुबली, इन्डी (चातुर्मास), लातुर, हैदराबाद, (चातुर्मास), पूसद महाराष्ट्र (चातुर्मास), सम्मेद शिखरजी की संघ सहित यात्रा के लिये प्रस्थान-आरा, राजगिर, शिरडी, सम्मेद शिखरजी (चातुर्मास), रांची (चातुर्मास), टिकेत नगर (चातुर्मास), त्रिलोकपुर (आचार्य पदवी से विभूषित) टिकेत नगर (पंच कल्याणक प्रतिष्ठा), बहराइच (चातुर्मास), महमूदाबाद (चातुर्मास), इटावा (चातुर्मास), अलवर, मालपुरा नासरदा, उदयपुर, अतिशय क्षेत्र अडिन्दा पार्श्वनाथ, फुलेज, आष्टा, सूरत, खुड़ई, कन्नोज सभी में (चातुर्मास) देश की राजधानी दिल्ली में दो बार चातुर्मास किये।

धर्म प्रभावना एवं दीक्षा समारोह-

उपरोक्तानुसार-महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा प्रान्तों के नगरों एवं सिद्ध क्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों में विहार करते हुए जैन धर्म की प्रभावना/प्रचार का महान व्रत का निर्वाह कर रहे हैं। सिद्ध क्षेत्र गिरनार जी की यात्रा से लौटते समय सोनगढ़ में कानजी स्वामी से दो घण्टे चर्चा एवं उनका आचार्य श्री से प्रभावित होना उल्लेखनीय है।

आचार्यश्री ने पात्रता पर ध्यान देते हुए ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, एलक, मुनि की दीक्षायें दी। कुछ प्रमुख निम्नानुसार हैं-

1. सन् 1964 फाल्गुन की अष्टान्हिका में सोनागिर सिद्धक्षेत्र पर क्षुल्लिका की दीक्षा दी एवं सुशीलमति माता जी का नाम दिया।
2. सन् 1965 में एटा उत्तरप्रदेश में ब्रह्मचारी नेनोराम को क्षुल्लक दीक्षा नाम-सुमतिसागर।

3. सन् 1966 गिरनार सिद्ध क्षेत्र पर ब्रह्मचारी रमेशचन्द (फिरोजाबाद) क्षुल्लक दीक्षा नाम नेमीसागर–वर्तमान में आचार्यश्री 108 निर्मल सागरजी महाराज।
4. ज्ञानाबाई की क्षुल्लिका दीक्षा नाम–राजमति।
5. जालना में मुनि दीक्षा नाम मल्लिसागर जी।
6. मद्रास में ब्रह्मचारी को क्षुल्लक दीक्षा नाम–सुपार्श्व सागरजी।
7. सन् 1971 में मधुवन (श्री सम्मेद शिखरजी) 13 पंथी कोठी में ब्रह्मचारी मोतीलाल जी (कोटा निवासी) को मुनि दीक्षा नाम–सिद्धसागर से सुशोभित। इसके अतिरिक्त और दीक्षा सम्बन्धित जानकारी समयाभाव के कारण एकत्रित नहीं की जा सकी इसका खेद है।

वर्तमान में विभिन्न कारणों/उद्देश्यों से दिगम्बर साधुओं के प्रति समाज में उदासीन भाव की प्रवत्ति देखने को मिल रही है। प्रसन्नता है कि इस कलिकाल में भी अपने मध्य ऐसे आचार्य / मुनि / त्यागी वृति विद्यमान हैं जिनके दर्शन मात्र से सभी भ्रान्तियाँ निर्मूल हो जाती हैं। आसातादि कार्यों की उदीरणा के अर्थ उग्रोग्रतप धारण करते, शरीर की कुशलता की ओर ध्यान न देते हुए आत्म–दिव्य शक्ति सह होते हैं, ऐसे संतों को शतशत अभिनंदन/ नमन।

आचार्य सीमान्धर सागरजी महाराज को तपस्वी जीवन–यापन करते हुए 42 वर्षों से अधिक का समय हो रहा है। आगामी 26 मई 1995 को वे अपने इस जीवन के 70वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। हम लोगों की कामना है कि रागद्वेष के अधीन न होकर स्वात्मोत्थ परमानन्द की ओर सतत् प्रयत्नशील रहें एवं हम लोगों को धर्म का सदुपदेश देते रहें। उन्हें शत्–शत् नमन।

इस प्रकार आचार्य सीमंधरसागरजी के 23 मई 1995 में मई ग्रीष्मकालीन प्रवास पर ग्वालियर वालों ने यह परिचय प्रस्तुत किया था, तथा महावीर ट्रस्ट इन्दौर से सन् 2008 में प्रकाशित 'अखिल भारतीय दिगम्बर जैन मन्दिर निर्देशिका' पुस्तक के पेज क्र. 48 में दिये गये चा.च.आ. शान्तिसागरजी की परम्परा के चार्ट में दर्शाया है कि आ. शान्तिसागरजी के बाद क्रमशः आ. वीरसागरजी को, आ. वीरसागरजी से आ. शिवसागरजी को और आ. शिवसागरजी को आचार्य पद मिलने के बाद एक साथ इनकी परम्परा की चार धारायें उत्पन्न हुयीं। जिसमें एक धारा आ. धर्मसागरजी से आ. अजितसागरजी वाली, और एक धारा आ. ज्ञानसागरजी से आ. विद्यासागरजी वाली, और एक धारा मुनिश्री सम्मानसागरजी से मुनिश्री दयासागरजी वाली और एक

धारा आ. सुपार्श्वसागरजी से आ. सीमंधरसागरजी वाली दर्शायी गई है। इस धारा के अनुसार आ. सीमंधरसागरजी आ. शान्तिसागरजी के चतुर्थ आचार्य सिद्ध होते हैं। ये आचार्य विद्यासागरजी के समकक्ष रहे। लेकिन अन्तर इतना ही है आचार्य विद्यासागरजी का आचार्यपद 1972 में हुआ और आ. सीमंधरसागरजी को आचार्य पद 1974 में हुआ। इसलिए आचार्य विद्यासागरजी गुरु भाई के नाते वयोवृद्ध आ. सीमंधरसागरजी की स्वास्थ आदि की जानकारी लेकर वात्सल्य प्रकट किया करते थे।

तदुपरान्त कुछ देखी, सुनी खबरों से ज्ञात हुआ कि आ.सीमंधरसागरजी ने मध्यप्रेदश के आष्टा, बानापुरा, बनेड़िया में भी वर्षायोग किये। इसी तरह 17 दिसम्बर 2000 से इन्दौर के उपनगर छावनी में 2001, 2002 का वर्षायोग, छत्रपति नगर में 2003 का, फिर छावनी में 2004 का, जँवरीबाग की नसिया में 2005 का, तिलक नगर में 2006, 2007, 2008 का, इसके बाद एम.एस.जे. फार्म हाऊस, आदि तथा अन्तिम वर्षायोग बड़नगर में सम्पन्न किया। आपने इस प्रकार करीब 15 वर्षों से अपनी सल्लेखना की साधना हेतु मध्यप्रदेश की भूमि को और यहाँ के श्रावक और व्रतियों की भावनाओं को अपने सुयोग्य उत्कृष्ट समझते हुए उपयुक्त माना था।

आर्जवसागर मुनिराज को दिया आचार्यपद

आपको यह भी खोज थी कि मेरी 12 वर्ष की सल्लेखना सम्पूर्ण होने वाली है और मुझे अपनी चा.च.आ. शान्तिसागरजी की परम्परा के कोई प्रभावक, चारित्रवान, साधक साधु यहीं पर उपलब्ध होंगे, जिन्हें कि मैं अपनी परम्परा का उत्तरदायित्त्व सौंप सकूँगा। जिससे कि हमारे उत्तरदायित्त्व को ग्रहण करने वाले चा.च.आ. शान्तिसागरजी की जयकार ध्वनि हमेशा गुंजायमान करते रहें। वैसा ही योग बना कि कुछ वर्षों से इंदौर के लोग गुरुवर आर्जवसागरजी मुनिराज को आपका स्वास्थ आदि शुभ समाचार देते-लेते रहते थे। एक दिन इस भारत में भद्रबाहु जैसा संघ लेकर विचरण करने वाले चतुर्थ कालीन चर्या के साधक सन्त शिरोमणी आ. विद्यासागरजी महाराज के प्रियतम शिष्य सत्ताईस वर्षों से दीक्षित, बहु भाषाविद् साहित्य सृजक, धर्मप्रभावक मुनिवर आर्जवसागरजी मुनिराज को आपने अपने उत्तरदायित्त्व के योग्य जानकर स्मरण किया और उन्हें अपने पास बुलाया। तब गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज की करुणा देखो कि मात्र करीब 10 दिन में सुबह, शाम विहार करते हुए अपने घुटने का दर्द, और पैरों के छालों को भी न देखते हुए मानो उड़ते पैर ही इतनी

सुदूर करीब साढ़े तीन सौ किलोमीटर हरदा से सिद्धवरकूट होते हुए वैय्यावृत्ति और सेवा के निमित्त बड़े वात्सल्य पूर्वक इन्दौर के पास विराजमान आ. सीमंधरसागर जी के पास पहुँचे। आगम में कहते हैं कि अगर कोई मुनि संघ सम्मेद शिखरजी की यात्रा को भी जा रहे हों तो और उन्हें यह ज्ञात हो जाय कि कहीं पर मुनिराज की सल्लेखना चल रही है तो सम्मेद शिखर जैसी महत्त्वपूर्ण यात्रा को स्थगित कर सर्व प्रथम समाधि को देखें। क्योंकि अपने जीवन में भी इसे अवश्य धारण करना है। इससे महत्त्वपूर्ण और क्या कार्य हो सकता है? ऐसे उत्तम समय में क्षपक मुनिराज का दर्शन करना बहुत महत्त्वपूर्ण और दुर्लभ बात होती है।

आ. सीमंधरसागरजी ने अपनी समाधि का अन्तिम काल निकट जानकर माघ शुक्ल षष्ठी वीर.नि. संवत् 2541 ता. 25.1.2015 को देश, कुल, जाति से शुद्ध मुनिवर आर्जवसागरजी को चतुर्विध संघ के बीच अपना आचार्य पद सौंप दिया। यह समाचार जानकर अपूर्व आनन्द हुआ। हम पहले से ही जानते थे कि जिन्होंने सन् 1984 से बुन्देलखण्ड की भूमि से वैराग्य धारणकर आचार्य विद्यासागरजी संघ को स्वीकारा और उन्हीं गुरु के चरणों में ब्रह्मचर्य व्रत लेकर सप्तम प्रतिमा, और क्षुल्लक, ऐलक तथा मुनि पद को धारण कर इस भारत के चौदह प्रदेशों में अपूर्व प्रभावना की। तथाहि ऐसे गुरुवर आर्जवसागरजी द्वारा '**तीर्थोदय काव्य**' एक अनोखी कृति है जिस में तीर्थंकर बनाने वाली षोडसभावानाओं को सात सौ पद्यों में ज्ञानोदय छन्द और मुरज बंध के भी दोहों के साथ रचा गया है ऐसी कृति कई शताब्दियों से भी देखने को नहीं मिल सकती। इस काव्य कृति में सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण वर्णन और सम्पूर्ण श्रावकाचार और सम्पूर्ण मुनि आचार समाहित है। भव्य लोग मुक्तकण्ठ से इसे गाकर फूले नहीं समाते। इसी तरह '**आत्मोद्धार शतक**' और '**पद्यानुवाद मंजरी**' भी अद्वितीय अलौकिक कृतियाँ हैं। वास्तव में गुरुवर की ऐसे ही '**जैनागम संस्कार**' कृति इक्कीस अध्यायों में आठ सौ प्रश्नोत्तरों में है। इसका तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में अनुवाद पूर्वक प्रकाशन हो चुका है। जिसे उत्तर से दक्षिण तक के लोग स्वाध्याय में अध्ययन कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। इसी तरह '**आगम अनुयोग**' कृति में भी चारों अनुयोगों का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। '**पर्यूषण पीयूष**' तो ऐसी कृति है जिसमें विस्तृत रूप में दश धर्मों पर व्याख्यान किया गया है। साधु, विद्वानों के लिए तो ये बहुत अमूल्य कृति है। इसी तरह वर्तमान परिपेक्षय में जैनदर्शन के अनुसार ध्यान कैसे करना इसके लिए '**सम्यक्**

ध्यान शतक' एवं **'ॐ** योग ध्यान' दोहा काव्य में रची गयी है। इसी प्रकार चाहे **'परमार्थ साधना'** कृति हो या **'बचपन का संस्कार'** और **'जैन धर्म में कर्म व्यवस्था'** कृति ये सभी कृतियाँ पचासों शास्त्रों के संदर्भ पूर्वक सारे जैनागम के निचोड़ या सार रूप से रची गई हैं ऐसा समझना चाहिए। गुरुवर द्वारा अनेक भाषाओं में शताधिक कविताओं सह छन्दोबद्ध और छन्द मुक्त कविताओं वाली कृति **'आर्जव कविताएँ'** तो लोक प्रसिद्ध है। इन सबको देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होते हैं इन कृतियों की रचना से गुरुवर आर्जवसागरजी महाराज को डाक्टरेट की मनद ही नहीं डी.लिट्. की उपाधि देने के समान है, लेकिन साधु चर्या के सामने ये उपाधियाँ सब नगण्य मानी जाती हैं।

ऐसा तीर्थोदय काव्य सुनाकर हजारों लोगों को सोलहकारण कराने वाले, विभिन्न राज्यों में धार्मिक पाठशालाओं की स्थापना कराने वाले, गोम्मटेश बाहुबली, पोन्नूरमलै, सम्मेदशिखरजी, गिरनार, हस्तिनापुर महावीरजी आदि क्षेत्रों हेतु करीब 20,000 कि.मी. विहार करने वाले, अमूल्य कृतियों की रचना और अपनी ओजस्वी वाणी से हजारों सम्यक्दृष्टि बनाने वाले, एक वर्ष तक मौन धारण करने वाले, आडम्बर रहित, कम से कम वस्तु रखने वाले, वृत्ति परिसंख्यान रूप एक चौके में जाने के बाद लौटने पर अलाभ मानने वाले, रसादि में नमक, शक्कर, खोवा, पकवान, विभिन्न मेवों का त्याग करने वाले, हजारों किलोमीटर अनियत विहार कर, विद्वत् संगोष्ठी, डाक्टर्स सम्मेलन, अहिंसा सम्मेलन, कवि सम्मेलन, धार्मिक पाठशाला सम्मेलन कराने वाले, दशलक्षण पर्व और ग्रीष्मकाल आदि में अनेक शिविर कराने वाले, हिन्दी, तमिल, कन्नड़, मराठी आदि में अनेक काव्य रचना करने वाले, सूर्य प्रकाश में विहार करने वाले, कुएँ के पानी से बने चौके में आहार लेने वाले, कोई धन, वैभव, लौकिक साधन नहीं रखने वाले और जिनके पास हमने उनसे ही दीक्षित सदलगा तक साथ आये मुनिश्री सुभद्रसागरजी को दक्षिण में देखा है। क्षुल्लक तथा ऐलक बने श्री अर्पणसागरजी को देखा है। क्षुल्लक बने श्री हर्षितसागरजी को भी देखा है। इन तीनों को दीक्षित कर अनेक प्रतिमाधारी बनाकर उन ब्रह्मचारी भैय्या, बहिनों को प्रतिमा आदिक के व्रत देकर मोक्षमार्ग बतलाने वाले और जिनके पास से ब्रह्मचर्य व प्रतिमा के व्रत लेकर आगे बढ़े और आचार्यश्री विद्यासागरजी से दीक्षित हुए हैं वे मुनि पायसागरजी व मुनि नमिसागरजी तथा आर्यिका उपशममति और आर्यिका संगतमति बनी। ऐसे धर्म प्रभावक और आत्म साधक; पद की आशा से

विरहित, निस्पृह वृत्ति से चर्या करने वाले, गुरु की गरिमा बढ़ाने वाले, गुरुवर 108 आर्जवसागरजी महाराज इस पद के लायक तो पूर्व में ही ज्ञात होते थे। लेकिन किन्हीं लोगों के द्वारा धोखे से भी आचार्य पुकारे जाने पर डाँट लगा दिया करते थे; कि हमारे तो एक ही आचार्य हैं वे हैं आचार्य विद्यासागरजी ऐसा कह दिया करते थे। लेकिन परिस्थिति वश उन्हें किसी आचार्य की आत्मिक शान्ति हेतु उनकी सल्लेखना में उनको निर्भार करने हेतु यह पद स्वीकार करना पड़ा।

अब जब इतने ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, वयोवृद्ध आ.सीमंधरसागरजी ने जिनको आचार्य पद योग्य चुना तो हम उन्हें स्वीकार किये बिना कैसे रहेंगे? और जिनकी प्रभावना एवं ख्याति पूरे भारत में हो चुकी है ऐसे आचार्य आर्जवसागरजी के चरणों में अनेकानेक शुभकामनाओं पूर्वक यही भावना भाते हैं कि आपका रत्नत्रय हमेशा कुशल बना रहे, और आपका संघ बढ़ता रहे, आपकी ख्याति दिग्दिगन्त तक फैलती रहे। वास्तव में सब कुछ गुरुओं के आशीर्वाद का ही फल है। इसलिए कहते हैं कि गुरु कृपा जगत में सबसे निराली है यही हमें खुशहाली है।

हमारे गुरु और हम सबको मिली जिनकी सेवा ऐसे आ. सीमंधरसागरजी और जिनकी साधु संघ द्वारा सेवा पाते हुए, चैत्य, सिद्धान्त के घोष के साथ इन्दौर के एम.एस.जे. फार्म हाऊस पर एक उपवन में चतुर्विध संघ के बीच ता. 6.2.15 को मध्यान्ह 12:40 पर तीन दिन के उपवास पूर्वक णमोकार मंत्र और तत्त्वचिंतन के साथ सल्लेखना पूर्ण हुयी। उन्होंने अपनी रत्नत्रय की साधना के फलस्वरूप स्वर्ग को पाकर और विदेहक्षेत्र जाकर सीमंधर, युगमंधर आदि तीर्थंकरों का दर्शन किया होगा, ऐसे धन्य हैं वे महाव्रती आत्मा और हम भी यही भावना भाते हैं कि हम सबकी नमोस्तु भी उन तीर्थंकरों तक पहुँच जाय, हमारा भी जीवन धन्य हो जाय।

–सम्पादक

बड़े बूढ़ों की अपेक्षा अल्प वयस्क वैराग्य भी बड़ा प्रभावी हो सकता है वशर्ते संसार से उदासीनता बस हो।

मोक्षार्थियों को सौगात

''आचार्य पूज्य आर्जव प्रणमामि नित्यं''

प्रतिष्ठाचार्य पं. अखिलेश शास्त्री 'रमगढ़ा'

इस अनादि सतत् संसार में अनेकानेक जीवों का मनुष्य भव में आवागमन होता रहता है। दुर्लभता से प्राप्त इस मनुष्य देह को पाकर कई जीव इस मानव देह को सजाने संवारने में बार-2 भोज्य पदार्थों से पुष्ट करने में और कितने ही जीव पंच इन्द्रियों के विषय भोगों में अपने शरीर को लगा कर इस शरीर का भोग बना देते हैं।

वहीं कुछ ऐसे जीव हैं जो संसार की असारता को जाने बिना अपने हिताहित के ज्ञान से शून्य होकर इस शरीर से मिथ्या-मार्ग का पोषण करके अपने आपको धर्माधिकारी समझ अभिमान से भरे पड़े हैं।

आज जब पूज्य आचार्य भगवंत श्री आर्जवसागरजी महाराज के जीवन को देखा तो वास्तविकता का मान हुआ कि न जाने कितनी बार इन्द्रिय भोगों को पाया परन्तु आज तक शुभ योग से कोई योग्य गुरु को न पा सकने के कारण योगों के एकाग्रकरण को नहीं जान पाया। पूज्य गुरुदेव के दर्शन करके ऐसा लगा मानो गुरुदेव भवों-2 की साधना से ही अपने मन वचन काया को एकाग्र करके तपाराधना कर रहे हैं। विगत 43 वर्षों से अपने कठोर चारित्र से जीव जगत को लाभान्वित कर रहे हैं। जितना कठिन आपका चारित्र है उससे कई गुना आपके जीवन में (आर्जव) गुण समाया है आप में इतनी सरलता है कि आपके सान्निध्य में आने वाला हर जीव आप जैसा ही हो जाता है तभी तो गुरुदेव विद्यासागरजी ने आपको आर्जवसागर नाम प्रदान किया। नाम के साथ-साथ आचार्य गुरुवर ने आप में ऐसे गुणों को आरोपित किया जिन गुणों में कभी हानि नहीं दिखाई देती है। गुरु के साथ-2 ऐसी भाषा को देखिये जिसमे ऐसे संस्कारों को प्रदान कर आपको गुणों के उच्च शिखर तक पहुँचा दिया। यूं तो पारस पत्थर में इतनी शक्ति स्वमेव ही है कि वह अपने निकट आने वाली कुधातु को सुधातु में परिवर्तित कर देती है पर धन्य है वो संसार में भ्रमण करने वाले लोग जो आप सन्निध्य में आते ही वह अपने भवों को ''चुलुक प्रमाणं'' चुल्लु भर पानी की भाँति अल्प कर लेते हैं।

मैंने जगत के जीवों से ही नहीं अपितु आगम ग्रन्थों में पढ़ा कि प्रत्येक नदी सरोवरों से निकलती है और जाकर सागर में मिल जाती है लेकिन मैंने एक ऐसी नदी देखी जो सागर से निकलती है दूसरे सागर से मिल कर उपहार लेकर महासागर की

ओर प्रयाण कर रही थी।

पूज्य आ.भ. विद्यासागरजी महाराज रूपी सागर से आर्जवसागर रूपी सरिता निकलती है निरंतर 28 वर्षों से निर्वाध बहती जा रही थी, लाखों जीवों के अन्तस् के ताप को शान्त करती हुयी वह सरिता रूपी मुनिवर आर्जवसागर आचार्यश्री सीमन्धरसागरजी रूपी सागर के पास स्वपर उपकार हेतु गये और उपहार स्वरूप आ. सीमन्धरसागरजी महाराज ने अपने मन में विचार किया कि यही है वह जो महासागर (मोक्ष) की ओर प्रयाण कर रहे हैं क्यों न हो कि मैं अपने भार को (आ.पद) इन के कन्धों पर उपहार के रूप में प्रदान कर दूँ। पूज्य गुरुदेव के द्वारा बार-2 मना करने के बाद भी चा.च. आचार्यश्री शान्तिसागरजी की परम्परा के आ. सीमन्धरसागरजी ने आपके मन पर आचार्य पद का (मनभर) बहुत बड़ा भार डाल दिया और आपने मौन पूर्वक इतने बड़े भार को उठा लिया और पू. तपोनिष्ठ वयोवृद्ध चारित्र वृद्ध समाधि साधक को उनकी अन्तिम यात्रा में निर्विकल्प करके सुख पूर्वक समाधि मरण कराया। और आप आचार्य पद का निर्वहन पूर्ण निष्ठा पूर्वक निर्दोष रूप से कर रहे हैं। आपने मोक्षार्थी अल्पवृद्धजनों को भी दीक्षा प्रदान करके बहुत से जीवों को मुक्ति का मार्ग खोल दिया। यह बड़ी सौगात है वास्तविकता में यदि आपको ''हे मोक्षार्थियों के नाथ'' कहकर पुकारूँ तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि एक आप ही हैं जो जगत के करोड़ों जीवों के प्राणाधार हैं अथवा वास्तव में यदि जीवों के प्राण तो वे हैं सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी प्राण है, और आप उन प्राणों के जनक या रक्षक हैं। आप ही प्राण नाथ हैं, आप ही प्रेरणा स्रोत हैं, आप ही जिनधर्म के शाश्वत अलंकार हैं। आप हैं तभी तो धर्म की निर्दोष प्रभावना निरन्तर हो रही है। आपके आचार्य पदारोहण दिवस को याद कर भक्तिपूर्वक भावना भाता हूँ कि हे गुरुदेव, हे विधाता, आप सदियों तक जयवंत रहें, सदियों तक ऐसे पूज्य गुरुदेव का गुणगान होता रहे।

नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु।

धर्म पर मंडराती पाश्चात्य घटायें

★ ग्रामीण, शहरीय वातावरण का प्रभाव

★ पाश्चात्य देशों के प्रभाव से आ रही हैं संस्कृति में विकृतियाँ

★ जीवन की अधारशिला : संस्कार

★ परिग्रह परिमाण

★ वर्तमान और पूर्व की शिक्षा पद्धति

★ चिंता ही दु:ख का कारण

★ कर्म-फल की विचित्रता

★ वैराग्य की महिमा

★ सम्यग्दर्शन की महिमा

★ श्रावकों के चार धर्म
(दान, पूजा, शील, उपवास)

★ ज्वार के मोती

★ कर्मों की महानता में जन्म की सार्थकता

★ कैदियों को सिखलाया धर्म का पाठ

ग्रामीण, शहरीय वातावरण का प्रभाव

ग्रामीण वातावरण में छोटे गाँव में, हम देखते हैं कि लोग पैदल आते-जाते हैं, आपस में एक दूसरे से सुख-दु:ख की खबर लेते-देते हैं ऐसा लगता है कि भोग-भूमि सी हो और किसी को कोई भार नहीं है सब एक दूसरे की सहायता करते हैं, मिल जुल कर रहते हैं। शहरों में देखो तो किसी को एक-दूसरे से, उनके सुख-दु:ख से कोई मतलब नहीं है, किसी के पास समय ही नहीं है। शहरों में तो कुछ लोग एक-दूसरे का, पड़ोस वालों का चेहरा भी नहीं पहचान पाते, कहीं-कहीं तो उन्हें पता ही नहीं रहता कि हमारे बाजू में कौन रहता है? उन्हें तो अपने काम से ही काम रहता है, एक-दूसरे के सुख-दु:ख से उन्हें कोई मतलब नहीं होता।

शहरों में उतना कोई भाईचारा नहीं होता, इसीलिए एक-दूसरे अपने सुख-दु:ख में सहायक नहीं बन पाते। वहाँ एकता नहीं होती। आजकल तो सब कुछ मशीनों पर निर्भर हो गया है। भोजन-पान भी रेडिमेड हो गया है। जब जो आर्डर करो ऑनलाइन घर पर आ जाता है।

आजकल के खाद्य पदार्थ कहाँ, कैसे बन रहे हैं? उनमें कैसे अशुद्ध पदार्थों का उपयोग किया जा रहा है? किसी को नहीं मालूम। सब्जियाँ भी शहरों में नालियों के पानी से उत्पन्न हो रहीं हैं और इंजेक्शन लगाकर सब्जियों को बड़ा किया जा रहा है, अनेक कैमिकल्स डाले जा रहे हैं। फलों में भी इंजेक्शन लगाकर उनका कलर डेव्लप किया जा रहा है न जाने आगे क्या होगा? साधु विहार कैसे करेंगे? वहाँ उनकी चर्या कैसे पलेगी?.... ऐसा वातावरण उन बड़े-बड़े शहरों का है; जहाँ न तो शुद्ध वायु है और ना ही शुद्ध खान-पान।

लोग शहरों की ओर जाने की होड़ लगा रहे हैं। आजकल स्वतंत्रता नहीं स्वछंदता हो गई है कोई कहाँ जा रहा है? कहाँ खा रहा है? क्या खा रहा है? कुछ नहीं मालूम। आजकल न जाने लोग किस माहौल में क्या देखने जा रहे हैं?

शहरीय वातावरण में पहनावा भी बड़ा विचित्र-सा हो गया है। गाँव में तो फिर भी लोग अपनी सीमा में रहकर वेशभूषा पहनते हैं और बड़ों का, बुजुर्गों का आदर करते हैं लेकिन शहरों में तो महिला-पुरुष का पहनावा समान-सा हो गया है। पहचान ही नहीं कर पाते कि कौन माँ है? कौन बेटी? कौन पत्नि? सबका पहनावा

समान हो गया है, वहाँ कोई मर्यादा नहीं है, वहाँ तो विदेशी वेशभूषा को वे लोग अपना रहे हैं।

अगर आप शहरों में इसलिए भागोगे कि वहाँ इलेक्ट्रिक भरपूर मिल जायेगी, वहाँ बहुत सारे सुविधाओं के साधन मिल जाएंगे और वहाँ स्वतंत्रता मिल जायेगी और बहाना क्या है? कि बच्चों को अच्छे उच्च स्कूल में पढ़ाना है, उन्हें अच्छे कॉलेज आदि में पढ़ाना है, इस बहाने लोग अपनी संस्कृति को खो देते हैं और व्यसनों में फँस जाते हैं। आज स्वतंत्रता नहीं स्वछंदता हो गई है और स्वछंद होकर व्यक्ति ने अपनी संस्कृति खो डाली है।

बंधुओं! शहरों के वातावरण में आत्मीयता बिल्कुल कम होती जा रही है वहाँ तो डॉक्टर ही आपके रिश्तेदार हैं। और शहरों में बच्चों को पढ़ाने के बहाने से वहाँ रहते हैं और पति-पत्नि दोनों सर्विस करते हैं और अपने बच्चों को नौकरों के भरोसे छोड़ देते हैं वह बच्चा संस्कारित नहीं हो पाता है। आज आपने उन्हें नौकरों पर छोड़ा तो कल के दिन वे भी आपको नौकरों पर छोड़ देंगे।

हम जैसा जीवन बनाना चाहें वैसा बना सकते हैं। शहरीय वातावरण इतना प्रदूषित हो गया है कि वहाँ खान-पान की शुद्धता पर प्रश्न चिह्न लग रहा है। शहरों में सुविधाओं के साथ दुविधाएँ ज्यादा हैं। शहरों में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता कम होने कारण वहाँ की अधिक व्यस्तता है जिस कारण वे एक-दूसरे के सुख-दु:ख में लोग सहयोगी नहीं बन पाते हैं। और पदार्थों की शुद्धता भी नहीं मिलती और वहीं दूसरी ओर गाँव में देखो तो वहीं शुद्ध देशी सब्जियाँ, फल, दूध, सब मिल जाते हैं। जलाशय, कुएँ भी आसानी से प्राप्त हो जाते हैं। गाँव में जिन-मंदिर भी निकट ही मिल जाता है परंतु शहरों में तो नजदीक मंदिर का दर्शन होना भी मुश्किल सा हो जाता है। बहुत दूर-दूर मंदिर होने से वे प्रतिदिन वहाँ सहजता से जा भी नहीं पाते हैं। जहाँ गाँव में शुद्ध खान-पान, मिलता है वहीं शहरों में अधिकतर कैमिकल से बनाया हुआ दूध आदि उपयोग में लाते हैं।

शहरीय वातावरण की अपेक्षा गाँव का वातावरण बहुत अच्छा है। ये मत सोचो कि शहरों में जाकर हम सुखी रहेंगे वरन् कुछ प्रदूषित शहरों में जाकर कई तरह के दु:ख-बीमारियाँ आएँगी और धर्म भी छूट जायेगा और संस्कृति का भी विनाश हो जायेगा।

अत: ग्रामीण वातावरण ही उत्तम है। गाँव में एक व्यक्ति छोटा-सा व्यापार करता है तो भी सेठ कहलाता है और वही व्यक्ति अगर शहर में पहुँच जाए तो एक

बड़ी बिल्डिंग भी न बना पाये,एक छोटा सा मकान बनाकर वह नौकर जैसा कहलाता है। गाँव में लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने से वे सुख दु:ख में सहयोगी बनते हैं। इसलिए गाँव में प्रकृति से लेकर हर तरह की सुविधा जीवन के लिए सुखदायी हैं। जनसंख्या की अपेक्षा जो शुद्ध वायु गाँव में मिलती है वैसी शहरों में नहीं मिल पाती क्योंकि वहाँ बहुत ज्यादा गैसेस आदि रूप अशुद्धियाँ हैं, जल, वायु और वाहनों का भी प्रदूषण है।

गुरुओं के सत्संग और धर्म की दृष्टि से तो वह छोटा सा गाँव स्वर्ग के समान है। इसलिए ये मत सोचो कि हमें अपनी कन्याओं को शहर में देना है और कन्याएँ भी यह न सोचें कि हम शहर में जाकर सुखी रहेंगे... वहाँ जाकर आपकी संस्कृति बदल जायेगी, और व्यसनी लोग मिलेंगे तो आपका धर्म भी छूट जायेगा। अत: बच्चों को ज्यादा पढ़ाने का लोभ भी मत करो, वे तो आपके सुसंस्कारों से अपने आप पढ़ लिखकर श्रेष्ठ बन जायेंगे। किन्हीं अनुभवियों ने वह ठीक ही कहा है कि- **'उत्तम कृषि, मध्यम व्यापार, नौकरी करना सबसे खराब।''**

बंधुओं! गाँव में जो माहौल है वह शहर में नहीं है। अत: ग्रामीण वातावरण; शहरीय वातावरण की अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट है। अपने जीवन को महान बनाने हमें अपने अंदर धर्म को अंगीकार करना है और धर्म के योग्य वातावरण ढूढ़कर, वहाँ रहकर, धर्म को अंगीकार करके अपना धर्म व मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करना है।

•••

गुरु के वचन आत्मसात करने योग्य हैं,
भले वह कड़वी औषध-सम क्यों न हों।

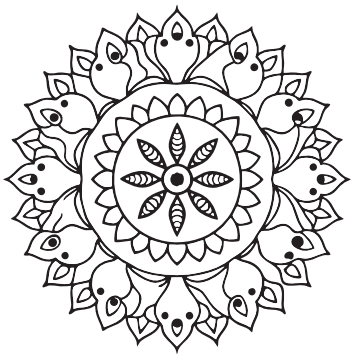

पाश्चात्य देशों के प्रभाव से आ रही हैं संस्कृति में विकृतियाँ

जनश्रुति है कि 'डरो मत कमर कसो' भयभीत होने से कुछ नहीं होगा। विपरीत परिस्थितियों में कुछ जीतने के लिए कमर कसना होगी। जैसे देश की रक्षा के लिए सैनिकों ने कमर कस रखी है तो देश सुरक्षित है, इतने सोचने मात्र से कुछ नहीं होगा।

हमारे आध्यात्मिक / धर्म के क्षेत्र पर कर्म शुत्रुओं ने आक्रमण कर हमारी संस्कृति व संस्कार की कमर तोड़ रखी है। सुना था कि मैकाले ने ठाना था कि– भारत देश को अंग्रजी भाषा में ढाल कर यहाँ की संस्कृति को बदल देंगे, उसका स्वप्न तो साकार हुआ और हम संस्कारों के शिकार हो गये। आज इंग्लिश मीडियम से पढ़ने वाले बच्चों के लिए हिंदी शब्दों व अंकों को पढ़ना अति कठिन व असंभव हो गया है अत: आज के समय कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे–

- आज की नई पीढ़ी अपने देश की मातृभाषा को क्यों विस्मृत करती जा रही है।
- आज की शिक्षा पद्धति से अपने देश की वेशभूषा भी परिवर्तित हुई है और प्राचीन संस्कृति, इतिहास, देश की धरोहर, महापुरुषों के आदर्श सूत्र विस्मृत होते चले जा रहे हैं।
- माता–पिता की व्यस्तता के कारण धार्मिक संस्कारों का अभाव हो रहा है।
- पारिवारिक दूरी से वैवाहिक विकृतियाँ पनप रही हैं।
- बाहरी खानपान से हिंसक आहार को बढ़ावा मिल रहा है।
- अहिंसक लोगों की जनसंख्या में कमी देखी जा रही है।
- शहरी वातावरण के खानपान और प्रदूषण से कोरोना जैसी कई बीमारियों की बढ़ोत्तरी हो रही है।

बंधुओं, सोचो कि– हमारा देश कृषि प्रधान देश था; जिससे शाकाहार का प्रभाव था तथा धान्यादि के सेवन का प्रभाव अधिक था और पशुधन भी सुरक्षित था।

आज के यांत्रिक विज्ञापन में यांत्रिक कृषि से एवं विदेशी खाद के उपयोग से भूमि की उर्वरक शक्ति का विनाश तो हुआ ही है और पशुओं की भी हानि कर डाली है।

बंधुओं! लगता है कि बैलादि पशु देखने में तो कम आ ही रहे हैं परंतु आज सिंथेटिक दूध के उत्पादन एवं भूसा आदि के अभाव से गाय भैंस आदि पशुओं का दिखना भी कम हो जायेगा। कहीं ऐसा न हो कि भविष्य में आने वाली नई पीढ़ी को चित्रों में दिखाना पड़े कि ऐसे होते थे गाय आदि पशु।

भौतिक युग के प्रभाव से विदेशी खान-पान में हिंसक पदार्थों की मिलावट की जा रही है। कहते हैं कि यूरोप में एक कानून बनाया गया कि बाल, नख, सींग, खुरा, चर्बी, अण्डे की जर्दी हड्डी को माँसाहार के अंतर्गत नहीं लिया गया केवल रक्तवर्ण वाले शरीर के हिस्से को ही शायद माँस मानकर के और उपर्युक्त बाल, हड्डी आदि को खाद्य पदार्थों को डाल कर और उसे शाकाहार मानकर हरा निशान लगाना शुरू किया और इसी पद्धति को भारत ने भी अपना लिया। आज भारत में अनेक विदेशी कंपनी भी इसका उत्पादन कर रहीं हैं और अनेक बूचड़खाने (Slaughter House) और माँस की दुकाने खुलती जा रही हैं; जो सरकार की नजरों में भी हैं। अब हरे चिह्न को देख कर यह वस्तु शाकाहारी होगी, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। जितने भी पैकेट बन्द, डिब्बा बंद पदार्थ बाजार और मॉल में बिकने आ रहे हैं उनमें उनकी उम्र बढ़ाने हेतु जो कैमिकल थैलेट्स (phathalates) डाला जाता है वह कैंसर आदि रोगों का कारण बन सकता है और उनमें स्वाद बढ़ाने के लिए आजीनोमोटो (ajinomoto) पदार्थ डाले जाते हैं। लौकी को कुछ घण्टों में बड़ा कर देने के लिए अथवा गाय भैसों से अधिक दूध निकालने के लिये ऑक्सीटोसिन (oxytocin) नामक इंजेक्शन लगाए जाते हैं, ऐसा प्रचार हो रहा है। इससे छोटी उम्र में ही फैट बढ़ना, हार्ट, ब्लडप्रेशर, कैंसर आदि की बीमारियों का शिकार होना बताया जा रहा है। इस कारण हमें निरोगता को हासिल करने के लिये पापवृद्धि एवं दुर्गति के निवारण हेतु अहिंसक तथा शाकाहार को अपनाते हुये प्राचीन कृषि पद्धति को, पशु संरक्षण को सुरक्षित रखते हुए धार्मिक ग्रंथ एवं आध्यात्मिक सूत्रों को अपनाते हुए पुण्य को बढ़ाना होगा।

आज के परिवेश में अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई दे रहा है। इसी कारण मैंने कहा है कि- हमें अपने साधुओं के, महापुरुषों के आचार-विचारों का पालन करना चाहिए। बस, याद रखो-'डरो मत कमर कसो' हमें डरना नहीं है कमर कसना है। जैसे भारत की बार्डर पर सैनिक अपनी कमर कसकर देश की रक्षा कर रहे हैं। हम सोच रहे हैं कि बाहरी शत्रु हमारे यहाँ आक्रमण नहीं कर रहे हैं तब हमें सबक मिलता है। लेकिन हम ये नहीं सोच पा रहे हैं कि हमारी आत्मा में भी कोई शत्रु आते हैं और हमने उनके पीछे कमर नहीं कसी है और हम हार जाते हैं।

आज हमारी संस्कृति में अनेक विकृतियाँ आ रही हैं और हम अपनी कमर को ढीला रखे हुये हैं, कमर टूट रही है क्योंकि ऐसी विकृतियाँ हम पर छा रहीं हैं। कहते हैं कि प्रलय होने को अभी बहुत वर्ष है। बाद में महाप्रलय के दौरान धरती तहस-नहस हो जायेगी और कुछ नजर नहीं आयेगा। बाद में पुनः विजयार्ध पर्वत की गुफा में छिपा दिये गये 72-72 जोड़ों को देव लोग निकालेंगे और वहाँ अमृत की वर्षा से जो अंकुर उत्पन्न होंगे उसी से उदर भर-पोषण होगा और फिर कृषि कार्य सीखने से ही जीवन प्रारंभ होगा। परंतु उसके लिए बहुत दिन हैं।

बहुत दिन है तो क्या हम शांत बैठे रहेंगे? किसी भी शत्रु को आमंत्रित करते रहेंगे? हमारी आत्मा पर आ रहे कर्म रूपी शत्रु और आज की पाश्चात्य देशों की परम्पराएँ और जो विकृतियाँ आ रहीं हैं उसी वजह से आज हम बीच-बीच में भूकम्प, ज्वालामुखी और महामारी जैसे छोटे-छोटे प्रलय देखते रहेंगे। कहते हैं कि अभी जनसंख्या बढ़ रही है इसी कारण रोग भी बढ़ रहे हैं। आप जानते हैं कि कोई देशों ने 1400 प्रकार के वायरस बनाकर रखे हैं। अभी तो कोरोना, ओमिक्रॉन और पूर्व में फ्लू, प्लेग ही देखे हैं लेकिन न जाने अभी और क्या-क्या देखने में आएंगे। प्रलय काल में बहुत आपत्तियाँ आतीं हैं और जनसंख्या भी घटती चली जाती है।

जब विकृतियाँ बढ़ती जाती हैं तो प्रकृति स्वयं सबक देने लगती है। आप जान सकते हैं कि आज भारत भूमि पर कैसे-कैसे प्रकोप हो रहे हैं। आज इतने वाहनों के कारण प्रदूषण भी बहुत बढ़ रहा है इसी कारण ओजोन परत में भी छेद होना बताते हैं; जिसके कारण गर्मी भी बढ़ रही है और बताते हैं कि कोरोना में लॉकडाउन के

समय जब वाहन वगैरह बंद हुये थे तब प्रदूषण बंद होने से ओजोन परत पुनः ढँक गई थी परंतु अब पुनः नये वाहनों आदि के प्रसाधनों के बढ़ते हुये उत्पादन से पुनः प्रदूषण बढ़ गया है। इस प्रदूषण के कारण गर्मी इतनी अधिक बढ़ रही है कि बर्फ के पहाड़ भी पिघलने लगे हैं और इलेक्ट्रिक उत्पन्न करने वाले थर्मल पावर भी बहुत बढ़ गये हैं जिससे भी गर्मी बढ़ रही है। चूँकि पहले लोग कृषि पर आधारित थे और उनके पास सीमित ही साधन थे। उनका उद्देश्य था कि- **''रोटी, कपड़ा और मकान, जीवन के हैं तीन निशान''** आज भोग-उपभोग की सामग्रियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन के साधनों की बढ़ती मांग के कारण अनेक इलेक्ट्रिक फैक्टरियों का निर्माण हो गया है जिससे प्रदूषण बढ़ रहा है। एक बार दिल्ली में मीटिंग के दौरान कोई साउथ के इंजीनियर ने बताया कि आगे भविष्य में 2025 तक लगभग भारत भू पर गर्मी बढ़ने के कारण इस भूमि से लपटें निकलेंगी क्योंकि पूरे विश्व में इतनी गर्मी बढ़ जायेगी; जो लोगों को सहन नहीं होगी; जिससे काफी जनहानि होगी। साथ ही जो बर्फ के पहाड़ पिघल रहे हैं जिससे समुद्र का पानी बढ़ जायेगा और जिससे बड़े-बड़े शहर भी पानी की डूब में चले जाएंगे, ऐसी संभावनायें व्यक्त की हैं।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमें इलेक्ट्रिक और वाहनों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए; जिससे बिजली का उत्पादन भी कम होगा और गर्मी भी कम होगी, पहाड़ भी नहीं पिघलेंगे और ओजोन परत भी बनी रहेगी तथा प्रदूषण भी कम होगा। कहते हैं कि दिल्ली जैसे महानगरों में प्रदूषण की बढ़ती हुई स्थिति को देखकर पेट्रोल-डीजल के वाहनों की जगह बिजली के और सीएनजी गैस के वाहनों का प्रयोग किया जा रहा है। अन्यथा बिजली (electric) की मांग बढ़ने से उसके उत्पादन में भी वृद्धि होगी जिससे भूमि पर गर्मी (Heat) बढ़ जायेगी। सोचिए! हम कैसे विनाश की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। इसके स्थान पर सौर ऊर्जा बेहतर है।

जो लोग आज कृषि को भूल गये और अशुद्ध खानपान, माँसाहार की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहे हैं और कृषि को भी यांत्रिक साधनों के माध्यम से करने लगे हैं; जिससे भूमि की उर्वरक शक्ति भी कम होती जा रही है और हार्वेस्टर आदि के अधिक प्रयोग से भूसा की कमी होने के कारण पशु हानि भी हो रही है।

पशुओं के शरीर के एक-एक अंश से कई चीजें निर्मित की जा रही हैं। हड्डी, चर्बी, माँस, खुरा, नख, केश आदि से कई वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा है और उनको माँसाहार के अंतर्गत नहीं लिया जा रहा है और फास्टफूड-जंकफूड में इनको अप्रत्यक्ष रूप से डाला जा रहा है जिससे अनेक बीमारियों का जन्म हो रहा है जो कि हमारे स्वास्थ और धर्म के लिए हानि- कारक है।

आज की नई पीढ़ी में ऐसे संस्कार आ गये हैं कि आजकल के बच्चे टी.वी. / मोबाइल देखते-देखते भोजन करते हैं। जिससे आँखें भी खराब होतीं हैं और मिसयूज करने से अनेक तरह की हानियाँ भी हैं। अगर आप टी.वी., मोबाइल देखते हुए बिना देखे, बिना शोधे भोजन करोगे तो चींटी, लट, बाल, मकड़ी सभी तुम्हारे पेट में जाकर वह अशुद्ध पदार्थ बीमारियों को उत्पन्न करेगा और माँस खाने का दोष भी लगेगा। जो दिन में भी बिना देखे भोजन करता है उसे रात्रि भोजन खाने का दोष लगता है।

अतः आप सभी नियम करें कि हम भी विवेक और संयम के माध्यम से अपने धर्म की रक्षा करेंगे।

धर्म रक्षा में सर्वस्व लुटा दो क्योंकि
यही शील है और गुण रूपी प्राणों का रक्षक भी।

जीवन की आधारशिला : संस्कार

प्रत्येक मानव के विकास के लिए धर्म करके पुण्य का संपादन करने के लिए सद्गति को पाने के लिये और विशिष्ट पुण्योदय हो तो मोक्षमार्ग में आकर तप करके संवर और निर्जरा के माध्यम से मोक्ष पाने के लिये जो बाल्यावस्था में संस्कार की बात की जाती है, वह बड़ी महत्वपूर्ण है।

माता-पिता जब अपने बच्चों को समय देते हैं तो जो मेहनत करते हैं, जो स्नेह के साथ उन्हें अपनी संस्कृति का, धर्म का संस्कार देते हैं वह संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। इसका कारण है कि बचपन में बच्चों का हृदय गीली मिट्टी सदृश बड़ा ही कोमल होता है मिट्टी को जैसा भी आकार दे दें तो वह उसी रूप में ढल जाती है। अगर गलत आकार पड़ गया तो वह कठोर हो जाने पर पुनः बदलता नहीं है। वैसे ही बचपन में बच्चों का हृदय बहुत कोमल होता है इसलिए उन्हें बचपन में ही संस्कार देना उचित होता है। जिस तरह से आप उन्हें समझाते हैं, जिस तरह से सिखाते हैं प्रायः वे बच्चे उसी मार्ग में चले जाते हैं। उन्हें वैसे किसी चीज (माध्यम) की आवश्यकता नहीं है। आपकी क्रिया देखते-देखते वे वैसा ही करने लग जाते हैं। आप मंदिर जाते हैं तो आपको देखकर वे भी जाते हैं, आप चावल चढ़ाते हैं तो वे भी चढ़ाते हैं, आप पूजा करते हो तो वे भी पूजा सीखना चाहते हैं, आप आहार देते हैं तो वे भी सोला के वस्त्र पहन कर खड़े होकर भक्ति करना चाहते हैं अर्थात् यही संस्कार उन पर पड़ता है। और अगर इसके विपरीत पाप कार्य करें तो वह बच्चा भी पापकर्मों को सीखता है। सहजता में घरों में जो कार्य होते हैं उन्हें वे बच्चे देखकर सीख जाते हैं।

विचार करो कि हम किस प्रकार से अपनी नयी पीढ़ी को ढाल रहे हैं? हमारा अगर आचरण, हमारा अगर रहन-सहन और हमारे भाव अगर मंगलमय हैं तो वैसा ही मंगलमय बच्चों का जीवन बनता है। और हम लोग ऐसे अच्छे संस्कार देने से आगे बहुत सी सुविधाओं को और बहुत सारे धार्मिक लाभों को पायेंगे। आत्मा के अंदर यह विवेक हो, यह ज्ञान हो कि हम उपकार करें। 'परस्परोपग्रहो जीवानम्' अर्थात् जीव का एक-दूसरे का उपकार करना धर्म है। स्वार्थ बिना ही सब जीवों के प्रति अच्छे भाव रखें। यह कार्य कठिन नहीं है, अगर हम करना चाहें तो हर कार्य संभव है

औरवह पुण्योदय से अवश्य होगा। अतः हमें अपने बच्चों को बचपन से संस्कार देना चाहिए। चूँकि पाप का संस्कार अनादिकाल से पड़ा हुआ है; जिसे सिखाने की आवश्यकता नहीं होती है। क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह आदि तो सब अनादिकाल से करते आ रहे हैं लेकिन अब बस; धर्म संस्कार को सीखना है; जो कि माता-पिता के द्वारा दिया जाता है। जैसे कोई लता को जिस किसी दिशा में मोड़ना चाहो वह मुड़ जाती है और प्रारंभ में ही वह गलत दिशा में जाकर मोटी हो जायेगी और फिर हम मोड़ना चाहेंगे तो वह मुड़ेगी नहीं बल्कि टूट जायेगी। वैसे ही बच्चे जब बड़े हो जाते हैं और अगर उन पर बुरा संस्कार पड़ा गया हो और तब आप उनसे कहते हैं कि जाओ बेटा! मंदिर जाओ, धर्म करो, तीर्थ क्षेत्र चलो, गुरुओं की सेवा करो, स्वाध्याय आदि करो तो उनका मन नहीं करता क्योंकि उनका मन कहीं और मुड़ गया है और अगर ज्यादा कहें तो वे उल्टा जवाब देकर कहते हैं कि तुम अपना काम करो, हम अपना काम करेंगे। तब कैसा लगता है? कि अगर ऐसी संतान को जन्म ही न दिया होता तो ठीक होता।

संस्कार देने का एक अच्छा समय बचपन ही होता है और वे संस्कारी बच्चे बड़े होकर आपको भी सहारा देते हैं। अगर बचपन में आपने उन्हें समय दिया, स्नेह दिया, उनको अपनी दैनिक क्रियाओं के माध्यम से सब कुछ सिखाया, आप उनके सामने 24 घण्टे रहे तो वे बच्चे भी आपको अंतिम समय तक साथ देंगे। वे बच्चे भी वृद्ध अवस्था में भी माता-पिता के सुख दुःख में सहायी बनकर उनकी सेवा-उपचार करेंगे और आपने अगर बचपन में उन्हें समय नहीं दिया तो क्या होगा? आजकल के माता-पिता बच्चों को नौकरों के भरोसे छोड़ दते हैं तो बच्चों का स्नेह माता-पिता से नहीं रहता। और बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो वे भी आपको नौकरों के भरोसे छोड़ देते हैं। आश्रम में छोड़कर देश-विदेश की ओर चले जाते हैं। क्योंकि आपने उन्हें स्नेह नहीं दिया तो वे भी वैसे ही हो जाते हैं। जब आपकी अगर मृत्यु भी जो जाती है तो कहते हैं कि कर दो स्वाहा, हमारे पास समय नहीं है, हम नहीं आ पाएंगे। इस तरह वे बच्चे अपने कर्त्तव्यों को नहीं निभाते।

अतः हमें अपनी वस्तु को अपने हाथ से ही सम्हालना है जिससे वे अंत तक हमारे काम आएंगे। अपनी संतानों में इस प्रकार कूटकूट कर संस्कार भर देना; जिससे वे आगे चलकर तुम्हें ही सहारा बनें। और यदि वह संस्कार उसे मोक्षमार्ग में ले

जायेगा तो वह आत्मा करायेगा तुम्हारी सल्लेखना, तुम्हें धर्म सुनायेगा मोक्षमार्ग भी बतायेगा, नियम-संयम की महिमा भी बतायेगा और वह जहाँ भी जायेगा आपका नाम रोशन करेगा; जिससे आपका हृदय प्रफुल्लित हो जायेगा। लोग कहेगें कि-धन्य हो! कितने संस्कारित माता-पिता होंगे; जिन्होंने अपनी संतान को ऐसे सुसंस्कार दिये। कहते हैं-

''जाके जैसे नदिया नाले, वाके वैसे भरका।
जाके जैसे बाप-मतारी, वाके वैसे लड़का''॥

अर्थात् जैसे माता-पिता होते हैं वैसे ही उनकी संतानें भी होती हैं। बन्धुओं! संस्कार बहुत बड़ी चीज है। संस्कार बचपन में देना, न कि पचपन में, क्योंकि बचपन का संस्कार बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। बचपन का संस्कार तो जब तक मोक्ष न मिले तब तक साथ रहता है।

ध्यान रखिए! कि जब हम बच्चों को समय देंगे तो वे हमें भी समय देंगे। और यदि हमने समय नहीं दिया तो वे भी हमें समय नहीं देंगे, ऐसे ही हमें छोड़ देंगे।

आजकल के परिवेश में, आजकल के इस माहौल ने बच्चों को माता-पिता से बहुत दूर कर दिया। हम कैसे सम्हलें? कई बच्चे व्यसनों में फँस जाते हैं और उन्हें समझाने जाओ तो वे याद दिलाते हैं कि देखो! आपने ही तो मुझे संस्कार नहीं दिया। जब कोई समझाना भी चाहता है तो वे सुनना ही नहीं चाहते।

अतः बन्धुओं! अपने बच्चों को बचपन में ही संस्कारित कर देना जिससे बच्चे बड़े होकर उन संस्कारों के माध्यम से अपने जीवन को सफल बना सकें। धार्मिक संस्कारों की परम्परा तोड़कर येनकेन प्रकारेण धनार्जन भी मत करो। न्याय नीति से अपना जीवन सुखी बनाओ।

जिंदगी की राह में
फूल भी हैं.... शूल भी, भूल मत जाना।
राह के कंकट हटाना
स्वयं आगे बढ़ना, सबको बढ़ाना।

परिग्रह परिमाण

हम जितना परिग्रह सीमित करेंगे उतने जल्दी पुण्यार्जन करके मोक्ष के सम्मुख होते जायेंगे। वह परिग्रह बड़ा दु:खदायी भी होता है और गृहस्थों का परिग्रह के बिना भी काम नहीं चलता है। परिग्रह नहीं होगा तो मंदिर कैसे बनेगा? आहार कैसे देंगे? तीर्थयात्रा कैसे करेंगे? यह सब पाने के लिये परिग्रह की आवश्यक है। लेकिन परिग्रह का हम जितना उपयोग कर सकें, अच्छी जगह उसे परोपकार में लगा सकें उतना ही अर्जन करें। परिग्रह का संग्रह करते चले जाना यह ठीक नहीं है इसको सीमित बनाने के लिये कोई धार्मिक अनुष्ठान करना चाहिए। कोई अच्छे विधान, पूजा, पंचकल्याणक, धर्म क्षेत्र दर्शन और शास्त्र प्रकाशन आदि कार्य करना चाहिए।

बन्धुओं! अगर उसी परिग्रह में प्रमाण बांध लिया जाये तो वह सुख का कारण भी बन सकता है। जैसे-जैसे परिग्रह छूटे वैसे-वैसे हमको आनंद की प्राप्ति हो, हमारा भाग्य जाग जाये। परिग्रह से हमारा भार कम हो जाये और हम परिग्रह के परिमाण को बाँधकर कर्मों की निर्जरा कर सकते हैं। जीवन की व्यवस्था के लिये परिग्रह होता है लेकिन उसमें आनंदित होना परिग्रहानंद नाम का रौद्र-ध्यान है और रौद्र-ध्यान नरकायु का कारण है। वैसे तो हमारा शरीर भी परिग्रह है, मिथ्यात्वादि कषाय भी परिग्रह हैं लेकिन इन्हें अपनी भूमिका के अनुरूप साधु पुरुषों द्वारा छोड़ा जाता है। जो लोग ज्यादा दिखावा करते हैं उससे पापों का आस्रव होता है। बार-बार देखें कि हमने खूब आभरण पहन रखे हैं। आखिर किसके लिये पहने हैं? किसके लिए शृंगार किया है? दूसरे के लिए और यदि सामने वाला न देखे तो बहुत पीड़ा हो जाती है। कहते हैं.... जो बार-बार दर्पण देखते हैं खूब शृंगार करते हैं वे स्त्री पर्याय को प्राप्त होते हैं अतः बार-बार दर्पण नहीं देखना चाहिए। लेकिन कुल की मान-मर्यादा में रहना तो ठीक है।

सीताजी के उदाहरण से हम शिक्षा प्राप्त करें कि जब रावण ने हरण किया तो सभी ने रावण को दोष दिया तब सीता ने बहुत अच्छी बात कही कि क्या आप लोग आगम शास्त्र नहीं जानते? ऐसा क्यों कह रहे हो। अगर इस शरीर में ये रूप न होता और शृंगार न होता तो यह शरीर किसी को आकृष्ट न करता और किसी को राग उत्पन्न न कराता। हमारा हरण हुआ है उसका कारण हमारा ही शरीर है। हम लोग जो

शरीर को सजाते हैं इससे दूसरे को राग होता है इसमें हम स्वयं कारण बन जाते हैं।

इसलिए वैरागी लोग, त्यागी लोग शरीरादि से उदासीन क्यों रहते हैं? वे सादे वस्त्रों में धवल वस्त्रों में क्यों रहते हैं? शृंगार क्यों नहीं करते हैं? क्योंकि हमारा ये शरीर दूसरे को राग का कारण न बने। राग का कारण बनेगा तो हम भी उस पाप के आस्रव में कारण बनेंगे। अतः वे लोग न तो राग करते हैं और न किसी को होने देते हैं?

बन्धुओं! जिसको पापों के आस्रव से बचना है, जल्दी तिरना है तो वह पापों से बचेगा अन्यथा परिग्रह को ही इकट्ठा करता रहेगा। और सुनिये कि स्त्री को विधवा होने के बाद शृंगार नहीं करना चाहिए बल्कि ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लेना चाहिए। क्यों? क्योंकि आप सोचो कि पत्नि का शृंगार मात्र अपने पति के लिए होता है। आपने एक जमाना देखा होगा कि जब महिलाएँ घूँघट डालती थीं, कि यह अपना रूप किसको दिखाना है? जिसको दिखाएंगे उसे राग होगा। मात्र वह अपने पति के लिये ही दिखाती थी। अब जब पति ही नहीं तो शृंगार किसके लिये? आजकल की महिलाएँ घर में तो भूत सी बनी रहती हैं और बाहर में टिप-टॉप बनकर निकलती हैं। महिला का जो कुछ शृंगार है वह वास्तव में अपने पति के लिये है। अगर पति को संतुष्ट कर दिया तो तुम्हारा जीवन धन्य है और अगर पति से तुम्हारा स्नेह नहीं रहा तो सब व्यर्थ है। पति-पत्नि का एक ही उद्देश्य होता है कि संतान परंपरा चले क्योंकि अगर हम मोक्षमार्ग नहीं अपना पाये तो जो संतानें आयेंगी वे धर्म की रक्षा करेंगी और अगर उनमें से कोई मुनि, आर्यिका बन गये तो हमारी परंपरा, हमारा कुल धन्य हो जायेगा, इस भाव से ही विवाह होता है न कि और कोई विषय-वासना के लिए। अगर संतान नहीं चाहिए तो ब्रह्मचर्य अपना लो उसके प्रभाव से सर्वसुख मिलता है। जो परिवार नियोजन कराते हैं, गुप्त इन्द्रियों का निरोध करते हैं उन्हें नपुंसक वेद का बंध होता है। फिर इस से बचने का एक मात्र ही मार्ग है ब्रह्मचर्य/संयम धारण करना या ऐसे पाप से बचने हेतु सम्यक्त्व धारण करना।

आजकल लोग सोचते हैं कि बेटी का विवाह उससे ही करेंगे जो पढ़ा लिखा होगा। और उस पढ़े-लिखे की होड़ में आजकल सभी बच्चे-बच्चियाँ घर के बाहर जाते हैं और नौकरी/सर्विस करते हैं। उस समय का माहौल क्या होता है?क्या घटित होता है वह किसी को नहीं मालूम। शादी-विवाह तक पहुँच ही नहीं पाते उसके पहले ही आपस में फ्रेण्ड बन जाते हैं किसी ने कह ही दिया कि बचपन में तो कुछ

कन्यायें बात मानती हैं वे जवाब नहीं देती, वे ही कन्यायें संस्कार न पाने पर अपने माता पिता को बातें सुनाती हैं। बाहर पढ़ने वाली बच्चियाँ कहती हैं कि हम भी पढ़े लिखे हैं हम स्वयं कमा लेंगे, स्वयं वरण भी कर लेंगे, अपने फील्ड वाला देख लेंगे, फिर धर्म कर्म का क्या होगा। आजकल सब नौकरों पर आश्रित हैं। माता-पिता को अपने बच्चों का ध्यान रखने के लिए संस्कार देने के लिए समय ही नहीं है। टी.वी., घूमना-फिरना आदि से लोग को फुरसत ही नहीं है। या पति पत्नी के सर्विस के पीछे सब कुछ नौकरों पर सम्हलवा दिया जाता है।

स्त्री तो वह होती हे जो बच्चों को संस्कार देती है, और पति को संतुष्ट करती है और अपने सास-ससुर या माता-पिता की सेवा करती है, न कि मात्र ऑफिस जाती है, कार चलाती है, और सोफासेट पर बैठकर आर्डर चलाती है। किसी ने कहा है कि-

उत्तम कृषि, मध्यम व्यापार। नौकरी करना होता खराब॥

दूसरों की नौकरी करके उनके नौकर बनने से अच्छा है कि हम अपना स्वयं का व्यापार करें और सेठ कहलायें। आजकल के पति-पत्नि दोनों सर्विस करते हैं। सोचते हैं कि बहुत धन कमा लेंगे और बड़ा बंगला बनाएंगे, गाड़ियाँ खरीद लेंगे और बच्चों को नौकरों पर आधारित कर देते हैं उन्हें कोई संस्कार भी नहीं देते हैं। आपने नौकरों से उनकी सेवा कराई तो बड़े होकर वे बच्चे ही आपसे कहते हैं कि नौकर ही तुम्हारी सेवा करेंगे, हम तो चले विदेश। वहीं से हेलो हेलो..... टाटा करते हैं। मर जाओ तो करो स्वाहा..... हमारे पास समय नहीं है ऐसा बोल देते हैं। अब क्या करोगे? ऐसा हाल आज हुआ है। मात्र यह काल्पनिक कहानी नहीं, ऐसी कई साक्षात् घटनाएँ होती हैं।

इसलिए बन्धुओं! ज्यादा पढ़ाने-लिखाने के चक्कर में बच्चे क्या क्या कर लेते हैं? कहाँ अटक जाते हैं? कहाँ भटक जाते हैं? कुछ मालूम नहीं पड़ता है आजकल फॉरन की पद्धति आ गई है उसका अनुसरण कर आजकल की नई पीढ़ी अशुद्ध खान-पान की ओर झुकती जा रही है अर्थात् फास्ट-फूड, जंक-फूड का सेवन कर रही है इसलिए उनके दया का अभाव हो रहा है। कहते हैं-

जैसा खावे अन्न, वैसा होय मन। जैसा पीवे पानी, वैसी होवे वाणी॥

क्रूर पशुओं के शरीर के भाग से बने भोजन को करके अर्थात् फास्ट-फूड

आदि का सेवन करके आप भी क्रूर मत हो जाओ। कहने का अर्थ है कि अपने माता-पिता और धर्म की सेवा करना मत भूलो।

आजकल शहर के बच्चों की अगर गाँव में शादी हो जाती है तो वे माता-पिता की सेवा करना नहीं चाहते और धीरे-धीरे बात यहाँ तक पहुँच जाती है कि वे विदेशी वेशभूषा पहनने के चक्कर में अपने सास-ससुर को घर से ही निकाल देते हैं। क्योंकि वे स्वछंदता पूर्वक जीवन जीना चाहते हैं; जो कि गलत है। माता-पिता को अपनी बच्ची से कहना चाहिए कि बेटी! तू अगर गाँव में भी जायेगी तो बड़ों की अच्छे से सेवा करना और वहाँ की परंपरा को निभाना। ध्यान रखना गवर्मेंट से नियम भी बन गया कि बूढ़े माता-पिता या सास-ससुर को आप घर से बाहर नहीं निकाल सकते। क्योंकि ऐसा करना दुर्भाग्य है और दुर्गति का कारण व दण्डनीय अपराध भी है। और कई बार जो छोटे गाँव की कई कन्यायें बच्चियाँ शहरों में जाती हैं तो कई पति तो व्यसनी मिलते हैं जिससे कुछ ही दिनों में उनका संबंध टूट जाता है। अतः शादी-पूर्व ही निर्णय कर लें कि हम अपनी भारतीय वेशभूषा एवं अहिंसक खान-पान को नहीं भूलेंगे और गृह का शुद्ध शाकाहार ही करेंगे। अतः अपने आचरण का प्रभाव अपने घर तक नहीं बल्कि देश-विदेशों पर भी डालना है; न कि विदेशों के प्रभाव में आकर हमें अपनी धर्म संस्कृति को भूल जाना है।

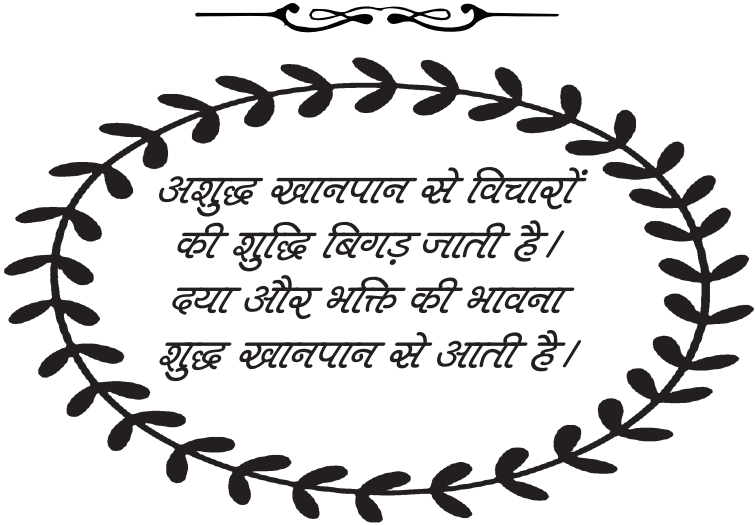

वर्तमान और पूर्व की शिक्षा पद्धति

वर्तमान में या पहले की भी शिक्षा के माध्यम से बहुत सारे रास्ते खुल जाते हैं। पढ़े-लिखे व्यक्तियों की शैली और उनकी दैनिक चर्या का रहन-सहन का तरीका अच्छा होता है। बोलना, उठना-बैठना, खाना-पीना, विनय, आदर-सत्कार ये सब माता-पिता के संस्कार से भी मिलता है और यह सब भगवान के मंदिरों में भी सीखने को मिलता है, और गुरुओं के सान्निध्य में रहने से भी संस्कार हो जाता है, सज्जनों के सत्संग से भी संस्कार की बात मिल जाती है। कोई भी मानव इसको पाने से वंचित नहीं रह पाता। यह जरूरी नहीं है कि अपनी जीवन शैली को बनाने वह विद्यालय में ही जाये। जब तिर्यञ्च भी किसी दूसरे को देखकर अपनी जीवन शैली को बना लेते हैं तो मानव तो और विशेष है। वह तो अपने जीवन में नियम-संयम धारण कर सकता है, परोपकार कर सकता है और यहाँ तक कि मोक्षमार्ग पर चलकर न्याय-नीति से वह समाज के बीच रहते हुए वह एक बार मोक्ष पुरुषार्थ प्राप्त करने के लिए अपने जीवन को समाज से ऊपर उठा करके गुरुओं के मार्ग पर चलने लगता है और साधु कहलाता है।

बन्धुओं! साधु बनना आसान बात नहीं होती क्योंकि साधु-त्यागी-तपस्वी बनने के लिये, व्रती बनने के लिए प्रत्येक आत्मा को त्याग-नियम-संयम जरूरी है; जो कि वैराग्य के बिना संभव नहीं है। जो शरीर से वैरागी है, निष्पृही है और जो शरीर से विरक्त है, काम-भोग आदि से दूर है अर्थात् जो संसार-शरीर-भोगों से निर्विण्ण है, वही इस मार्ग पर चल सकता है। जिसे शरीर की चिंता है, जिसे शरीर की शोभा बढ़ानी है, जिसे शरीर को बलवान बनाना है, जिसे इन्द्रियों को पुष्ट करना है अर्थात् जिसे भोगों की चाहना है और उसमें रागद्वेष करता है, जिसे परिषह सहन नहीं होते हैं, वह कभी मोक्षमार्ग में आ नहीं सकता। अर्थात् वह साधु-तपस्वी नहीं बन सकता। परंतु यह मार्ग बहुत उत्तम है। इस मार्ग पर भी कई लोग चलते हैं।

स्कूल में मानों अगर 100 विद्यार्थी पढ़ते हैं और 100 ही उत्तीर्ण हो जायें ऐसा नियम नहीं है, 2-4 अनुत्तीर्ण भी हो जाते हैं। फिर भी उत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या ज्यादा होने से स्कूल को अच्छा माना जाता है। हर एक क्षेत्र में 100% लोग सफल नहीं

हो पाते कुछ असफल भी होते हैं चाहे व्यापार हो या अन्य क्षेत्र हो। आस्था के बिना किसी अच्छे मार्ग पर नहीं चला जा सकता, श्रद्धा बनाकर चलें सफलता हमारे पुरुषार्थ और भाग्य पर निर्भर है।

प्रवचन का मुख्य उद्देश्य शिक्षा पर आधारित है। पहले की जो शिक्षा पद्धति थी वह बहुत ही अच्छी थी। वह गुरुकुल पद्धति बहुत मार्मिक थी। उसमें आचरण को प्रमुखता दी जाती थी और नैतिकता की शिक्षा दी जाती थी। उसमें परिवार की सेवा, समाज की सेवा, त्यागी-तपस्वियों की सेवा और संस्कृति की रक्षा का भी भाव रहता था। विनय-आदर, भगवान की भक्ति-अर्चना भी बताई जाती थी, इतिहास को पढ़ाया जाता था, संस्कृति को सिखाया जाता था। सुख-दुःख में कैसे समता रूप रखना है? बड़ी-बड़ी कठिनाईयों, उपसर्गों में कैसे सहनशीलता बढ़ाना है यह सब कुछ उन गुरुकुलों में सिखाया जाता था। अनेक वीर पुरुषों की कथाएँ भी सुनाईं जाती थीं जिसके माध्यम से लोग अपने आपको सम्हालते थे। लेकिन आज अधिकाधिक विद्यालयों में जो टेक्नोलॉजी पढ़ा रहे हैं उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है। केवल मशीनरी का निर्माण, कैमिकल का निर्माण, फैक्टरी का उत्पादन है और कुछ भी नहीं। जहाँ न तो संस्कृति, न तो समाज सेवा, न तो साधु सेवा, न तो विनय और न तो खान-पान की पद्धत्ति है। ऐसी अच्छी बातें- आज की शिक्षा टैक्नोलॉजी में नहीं आती। केवल इसे वस्तु निर्माण के लिये ही उपयोग में लाया जाता है और इसी में ही देश का विकास माना जाता है। बाकी लोगों के अंदर कोई संस्कृति या अध्यात्मिक रक्षा की चीज सीखने को नहीं मिलती।

चिंता का विषय यह है कि आजकल की नयी पीढ़ियाँ धर्म से दूर होती जा रहीं हैं। उन्हें वह नहीं सिखाया जाता कि कैसे आदर दिखाना है? अपने देश की संस्कृति में क्या-क्या आता है? कौन हमारे आदरणीय हैं? किन्होंने बहुत अच्छे आदर्श काम किये हैं? उन्हें विनय आदि के बारे में भी कुछ नहीं बताया जाता है। अगर ऐसा माहोल चलता रहा तो आगे क्या होगा? मानव एक रोबोट जैसा बन जायेगा, मशीनरी की तरह ही कार्य करेगा। उसके अंदर कोई भी करुणा, वात्सल्य, दया भक्ति की बात नहीं होगी।

बन्धुओं! आगे हमें सम्हलने की बात है। आज भी भारत में कुछ विद्यालय हैं, जहाँ संस्कृति के बारे में बहुत कुछ बताते हैं, जहाँ इतिहास पढ़ाते हैं, संस्कृत-

प्राकृत पढ़ाते हैं, अपने देश की भाषा पढ़ाते हैं। लेकिन ऐसे विद्यालयों की और उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम रह गई है। आजकल सभी को आजीविका की चिंता है कि मुझे टेक्नोलॉजी से आजीविका मिलेगी बस यही चिंता है। किसी को यह चिंता नहीं है कि हमें परिवार, समाज, देश की भी रक्षा करनी है। हमें अपनी संस्कृति की भी रक्षा करनी है। जब यह भाव नहीं आयेगा तो आगे भविष्य क्या होगा? उन अतिशय-सिद्ध क्षेत्रों का क्या होगा? उन मंदिरों का क्या होगा? हमारी प्राचीन संस्कृति को बतलाने वाले त्यागी-व्रती-मुनि-साधुओं का क्या होगा? जो दिन में एक बार आहार कर, पैदल विहार कर आज प्रत्येक व्यक्ति को जगाने जाते हैं, सबके लिए पापों से बचाने का मार्ग बताते हैं, पंच पाप (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) से बचाते हैं, सप्त व्यसन से दूर करते हैं अर्थात् (जुआ, चोरी, शिकार, माँस, शराब, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन) से बचाते हैं ऐसे सद्गुरुओं का अभाव हो जावेगा। मद्य, माँस, मधु और पंच उदम्बर (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर) फल जो कि अभक्ष्य माने गये हैं और आजकल तो संज्ञी पंचेन्द्रिय का माँस कई पदार्थों में मिल रहा है। आज-कल जो अशुद्ध फास्ट फूड-जंक फूड वगैरह जो लोग खाते हैं उन्हें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के माँस को खाने का दोष लगता है। क्या आज लोगों को शाकाहार करने नहीं मिल रहा है? क्या अहिंसा भूल गये हैं? क्या माँसाहार-शाकाहार की परिभाषा उन्हें मालूम नहीं है? क्या शुद्ध-अशुद्ध का ज्ञान उन्हें नहीं है? ऐसे लोगों की कैसे विशुद्धि बढ़ेगी, कैसे शास्त्र सुनेंगे, कैसे मंदिर जाएंगे,कैसे गुरुओं की सेवा वैयावृत्ति कर पाएंगे? अगर भगवान की सेवा चाहते हो, शास्त्र (जिनवाणी) की सेवा चाहते हो, गुरु की सेवा चाहते हो तो तुम्हें बहुत शुद्ध बनना होगा।

बन्धुओं! आज इन चीजों पर प्रकाश डालने वाले, स्वयं आचरण से रहने वाले, पैदल विहार करने वाले, दिन में एक बार आहार करने वाले और यदि आहार में एक छोटा सा बाल भी आ जाये या कोई जीव भी आ जाये तो उस दिन अंतराय कर पुनः आहार न लेने वाले, कुएँ का अथवा बरसात का प्रासुक जल लेने वाले, मर्यादा का भोजन लेने वाले ऐसे साधु (मुनि); जो समाज में विहार करते हैं उनकी रक्षा यदि नहीं होगी, आगे यह सब नहीं पढ़ाया जायेगा- नहीं बताया जायेगा तो इस संस्कृति का क्या होगा। आजकल के बच्चों को पैदल चलना नहीं आता- आहार कराना तो कैसे? विहार करना तो कैसे? चूँकि आजकल का खानपान अशुद्ध हो रहा है। इस लिए

भावना विशुद्धि में ह्रास हो रहा है।

ध्यान रखना! कि आजकल जो इतने बड़े-बड़े मंदिर बन रहे हैं उनमें अगर हम सदाचरण रूप कर्त्तव्य या योग्य कार्य उन्हें नहीं सिखाएंगे तो उनके पास उनकी रक्षा की योग्यता कैसे आयेगी? अतः हमें जरूरी है कि हम ऐसे विद्यालयों का निर्माण करें और उन्हें बहुत अच्छे से आगे बढ़ायें। आज बहुत जगह गुरुकुल हैं परंतु वे भी अल्प संख्या में हैं, किसी प्रदेश में अथवा किसी जिले में मुश्किल से एक कोई मिल जाता है। कई जगह गुरुकुल खुले हैं जिनमें बालकों को अच्छी शिक्षा प्रदान कराई जाती है और कई जगह, प्रतिभास्थली जैसी संस्थायें भी सुचारु रूप से चल रहीं हैं; जिसमें बालिकाओं को शिक्षा के साथ-साथ अनेक कलाओं में निपुण कराया जाता है। लेकिन ऐसे संस्थानों की संख्या बहुत कम है, हमें उनकी संख्या बहुत बढ़ानी है क्योंकि हमें अपनी संस्कृति की रक्षा करनी है और जन-जन तक अहिंसा का संदेश पहुँचाना है।

बन्धुओं! पुण्य से ही अपना जीवन शांति-सुखमय होता है, निरोगता आती है। अगर देश में पाप बढ़ता गया तो जीवन कष्टमय हो जायेगा। इसलिए हमें संस्कृति की रक्षा के लिये कुछ उपाय करना चाहिए। हमारा सम्मेदशिखरजी; गिरनारजी जैसा न बन जाये अतः हमें उसकी रक्षा हेतु भी प्रयास करना चाहिए। हर जगह कमाई के स्थान न बनायें। कुछ शांति के स्थान भी होना चाहिए जिसमें भक्तों का जीवन महान बने और उस जीवन में सदाचार की शिक्षा मिले, शील-संयम की शिक्षा मिले, भक्ति में वृद्धि हो सके। क्योंकि जीवन में वह भक्ति हमें शक्ति देगी और एक दिन मुक्ति भी अवश्य दिलायेगी।

पहले के विद्यालय थे जहाँ कुलभूषण-देशभूषण किस तरह शिक्षा प्राप्त करते थे जो गुरु के पास जंगलों में जाकर पढ़ा करते थे? किस प्रकार की उन्होंने वेशभूषा धारण कर ली थी? उन्होंने छोटे-छोटे बाल और धवल वस्त्रों में रहकर अध्ययन किया। जब अध्ययन पूर्ण हो गया तब उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से घर की ओर कदम बढ़ाये और वहाँ जाने के बाद उन्हें जब संसार की असारता दिखी, रागद्वेष दिखे तो उन्होंने गुरु के वचनों को याद करके एक अच्छा मार्ग पकड़ लिया। अगर उन्हें वह मार्ग ज्ञात न होता तो वे कैसे अपने जीवन को महान बनाते। उन्होंने मोक्षमार्ग अपनाया और मुनि दीक्षा लेकर तपस्या की। कुंथलगिरि का पर्वत बताता है कैसे राम-

लक्ष्मण-सीता उपसर्ग के समय पहुँचे थे और उन मुनियों की कैसे रक्षा की और किस तरह उन्हें केवलज्ञान हुआ? कैसे गंधकुटी रची गई और कैसे उनकी वाणी खिरी? और चरणों में देवता भी आ गये। विचार करिए कि वह गुरुकुल पद्धति बहुत महान थी।

उन विजय-विजया का उदाहरण भी हम सुनते हैं कि कैसे वे अपने गुरु के पास पढ़े और वह आर्यिकाओं के भी पास पढ़ी और बढ़कर समाज को ज्ञान दिया। उन दोनों में एक ने शुक्ल पक्ष और दूसरे ने कृष्ण पक्ष का ब्रह्मचर्य ले रखा था और शादी होने के बाद दोनों मिलकर भाई-बहिन के समान रहे और उन्होंने सभी लोगों को ज्ञान दिया और अंत में उन्होंने दीक्षा धारण भी की। यह कार्य बहुत महान है कि कैसे उन्होंने गुरु के पास शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य किया था।

पहले के काल में शादी के पूर्व जो कुण्डली के माध्यम से जो गुण देखे जाते थे उसका बहुत महत्व था। शादी के समय जो फेरे लगते थे और उस समय जो संकल्प कराते थे कि कैसे वे धर्म की रक्षा हेतु एक-दूसरे को सहायी बनेंगे। दोनों मिलकर परिवार की रक्षा करेंगे, समाज की रक्षा करेंगे, एक दूसरे का हाथ बटाएंगे, नियम-संयम में बाधक नहीं बनेंगे और घर में स्वर्ग बनाएंगे, घर में रहने वाले वृद्धों की सेवा करेंगे आदि ऐसे संकल्प लेते थे। धन्य हो! जो अपने जीवन में एक-दूसरे का शील संयम निभाते हुये चलते थे, तभी तो वह घर स्वर्ग बनता था।

जीवन में शिक्षा अर्जन का सही मायना तो चारित्र है। मूलाचार ग्रंथ में ज्ञान का सही मूल्य क्या है? बताते हुए कहा है-

''जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेये सु रज्जदि।
जेण मेत्तिं पभावेज्ज, तं णाणं जिण सासणे ॥(मू.चा.)

अर्थात् जिसके द्वारा राग का विरेचन हो जाये मतलब संसार-शरीर-भोग से राग टूट जाये, जिसके द्वारा मोक्षमार्ग में रुचि जग जाये और जिससे मैत्री की प्रभावना हो अर्थात् आपस में वात्सल्य जग जाये, उसी का नाम जिनशासन में ज्ञान है। अतः हमें ऐसे ज्ञान को ग्रहण करना है जिससे हमारा जीवन सफल हो।

अकलंक-निकलंक भी किस तरह, कैसे विद्यालय में, किस उद्देश्य से पढ़ते थे? वे नालंदा विश्वविद्यालय में पढ़े और उनका एक उद्देश्य था कि हमें संस्कृति की रक्षा करना है, संस्कृत भाषा को सीखना है। वे दोनों गुप्त रूप से पढ़कर आये। उनकी

अनेकों परीक्षाएँ भी हुईं। जैसे निकलंक ने अपने भाई अकलंक को बचाने हेतु किस प्रकार अपना जीवन न्यौछावर कर दिया? देखिए! कुछ लोग केवल आजीविका के लिये ही शिक्षा पढ़ रहे हैं? नहीं! हमें संस्कृति की रक्षा के लिये भी शिक्षा पढ़ना है। आज हम लोग प्राचीन पद्धति से विद्यार्जन न करते हुये अपने बच्चों को कहीं भी देश-विदेश में भेज देते हैं। और वहाँ पर कोई धार्मिक शिक्षा भी नहीं पढ़ाई जाती है, यहाँ-वहाँ घूमकर, अशुद्ध खानपान करके, जनसंपर्क करके वे अपने जीवन को अवनति की ओर ले जाते हैं और गलत संपर्क करके वे बच्चे अपनी मनमानी से शादी-विवाह भी कर लेते हैं चूँकि हमारे जैनों की संख्या बहुत कम है और उसमें भी ऐसे विजातीय विवाह कर लेंगे तो क्या होगा? संख्या और भी कम हो जायेगी। अभी गवर्मेण्ट ने नियम बना दिया बेटी की 21 वर्ष के बाद शादी और फिर हम कहें कि अभी और कोचिंग करना, जॉब करना आदि-आदि। ऐसा करके 30 वर्ष तक फिर शादी करवाना, आखिर इससे फिर जीवन में क्या लाभ होगा? इससे कुछ लाभ नहीं होगा।

हमारे यहाँ तो संतानोत्पत्ति के लिये शादी कराई जाती है मतलब अगर हम मोक्षमार्ग में नहीं जा पाये तो, जो संतान जन्म लेगी वह मोक्षमार्ग में जायेगी अर्थात् धर्म की परंपरा चलायेगी और धर्म की रक्षा करेगी। पहले के काल में कन्या विवाह होता था परंतु अब लोग कहते हैं कि अब कन्या विवाह नहीं महिला विवाह होता है। क्योंकि बाहर पढ़ाने से अनेकों संपर्क बढ़ जाते हैं और वे संपर्क बढ़ाते-बढ़ाते शादी तक करा देते हैं और ऐसी शादियाँ शीघ्र ही संबंध तोड़ भी देतीं हैं। दिल्ली में एक घटना के प्रसंग एक वृद्धाचार्य ने कहा था कि- अगर बेटी 16 वर्ष की हो जाये तो उसके माता-पिता को शादी कर देनी चाहिए, यदि 17 वर्ष की हो जाये तो उसके मामा को उसकी शादी कर देनी चाहिए अन्यथा 18 वर्ष की हो गई तो स्वयं कर लेगी, आपको कोई आवश्यकता नहीं है। सोचो! क्या होगा? इसलिए ध्यान रखो कि बच्चियों को आजीविका का साधन नहीं बनाना है, बल्कि माता-पिता को अपनी नजरों के सामने ही पढ़ाना चाहिए क्योंकि आज-कल का माहौल ठीक न होने से बाहर भेजना उचित नहीं है। यदि ऐसा न सोचोगे तो इससे विकृति आती जायेगी और जैनों की संख्या कम होती चली जायेगी और यदि अन्य जगह शादी हो गई तो होने वाली संतानें जैन नहीं कहला पायेंगी। चूँकि विजातीय विवाह हेतु कन्या देने से फिर जैन धर्म के संस्कार आगे नहीं बढ़ पाते हैं। अतः हमें सम्हलने की आवश्यकता है

और जैन संस्कृति की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

प्रतिभास्थली भी बच्चियों के लिये सर्वोत्तम है वहाँ उन्हें शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की 64 कलाओं में भी निपुण कराते हैं। कैसे वस्त्र बनाना है? कैसे अपने जीवन का निर्माण करना है? और घरेलू उद्योग भी उन्हें सिखाते हैं। ये सब जो मन्त्र, कला, भोजन कला, आत्मरक्षा की कला आदि सब 64 कलाओं में आतीं हैं। वे सभी लोग जैनधर्म की रक्षा के लिये, संस्कृति की रक्षा के लिये ये सब कर्म कर रहे हैं और इन गुरुकुल जैसे विद्यालयों में कविता लिखना, आलेख लिखना, भाषण देना, प्रवचन देना, शास्त्र लिखना सब कुछ सिखाते हैं। संस्कृति का ज्ञान और उसकी रक्षा करने का उपाय आदि भी सब कुछ ऐसे विद्यालयों में सिखाते हैं।

बन्धुओं! आज की नवीन पीढ़ी को भी ऐसे विद्यालयों की और उनसे मिलने वाली ऐसी शिक्षा की आवश्कता है। अशुद्ध खान-पान और आडम्बर-दिखावे की होड़ में वैवाहिक पद्धतियों भी बदल रहीं हैं, इन पर भी हम ध्यान दें।

हमारा उद्देश्य केवल धन कमाना नहीं है। हमारा उद्देश्य अपनी संस्कृति की, इतिहास की रक्षा करना है। तभी हम समाज आयतन व साधु संघ की भी रक्षा कर पाएंगे। केवल टेक्नोलॉजी सीखने वाले देश धर्म संस्कृति की सम्हाल नहीं कर सकते हैं। हमें आज गुरुकुल शिक्षा पद्धति के विद्यालयों की आवश्यकता है। आज की शिक्षा पद्धति को हमें थोड़ा बदलना पड़ेगा और प्राचीन संस्कृति को ध्यान में लाना होगा। साथ ही वैवाहिक पद्धति भी पूर्व जैसी बनानी होगी और संतानोत्पत्ति से हमें जैनधर्म की रक्षा करनी होगी। इसी से हमारी धर्म की, हमारी संस्कृति की और साथ ही हमारे इतिहास की भी रक्षा होगी।

बस! यहीं हैं महावीर.....
खोजने की जरूरत है।

सदाचरण में महावीर और
जैनधर्म भी समाया है।

चिंता ही दुःख का कारण

सम्मेदशिखर से अनंतानंत सिद्ध भगवान बने हैं यहाँ का कण-कण पावन है। यहाँ बारह योजन के क्षेत्र में मात्र भव्य जीव ही जन्म लेते हैं। इस क्षेत्र के अंतर्गत अभव्यों का जन्म नहीं होता। और जो व्यक्ति ऐसी भूमि पर जन्म लेता है वह निश्चित ही एक दिन मोक्ष को अवश्य पा जाता है।

''एक बार वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहीं होई'', और भाव सहित जो एक बार सम्मेदशिखर जी की वन्दना कर लेता है उसे नरक, पशु गति नहीं होती है और सम्मेद शिखर माहात्म्य ग्रन्थ में लिखा है कि जो सम्मेद शिखर महान क्षेत्र की वन्दना कर लेता है उसे 49 भवों में निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।''

परंतु मुनि बनना आवश्यक है क्योंकि मुनि बने बिना मोक्ष की प्राप्ति होना संभव नहीं है। सन् 2006 में संघ सहित 16 वन्दना और 1 परिक्रमा भी की थी। करीब साढ़े तीन माह वहाँ प्रवास हुआ था और यूपी प्रकाश भवन का सन् 2006 में पञ्चकल्याणक भी संपन्न हुआ था। पुनः सन् 2022 में ईसरी वर्षायोग के दौरान संघ सहित तीन वंदनाएँ की थी।

सभी विचार करें कि हमें भी वहाँ के साक्षात् दर्शन करना है और अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठियों की आराधना करना है। इससे हम अपने जीवन को पावन पुनीत बना सकते हैं। पहले के काल में लोग शिखरजी जाते थे तो चिंताओं से मुक्त होकर जाते थे, सभी चिंताओं को वे यहीं छोड़कर जाते थे और 6-7 महिनों में लौटकर आते थे। लेकिन आजकल लोग मोह नहीं छोड़ पाते हैं, मोह को छोड़ना चाहिए।

जो भी बड़े-बड़े विधान, अनुष्ठान, पञ्चकल्याणक रचाते हैं या गुरुओं का विहार कराते हैं उन्हें अगर घर का कोई समाचार नहीं मिलता या वे घर से कोई संबंध नहीं रखते तो निश्चित रूप से उन्हें कोई सूतक-पातक का परिणाम नहीं होता। हाथों में जो रक्षासूत्र बाँधा जाता है वह इसी लिए बाँधा जाता है कि घर-परिवार से कोई संबंध नहीं रखोगे।

वास्तव में..... जो लोग क्षेत्रों की यात्रा पर जाते हैं तो उन्हें सूतक-पातक संबंधी खबरों को नहीं बताना चाहिए। भले ही व्यक्ति आहार दे रहा हो या पूजा-

विधान कर रहा हो यदि उसे सूतक पातक संबंधी खबर न दें तो उसे कुछ दोष नहीं लगेगा। ऐसे धार्मिक कार्य करते समय किसी को सूतक-पातक संबंधी खबर नहीं करना चाहिए। जब तक उसे मालूम नहीं है तो उसे दोष भी नहीं लगता है। अतः उतने काल के लिये घर-परिवार से संबंध/ मोह छोड़ देना चाहिए। धार्मिक चर्चा के अलावा अन्य कोई चर्चा नहीं करेंगे। ऐसा नियम होना चाहिए।

निश्चिंत न होने से आजकल मंदिरों में विशुद्धि नहीं बढ़ पाती है। मंदिरों में भी मोबाइल पर खबरें लेते रहते हैं। निःसही का अर्थ यही होता है कि हम सभी विकल्पों को यहीं छोड़ते हैं। एक और मंत्र होता है कि-

'निःसंगोऽहं जिनानां' हे जिनेन्द्र! मैं निःसंग हूँ। मेरा परिग्रह से कोई नाता नहीं है। आज व्यक्ति, कार्य तो चाहे कितना भी अच्छा कर रहा हो लेकिन उसके मन में अगर चिंतायें सताती रहती हैं तो चिंताओं के माध्यम से व्यक्ति परेशान रहता है। चिंतायें हमारे जीवन को जला देती हैं।

एक बार एक बागवान ने बगीचा लगाया। कोई कृषक अपने खेत को देखता है, सारी फसल लहरा रही है। अच्छे सुंदर-सुंदर पौधे आ गये हैं, पुष्प भी खिल गये हैं और फल भी आने वाले हैं लेकिन एक पौधा क्यों मुरझाया है? उसे खाद-पानी सब मिल रहा है तो फिर उसके सूखने का कारण क्या है?

उसे चिंता हो जाती है वह उस पौधे को ऊपर से नीचे तक देखता है और नीचे पाता है कि उसकी जड़ में कोई कीड़ा लगा है। वह कीड़ा उस पौधे के रस को चूस रहा है। अतः वह उस कीड़े को निकालकर उसे दूर छोड़ देता है। कीड़ा भी सुरक्षित और पौधा भी सुरक्षित। इसके बाद जब वह पौधा सुरक्षित होता है तो अपने आप पनपने लग जाता है और उसमें फल-फूल आ जाते हैं। उसका जीवन सम्हल जाता है।

बन्धुओ! हम भी सब कुछ करते हैं। हमें मानव पर्याय, उच्च कुल, जैन धर्म सब मिला है लेकिन फिर भी हमारे अंदर कीड़े जैसी चिंताएँ, टेंशन आदि बने रहते हैं। कहा भी है-

चिंता चिता समान है बिन्दु मात्र का भेद।
एक दहे निर्जीव को, एक जीव समेत॥

चिंता, चिता के समान ही है। मात्र उसमें एक बिन्दु का ही भेद है। चिता तो

निर्जीव को जलाती है लेकिन चिंता तो सजीव को जला देती है।

एक बार एक राजा ने अपने मंत्री को एक बहुत अच्छा काम बताया। वह कार्य ऐसा था जो सबको सबक देता था। राजा ने कहा- मंत्री तुम बहुत चतुर हो... मेरे इस कार्य को करके बताओ। हे राजन्! जो भी आप कहेंगे हम करके दिखाएँगे आप बताइए। तुम्हें एक कार्य करना होगा यदि नहीं किया तो प्राणदण्ड भी मिल सकता है। नहीं राजन्! हम करके दिखाएंगे आप कहें। राजा बोला- मैं एक प्राणी दे रहा हूँ उसे तुम्हें खूब खिलाना पिलाना है लेकिन ध्यान यह रखना है कि उसका वजन जितना है, उससे ज्यादा नहीं बढ़ना चाहिए। ठीक है राजन्! हम वह भी करके दिखाएंगे। राजन्! मुझे कोई दूसरी वस्तु या प्राणी चाहिए वह मिल जाना चाहिए। ठीक है! तुम्हें जो चाहिए वह मिल जायेगा। उसे वह प्राणी दिया गया। पहले वाले प्राणी को खूब खिलाया-पिलाया गया। साथ ही एक और प्राणी जो लाकर रखा; वह बहुत बड़ा प्राणी है जंगल का राजा है। वह मंत्री पहले वाले प्राणी को सुबह से सायं तक उसे खूब हरियाली, फल फूल खिलाता, वह मोटा हो जाता और वजन बढ़ जाता था। लेकिन शाम के समय उसे दोनों टांग पकड़ कर जंगल के राजा का मुख दिखा देता। जब वह दहाड़ मारता तो प्राणों की चिंता से उस पहले वाले प्राणी का खून सूख जाता और वजन का बैलेंस सही हो जाता। ऐसे 1-2 दिन क्या कई दिन बीते और राजा ने कहा लाओ वापस लाओ कहाँ है वह प्राणी? देखा तो वास्तव में उसका जितना वजन था वही निकला। पूँछा कि तुमने क्या किया? तो बोला- देखो राजन् मैंने बकरी को खूब खिलाया, पिलाया कोई कमी नहीं रखी, वजन बढ़ता था और सायं को मैं उसकी दोनों टांगें पकड़कर शेर का मुख दिखा देता था। शेर की दहाड़ सुनकर चिंता से उसका खून सूख जाता था। देखो! कितना अच्छा उपाय था। उसने बुद्धि का किस प्रकार उपयोग किया।

कहने का अर्थ है कि व्यक्ति सब कुछ पाता है लेकिन सामने वाले का मुख या संपदा देखकर वह ईर्ष्या या जलन के माध्यम से सूख जाता है। आज लोगों को दूसरों से दी जाने वाली समस्याएँ कम हैं लेकिन स्वयं ही समस्याओं को लाकर व्यक्ति अपने आप का पतन कर लेता है। दूसरों के प्रति ईर्ष्या-भाव, मात्सर्य व मान के कारण व्यक्ति विकल्पों में उलझा हुआ है और अपने जीवन को बर्बाद कर रहा है। अगर अपनी थाली देखें तो कुछ न हो लेकिन व्यक्ति दूसरे की थाली देखता है। दूसरों के धन-वैभव देखने से आज परेशानी बढ़ रही है। क्योंकि मोबाइल और टेलीविजन

में तो देश-विदेश के सभी दृश्य गृह बैठे-बैठे दिख जाया करते हैं। व्यक्ति को कोई और परेशान नहीं कर रहा है वह तो स्वयं जग-आशाओं को बढ़ाकर अपने आप से परेशान है। इसी कारण मानव का विकास नहीं हो पा रहा है। अनावश्यक वैभव की चिंता ही मानव को हार्टअटैक, डायबिटीज, कैंसर आदि अनेक बीमारियां उत्पन्न करा रही है। अगर हम बाहरी चिंतायें छोड़ दें तो बीमारियाँ स्वयमेव छूट जाएंगी।

उत्तरपुराण, पद्मपुराण आदि पुराणों को पढ़ने से ये सब चिंतायें नष्ट होंगी। तत्त्वार्थ सूत्र, छहढाला, रत्नकरण्डक श्रावकाचार और सर्वार्थसिद्धि को पढ़ने से हम थोड़ा कर्म सिद्धांत का चिंतन कर सकते हैं और अपनी विशुद्धि को बढ़ा सकते हैं इसके माध्यम से ये मात्सर्य/ईर्ष्याएँ भावना समाप्त हो जाएंगी।

'दृष्टि बदली, सृष्टि बदली, बदल गया सारा जीवन मेरा' चिन्तामुक्त होने के लिए यह मेरे जीवन की पहली कविता का शीर्षक था क्योंकि चिंता बहुत खतरनाक चीज है; जो जीते को जलाने वाली है। यह सब वैभव हमारे साथ नहीं जाता, सब यहीं छूट जाता है।

'**मुट्ठी बाँधे आया था, हाथ पसारे जाना है।**' बन्धुओ! हमें कुछ साथ नहीं ले जाना है सब कुछ यही छोड़कर जाना है। अतः धर्म ही सच्चा मित्र है; जो हमारे साथ जाता है तो धर्म करलो। अपनी सम्पदा को सद्उपयोग में लगा दो मंदिर, धर्मशाला आदि में अपना धन लगा दो जिससे तुम्हारा धन पुण्यवृद्धिके अच्छे कार्यों में लग जायेगा।

चिंता छोड़ो; निश्चिंतता अपनाओ और खूब धर्म-ध्यान करो और अच्छे से जीवन बिताओ। कहा है-

''चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिसको कुछ ~~ना चाह है, वह शहनों का~~ शाह॥''

मन खिन्न हो जाने पर निराश मत होना, बल्कि वैराग्य और गुरु के संदेश को याद करने से मन को प्रसन्नता मिलती है।

कर्म-फल की विचित्रता

एक जीवन में भी हम हमेशा सुखी नहीं रहते हैं और हमेशा दुःखी भी नहीं रहते हैं। धूप-छाँव और उतार-चढ़ाव के समान कर्म चलते रहते हैं। जो व्यक्ति थोड़े से नियमों को अपने जीवन में धारण कर लेता है वह अपने अनंत भवों को सार्थक कर लेता है। आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं-

'एक्को करेदि कम्मं एक्को हिण्डदि दीह संसारे।
एक्को जायदि मरदि य, तस्स फलं भुज्जदे एक्को॥' (वा.पे)

एक संसारी जीव अकेले ही कर्म करता है, अकेला ही चारों गतियों में, 84 लाख योनियों में भ्रमण करता है, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरण करता है और वहाँ अपने ही किये हुये कर्मों का फल स्वयं अकेला ही भोगता है। किसी का सहायक कोई नहीं होता है।

''नाना जीवा, नाना कम्मा, नाना होंति उवलद्धि''

गोम्मटसार में कहते हैं- अनेक प्रकार के जीव हैं, अनेक प्रकार के कर्म है और अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ हैं। एक ही परिवार में लोग दुःखी-सुखी, सुंदर-असुंदर, छोटे-बड़े होते हैं तो फिर तो अनेक परिवार की बात ही अलग है। जैसा जो कर्म करता है वह वैसा ही उसका फल पाता है। **कोई किसी के कर्मों को नहीं बाँटता....** राजा श्रेणिक नीचे गये और रानी चेलना ऊपर। इन्द्रजीत-कुंभकरण तो मोक्ष गये और रावण कहाँ गया?? विचार करो!

अपने-अपने कर्मों का फल सबको मिलता है..... इसी बात को एक अकृतपुण्य नामक व्यक्ति के रूपक के माध्यम से जाने कि-

''अपनी-अपनी दुकान है, अपना-अपना खाता।
जो जैसी करनी करता, वैसा ही फल पाता॥''

एक बहुत बड़े सेठजी थे। वे बहुत ही धनवान और सबकुछ से संपन्न थे; उन्हें किसी प्रकार की कोई भी कमी नहीं थी।

वक्त बदलता है! कर्म अपना प्रभाव दिखाता है.... क्या होता है? उस व्यक्ति को कई दिनों बाद कई वर्षों बाद एक पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। पूरे नगर में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, बाजेबज रहे हैं, लड्डू बाँटे जा रहे हैं। लेकिन...

एक तरफ कुछ और घटने लगा। पुत्र के आने के बाद उस व्यक्ति को व्यापार में घाटा होता चला गया। घाटा होते-होते दुकान का सब सामान बिक गया। कर्जा होते चला गया। यहाँ तक कि खाने को भी धन की पूर्ति नहीं हो पा रही थी। जीना मुश्किल हो गया और परिवार में रोष बढ़ गया। बहुत सारी दुविधायें सामनें आ गई। किसी का कोई भरोसा नहीं कब क्या घट जाये। कोई कहते हैं कि-

''जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रेऽऽऽऽ आप लोग बोलते ही हैं।
होनी अनहोनी कब क्या घट जाये रेऽऽऽ'' प्रसिद्ध ही है।

उस व्यक्ति को इतना घाटा हुआ- इतना घाटा हुआ कि उसका घर भी बिक गया और थोड़े दिनों के बाद तो वह व्यक्ति भी चल बसा।

अरे! पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था तो और सुख बढ़ना चाहिए था। अब माँ और पुत्र। दोनों कहाँ जायें चूँकि घर भी बिक गया था, कोई कुछ भी न पूछने वाला था और न ही कुछ देने वाला था। सब स्वार्थ के सगे हैं....

''अपने-अपने सुख को रोवे पिता पुत्र दारा''

कहने का अर्थ है कि **सब कुछ पुण्य-पाप से हुआ करता है।** हुआ ये कि वह माँ; जिसने 9 माह अपनी कूख में उस बालक को रखा था। वह समझ गई कि जब से यह बालक आया है तब से घर बर्बाद होना शुरु हो गया। कौन से पाप-कर्म का उदय है कि यह तो सेठ-कुल में जन्मा है, कोई कमी नहीं थी लेकिन इसके आने से कुल का ही नाश हो गया है।

माँ उस पुत्र को कहीं जंगल में लेकर चली जाती है कि कहीं तो खाने को मिलेगा। **'दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम'** अगर लिखा होगा नाम तो खाने जरूर मिलेगा अथवा भूखी ही रह जाऊँगी। इस 8 वर्ष के पुत्र को लेकर और कहाँ जाऊँ।

उसने उसी जंगल में एक छोटी-सी झोपड़ी बना ली और रहने लगी। सोचा कि खेतों में कुछ काम करूँगी; जिससे कुछ तो मिलेगा। जिससे हम अपना और बेटे का पेट भर लेंगे। कहाँ तो सेठ कहलाते थे और कहाँ पेट भरने की बात। कर्म का कैसा फल है- उसने एक दिन अपने बेटे को काम करने हेतु किसी सेठ की भूमि पर भेजा और दिनभर को खाने हेतु कुछ 1-2 रोटी आदि बाँध दी। मालिक ने जब देखा कि अरे! ये क्या बात है।

इतना रूपवान बेटा, इतना छोटा-सा बालक और हमारे यहाँ काम करने आया है। मालिक ने पूछा- बेटा! कहाँ से आये हो? कहीं से नहीं मालिक! यहीं पास से ही आया हूँ मैं। जो वह छोटी-सी झोपड़ी दिख रही है, उसी में मैं और मेरी माँ रहती है।

बेटा! माँ का नाम क्या है? माँ का नाम मिष्टदाना है और पिताजी, पिताजी तो नहीं है। अच्छा! पिता का नाम क्या था? पिता का नाम -सुकृतपुण्य था। सुकृतपुण्य नाम था और झोपड़ी में रहते हो।.....

क्या बाताऊँऽऽऽ बड़ी दुकान थी अच्छा महलों जैसा घर था। मैंने तो सुना है लेकिन देखा नहीं। मैं तो आया और सब कुछ चला गया। अच्छा-अच्छा। तो ये बात है... कोई बात नहीं बेटा! तुम जिनका नाम ले रहे हो बेटा, वे मेरे परम मित्र थे। वे कब चले गये मुझे मालूम नहीं पड़ा। अगर मालूम चलता तो मैं तुम्हें ऐसे नहीं रहने देता। चिन्ता मत करो बेटा! उस बालक को कुछ विशेष देना था। जब सभी रोजकार चले गये तब सबसे अंत में उस बेटे को क्या दिया? ये छोटा-मोटा धन नहीं; वह **सोने की मुहरें** निकाल कर लाया। और उसे दीं।

सोने की मुहरें अपने हाथों में पाते समय वह बेटा इतना खुश हो गया, इतना खुश हो गया कि मैं तो मालामाल हो गया अब तो मेरा घर बन जायेगा। लेकिन...

ज्यों ही वे मुहरें उसके हाथ में पड़ी तो वे **अग्नि का अंगार बन गईं।** हे भगवान-हे भगवान! तड़फ गया और एकदम छोड़ दिया। और मालिक ने कहा कि अरे! ये क्या हो गया? लगता है ये पुत्र, बड़े पाप कर्म को लेकर आया है। कुछ कहा तो नहीं बस उस बेटे के पास जाकर उसे तुरंत गले से लगा लिया। बोला- बेटा! रो मत 2 कोई बात नहीं। मैं तुझे कुछ और दूँगा। कहा कि बेटा अपना वस्त्र को फैला ले और उसकी तौलिये में भरपूर; जितने उसमें बन सकें, चने के दाने भर दिये और उसे बाँध दिया। लेकिन कर्म का फल... जब वह उन चने के दानों को ले जा रहा था। तो वह पोटली फटी होने से, उसमें छिद्र होने से वे चने के दाने गिरते-गिरते, गिरते-गिरते बहुत थोड़े-से ही बचे।

माँ बार-बार कुटिया के बाहर-भीतर होकर बेटे की राह देख रही थी कि भोजन का समय हो गया और बेटा अभी नहीं आया, ज्यों ही बेटा दिखा। बोली- जल्दी आ-जल्दी आ, रात्रि होने वाली है। शीघ्रता से अंथऊ (सायं का भोजन) कर।

भोजन कराते समय देखती रही कि हाँ! कुछ तो लाया है, पोटली में दिख तो रहा है। भोजन कराने के उपरांत बोली- बेटा! क्या लाये हो, कुछ दिया मालिक ने? हाँ-हाँ माँ दिया और पोटरी खोलकर दिखाया कि मुट्ठी भर चने, अरे! कैसा है मालिक? कि सुबह से सायं तक काम किया और इतने से चने। धिक्कार है।

नहीं माँ! ऐसा मत कहो। माँ! मालिक ने तो बहुत कुछ दिया था। इतना दिया था-इतना दिया था कि देख ले मेरे हाथ।

ये क्या हो गया बेटा-? तेरे हाथ कैसे जल गये? तुरंत बेटे को माँ ने अपने गले से लगा लिया। माँ, मालिक ने मेरे हाथों में सोनेकी मुहरें दी थी लेकिन मैं कितना पापी हूँ, दुर्भागी हूँ कि वे सोने की मुहरें मेरे हाथों में आते ही अग्नि का अंगार बन गई। उसके बाद उसने हमें संबल दिया और कहा कि बेटा रो मत और पूरी पोटरी भरकर चने के दाने दिये। लेकिन क्या करूँ... ये गरीबी.... वस्त्र ही फटा था। कौन क्या करेगा... रास्ते भर गिरते आये और इतने से ही बचे। हे भगवान्! किसका दोष है? इसमें तेरे मालिक का दोष नहीं, **तेरे कर्म का दोष है।** बेटा! अभी ही नहीं; जब से तू जन्मा है तब से लेकर अभी तक पूरा घर बर्बाद हो गया, दुकान गई, मकान गया, धन-वैभव गया, तेरे पिताजी भी चले गये। तेरा तो पता नहीं; कौन से पाप कर्म का फल है, तेरा नाम तो **अब अकृतपुण्य है... अकृतपुण्य**। सुकृतपुण्य का बेटा-अकृतपुण्य अब क्या करें। चलो बेटा कहीं और चलते हैं। हम ऐसी जगह में रहकर तेरे पिता के मित्र को परेशान नहीं करेंगे। आगे पहुँचे। जब वे किसी और गाँव पहुँचे तो देखा कि बहुत बड़ी इमारत है बहुत लोग वहाँ काम कर रहे हैं। हमें भी कुछ काम जरूर मिल जायेगा। सुना है इस नगर के सेठ बहुत ही करुणावान हैं और न्यायप्रिय है। बहुत ही शीलवान व्यक्ति हैं। वे उस इमारत के अंदर पहुँचे और कहा कि हमें कुछ काम की आवश्यकता है।

सेठ जी ने कहा आओ-आओ। रहो। हमने तुमको रहने ये कुटिया भी दी ये लकड़ी से बनी खप्परवाली कुटिया है। और कहा कि तुम्हें जो कुछ चाहिए वह ले लेना। खाने-पीने में भी कोई कमी नहीं रखना। सब अपना ही समझना और सर्व सुविधायें उपलब्ध करा दी और जिनमंदिर भी बता दिया और कहा कि तुम प्रतिदिन पूजा भक्ति आदि भी करना।

माँ और बेटा दोनों काम करने लगे। बेटा सेठ के बेटों के साथ खेलने लगा।

एक दिन सेठ के बेटे खेलते हुए खीर खा रहे थे। तो खेलते-खेलते अकृतपुण्य ने हाथ बढ़ा दिया कि मुझे भी थोड़ी सी खीर दे दो। सेठ का बेटा थोड़ा तेज-सा था। उसने खीर न देकर एक चाटा दे दिया। वह रोते-रोते अपनी माँ के पास पहुँचा। बोला; माँ- माँ ये क्या कर दिया। मैंने तो खीर माँगी थी और मुझे चाटा मार दिया। बेटा कोई बात नहींऽऽऽ सेठ बहुत ही बड़े आदमी हैं, चलो तुम्हें खीर खिलाएँगे। माँ बेटे के साथ सेठ के पास पहुँची, कोई उलाहना नहीं दी, फिर भी सेठ रोते हुये बालक को देखकर बोला- अरे रो मत! तुझे थोड़ी बहुत खीर नहीं तुझे बहुत सारी खीर खिलाएँगे। ये दूध, ये मेवे, ये चावल सब कुछ ले जाओ और भरपूर खीर बनाकर खा लेना। माँ और बेटे दोनों खुश होकर घर की ओर चल दिये।

माँ ने बेटे से कहा कि- बेटा आज नहीं; कल सुबह हम बहुत बढ़िया खीर बनाकर खाएँगे। ठीक है। माँ ने पूरी रात खीर के चिंतन में गुजार दी। इसी बीच माँ के चिंतन में दान का चिंतन भी आया। प्रातः हुई और स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र स्वयं पहनकर बेटे को भी धोती-दुपट्टा पहना दिये। बेटे से कहा कि बेटा हम अच्छे शुद्ध कुये के पानी से बहुत अच्छी खीर बना रहे हैं बेटा एक बात याद रखना कि यदि कोई मुनि, त्यागी, तपस्वी आयें तो उन्हें भूखा मत जाने देना, मिलकर भोजन करना। बेटा बोला ठीक है। जब खीर बन गई तो लगा पानी थोड़ा-सा कम है। कुआँ पास में ही है हम पानी लेकर आते हैं। वह बेटे से कहकर जाती है कि बेटा! ध्यान रखना। कोई महाराजजी आयें तो उन्हें तुम रोक लेना। कहना- महाराज जी! रुक जाइये! माँ ने खीर बनाई है, खाकर ही जाइये। हंसी में कह दिया। क्या मालूम था कि घटना सच हो जायेगी। माँ पानी लेकर आ ही रही थी कि मासोपवासी मुनिराज वहाँ से निकल रहे थे। बेटा कलश लिये हुये दौड़कर उनके पास पहुँचा और महाराज जी! रुकिये-3 इतने में माँ भी पास में आ गई और बोलने लगी हे स्वामी! नमोस्तु-3 और पड़िगाहन करने लगी। **किस्मत से, पुण्योदय से, महाराज जी भी रुक गये** और उनकी प्रदक्षिणा लगाईं और पूरी नवधा भक्ति पूर्वक उच्चासन, पाद प्रक्षालन-पूजन आदि के साथ निवेदन किया कि आप आहार ग्रहण कीजिए।

बड़े ही गद्गद् भावों से आहार देना प्रारंभ किया चूँकि ज्यादा पदार्थ तो नहीं थे मात्र खीर ही थी। महाराज जी! लीजिए और लीजिए, और लीजिए। महाराज खीर लेते जा रहे थे लेकिन वह खीर तो कम ही नहीं हो रही थी। वह एक चम्मच भी कम

नहीं हुई। ज्यों की त्यों बनी रही।

सेठ जी और उनके बच्चे सहित अन्य लोग भी आहार देखने आ गये। सेठजी सोचने लगे कि अरे! यह क्या! मैंने तो वह सामान इन दोनों को खीर बनाकर खाने के लिये दिया था लेकिन इनका इतना बड़ा सौभाग्य कि इन्होंने उसी खीर से मासोपवासी मुनिराज के आहार निरंतराय संपन्न करा दिये। सभी ने उनके पुण्य की बहुत-बहुत अनुमोदना की। महाराज जी जब आहारोपरांत बैठ गये तो सभी ने जयजयकार की और अच्छे भजन भी गाये। यह सब देखकर देवों ने पंचाश्चर्य कर दिये। रत्नों की वर्षा, दुन्दुभि वाद्य बजाये, जयजयकार ध्वनि की, मन्द-मन्द सुगंधित वायु बहाई और गंधोदक वृष्टि की।

धन्य हो! धन्य हो! सेठ जी तो देखकर बड़े चकित होकर रह गये कि यह क्या हो गया। एक गरीब भी मालामाल हो गया। मेरा द्रव्य भी सही उपयोग में लग गया। उसे भी बहुत पुण्य मिला इसके बाद महाराज जी को बाहर उच्च स्थान पर बिठाया और कहा कि हमारे बेटे के कौन-सा पाप-कर्म था कि जब से ये जन्मा तभी से इतनी आपत्तियाँ आईं धन-वैभव, मकान, दुकान सब चला गया। महाराज जी! ऐसा कौन-सा कर्म था जो ये सब हुआ और आज कौन-सा पुण्य है जिससे आपके चरणों से हमारी कुटिया भी धन्य हो गई। महाराज! बताईए ये कर्म क्या है? महाराज जी ने कहा-

''प्राचीन कर्म बलबान मुनियो वदन्ति''

कहा कि **प्राचीन कर्म बहुत ही बलवान होता है ऐसा मुनि लोग कहते हैं।** इसका कारण है कि इस आत्मा ने पहले जन्म में धर्म का द्रव्य खाया था, इसने निर्माल्य का सेवन किया था। उसी का यह फल है। शास्त्रों में लिखा है कि निर्माल्य सेवन करने से नरक, निगोद में भी जन्म लेना पड़ता है। कुछ पुण्य भी था तभी तुम्हारा पुत्र सेठ कुल में उत्पन्न हुआ, इतना रूपवान हुआ लेकिन उस कर्म ने उसे नहीं छोड़ा, उस कर्म ने अपने फल को दिया लेकिन वह भी इतना बलवान न होकर धूप-छाँव की तरह फल देकर निकल गया और आज पुण्योदय से साधु के चरण तुम्हारी कुटिया में पड़ गये। सुख ही सुख हमेशा नहीं रहते और न ही दुःख ही दुःख हमेशा रहते हैं। मुनिराज को आहार देने के भाव से वह कर्म कट गया और कहा कि अब तुम्हारा कर्म निकल गया। और कहा कि अब बस! **खूब धर्म करो... हमारा आशीर्वाद है...** महाराज ने वहाँ से

प्रस्थान कर दिया। इसके बाद उन्होंने सभी को वह खीर खिलाई, फिर भी वह खीर कम नहीं हुई। जब तक बनाने वाली माँ ने स्वयं वह खीर नहीं खा ली तब तक वह कम नहीं हुई थी। कहते हैं-

जहाँ पर अक्षीण महानस ऋद्धिधारी मुनिराज के आहार संपन्न होते हैं वह आहार अक्षय हो जाता है। जब तक बनाने वाला न खा ले तब तक वह कम नहीं होता। पूरे नगर के लोगों को खिलाने पर भी वह कम नहीं हुई, फिर माँ के द्वारा खीर खये जाने के उपरांत तिर्यञ्चों को भी खिला दी तब पूरी खाली हुई।

इसलिए सभी चाहते हैं कि हमारे घर में भी गुरुचरण पड़ जायें यदि महाव्रती हमारे घर आ जायें तो बहुत महान कार्य हो जाता है। उस अकृतपुण्य ने उन रत्नों से बहुत बड़ा आलीशान भवन बनाया। कहने को महल अर्थात् बड़ा सा घर बनाया और व्यापार भी किया। बाद में ऐसे पुण्य के संचय से अगले जन्म में वह सेठ का पुत्र हुआ। जहाँ हाथ डालता था वहीं धन निकलता था। जंगल में हल से खोदने पर वहीं भूमि से रत्न निकल आये थे। जहाँ देखो वहीं धन ही धन की प्राप्ति होती थी। बाद में उसे वीणा के कला कौशल से राजकन्या एवं राज्य भी प्राप्त हो गया और वह राजा बन गया। उसका नाम **धन्य कुमार** हुआ। वही अकृतपुण्य ही धन्यकुमार हुआ। मुनि को आहारदान देने से, नवधाभक्ति पूर्वक आहार कराने से उस अकृतपुण्य का ऐसा पुण्योदय आया कि उसी पुण्य के प्रभाव से वह धन्यकुमार हुआ।

देखो! अपने कर्मों की विचित्रता कि कर्मों का फल सबको भोगना ही पड़ता है। ज्ञानी कहते हैं कि-

लोभी मन; धन को ही जीवन का आधार मानता है।
मोही मन, विकार को ही अमृतधार मानता है।
लेकिन! ज्ञानी की बात तो क्या कहें-2
ज्ञानी मन सदाचार को ही, सद्विचार को ही
जीवन का सार मानता है॥

आशा से आसमान और
विश्वास पर विश्व टिका है।

वैराग्य की महिमा

तीन लोक का सबसे उत्कृष्ट आत्म-वैभव मोक्ष का सुख है। उसे पाने के लिए संसार की असारता का ज्ञान होना आवश्यक है, संसार में कोई पदार्थ शाश्वत नहीं है। चक्रवर्तियों ने तो इतना अपार धन-वैभव, भोग-विलास, सुख-सम्पदा भी छोड़ दी उसका त्याग करने के बाद ही उन्हें ये तीन लोक की उत्कृष्ट सम्पदा, मोक्ष रूपी सुख प्राप्त हुआ और तुम लोग इतने से धन-वैभव के पीछे और एक-दूसरे से रागद्वेष करते हो। लड़ाई-झगड़ा करते हो विचार करिये! कुछ भी शाश्वत नहीं है... ये संसार का जितना जो कुछ भी नाता है वह स्वार्थ का नाता है। सब स्वार्थ के सगे हैं। कहा ही है कि-

''अपने-अपने सुख को रोवे पिता, पुत्र, दारा''

एक बार एक कन्या को वैराग्य हो गया। बोली- दीक्षा लेना है। तो किसी ने कहा कि क्यों, अभी इतनी छोटी-सी उम्र में दीक्षा लेना है। अभी पूरा संसार तो देख लो। वरना; मन की मन में रह जायेगी। कन्या बोली- 'कीचड़ में पैर डालेंगे तो हमको ही धोना पड़ेगा।' पाप कार्य करेंगे तो उनको धोने में हमें ही व्यर्थ समय बर्बाद करना पड़ेगा। बड़ा अच्छा उत्तर दे दिया।

इसी तरह एक बार एक पुत्र के लिये वैराग्य हो गया। माता-पिता बोले- नहीं! हम जाने नहीं देंगे। तुम्हें इतना पढ़ाया-लिखाया। हमारी तुमसे बहुत सारी आशायें जुड़ी हैं। तुम हमें बहुत सुख प्रदान करोगे। तुम हमें ऐसे अकेले छोड़कर कहीं नहीं जा सकते।

ठीक है? क्या कर सकते हैं। मुझे नहीं मालूम कि मैं क्या कर पाऊँगा, क्या नहीं कर पाऊँगा। लेकिन मैं इतना अवश्य समझता हूँ कि आप जैसे अनेक माता-पिता हुये हैं। अनेकों ने हमें जन्म दिया और भव बन्धन में अनेक बार डाला है। अनादि काल से अनंत बार आपके भी हम जैसे अनेकों पुत्र हुये। लेकिन हमारी आत्मा का कल्याण अभी तक नहीं हुआ। आपने हमें जन्म दिया इतना बड़ा किया तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम भी अगर संयम के मार्ग में गये तो आपकी सल्लेखना भी कराएंगे हम भी सभी पाप कार्यों को छोड़कर, पापों से बचकर और अपने उपदेश से लोगों को पापों से बचाएँगे। अपना कल्याण कर लेंगे और संसार से तिर जाएँगे।

अनंतों ऐसे माता-पिता हो चुके हैं उन्हीं में से आप एक हैं। आप हमें ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि हम अपने संयम पथ पर आगे बढ़ें और अपने मार्ग को प्रशस्त कर सकें।

नहीं बेटा नहीं! तुम हमें छोड़कर कहीं नहीं जा सकते हो। हम तो तुम्हारे बिना रह ही नहीं सकते। तुम चले गये तो समझो हमारा जीवन अंत ही हो जायेगा।

बेटे ने सोचा- ठीक है! हम परीक्षा कर लेंगे। फिर वह डॉक्टर साहब से सलाह लेने जाता है।

बेटे ने बोला- देखो डॉक्टर साहब! बीमारी तो कुछ भी नहीं है। लेकिन आपको हमारा एक काम बनाना है।

डॉक्टर : क्या काम बनाना है?

बेटा बोला डॉक्टर साहब! मुझे हो गया है वैराग्य। लेकिन घर के लोग नहीं छोड़ रहे हैं वे कह रहे हैं कि हम तुम्हारे बिना नहीं रह पायेंगे। अगर चले गये तो हमारा जीवन अंत हो जायेगा।

डॉक्टर साहब हमें इसका उपाय समझ में नहीं आ रहा है। आप तो अच्छी खासी फीस ले लो लेकिन हमारा काम बना दो। हमें तो वैसे भी सब धन-वैभव छोड़ना ही है, जो आपको लेना है ले लो।

ठीक है! मैं कोई उपाय सोचता हूँ।

डॉक्टर साहब ने बोला कि तुम एकदम सीरियस रहना। बिल्कुल भी हँसना नहीं, कोई भी प्रतिक्रिया नहीं करना, तुम तो बिल्कुल साइलेण्ट रहना। तभी मैं तुम्हारा काम कर सकता हूँ। तुम इतने सीरियस हो जाना कि लगे तुम चले गये हो। बाकी सब हम सम्हाल लेंगे। ठीक है..... डॉक्टर साहब ऐसा ही करूँगा।

बेटा घर जाकर लेट गया। किसी से न कुछ बोला, न सुना और न ही कुछ खाया पिया और आँखें बंद करके शांति से लेट गया। घर वालों को चिन्ता हो गई। चूँकि डॉक्टर बाजू में ही रहता था। तुरंत डॉक्टर साहब के पास गये। बोले- डॉ.साब! डॉ. साब! चलिये घर चलिये। देखो मेरे बेटे को क्या हो गया। न कुछ सुन रहा है और न ही कुछ बोल रहा है पता नहीं क्या हो गया। अरे! तुम्हारा बेटा तो इतना अच्छा था, उसे क्या हो सकता है। चलो अच्छा तुम्हारे घर चलकर देखते हैं।

डॉक्टर तुरंत ही अपनी तैयारी से आये और बेटे को चेक किया। घर वालों ने

पूछा– बताइए क्या हो गया? डॉक्टर बोला– ये तो जाने वाला है। इसको तो ऐसी बहुत बड़ी बीमारी हो गई है कि इसके अंदर के सारे पाट्र्स बदलने पड़ेंगे। क्या बदलना पड़ेगा? डॉक्टर साहब! बताइए कि कितने पैसे की आवश्यकता होगी। मेरे बेटे की जान बच जाये, उससे ज्यादा बढ़कर और कुछ भी नहीं। डॉक्टर बोला– अरे! पैसे की बात नहीं है। पैसा कुछ काम में नहीं आयेगा। तो क्या काम आयेगा? डॉक्टर साहब बोले– अरे इसको जीवन देना पड़ेगा। ये क्या बात हुई.... अच्छा बताओ! क्या देना पड़ेगा? बोला कि जो भी वह पाट्र्स देगा उसका जीवन चला जायेगा लेकिन उसके लग जाने से बेटे का जीवन बच जायेगा।

ये तो बड़ी समस्या आ गई। माँ दूसरे बेटे की ओर देखने लगी, बेटे बाजू में अपने पिता को देखने लगे– क्या होगा? क्या होगा?

डॉक्टर बोला– शीघ्रता करो। अथवा उसके जीवन का अंत हो जयेगा। माँ बोली– देखो! डॉक्टर साहब! हम तो कुछ कर नहीं सकते। क्यों?? बोली क्योंकि हमारे और भी बेटे हैं एक ही मात्र नहीं है। हमें उनकी भी सेवा करनी है। हम बेटों से बोल देते हैं। ठीक है! बेटों से कहा तो....

बेटे बोले– हम कैसे दे सकते हैं? ये तो हो ही नहीं सकता। हमें अपने माता–पिता की सेवा करनी है। पिताजी बोले हमें अपनी पत्नी–बच्चों सबको देखना है सब एक दूसरे का बोलते बोलते आखिर में बोलते हैं कि डॉक्टर साहब! आप एक काम करो। आप ही दे दो अपने पाट्र्स। डॉक्टर बोला! ऐसा होता है क्या? अगर हम इतनी करुणा करने लगे तो रोज ही हमारे पास ऐसे अनेकों मरीज आते हैं।

मेरा उससे क्या नाता है... मैं तो चला... ऐसे काम नहीं बन पायेगा। तो डॉक्टर साहब बोले कि अब कोई देने वाला तो नहीं है। तो अब क्या करें?

क्या करें? आपको चिन्ता नहीं हो रही है क्या? बोले वह तो अब बोल ही नहीं रहा है। ऐसा लगता है जैसे चला ही गया है। डॉक्टर बोला– अरे! अभी कहीं नहीं गया है देखो अभी उसकी नाड़ी चल रही है।

बोले–डॉक्टर साहब! अब जाने दो। ऐसा तो होता ही रहता है। हमें पूरे परिवार को भी देखना है। बेटा धीरे से उठा और बोला ठीक है! जय जिनेन्द्र। अब हम जा रहे हैं। हम भी यही चाहते थे।

सभी को जय जिनेन्द्र किया... सबसे क्षमा मांगी... और सबको क्षमा

किया.... और गुरु के पास चला गया। अब कोई कुछ नहीं बोल पाया। विचार करो! जीवन ऐसा है। सब स्वार्थ के सगे हैं। कोई किसी का नहीं है। जब दूसरे से सुख मिलता है तो सब हमारा-हमारा बोलते हैं और जब कुछ नहीं मिलता और जीवन देने का समय आता है तो कोई रिश्ता भी नहीं रखते। जो सबका त्याग कर देता है, नाते-रिश्ते तोड़ देता है तो बाद में सब लोग भी उससे हठ छोड़ देते हैं और खुशी-खुशी उसका साथ भी देते हैं।

कोई किसी के सुख-दुःख को बाँट नहीं सकता। अपने-अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। सब स्वार्थी हैं, स्वार्थ के सगे हैं।

माता-पिता रोकते हैं तो ठीक है! उनका तो कर्त्तव्य है। वे संयम मार्ग में भेजने से थोड़ा-सा कतराएँगे। क्योंकि उन्हें भी डर लगा रहता है कि- पता नहीं, वैराग्य के इस दुर्गम पथ पर चल भी पाएँगे अथवा नहीं। उन्हें मोह रहता है। लेकिन अंतरंग से मोक्षमार्ग का महत्त्व समझते हैं और वे इतनी प्रशंसा करते हैं, कि धन्य है मेरी सन्तान!

वे माता-पिता भी समाज का सम्मान पाते हैं और समाज के लोग भी उनकी प्रशंसा करते हैं। धन्य है मेरी सन्तान..... इसने बहुत अच्छा मार्ग अपनाया। मैं तो धन्य हो गया। मेरे कुल में चार चाँद लग गये। मेरा भाग्य खुल गया, मेरा कुल पवित्र हो गया। हमें भी संयम धारण करने का, सल्लेखना लेकर समाधिमरण करने का मौका मिले। ऐसी भावना रखते हैं। वीर भक्ति में कहा है-

''धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं णमस्संति, जस्स धम्मे सया मणो॥ 8॥''

जिनका मन अहिंसा, संयम, तप में लगा हुआ है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। फिर तो सामान्य लोगों की तो बात ही अलग है।

स्वर्ग जाना श्रेष्ठ है अथवा अन्य गति में जाना उचित है बताइए? कि अगर आज **पंचमकाल में मोक्ष तो प्राप्त नहीं कर सकते परंतु स्वर्ग तो पा ही सकते हैं।** लेकिन व्रतों को धारण न करके, अव्रतों के द्वारा, पापों के द्वारा अन्य गतियों में जाना ठीक नहीं है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है-

''वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत् नारकम्।
छाया तपस्थयो भेंदः, प्रतिपालयतोर्महान॥ 3॥''

अर्थात् हे भव्य जीवो! व्रतों के द्वारा स्वर्ग पाना अच्छा है लेकिन हाय! अव्रतों से नरक में जाना ठीक नहीं है। उदाहरण के लिये छाया में बैठकर किसी की प्रतीक्षा करना श्रेष्ठ है कि धूप में बैठकर प्रतीक्षा करना। प्रतीक्षा तो दोनों स्थानों से हो जायेगी लेकिन एक जगह सुख मिलेगा एक जगह दुःख।

इसी प्रकार पंचमकाल में मोक्ष नहीं है लेकिन मोक्ष की प्रतीक्षा हमें है। थोड़ा बीच का समय हमें गुजारना पड़ेगा। वह मोक्ष की प्रतीक्षा करने वाला काल हम स्वर्ग में व्यतीत कर सकते हैं। जो व्रतों को धारण करेगा वह उन व्रतों के माध्यम से स्वर्ग जायेगा और सागरों पर्यन्त प्रतीक्षा करेगा भगवान के कल्याणकों में आयेगा, गुरुओं की सेवा करेगा। ये अच्छा है; कि नरकों में जाकर मारकाट सहेगा वह अच्छा है? इसलिए बन्धुओ! पंचमकाल में भले ही मोक्ष नहीं है लेकिन आज भी स्वर्ग है। आचार्य समंतभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक में लिखा है कि-

''श्वाऽपिदेवोपिदेवः श्वा, जायते धर्म किल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या, सम्पद्धमच्छरीरिणाम्॥ 29॥''

शरीरधारियों को कौन-सी अनिर्वचनीय सम्पदा प्राप्त नहीं होती है कि धर्म के माध्यम से एक कुत्ता भी देव हो जाता है। **भावों की निर्मलता का नाम धर्म है।** फिर हम तो मानव हैं।

हमें अपने जीवन को व्रत, नियम, संयम के माध्यम से श्रेष्ठ बनाना चाहिए। **जिसके पीछे रात, उसकी क्या बात।**

कब, क्या हो जाये किसी को नहीं मालूम। इसलिए ध्यान रखना कि-

''काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में पलरें होयेंगी, बहुरि करेगा कब॥''

'शुभस्य शीघ्रम्'। 'जब जागो तभी सबेरा'। शुभ रूप धर्म के कार्य में देर मत करो। अपने जीवन में आगे कुछ अच्छा करने का प्रयास करो। एक छोटा-सा नियम भी जीवन को महान बना सकता है।

नेपोलियन का सिद्धांत है कि विश्व में कोई भी चीज (कार्य) असंभव नहीं है। **'कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती'। आज नहीं तो कल। लेकिन वह लक्ष्य हम जरूर प्राप्त करके रहेंगे।** कुछ असंभव नहीं है। सब कुछ संभव है। हम जितने ज्यादा से ज्यादा कर्म आज काट लेंगे उतने ही जल्दी हमें मोक्ष प्राप्त होगा।

सम्यग्दृष्टि जीव ही समवशरण में प्रवेश कर पाता है। वह भव्य जीव समवशरण के वैभव को, वहाँ के अतिशयों का प्रताप आदि-आदि सब कुछ देखता

है। तीन लोक का सबसे उत्कृष्ट वैभव वहाँ देखते हैं। आपस में किसी को किसी से रागद्वेष नहीं रहता, बैरभाव नहीं होता।

एक राजकुमार समवशरण की ओर जा रहे हैं। समवशरण में जाकर उन्होंने भगवान को देखा उनकी वाणी सुनकर उन्हें **संसार की असारता** का ज्ञान हो गया संसार में कोई पदार्थ शाश्वत नहीं है, सब नष्ट होने वाला है।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि मुझे दीक्षा लेना है और वहाँ से वे कहाँ गये? वे विचार करते हैं कि थोड़ा घर पर होकर आता हूँ। महल में पत्नी से एक बार बोलकर आता हूँ।

वे अपनी पत्नी के पास पहुँचे और बोले- मुझे वैराग्य हो गया है। मैं समवसरण में प्रभु वाणी सुनकर आ रहा हूँ। मैं अब दीक्षा लेने जा रहा हूँ। अरे! आप दीक्षा ले रहे हैं आपको कब वैराग्य हो गया। आप कब समवशरण में गये थे मुझे क्यों नहीं बताया। मुझे भी वैराग्य हो जाता। चलो कोई बात नहीं। आप घर छोड़कर जा ही रहे हैं आपको वैराग्य हो गया है, ठीक है। अब मुझे भी किससे पूछना? आप ही थे और तो किसी से पूछना नहीं है मुझे।

दादा जी से पूछा तो वे कहते हैं कि अरे बेटा! अभी तो बहुत दिन बाकी है। अभी मत जाओ, राजमहल में खजाने भरे पड़े हैं इसको कौन भोगेगा। मन की मन में रह जायेगी। पहले सारा संसार तो देख लो। दादाजी! अनादिकाल से देखा और सब भूल गये।

अब मैं दीक्षा लेकर वह काम करूँगा। मैं ऐसा ध्यान लगाऊँगा कि ध्यान रूपी अग्नि में मैं सारे कर्मों को स्वाहा कर दूँगा और मैं एक ही जीवन में केवलज्ञान पाकर पूरे विश्व को देखूँगा।

ऐसा धन-वैभव और पूरा विश्व तो; अनादिकाल बीत गये, तो भी मैं नहीं देख पाया। आप ही को देखना है सो आप घर में बैठे रहो, मैं तो चला।

पिताजी से बोला- पिताजी! मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। अरे! बेटा। दीक्षा! धन्य हो-3 मेरा दोनों हाथों से आशीर्वाद है। जो भाव मेरे अंदर नहीं आये वे तुम्हारे अंदर आ गये। जाओ- कल्याण करो! कल्याण करो! और उस अनुमोदना से मुझे भी कभी संयम मिल जाये।

आगे चलकर वे तीन खण्ड के अधिपति तीर्थंकर पद धारण कर महान बनेंगे। देखो उन्होंने अपने बेटे के वैराग्य की कैसे सराहना की ऐसे होते हैं ज्ञानी लोग।

पिताजी की सराहना के बाद उनका इतना उत्साह बढ़ गया कि वे तुरंत ही समवशरण पहुँचे और जाकर भगवान की प्रदक्षिणा लगाने लगे। और लगाते-लगाते

उनकी दृष्टि आर्यिकाओं की सभा पर पड़ी और देखा तो सबसे पहले कौन बैठी है?...

अरे! मेरी पत्नी! जो कि आर्यिका बन गई। उसके पास धवल वस्त्र हैं, पिच्छी-कमण्डलु साथ हैं और गम्भीर मुद्रा में बैठी ध्यान कर रही है। अब तो देख भी नहीं रही है।

''हम न किसी के, कोई न हमारा, झूठा है संसार''

अब क्या करें.... हम तो पूछने गये तो पीछे हो गये और इसने किसी से नहीं पूछा सो आगे हो गई। तुरंत उन्होंने वन्दामि किया। बाद में मुनियों के कोठे में गये। सब वस्त्राभूषण का त्याग किये और मुनि बन गये। अब तो वे परमेष्ठी बन गये। तीन लोक के पूज्य बन गये। सारे देवता, चक्रवर्ती भी उन्हें नमन करेंगे।

ये है वैराग्य की महिमा। आज भी मोक्ष मिलता है। हम जितने जल्दी कर्मों का क्षय करेंगे उतने जल्दी हमें मोक्ष प्राप्त होगा। वे महान आत्मा थे- प्रद्युम्न कुमार। उनकी पत्नी उदधिकुमारी। प्रद्युम्न कुमार; जो कि तीन खण्ड के अधिपति के पुत्र थे। गिरनार की चौथी टोंक से मोक्ष गये। जहाँ उनके चरण और प्रतिमा बनी हुई है। वे तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण के पुत्र थे और वे पिता भी मोक्ष जाएँगे।

अतः आप लोग भी जीवन में त्याग करो और जीवन को धन्य बनाओ। अगर तप त्याग नहीं करोगे तो लोग क्या कहेंगे कि ज्ञानी जन कहते ही हैं-

''चेहरों पर तो चेहरे हैं, बहुत बहुत गहरे हैं।
लेकिन खेद की बात तो यह है कि
त्याग और तपस्या के क्षेत्र में,
अन्धे और बहरे हैं, अन्धे और बहरे हैं॥''

गुरुवचन उस देशी
औषध के समान हैं
जो भले ही देर से काम
करे परंतु दोष रूपी रोग को
मूल से समाप्त कर
देते हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शन क्या होता है? सम्यक् मतलब समीचीन और दर्शन मतलब श्रद्धा अर्थात् समीचीन श्रद्धा, सम्यक् श्रद्धा। तो वह श्रद्धा किन पर धारण करना है? आचार्य समंतभद्र स्वामी रत्नकरण्डक श्रा. में कहते हैं–

श्रद्धानं परमार्थाना, माप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढमष्टांगं, सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ 4॥

सच्चे (वीतरागी) देव, शास्त्र और गुरु पर तीन मूढ़ताओं से रहित अष्ट अंगों से सहित और अष्ट मदों से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

यह सम्यग्दर्शन ऐसा रत्न है; जिससे हमारा थोड़ा–सा ज्ञान भी सम्यक् बनता है थोड़ा–सा चारित्र भी सम्यक् बनता है। यदि वह न हो तो सारा ज्ञान भी मिथ्या है और सारा चारित्र भी मिथ्या है चाहे कितने भी व्रत–उपवास कर लो, तो भी कोई फरक पड़ने वाला नहीं है वह मिथ्या चारित्र है, कभी कल्याण नहीं होगा। और अगर सम्यग्दर्शन आ गया तो... जिसे आयुबंध नहीं हुआ है और आयुबंध होगा तो वह स्वर्ग का देव ही बनेगा। वैमानिक का ही होगा। और मानो उसे वेद का बंध होगा तो पुरुषवेद का ही बंध होगा वह स्त्री में नहीं जायेगा। इस तरह बहुत लाभ हैं।

और यदि पहले ही नरकायु बँध गई हो तो वह पहली पृथ्वी से नीचे नहीं जायेगा और तिर्यंचायु बँध गई हो तो वह भोगभूमि का ही तिर्यंच बनेगा। मनुष्यायु बँध गई हो और सम्यग्दर्शन बाद में आया तो भोगभूमि में जायेगा। भवनत्रिक की आयु बँध गई हो तो वह वैमानिक में बदल जायेगी, देवी की बँध गई तो देव में बदल जायेगी और यदि स्त्री, नपुंसक का बंध हुआ हो तो वह पुरुष वेद में बदल जायेगा। यह सब इसी जीवन में सम्यग्दर्शन लेने के बाद होगा इससे इतने बड़े–बड़े लाभ होते हैं।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है कि –

सम्यग्दर्शन शुद्धा, नारकतिर्यङ्नपुंसक स्त्रीत्वानि।
दुष्कुल विकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः॥ 35॥

बिना व्रतों को धारण किये हुए भी सम्यग्दृष्टि जीव; नरक, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री, दुष्कुल, विकलांग, अल्पायु और दरिद्र अवस्था को प्राप्त नहीं होता। इसके लिए और कुछ ज्यादा त्याग नहीं करना। बस अपनी श्रद्धा को बदलना है अपनी श्रद्धा को पंच परमेष्ठी से, वीतराग प्रभु से जोड़ना है। ये सम्यग्दर्शन रूपी रत्न चारों गतियों के

जीवों को प्राप्त हो सकता है, फिर तो आप भव्य मनुष्य हैं।

अगर आप भी नरकादि इन आठ दुर्गतियों में नहीं जाना चाहते तो आज सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लेना। यह सम्यग्दर्शन समवशरण का टिकिट है। अगर सम्यग्दर्शन नहीं है तो समवसरण के धूलिसाल परकोट के अंदर प्रवेश नहीं कर पाओगे, अंधे हो जाओगे। समवशरण में वही जा पाता है जो सम्यग्दृष्टि होता है। तुमको इस जीवन के बाद आठ दुर्गति में तो नहीं जाना? तुम्हें समवशरण का दर्शन करना है..... ऐसा चाहते हो?

अगर आयुबंध नहीं हुआ तो अब सम्यग्दर्शन रत्न आपके साथ होगा तो उस रत्न को लेने के बाद आयुबंध वैमानिक का ही होगा। अगर यह सौभाग्य प्राप्त करना आप चाहते हैं तो बतलाइए कौन-कौन चाहता है कि हमें अगले जीवन में इन आठ दुर्गतियों को नहीं पाना है.... हमें साक्षात् समवशरण का दर्शन पाना है....

बता दो.... यहाँ कौन-कौन भव्य है? बता दो। अब हमने रत्न का परिचय तो जान ही लिया, अब उस रत्न को देख भी लो..... सामान्य रत्न तो तिजोड़ी में रखते हो इस रत्न को कहाँ रखोगे? यह तो उससे भी अनमोल है।

एक रत्न अनमोल तो वह रत्नत्रय कैसा होगा।
जिसकी चर्चा इतनी सुंदर तो वह कितना सुंदर होगा॥

बन्धुओ! वह ऐसा महान चेतन रत्न है; जिसकी कोई चोरी नहीं कर सकता, वह रत्न हमें मोक्ष दिलाता है। रत्नकरण्डक श्रा. में कहते हैं-

'श्रद्धानं परमार्थाना, माप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमोढ़ापोढ़मष्टांगं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम्॥ 4॥

यह सम्यग्दर्शन की परिभाषा है कि परमार्थभूत आप्त, आगम, तपोभृत अर्थात् वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु इन पर श्रद्धान करना। तीन मूढ़ता मतलब लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता इनसे रहित और निःशंकित आदि आठ अंगों से सहित और आठ मदों से रहित देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सच्चे देव; वीतरागी होते हैं। रत्नकरण्डक श्रा. में कहा भी है कि-

आप्तोनोच्छिन्न दोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ 5॥

जो अठारह दोषों से रहित होते हैं। सर्वज्ञ होते हैं, आगम के ईश्वर होते हैं (केवलज्ञानी होते हैं), उन्हीं के पास ही अर्हन्त भगवानपना होता है। रागद्वेषादि से मलिन हमारे वीतरागी नहीं होते हैं। और सच्चा शास्त्र कौन-सा है? रत्नकरण्डक श्रा.

में कहते हैं कि-

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य, मदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेश कृत्सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनम्॥ 9॥

आप्त अर्थात् जो भगवान के द्वारा कहा गया हो, उलंघन से रहित हो, प्रत्यक्ष और अनुमान के दोष से रहित हो, तत्त्व का उपदेश देने वाला हो, सबका हित करने वाला हो और मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला हो उसका नाम है- शास्त्र। और सच्चे गुरु कौन हैं? रत्नकरण्डक श्रा. में कहते है कि-

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्, तपस्वी सः प्रशस्यते॥10॥

जो पंचेन्द्रिय के विषयों की आशा से रहित हैं, आरम्भ-परिग्रह से दूर हैं, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन रहते हैं ऐसे सच्चे गुरु कहलाते हैं। यह हमारे देव-शास्त्र-गुरु का लक्षण है। कहते हैं कि- **एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।**

इनको जान लिया तो सबकुछ जान लिया। पञ्चपरमेष्ठी, नव-देवता, वीतराग ही हमारे पूज्य हैं। देखो एक को साधोगे तो सब मिल जायेगा और सबको साधोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए ध्यान रखना। ये ही हमारे जीवन के आधार हैं। अन्य कोई नहीं। इस प्रकार हम अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनायें तो हमारा सम्यग्दर्शन बहुत निर्मल होगा। आजकल लोग किसी की भी पूजा करने लग जाते हैं।

एक बार एक जगह 10 दिन का मेला लगा था वहाँ 10 दिन के लिए अतिथियों हेतु भोजन की व्यवस्था की गई थी। एक व्यक्ति भी वहाँ गया। चूँकि उसने नये जूते खरीदे थे तो उसने विचार किया कि इन जूतों का क्या होगा, कहीं मेले में गुम न हो जायें। इन्हें कहीं न कहीं तो रखने की व्यवस्था करनी पड़ेगी। उसने मेले से कुछ ही दूरी पर एक पेड़ के नीचे एक गड्ढा खोदा और उसमें जूते रख दिये। ऊपर से मिट्टी डाली और उसके ऊपर एक पत्थर भी रख दिया और पहचान हेतु उस पर एक टीका अर्थात् कुमकुम लगा दी। हो गया काम..... पीछे से एक आदमी आया उसने भी थोड़ी कुमकुम लगा दी और थोड़े से फूल भी चढ़ा दिये और लोगों ने आकर नारियल भी फोड़ा और नमस्कार भी किया। धीरे-धीरे एक दो दिनों में इतने फूल, इतने नारियल चढ़ गये कि पहाड़ बन गया। झगड़ा होने लगा कि हम पहले-हम पहले। वहाँ अध्यक्ष, मंत्री आदि सब चुने गये और पुलिस व्यवस्था हो गई।

हे भगवान! ये क्या हो गया। अब 10 दिन के बाद जब मेले से वह लौटा तो

उसने देखा कि यहाँ तो नारियल का ढेर लग गया। वह बोला- हमारे जूते...? वहाँ लोग बोले- जूता-जूता मत बोल नहीं तो जूते पड़ेंगे। पहले सबको चला जाने दे फिर देख कहाँ हैं तेरे जूते। वह बेचारा रात बारह बजे तक बैठा रहा फिर सब कुछ अलग किया और पत्थर को हटाकर खोदा तो जूते निकले। सबको आश्चर्य हुआ। तो देखो, देखा-देखी में क्या से क्या हो जाता है। ऐसा नहीं करना कि एक ने किया तो हम भी करते चले जायें। सोचो.....विचारो.... हम गुणों को पाने गुणवानों की पूजा करते हैं। जैसा कि कहा ही है कि- **'वन्दे तद्गुण लब्धये'**।

बिना गुणों के हम किसी को नमस्कार नहीं करते हैं। मूर्ति में गुण कैसे आते हैं? प्रतिष्ठा से आते हैं। जैसे मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है तो उसकी पूजा करते हैं। क्या गाड़ी-मोटर जड़ वैभव या तिर्यंच की प्रतिष्ठा हो गई??... तो फिर हम उनकी पूजा क्यों करें?

बन्धुओ! अतः देखा-देखी मात्र में कुछ भी नहीं करना है पहले गुणों का निरीक्षण, पहचान जरूर करना है। नहीं तो जूतों की भी पूजा जैसा हो जावेगा, अपने विवेक से काम करना है और सम्यग्दर्शन रूपी रत्न हमें सम्हाल कर रखना है, इसे सुरक्षित रखना है। अन्यथा अपना जीवन अपने चेतन को जाने बिना ही व्यर्थ चला जावेगा। कहा ही है कि-

प्रात गई संध्या भई, संध्या गई भई रात।
रात सोत यों ही गई, भई न निज से बात॥

अपने से बात करो, अपने धर्म को समझो, प्रभु की भक्ति में लीन हो जाओ, अपने कर्त्तव्यों से हम सद्गति का मार्ग खोल सकते हैं और इसके माध्यम से सच्चे सुखी हो सकते हैं।

आचरण बिना
ज्ञान लंगड़ा है और
दर्शन के बिना
ज्ञान अंधा है।

श्रावकों के चार धर्म

श्रावकों के चार धर्म होते हैं। सिद्धान्तशास्त्रों में कहते हैं–

''दाणंपूजांशीलमुववासो सावयणं चउव्विहो धम्मो''

अर्थात् दान, पूजा, शील, उपवास ये श्रावकों के चार धर्म कहे गये हैं।

1. दान

दान का बहुत महत्व होता है और दान सत्पात्रों के उपकार के लिए दिया जाता है। दान और पूजा इन दो के माध्यम से श्रावक अपने चौबीस घण्टे में हुये आरंभ–सारंभ से अर्जित पापों को धो लेता है और सातिशय पुण्य का अर्जन भी करता है। बशर्ते वह दान सत्पात्रों को दिया जाये। उसका फल बड़ा ही महान है।

इस दान में किस तरह से लोग अपने जीवन को अर्पित करते हैं? और वह दान का भाव कितना उत्तम होता है। रत्नकरण्डक श्रा. में कहते हैं कि–

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतरस्राः॥ 117॥

दान चार प्रकार का कहा गया है– आहार दान, औषध दान, उपकरण दान, आवास दान। इस तरह वैयावृत्ति भी चार प्रकार की कही गई है। आहार दान का फल क्या होता है? अकृतपुण्य से धन्यकुमार के बारे में हमने सुना है। इसी तरह और भी वर्णन हमारे रत्नकरण्डक में किया गया है–

श्रीषेण वृषभसेना, कोण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्स्यैते, चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः॥ 118॥

श्रीषेण राजा, वृषभसेना महिला, कोण्डेश मुनि और सूकर ये चार चारों दानों में प्रसिद्ध हैं। इन प्राणियों ने दान देकर के अच्छे उत्तम फल को पाया था। श्रीषेण राजा ने नवधा भक्ति पूर्वक साधुओं को आहार दिया था, जिसके फल से वे एक दिन सातिशय पुण्य अर्जन कर शांतिनाथ तीर्थंकर बने। उन्होंने नवधाभक्ति पूर्वक आहार दान देकर वैयावृत्ति की। षोडशकारण भावनाओं में वैयावृत्तकरण भावना से उन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का संचय किया और वे 16वें तीर्थंकर शांतिनाथ बने। इसी तरह वृषभसेना महिला ने पूर्वजन्म में औषध दान दिया था जिससे उसे सर्वोषधि शक्ति

प्राप्त हुई। कौण्डेश मुनि ने पूर्व जन्म में ग्वाले की अवस्था में मुनिराज को शास्त्रदान दिया था जिससे उसे बहुत पुण्य से महाज्ञानी मुनिराज बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी तरह सूकर ने गुफा में बैठे हुए मुनिराज की रक्षा की थी। उसने व्याघ्र से सामना किया और मरण करके स्वर्ग प्राप्त किया। इस तरह से ये चार दृष्टांत जग-प्रसिद्ध हैं।

एक बार एक जिनालय के परिसर में मुनिराज आकर ठहर गये। चूँकि ठण्डी का वक्त था, ज्यादा हवा वगैरह न आये तो वे थोड़े नीचे स्थान में बैठ गये। प्रातःकाल मंदिर को स्वच्छ करने वाले माली वगैरह आते हैं उसी परिवार की महिला ने वहाँ वृक्ष आदि के पत्ते साफ करते समय देखा कि यहाँ पर कोई नग्न अवस्था में बैठे हैं और राजा अगर आयेंगे तो वे कहेंगे कि ऐसे कौन आकर बैठ गया है, तो शायद राजा को रोष आयेगा। इसलिए उसने सारे पत्तों को इकट्ठा करके मुनिराज के ऊपर डाल दिया। मुनिराज को जब ढक दिया तो धूल के कारण मुनिराज को खाँसी आई और जब खाँसी आई तभी उसी स्थान पर राजा पहुँचे। राजा जब जिनालय की प्रदक्षिणा दे रहे थे तो कहा कि अरे! पत्तों के बीच कौन हैं? ऐसा लग रहा है जैसे कोई मानव हो।

सेवकों से पत्तों को अलग करने को कहा। पत्ते अलग किये तो देखा कि यहाँ तो मुनिराज हैं..... क्या हो गया? किसने इन पर पत्ते डाल दिये? तब ज्ञात हुआ कि मालिन ने यह काम किया है। पूछा - ऐसा किया क्यों ? तो बोली कि हम नहीं जानते थे कि आप इनके भक्त हैं। हमें ऐसा लगा कि शायद आपको इन्हें देखने से मन में ग्लानि होगी तो हमने इन्हें पत्तों से ढंक दिया। राजा बोला कि- ये तो हमारे पूज्य हैं, परमेष्ठी हैं। तुमने अपने जीवन में बहुत बड़ा पाप का कार्य कर लिया। अब तुम मुनिराज से क्षमा मांगो कि कभी ऐसा नहीं करेंगे। उसने क्षमा माँग ली और विचार किया कि मुनिराज को खाँसी आ रही है, हमें पश्चात्ताप के साथ एक कार्य और करना होगा कि इन्हें औषधि का कार्य करना होगा। चूँकि हम तो आहार नहीं दे सकते परंतु किसी से जाकर दिलावाएँगे। जहाँ मुनिराज का पड़गाहन हुआ वहाँ उसने वह औषधि पहुँचा दी। मुनिराज को खाँसी की औषधि चली और मुनिराज की खाँसी दूर हो गई। ये औषध दान जिसने दिया और उसका फल इतना अच्छा मिला। चूँकि वह सम्यग्दृष्टि महिला नहीं थी अन्यथा वह स्वर्ग में जाती। मिथ्यात्व था फिर भी उसे मानव पर्याय मिल गई और सेठ की कन्या बनी और कन्या होने के बाद उसे एक शक्ति प्राप्त हुई कि उसके स्पर्शित जल से कई लोगों के रोग ठीक हो जाते थे।

एक बार राजा सेना लेकर गया था उसे एक भयानक रोग ने घेर लिया; जो कि ठीक नहीं हो रहा था। किसी ने कहा राजन्! क्षमा कीजिए। चूँकि यह कार्य नहीं करना चाहिए। फिर भी हम कह रहे हैं आप शायद पसंद करें। अपने नगर में एक कन्या है, उसके स्पर्शित जल से कई लोगों के रोग ठीक हो जाते हैं। तो ऐसा जल क्या आपके लिये उपयुक्त होगा? राजा ने कहा– ठीक है। मानो अगर अन्य कोई उपाय नहीं है, तो इसी उपाय को करके देख लेते हैं। जब उस जल को लाया गया और राजा के द्वारा उपयोग किया गया तो शीघ्र ही राजा का रोग ठीक हो गया। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसी भी कोई नारी हमारे नगर में हैं। हम उसे देखना चाहते हैं.... उसे बुलवाया गया। सेठ के साथ कन्या आई और कहा कि तुममें बहुत अच्छे गुण हैं, बहुत अच्छी शक्ति है। हम चाहते हैं कि यह कन्या हमारे ही महल में रहे। हम इसे पटरानी बनाना चाहते हैं। सेठ ने कहा– सोचेंगे! विचार करेंगे। आखिर वह राजा की पटरानी बन ही गई। एक बार हुआ ये कि एक बार एक राजा को जेल में कैद करके रखा था। कुछ वर्षों के बाद उसे खुली जेल में कर दिया उससे कई अनुभव भी प्राप्त करते थे। जब आता था तभी रानी भी आती थी भेंट में बहुत सारी वस्तुएँ भी आती थीं। एक बार दो कम्बल आये। एक पर रानी का नाम डलवाकर रानी को दिया और एक पर उस राजा का नाम डलवाकर राजा को दिया। जब वे राजा से मिलने आते थे तो उस समय दोनों का आपस में कम्बल बदल गया। जो राजा कैद था उसी राजा के पास रानी का कम्बल चला गया। कोई संबंध नहीं लेकिन दूसरे दिन जब आना हुआ और इस राजा की दृष्टि में जब आया कि मेरी रानी का कम्बल इस राजा के ऊपर है। मन में बहुत विकल्प हुआ और रानी पर बहुत कुपित हुआ। वह सोचता है कि एक तो दण्डित है ही और रानी को तो बाँधकर तालाब में फेंक देंगे। लोगों ने उसी आज्ञा का पालन किया और फेंक दिया। चूँकि रानी के पास तो शील था। जब उसे तालाब में फेंका गया तो देवों ने उसकी रक्षा की और आकर उसे सिंहासन पर बिठा लिया और जयजयकार की।

यह बात राजा तक पहुँची। राजा भागता हुआ आया और देखा कि रानी के पास तो शील है, हमने गलत किया; ऐसे तो देवता आते नहीं हैं.... उसने रानी से क्षमा मांगी फिर उसे राज्य में पधारने को कहा। इसी बीच रास्ते में उन्हें मुनिराज का दर्शन हुआ। वे प्रत्यक्ष ज्ञानी थे। रानी ने पूछ लिया कि मैं निर्दोष होते हुये भी मेरे शील पर

दोष क्यों लगा? मुनिराज ने कहा देखो! तुमने पूर्व जन्म में क्या किया था? एक मुनिराज के उपर धूल डाली थी तो उससे ऐसा कर्म बँधा कि उसका फल सबसे पहले मिल गया और उससे भी पहले एक फल ये भी मिला कि जब मुनिराज को खाँसी आई थी तो तुम्हारे निमित्त से दी गई औषधि का फल हुआ कि तुम सेठ की पुत्री हुई और तुम्हें सर्वोषधि शक्ति प्राप्त हुई और मुनिराज के ऊपर धूल डालने से जो उनकी अवज्ञा हुई थी उसका फल तुम्हारे शील पर अपवाद।

एक बार छोटा सा दान देने से इतना बड़ा फल है कि सर्वोषधि शक्ति प्राप्त हुई तो जीवन भर दान देने से कितना बड़ा फल होगा। परीक्षाएँ होती हैं लेकिन सभी परीक्षायें पुण्य के आगे कुछ नहीं कर पातीं। इस महिला का पुनः पूरे विश्व में नाम हो गया कि वह एक ऐसी सती है जो शीलवान है और पहले सर्वोषधि प्राप्ति हेतु उसका नाम था ही। छोटे से औषध दान से इतनी बड़ी विशेषता प्राप्त हुई विचार करो! रोज जो आहारदान आदि देंगे तो उसे कितना बड़ा फल मिलेगा। कहते हैं कि षट् कर्त्तव्य करना ही हमारा प्रमुख धर्म है, अपने कर्त्तव्यों से कभी चूकना नहीं चाहिए कहा भी है-

देव-पूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां, षट्कर्माणि दिने-दिने॥

जंगल में मुनियों के आहार

प्रतिदिन करने योग्य कर्त्तव्य हमारे आगम में वर्णित हैं। इसलिए तो कहते हैं घर में, नगर में, महल में जब धर्म करते हैं, तो मंदिर पाठशाला है और यहाँ से गये तो प्रयोगशाला शुरु हो जाती है। लेकिन जंगलों में जाकर षट्-कर्म करना बहुत दुर्लभ बात है। जो जंगल में गये हैं वन को अपना आवास बनाया है ऐसे वनवासी प्रतिदिन भोजन के पूर्व द्वाराप्रेक्षण कर रहे हैं। सोच रहे हैं कि हम आहार की बेला को टालकर भोजन करेंगे। कोई मुनिराज आ जायें और हम ऐसे ही कैसे भोजन कर लें। पहले के काल में सभी लोग शुद्ध वस्त्र पहनकर शुद्ध आहार बनाते थे। पहले के काल में जंगल में हजारों मासोपवासी, ऋद्धिधारी मुनिराज रहते थे। तो वे लोग प्रतिदिन मुनिराज की प्रतीक्षा में कलश लेकर पड़िगाहन हेतु खड़े होते थे। ऐसा ही हुआ कि भावना भाते-भाते माला फेरते-फेरते ऐसा पुण्य बढ़ गया कि आज अच्छे शगुन हो रहे हैं, सुबह से कोई भरा कलश लेकर निकल रहा है, अच्छे शगुन से लगा कि आज हमें कोई अच्छा

लाभ जरूर मिल जायेगा और हमारी भावना पूर्ण होगी। ऐसा ही हुआ। आहार बेला के समय दो मुनिराज आकाश मार्ग से गमन कर रहे थे वे चारणऋद्धिधारी मुनिराज थे। ज्यों ही वे मुनिराज पास में आये और वे महापुरुष सति के साथ बोलने लगे कि हे स्वामी! नमोस्तु... हे स्वामी! नमोस्तु.... हे स्वामी! नमोस्तु इस प्रकार पड़िगाहन कर मुनिराज की तीनों लोगों ने प्रदक्षिणा लगाई और पुनः शुद्धि बोलकर घर में प्रवेश कहकर कलश के पानी से पाद प्रक्षाल कराकर उच्चासन ग्रहण कराया। पुनः एक बार पाद प्रक्षालन कर माथे पर चरण रज लगाई और अष्ट द्रव्य से पूजा की। इस तरह नवधाभक्ति की फिर आहार दिखाया और उसके बाद निवेदन किया कि हे स्वामी! मुद्रा छोड़ अंजुली बाँध आहार ग्रहण कीजिए। दोनों मुनिराज कुटिया में आहार ले रहे हैं और तीनों सदस्य आहार दे रहे हैं। अच्छे गद्‌गद् भावों से खुशी को व्यक्त करते हुये कि आज हम धन्य हो गये। कई दिनों के बाद हमारी इच्छा पूर्ण हो रही है। भले ही हमें तपस्या जैसी भावना करने के बाद ये सौभाग्य मिला है लेकिन हमने अपने धर्म को भुलाया नहीं है। चाहे हम नगर में रहें या जंगल में रहें, हमें धर्म को नहीं भूलना है। जितनी कठिनाईयों में हम धर्म पालेंगे उतना अधिक पुण्य प्राप्त होगा। कहते हैं अपने गाँव में महाराजजी का चौमासा करा लो अथवा एक माह मुनिराज का विहार करा लो..... समान पुण्य है। क्योंकि ऐसी विकट परिस्थितियों में भी व्यक्ति समाधान चित्त होकर अपने कर्त्तव्य में लगा रहता है। इसमें और ज्यादा पुण्य मिलता है।

जब आहार हो रहा था वे बोल रहे थे कि महाराज जी और लीजिए.... ये भी लीजिए-2 और उस समय तो देवता गण, जंगल के प्राणी और सभी मनुष्य मुनिराज के आहार देखने आ गये। एक पक्षी ने आहार तो देखा ही साथ ही उन मुनियों के गंधोदक में लोटपोट हो गया तो उसके पंख स्वर्ण के समान हो गये। महाराजजी का आहार पूरा हुआ, सब लोगों ने जय जयकार की, भजन, स्तुतियाँ गाईं और जब महाराजजी जाने लगे तो आशीर्वाद लिया और कहा कि महाराज! कुछ आशीर्वचन बोलिये। महाराज चट्टान पर बैठे और उनके प्रवचन में सभी को अणुव्रत का उपदेश दिया गया। कई लोगों ने अणुव्रत स्वीकार किये और जिसके पंख स्वर्ण के समान हो गये थे ऐसे उस तिर्यंच प्राणी ने भी अहिंसा को ग्रहण किया और अणुव्रत धारण कर लिये।

तिर्यंच भी संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं, समवशरण में जाते हैं। वे भी अणुव्रत को धारण कर सकते हैं। और बाद में मुनिराज ने आशीर्वाद दिया और आकाशमार्ग से चले

गये। पश्चात् देवों ने पंचाश्चर्य कर दिये। दिव्य पुष्पवर्षा की, गंधोदक वर्षा की, दुन्दुभि वाद्य बजाये, जय-जयकार की और रत्नों की वर्षा की। उनका आहार भी अक्षय हो गया मतलब जब तक बनाने वाला स्वयं न खा ले तब तक वह खत्म नहीं होता भले ही पूरे गाँव को अथवा चक्रवर्ती की सेना को भी खिला दें। बड़ा आनंद हुआ, खुशियाँ मनाई और उन्होंने अपने आप को धन्य माना।

देखो! उन्होंने जंगल में जाकर भी अपने धर्म को नहीं छोड़ा। ऐसो महान आत्मा कौन होंगे.....?

वे थे-राम, लक्ष्मण, सीता। कैसे दण्डकारण्य में उन्होंने कुटिया बनाकर मुनिराज को आहार दिया। ऐसे कौन से मुनिराज होंगे विचार करो..... पहले जो दृष्टांत सुना कि जिसने औषध दान दिया वह नारी अगले जीवन में वृषभसेना बनी। और जिन्होंने आहार दान दिया वे थे राम, लक्ष्मण, सीता। राम को तो मोक्ष मिला। सीता स्वर्ग में गई, आगे 16 वें स्वर्ग से कभी आयेंगी। वे प्रतीन्द्र हुई उनकी स्त्री पर्याय का छेद हो चुका है। वे आकर चौथे काल में जन्म लेकर समवसरण में गणधर बनकर मोक्ष को प्राप्त करेंगी और लक्ष्मण एक दिन तीर्थंकर बनकर मोक्ष जाएँगे। जिन्हें आहार दिया था ऐसे वे चारणऋद्धिधारी मुनिराज थे- गुप्ति और सुगुप्ति मुनिराज। और वह पक्षी जो राम-सीता की रक्षा करता था वह था- जटायु पक्षी।

दान रूपी वैयावृत्ति से तीर्थंकर जैसे पुण्य का संचय करके उन्हें एक दिन मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसे चार धर्मों में प्रथम धर्म दान है, इसको अपने जीवन में करते हुये अपने जीवन को सफल बनायें और पुरुषार्थ न भूलें। इसके माध्यम से हम अपने जीवन को महान बना सकते हैं। ऐसे पुण्यवानों के प्रति हम यही भावना भाते हैं कि वे अगले जीवन में तीर्थंकर जैसे पद को प्राप्त करें और ऐसे गुरुओं का सान्निध्य सबको प्राप्त होता रहे और अपने जीवन को आप सभी धन्य करें। कहते हैं-

''चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाह है, वह शाहनों का शाह।''

2. पूजा

दान, पूजा, शील, उपवास ऐसे चार धर्म बताये हैं उनमें दान के बाद पूजा कही गई है। पूजा किसकी की जाती है? पूजा करने वाला कैसा होना चाहिए? पूजा कैसे की जाती है? पूजा का फल क्या है? और पूजा वीतराग भगवान की या वीतरागी

देव-शास्त्र-गुरु की की जाती है। हमारे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु अथवा पंच परमेष्ठी या नवदेवता; जो कि अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु और जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय हैं, इनकी पूजा की जाती है। कई पूजायें नैमित्तिक रूप से होती हैं और कई नित्य रूप से भी होती हैं। नित्य पूजा जो प्रतिदिन होती है देव-शास्त्र-गुरु आदि की और नैमित्तिक पूजा कभी भगवान के कल्याणक की तिथियों पर या विशेष पर्व दिनों में की जाती है। कुछ पूजायें विशेष आयोजन, विधान आदि में की जाती हैं। इस तरह पूजायें अनेक प्रकार की हैं और वे पूजाएँ द्रव्य रूप और भाव रूप से की जाती हैं।

द्रव्य-पूजायें श्रावकों की अपेक्षा अष्ट मंगल द्रव्य रूप हैं और मुनियों की अपेक्षा उनकी स्तुति, भक्ति आदि रूप मन-वचन-काय की क्रिया ही भाव और द्रव्य पूजा है। द्रव्य पूजा में अष्ट द्रव्य और शरीर आदि का आलंबन होता है और भाव-पूजा में अपने मनोभावों को लगाकर तन्मयता के साथ, विशुद्धि पूर्वक, अर्घ की ओर दृष्टि रखते हुये पूजा की जाती है। भाव-पूजा में यह आवश्यक नहीं है कि अष्ट मंगल द्रव्य से ही पूजा हो। भगवान के गुणों का स्मरण, भगवान के गुणों का बखान, उनके जीवन में होने वाले ऐसे महान कार्य, उनकी वीतरागता, उनके 1008 लक्षण अनंत गुणों आदि के बारे में चिंतन करना भी पूजा है। भगवान के छियालीस गुण भी होते हैं। हम जब इस प्रकार उनकी पूजा करते हैं तो यह पूजा बहुत महान है। पूजा के माध्यम से एक ही भाव होता है कि-

''वन्दे तद्गुण लब्धये।''

आपके गुणों की प्राप्ति हो इस भावना से हम नमन करते हैं। उनको नमन करना, उनके गुणों की प्राप्ति का एक मुख्य उद्देश्य होता है। पूजा का अर्थ गुणानुवाद होता है। कई बार इनके आंतरिक गुणों की स्तुति होती है, कई बार शारीरिक गुणों की और कई बार उनके परिकर रूप हैं समवशरणादि की स्मृति की जाती है और वह सब पूजा के अंदर गर्भित हो जाता है।

पूजा करने वाला किस तरह हो? भगवान के निकट जाने वाला ही सर्वप्रथम व्यसनों का त्यागी होना चाहिए और वह जिनधर्म का पालक होना चाहिए। वह रात्रिभुक्ति, जलगालन आदि की क्रिया जानता है और भी वह धूम्रपान आदि ऐसे नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करता है वह भगवान का अभिषेक, पूजा का अधिकारी

होता है, गुरुओं की सेवा का भी अधिकारी होता है। इसी तरह जिसकी चारित्र की या आचरण की शुद्धि है और शरीर, वस्त्रादि की शुद्धि है, निरोगी है और जिसके कुल की भी शुद्धि है अर्थात् अच्छे उच्च कुल में उत्पन्न हुआ है, इसके माध्यम से भी पूजा में विशेषता आती है और भी आगे उसके पास अणुव्रत, प्रतिमा आदि के व्रत हों तो इससे और ज्यादा विशुद्धि पाई जाती है।

पूजा किस प्रकार होती है? अष्ट मंगल द्रव्य पूजा के लिए निमित्त है अथवा जिसके पास जो है या जो द्रव्य अपने उपयोग में आती है, और वह प्रासुक है, शुद्ध हैं, निर्मल है ऐसी द्रव्य से पूजा की जाती है। यह द्रव्य अनर्घ्य पद की प्राप्ति की हेतु चढ़ाई जाती है। अमूल्य वस्तु की प्राप्ति के लिये मूल्यवान वस्तु को चढ़ाया जाता है। इस तरह भगवान की पूजा बहुत विवेक के साथ, विशुद्धि के साथ करना चाहिए।

पूजा का फल क्या है? पूजा का फल उनके गुणों की प्राप्ति है, रत्नत्रय की वृद्धि है और यह भावना रखनी चाहिए कि आगे जाकर हमें मोक्ष की भी प्राप्ति हो। अगर इस जीवन में मोक्ष नहीं मिलेगा तो स्वर्ग मिलेगा और वहाँ से आने के बाद मनुष्य पर्याय, उच्च कुल आदि मिलकर अपने जीवन में संयम के भाव भी प्राप्त हो सकते हैं; जिसके माध्यम से हमें उस पूजा से पूज्य बनने का भक्ति से मुक्ति पाने का अवसर प्राप्त हो सकता है।

पूजा किस भावना से करनी चाहिए? पूजा निःस्वार्थ भावना से करनी चाहिए। पूजा निःकांक्षित भाव से करना चाहिए, ऐसी भावना रूप पूजा सार्थक होती है। अगर भगवान से कुछ माँगना हो तो मात्र छः बाते माँगना चाहिए। इनमें सब कुछ समाया है। ये तो मुनिराज भी माँगते हैं, गुरु भी माँगते हैं। ऐसी वे 6 बातें–

1. दुक्खक्खओ – दुःखों का नाश हो,
2. कम्मक्खओ – कर्मों का क्षय हो,
3. बोहिलाहो – बोधि की प्राप्ति हो, (रत्नत्रय की प्राप्ति हो)
4. सुगइगमणं – सुगति में गमन हो,
5. समाहिमरणं – समाधिपूर्वक मरण हो
6. जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं – जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्राप्ति हो।

''एके साधे सब सधै, सब साधे सब जाये''

एक मोक्ष को प्राप्त करने की भावना करो तो आपको सब कुछ मिल जायेगा और अगर सबकुछ मांगने की इच्छा रखोगे तो मुख्य तो छूट ही जायेगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम मात्र मोक्ष की ही भावना भायें। वर्तमान में हम देखते हैं कि पुण्य बढ़ने से कितना लाभ होता है। एक बार एक कवि अपने खेत पर गये। कुछ कार्य उन्होंने स्वयं किया और कुछ अपने पुत्र पर सौंप दिया। कि तुम्हें यह काम करना है। पुत्र जाता था और कुछ कार्य देखता था। वे श्रेष्ठी जिनालय में भगवान की पूजा में अनुरक्त रहते थे। प्रातःकाल भगवान का अभिषेक, उनकी पूजा उनका नित्य का कार्यक्रम था यह होने के बाद ही अन्य दूसरा काम देखते थे। एक दिन जब वे जिनालय में जिन–पूजा में लीन थे पूजा के मध्य में ही एक खबर आ गई कि आपके पुत्र को सर्प ने डंस लिया है। वे विचार करने लगे कि मैं पूजा को अधूरा छोड़कर नहीं जाऊँगा। चूँकि मुझे मालूम है कि धर्म से पुण्य आता है और पुण्य से रक्षा होती है। अगर मैं यहाँ से चला जाऊँगा तो पुण्य भी क्षीण होने लग जायेगा। तो पुण्य आता रहे और हम अपना कर्त्तव्य करते रहें। वे कहीं नहीं गये आखिर बहुत बुलाने के बाद सेठानी पहुँची और कहने लगी कि अरे! भगवान कहीं नहीं जाएंगे! मंदिर कहीं नहीं जायेगा! गुरु भी कहीं नहीं जाएँगे और यदि बेटा चला गया तो वापस नहीं आयेगा। बहुत कहा लेकिन सुना नहीं, वे तो जाप में लीन रहे। लोगों ने उस पुत्र को लाकर वहीं उनके सामने लिटा दिया। उन्होंने एक ऐसा स्तोत्र रचा जिसमें भगवान आदिनाथ की स्तुति की गई थी जिससे वह पुत्र उठकर बैठ गया और बहुत अच्छे से सबके लिये देखने लगा, जय जिनेन्द्र कहने लगा। क्या बात है..... क्या हो गया था तुम्हें?

मुझे नहीं मालूम क्या हो गया था। इतना कह सकते हैं कि किसी प्राणी ने मुझे बाधा लाई थी और मैं मरणासन्न हो गया था। लेकिन ऐसी महिमा हुई कि पिताश्री ने जो आदिनाथ भगवान की स्तुति करके स्तोत्र की रचना की त्यों ही मैं ठीक हो गया। उस स्तोत्र का नाम है विषापाहार स्तोत्र। और रचनाकार कवि हैं, धनञ्जय कवि। इन्होंने और भी अनेक स्तोत्रों की रचना की है। ऐसे जिनधर्मी; बेटे की परवाह न करते हुए पूजा में लीन रहे। उन्हें विश्वास था कि मेरा पुण्य बढ़ रहा है अपने आप सम्पदा (पुत्र) की प्राप्ति होगी। वे कहते थे कि संसार तो अनादिकाल से मिला है लेकिन भगवान की पूजा इस भव में मिली है। इससे निश्चित रूप से पुण्य बढ़ता है। पूजा के माध्यम से, विषापाहार स्तोत्र के माध्यम से उस पुत्र का विष उतर गया। लोगों को

विश्वास आया कि वास्तव में भक्ति की कितनी बड़ी महिमा है। हमें भी ऐसी भक्ति करनी चाहिए। इससे हमारा जीवन मंगलमय होगा। इस पूजा, भक्ति के माध्यम से हम एक दिन मुक्ति को भी प्राप्त कर सकते हैं। यह पूजा हमें किस तरह से महान बनाती है गुरुवर कहते हैं कि–

''गिरि से गिरती सरिता पहले, पतली सी ही चलती है।
किंतु अंत में रूप बदलती, सागर में जा ढलती है॥
बल मैं बालक हूँ किस लायक, बोध कहाँ मुझमें स्वामी।
तव गुण गण की थुति करने से, पूर्ण बनूँ तुमसा नामी॥''

3. शील

प्रत्येक मानव जीवन में शील धर्म का बहुत महत्व है। शील के माध्यम से हमारा जीवन शुद्ध होता है। कई उपलब्धियाँ, कई अतिशय इस शील से ही प्राप्त होते हैं। शील के कई भेद हैं। अपने व्रतों का निर्दोष पालन शील है। मूलव्रत फसल के समान है तो सप्तशील बाड़ के समान है।

मूलव्रत न हों तो शील का महत्व नहीं और पालन न हो तो बाड़ का कोई महत्व नहीं। शील तो सप्त व्यसनों – जुआ, चोरी, शिकार, माँस, शराब, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन के त्याग से भी प्रारंभ होता है। यहाँ से ही शील प्रारंभ होता है। यह एक छोटा–सा ब्रह्मचर्य (स्वदार संतोष व्रत) का ही रूप है। यह भी एक शील है। इसके बाद अणुव्रतों में जो शील आता है वह है ब्रह्मचर्य। वह भी एक शील व्रत है। इसके बाद दूसरी प्रतिमा में अणुव्रतों की रक्षा के लिये तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप सप्तशील आते हैं। ये सप्तशील अणुव्रतों की रक्षा के लिये होते हैं और सप्तम प्रतिमा में भी शील आते हैं। एक अपेक्षा से 18000 शील होते हैं। ऐसे ही और विशुद्धि को प्राप्त शील गृहत्यागी गुरुओं के पास आते हैं। 18000 शीलों के पूर्ण पालक मुनिराज होते हैं। पूर्ण रूप से समस्त शील गुण के धारी अरहंत भगवान इस जगत् में पूज्य होते हैं। इतना महान यह शील है, इसकी महिमा अपार है। सारे सतिशय, अनेक प्रकार की ऋद्धि–सिद्धियाँ इस शील के माध्यम से होती हैं। शील महान है तो जगत् में नाम है। कहते हैं कि–

''अग्नि में जलवो भलो, लो पकरवो नाग।
पर्वत से गिरवो भलो, बुरो शील को दाग॥''

अग्नि में जलना ठीक है, पर्वत से गिरना भी ठीक है, नाग को पकड़ लेना भी ठीक है लेकिन शील का अपवाद ठीक नहीं है और ऐसे शील को धारण करने वाले महान आत्मा होते हैं। लंका में रुककर आई सीता को जंगल में छोड़ दिया गया राम को तो विश्वास था, कोई संदेह की बात नहीं थी वह बहुत परिपक्व और दृढ़ नारी थी, उन्हें पूर्ण विश्वास था लेकिन लोग क्या कहेंगे, जगत् में कोई परंपरा न बिगड़ जाये कि परघर में रहकर आने के बाद अपने घर में रख लिया, इसलिए जंगल में छोड़ दिया। जंगल में छोड़ने के बाद लवकुश जन्में और उनकी कलायें-पराक्रम जगत् में विख्यात हुईं और एक बार जब राम के ही घोड़ों को उन्होंने पकड़ लिया था और इसके बाद युद्ध किया तो हनुमान ने राम का साथ न देकर लवकुश का साथ दिया क्योंकि इसमें एक रहस्य की बात थी लड़ाना नहीं था, सुलझाना था सामन्जस्य कराना था। क्योंकि जब पुत्रों की जीत होगी तो माँ घर में आयेगी और बीच में ही समाधान करके भावना जगाई और सारे लोगों में प्रभावना हुई। सीता को महल में लाने के लिए उत्सुकता बढ़ी फिर भी जनता को और विश्वास आ जाये इसलिए उनकी परीक्षा हुई। सीता पतिव्रता नारी थी। ऐसे अनेक उदाहरण शील की महिमा और उससे हुये अतिशय के आगम में वर्णित हैं।

जब सीता से अग्निकुण्ड में कूदने को कहा। सति सीता ने णमोकार पढ़कर अग्नि से कहा कि हे अग्नि! अगर मेरे शील में कोई दोष हुआ हो तो मुझे भस्म कर देना। और मेरा शील अगर निर्दोष है तो कोई अतिशय कर देना और ज्यों ही वह कूदी तो अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन गया और जल से लवालव भर गया। कमल खिल गये और सीता उस पर विराजमान हो गई। ऐसा देवकृत अतिशय देकर राम की आँखों में आँसू और सारी जनता में भी खुशी के आँसू आ गये और सीता से महल में पधारने का आग्रह करने लगे। लेकिन नहीं! संसार की असारता का उसे ज्ञान हो गया, वैराग्य हो गया। और भी वनवास आदि की घटनाओं को सुनकर कईयों को वैराग्य हो गया। सबसे पहले वनवास का सुनकर भरत को वैराग्य हो ही गया था उसके पहले दशरथ तो राज्य छोड़कर जंगल ही चले गये थे और दीक्षा ले ली थी। भरत को राम द्वारा रोका गया था कि नहीं भैया! मेरे आने तक तुम रुको। बाद में चले जाना। और कितने ही लोग मिलते रहे, वैरागी बनते रहे। रावण ने जो कृत्य किया उसको देखकर उसके पुत्रों को वैराग्य हो गया। भाई, इन्द्रजीत, कुंभकरण भी चूलगिरि से मोक्ष गये ऐसे कितने

ही लोग वैरागी बनते रहे और बाद में लवकुश को भी संसार में कर्मों की बलिहारी को देखकर वैराग्य हो गया फिर सती सीता को भी वैराग्य हो गया और पृथ्वीमति आर्यिका के पास जाकर दीक्षा को ग्रहण कर लिया और घोर तपस्या करके, स्त्री पर्याय का छेद करके सोलहवें स्वर्ग में जाकर प्रतीन्द्र हो गई। पुनः चतुर्थ काल में जन्म लेकर वह जीव समवशरण में गणधर बनकर मोक्ष को भी प्राप्त करेगा। यही है शील की महिमा कि वह शील के माध्यम से अग्निकुण्ड भी जलकुण्ड बन गया। ऐसे अनेक संदर्भ हैं। इन संदर्भों के माध्यम से हमें बहुत अच्छा उपदेश मिलता है। ऐसे संदर्भ हमारे जीवन को वैराग्य से भरने वाले होते हैं।

जब लवकुश ने भी दीक्षा ले ली और घोर तपस्या करके उन्होंने पावागढ़ से मोक्ष प्राप्त किया था। बाद में इन लोगों का पुरुषार्थ देखकर, राज्य में व्यवस्थाओं को ठीक करके एक दिन वे राम भी विरक्ति को प्राप्त हो गये। वे आत्मिक शांति के लिए जंगल में रहे। कभी-कभी नगर में आहार को आते थे। चूँकि राम महापुरुष थे, जब वे नगर में आते थे (महापुरुषों का शरीर आकर्षक होता है, वे कभी वृद्ध नहीं होते, उनकी दाढ़ी-मूँछ भी नहीं होती सदैव जवान के समान बने रहते हैं। उनकी रक्षा हेतु अनेक देवता तत्पर रहते थे) तो गाँव के सभी लोग उनको देखने के इच्छुक रहते थे अपना कार्य छोड़कर मात्र उन्हें ही देखने लग जाते थे। उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगते थे। कई बार तो क्या होता था कि महिलायें भी अपने काम को छोड़कर उसी में लग जाती थीं। लेकिन एक घटना ऐसी घटी कि उस दिन से उन्होंने नगर में आना छोड़ दिया और कांतार चर्या का नियम ले लिया कि एक माँ अपने बच्चे को गोद में लिये हुये कुएँ पर पानी भर रही थी। उस समय बच्चे को नीचे बिठा रखा था और रस्से में फंदा लगाया इतने में राम मुनीश्वर जंगल से आहार चर्या हेतु आये। सभी लोग उन्हें देखने लगे। वह महिला भी उन्हें देखने में मग्न हो गई और फंदा जो गागर में लगाना था वह उसने अपने बच्चे के गले में लगा दिया तो बच्चा एक दम रो पड़ा। उतने में राम मुनि की दृष्टि भी उस पर पड़ गई। तब से उन्होंने सोच लिया कि आज से हम नगर में नहीं आएंगे। जंगल में आहार मिलेगा तो करेंगे नहीं तो उपवास कर लेंगे। चूँकि वे तद्भव मोक्षगामी थे, उनका कुछ होने वाला नहीं था। उनके पुण्य से तो देवता भी चौका लगा लेंगे। जब पंचमकाल में ऐसा हो सकता है तो चतुर्थकाल की तो बात ही क्या कहना। राम दीवार की तरफ मुख करके ध्यान में बैठते थे इस तरह उन्होंने मांगीतुंगी से

मोक्षपद को प्राप्त किया। वैरागीजन महान चिंतन में उतर जाते हैं। आचार्य कुंदकुंद देव समयसार में कहते हैं कि इस संसार के सुख तो अनादिकाल से मिले हैं।

'सुदपदिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि काम भोग बंध कहा।
एयत्तस्सुव लम्भो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥'

हे जीव! तूने सुनी है, परिचय प्राप्त किया है, अनुभव भी किया है, संसार की कथाओं का काम-भोग-बंध की कथाओं का लेकिन एकत्व विभक्त की जो कथा है उसे तुमने न तो सुना है, न देखा है और ना ही अनुभव किया है। एक बार तो सुनले और परिचय प्राप्त कर अनुभव भी कर ले। इतनी बड़ी महिमा है- आत्मा की कथा की। इससे आत्मा परमात्मा भी बन जाती है। वैरागी बनकर, कर्मों का क्षय कर उसे मुक्ति की भी प्राप्ति हो जाती है।

राम की ऐसी बड़ी परीक्षा हुई जिसमें वे महान हुये और उनकी परीक्षा के लिये सीता के जीव को भी भाव आया कि अभी उन्हें केवलज्ञान नहीं हो पा रहा है। इनके कर्म नहीं कट पा रहे हैं। थोड़ा और उपसर्ग करना पड़ेगा तब कहीं इनका ध्यान एकाग्र होगा और सोचा कि हम भी इनकी परीक्षा करते हैं। स्वर्ग से उस सीता का जीव जो कि प्रतीन्द्र हुआ था वह उतर कर आया और उसने पुनः सीता जैसा रूप धारण कर लिया और इतना उपसर्ग किया- इतना उपसर्ग किया, तरह-तरह के रूप बनाकर, गीत गाकर उनकी परीक्षा की। लेकिन राम इससे तनिक भी विचलित नहीं हुये उन्होंने अपना शरीर एकदम पत्थर जैसा बना लिया और ऐसा एकाग्र ध्यान हुआ कि उसी समय उन्हें केवलज्ञान हो गया, वे भगवान बन गये। उनकी पूजा हेतु देवता आ गये। उस सीता के जीव ने भी उन्हें प्रणाम कर उनकी पूजा की। धन्य हो ऐसी दृढ़ता, ऐसा ध्यान। बन्धुओं हमें भी गुरुओं के मार्ग पर चलकर ऐसे अतिशय को पाना है और अपने पापों को धोना है। गुरुवर कहते हैं कि-

''मंगलमय जीवन बने, छा जावे सुख छाँव।
मिले परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव॥''

4. उपवास

''**उप आत्मनि समीपे वसतीति उपवासः**'' निश्चय से परिभाषा की जाये तो अपनी आत्मा के समीप ही बसना, निवास करना इसका नाम उपवास है। और व्यवहार से देखों तो ''**चतुराहार विसर्जन इति उपवासः**'' चार प्रकार के आहार

(खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) छोड़ना उपवास है। खाद्य में खाने योग्य दाल, रोटी, पकवान आदि, स्वाद्य में लौंग, इलायची आदि, लेह्य में मलाई, रबड़ी आदि एवं पेय में पानी, दूध आदि आते हैं। ऐसे चारों प्रकार के आहार का जहाँ त्याग होता है वहाँ उपवास होता है लोग जब 24 घण्टे के लिये इन सब चीजों का त्याग कर देते हैं तो उपवास होता है। इसी तरह कोई लोग मात्र पानी लेते हैं और उपवास कहें तो हमारे आगम में ऐसी परिभाषा नहीं है उसका नाम तो अनुपवास है या जलोपवास है वह तो उपवास की साधना है।

उपवास में चारों प्रकार के आहार का त्याग होता है लोग उस दिन कुल्ला भी नहीं करते, मुख में एक बूँद पानी भी नहीं डालते और उपवास के आगे-पीछे के दिन में भी ब्रह्मचर्य धारण करते हैं। इस प्रकार की भावना श्रेष्ठ है। उपवास करते हैं तो उसमें आरंभ-सारंभ का त्याग हो जाता है और भी कोई ऐसे कार्य; जिसमें हिंसा होती हो ऐसे पाँचों पापों का त्याग करें तो बहुत अच्छा है नहीं तो अल्प मात्र में थोड़े उपयोगी परिग्रह और घर में अति आवश्यक कार्य को करते हुए उपवास करते हैं। जो लोग घर में नहीं रहते अर्थात् मुनिसंघों में रहते हैं तो वे लोग तो उस दिन स्नान भी नहीं करते हैं क्योंकि इसमें आरंभ-सारंभ आदि होता है।

उपवास की कई अपेक्षाएँ हैं। जो उपवास शिक्षाव्रत के रूप प्रोषधोपवास के अंतर्गत आता है उसमें लोग उपवास में स्नान नहीं करते। मुनि बनने की शिक्षा के लिये शिक्षाव्रत होते हैं। मुनि-आर्यिकायें स्नान नहीं करते हैं इसलिए वे भी उपवास के दिन उसकी साधना करते हैं। भाव से स्तोत्र पठन, स्वाध्याय, पूजन आदि करते हैं। उपवास एक सामान्य रूप से होता है, जो सभी लोग करते हैं, लंघन है। विशेषकर कोई ज्वर आदि आ जाये तो उसमें लोग लंघन करते हैं। उपवास करने में स्वस्थता भी आती है। इसलिए महात्मा गाँधी कहते थे कि 15 दिन में एक उपवास जरूर करना चाहिए। हमारे आचार्य भी कहते हैं आठ दिन में एक उपवास करें तो बहुत अच्छा होगा। उपवास के दिन बड़ा हल्कापन लगता है और स्वाध्याय में भी मन लगता है। अन्य कार्यों से निवृत्त हो जाने से विशुद्धि भी बढ़ती है इसलिए उपवास बहुत मंगलमय है। जो 8-15 दिन में उपवास करते रहते हैं उनके रोग अपने आप पलायन हो जाते हैं। हुई बीमारियाँ स्वतः ही नष्ट हो जातीं हैं और स्वस्थ्यता आ जाती है। सामान्यतः स्वस्थता हेतु उपवास किया जाता है। हमारे यहाँ इसे अनशन भी कहा है। अशन नहीं करना ही

अनशन है अर्थात् भोजन नहीं करना। आजकल अन्य सम्प्रदाओं में किसी मांग की पूर्ति हेतु अनशन नाम दे दिया। हमें इच्छायें छोड़कर उपवास करना चाहिए कहा है '**इच्छा निरोधो तपः**' इच्छाओं का निरोध करना ही तप है। और '**कर्मक्षयार्थं तप्यते इति तपः**' कर्मक्षय के लिए जो तपा जाये वह तप है। उस दिन कोई खाने-पीने का इच्छा नहीं होनी चाहिए। जब कुछ भी नहीं खाओगे, पिओगे तभी सच्चे उपवास का फल मिलेगा।

एक उपवास अनशन भी कहलाता है। दूसरी प्रतिमा में जो मुनि बनने की शिक्षा हेतु होता है वह प्रोषधोपवास होता है। उसमें आगे पिछे एकाशन और उस दिन उपवास। वह शिक्षाव्रत जो धारण करता है वह मुनि बनने की साधना हेतु प्रोषधोपवास की साधना करता है। प्रोषधोपवास एक प्रतिमा भी है। जिसमें सूक्ष्मता से अपनी सभी आवश्यक क्रियाओं को करते हुये विशुद्धि का पालन करते हुये उस प्रतिमा का पालन करता है। इस तरह उपवास के बहुत अच्छे फल हैं। हमारे जितने भी मुनियों ने दीक्षा ली है। बिना उपवास के दीक्षा नहीं होती, नियम से उपवास करना पड़ता है और दीक्षा के साथ-साथ केवलज्ञान भी बेला-तेला आदि के साथ ही होता है। केवलज्ञान के बाद तो फिर आहार ही नहीं होता। आदिनाथ भगवान ने दीक्षा लेते ही 6 महिने का उपवास धारण किया था। फिर आहार को निकले तो विधि मालूम न होने से आहार नहीं हुआ। फिर वर्धमान चारित्र (जो नियम लिया फिर उससे बढ़कर लेना) के धारक उन मुनिराज ने पुनः 7 महिने 9 दिन के बाद आहार ग्रहण किया था। इस तरह 13 महिने 9 दिन के निराहार के बाद जब वे आहार को उठे तो राजा श्रेयांश के यहाँ उन्हें विधि मिल गई। राजाश्रेयांश-सोम ने उन्हें भक्तिभाव पूर्वक पड़गाहन कर आहार दिया वह अक्षय तृतिया का दिन था। वह दिन अक्षय बन गया अक्षय अर्थात् अविनाशी। उस दिन पंचाश्चर्य भी हुये। जयकार की ध्वनि, मंद-मंद सुगंधित वायु, पुष्पवृष्टि, रत्नवृष्टि, दुन्दुभि वाद्य बजे ऐसे पंचाश्चर्य हुये।

उन्होंने किसी बैल के मुंह में 6 घड़ी को मुसिका बाँधा था जिसके फलस्वरूप उन्हें अंतराय कर्म बँध गया जिसका फल उन्हें भोगना पड़ा। ऐसे भगवान आदिनाथ का जीवन शिक्षा-दान और सहनशीलता में आदर्श रहा है। इसके बाद लगातार उपवास करने वाले महान आत्मा हुये बाहुबली भगवान। इनका भी आदर्श महान है। इन्होंने दीक्षा लेते ही 1 वर्ष का उपवास धारण कर लिया और 1 वर्ष तक

उपवास पूर्वक ध्यान में लीन रहे और केवलज्ञान प्राप्त कर अंत में मोक्ष पद को प्राप्त किया।

बन्धुओं! हम लोग भी चाहें तो इस तरह की कुछ साधना कर सकते हैं। उपवास से शरीर और आत्मा दोनों स्वस्थ होते हैं इसके माध्यम से बहुत कर्मों की निर्जरा होती है यह बहुत बड़ी तपस्या है। कहा है कि–

''तपा हो जो आग में, वहीं स्वर्ण चोखा है।
वक्त जो पहचाने, वही नर अनोखा है॥
समय रहते कुछ करलो हे मानव!
वरना हर साँसों में धोखा है.....
धर्म कर लो मौका है।''

अपना मन जब अपने
गुण दोष पर ईहापोह
करता है/ तब
वह सच्चा वकील होता है
और मन जब
सही निर्णय कर धर्म में
दृढ़ हो जाता है
तब वह सच्चा जज होता है/

ज्वार के मोती

देवपद खेवपद की सम्मेदशिखरजी की यात्रा का वर्णन करते हुए गुरुवर आचार्यश्री आर्जवसागरजी ने अपने प्रवचनों में एक भक्ति का अतिशय बतलाते हुए कहा कि जैन धर्म अनादि से इस आर्यखण्ड में विद्यमान है। समय के रहते उसमें परिवर्तन आते हैं, जन समुदाय की विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती रहती हैं। इसी भारत भूमि के मध्य भारत में किसी एक काल में जैन धर्म का एक प्रसिद्ध क्षेत्र रहा है, जहाँ पर श्रावक बहुत धर्मप्रिय थे, उनका जीवन बहुत ही धर्ममय व सुखमय था। अधिकांश परिवार प्रातःकाल की शुरुआत देवदर्शन से ही करते थे। यहाँ तक बच्चे भी वीतराग भगवान के दर्शन के बिना भोजन नहीं करते थे। मनुष्य जीवन में गृहस्थावस्था को चार भागों में विभाजित किया जाता है- किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था। प्रत्येक अवस्था के कार्य व प्राथमिकता अलग-अलग है। ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य प्रायः प्रौढ़ अवस्था में धर्म की ओर आकर्षित होता है कोई अपनी-अपनी अवस्था के अनुरूप कार्य को बहुत रुचि से करते हैं इसी प्रकार धर्म मार्ग में प्रवेश भी प्रौढ़ अवस्था के मनुष्य ही पाते हैं। बहुत कम हैं जो युवावस्था/किशोरावस्था से ही धर्म की क्रियाओं में रुचि रखते हैं।

इस नगर में एक श्रेष्ठी रहते थे। वे शुरु से ही बहुत धर्मात्मा थे। अपने जीवन में उन्होंने बहुत तीर्थ यात्राएँ कीं। वे अपने परिवार में बहुत ही प्रिय थे। एक समय उनके मन में विचार आया कि उन्हें शाश्वत तीर्थ सम्मेदशिखर की यात्रा करनी है। उस काल में तीर्थक्षेत्र की यात्रा बहुत दुर्लभ होती थी। प्रायः शिखरजी की यात्रा हर एक व्यक्ति नहीं कर पाता था।

आज तो शिखर जी की यात्रा बहुत आसान हो गई है, सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो गई हैं। परंतु तब इस तरह की सुविधाएँ नहीं थीं। एक बार यात्रा के लिए निकले तो छह महीने सहज ही हो जाते थे। फिर घर में सूतक पातक लग जाये तो उन्हें पता ही नहीं चल पाता था। यहाँ तक तीर्थ यात्रा को निकले तो वापस घर आ पायेंगे यह भी कह पाना मुश्किल होता था। अतः एक बार यात्रा के लिए निकलें तो सभी प्रकार की तैयारी करते थे। उन श्रेष्ठी ने यात्रा की तैयारियाँ शुरू कर दीं। यात्रा के लिये वाहन का चयन किया, सामग्री व्यवस्थित करवायी और साथ में कौन-कौन जायेगा

यह निर्णय लिया। श्रेष्ठी के यहाँ दो भाई सेवक की तरह कार्यरत थे। श्रेष्ठी ने विचार किया कि क्यों न इन दोनों को साथ ले चलें, क्योंकि वे बहुत सद्विचार वाले थे व जैनधर्मी थे। एक दिन श्रेष्ठी ने उनसे कहा कि क्या आप लोग मेरे साथ सम्मेदशिखर की यात्रा को जायेंगे दोनों भाईयों ने विनय पूर्वक श्रेष्ठी से कहा कि हमें क्या करना होगा? श्रेष्ठी ने भी सहजता से कहा कि बस तुम्हें रास्ते में सामान रखना-उतारना आदि आवश्यक कार्य होगा और यात्रा के दौरान उचित पात्र मिलेंगे तो उनको आहारादि में सहयोग देना होगा। दोनों भाईयों ने विचार करते हुए कहा कि वैसे तो हम लोग अवश्य आपके साथ आयेंगे फिर भी हम अपनी वृद्ध माँ से चर्चा करने के बाद आपको उत्तर देंगे क्योंकि हम लोगों की अनुपस्थिति में उनकी सेवा करने वाला कोई नहीं होगा। श्रेष्ठी ने भी उनको सहमति देते हुये कहा कि हाँ! तुम अवश्य ही घर में बुजुर्गों से चर्चा करके बताना और परम सौभाग्य मत चूकना।

दोनों भाईयों ने घर जाकर अपनी माँ से विचार विमर्श करते हुए श्रेष्ठी के विचारों से अवगत कराया। माँ ने भी तुरंत स्वीकृति देते हुये कहा कि हाँ। अवश्य शिखर जी की यात्रा कर आओ। ऐसा अवसर फिर कब मिलेगा। दूसरे दिन उन्होंने स्वीकृति श्रेष्ठी को दे दी और यात्रा हेतु तैयारियाँ शुरु कर दीं।

जिस दिन यात्रा प्रारंभ करनी थी उसी दिन दोनों भाईयों ने अपनी माँ से आशीर्वाद लिया। आशीर्वाद लेते हुए माँ से कहा कि माँ! आप तो बहुत ज्ञानी हैं हमें कुछ अच्छा-सा संदेश दे दो। माँ बोली- मैं क्या उपदेश दूँ, तुम तो सबकुछ जानते हो। कोई बड़े ऋषि मुनि मिलेंगे तो उनसे सुन लेना। फिर भी आशीर्वाद स्वरूप में माँ से कुछ आवश्यक वचनों की पुनः प्रार्थना की। जो यात्रा में उनके लिये उपयोगी हों; माँ ने भी सहज रूप से कह दिया कि बेटा! **''देखभाल कर चलना''** उन्होंने कहा कि माँ ने इतना छोटा से उपदेश दिया। कोई बड़ा सा उपदेश दे देती तो अच्छा रहता। क्या हमको देखना नहीं आता, चलना नहीं आता। माँ कोई बड़ा सा उपदेश दे दो। माँ बोली बेटा! इसी में संतुष्ट रहो इसमें ही सबकुछ है। और इसका अर्थ ज्ञात नहीं होता तो महान मुनिराज से इसका मतलब पूँछ लेना। उन्होंने माँ के वचनों का ध्यान रखा। इसके अलावा माँ ने आंतरिक भावना से कहा कि मेरे तरफ से यह एक थैली ले जाओ, जिसे सम्हाल कर रखना और शिखर जी तीर्थक्षेत्र की प्रत्येक वेदी पर अर्पण कर देना। ध्यान रखना यह किसी को मालूम नहीं होना चाहिए। दोनों बेटों ने हाँ की

सहमति दी और माँ के चरण स्पर्श किए और यात्रा को निकल गये। दोनों भाईयों ने माँ के द्वारा दी हुई थैली अपने सामान के साथ एक नियत स्थान पर रख दी ताकि सामान्य से किसी का ध्यान वहाँ न जा सके।

श्रेष्ठी; घर के सभी सदस्यों और उन सेवकों सह बैलगाड़ियों से यात्रा पर चल दिये। पहले यात्रा बैलगाड़ी आदि से ही हुआ करती थी और यात्रा सामान्य से दिन में ही किया करते थे। रात्रि में उचित स्थान देखकर विश्राम करते थे। फिर बीच रास्ते में वीतराग साधु मिल गये तो उनके दर्शन, प्रवचन, आहारादि, दानादि के निमित्त से यात्रा को कुछ दिनों का विराम देते थे। यात्रा के दौरान वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ एक विशाल मुनि-संघ था उनके चरणों में नमस्कार करके आशीर्वाद लेकर उनकी परिचर्या करके उनका उपदेश सुना और उपदेश सुनकर छोटे बड़े नियम लेने को सभी लोग इच्छुक हुये। उसी के बीच उन दोनों ने पूँछ लिया कि महाराज जी मेरी माँ ने हम दोनों को एक उपदेश दिया था। उस उपदेश का अर्थ हमको समझ में नहीं आया आप हम पर कृपा कीजिए। महाराज बोले-बोलो कि तुम्हें क्या उपदेश मिला था। वे बोले कि उन्होंने उपदेश दिया था कि **''देखभाल कर चलना''** ऐसा कहा था; गुरुवर बोले कि इसमें बहुत गहरा अर्थ छिपा हुआ है। अरे! देखभाल कर चलना मतलब सारा मोक्षमार्ग ही आ गया। देख मतलब सम्यग्दर्शन, भाल मतलब सम्यग्ज्ञान और चलना मतलब सम्यक्चारित्र। वही तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में कहा है कि-

''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः''

सारा का सारा मोक्षमार्ग ही बतला दिया। अब क्या बचा है तुम लोगों ने यदि इतना पालन कर लिया तो मुक्ति पाने में देर नहीं है। ठीक है महाराज जी! इसी प्रकार का हमें मोक्षमार्ग मिल जाये। उन्होंने अपने सम्यक्त्व को दृढ़ बनाया और अणुव्रत के साथ पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत भी ले लिया। इसी प्रकार श्रेष्ठी भी अपनी-तीर्थयात्रा करते हुए जगह-जगह पर वीतराग मुनियों का दर्शन, आहार दान करते हुए अपनी यात्रा को आगे बढ़ाते हुये सातिशय पुण्यार्जन करते हुये एक दिन बड़ी ही प्रतीक्षा के साथ शुभ मुहूर्त्त में उस शिखरजी तीर्थक्षेत्र के पर्वत की तलहटी मधुवन में पहुँच ही गये। ज्यों ही वहाँ पहुँचे तो देखा कि पर्वत पर जिनालय बने हुये हैं, टोंक बनी हुईं हैं। सबसे पहले तो उस टोंक का दर्शन हुआ जहाँ महान उपसर्ग विजेता पार्श्वनाथ तीर्थंकर मुक्ति पधारे। ऐसी टोंक का दर्शन हुआ और बोले- पार्श्वनाथ भगवान की जय। इस प्रकार

ठहरने आदि की व्यवस्था बनाकर विश्राम करने चले गये। दूसरे दिन वंदना हेतु श्रेष्ठी ने पहाड़ पर जाने की व्यवस्था बनाई और सभी को भोजन की तैयारी के बारे में सूचना दे दी। और रात्रि के समय सभी शयन करने चले गये।

उन दोनों भाईयों के मन में विचार आया कि हम लोग कैसे पर्वत पर भगवन्तों के चरणों के दर्शन कर पायेंगे क्योंकि श्रेष्ठी के पर्वत यात्रा में माँ के द्वारा दी हुई सामग्री कैसे अर्पण करेंगे वह भी गुप्त रूप से। उन्होंने विचार किया कि क्यों न हो कि हम लोग रात्रि में 12 बजे यहाँ से निकलें तो सभी कार्य यथावत् हो जायेंगे।

ऐसा सोचकर वे दोनों माँ के द्वारा दी गई सामग्री के साथ वन्दना के लिये निकल गये। यात्रा प्रारंभ करते समय वहाँ के कर्मचारियों ने देखा फिर विचार किया कि ये कहीं के कर्मचारी वर्ग के लोग होंगे इसलिए उनको ऐसे असमय में यात्रा के लिये रुकावट नहीं की। उधर दोनों भाई अपने-उत्साह पूर्वक पर्वत पर पहुंचने के लिये आतुर हो पड़े। झरने के गर्म जल में अपनी द्रव्य पोटरी खोलकर धोने लगे। चूँकि दाने हल्के होने से कुछ बह गये बहुत थोड़े ही बच पाये। इस प्रकार वे चाँदनी बिखरी रात्रि में ही गणधर टोंक पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर बहुत ही भक्तिभाव से पूजन की। जय जय कार लगाई कि धन्य हो जो कि हम इस पर्वत पर पहुँच गये। जहाँ से अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी बने हैं। जय जय कार लगाते हुए मंत्र पढ़ते चले जा रहे थे।

'ॐ ह्रीं श्री अनंतानंत परम सिद्धेभ्यो नमो नमः' बोलकर आगे बढ़ते गये थे। और भावना भा रहे थे कि हमें भी ऐसे मुक्ति प्राप्त हो। इस तरह टोंकों पर पहुंचने पर माँ द्वारा दी हुई द्रव्य में से एक मुट्ठी द्रव्य अर्पण कर दी और इधर-उधर देख रहे थे कि कोई देख तो नहीं रहा है। अर्घ्य अर्पण कर कायोत्सर्ग किया। चरणों का प्रक्षाल कर गंधोदक लिया। फिर आगे की टोंक पर जाने हेतु निकल पड़े। इसके बाद दूसरी टोंक ज्ञानधर कूट जहाँ से 17 वें तीर्थंकर कुंथुनाथ भगवान व 96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 32 लाख 96 हजार मुनि मोक्ष गये। वहाँ पहुँचे और प्रासुक सामग्री से अर्घ्य समर्पित करते हुये तीन परिक्रमा के बाद नमन कर तीसरी टोंक पर गये।

तीसरी टोंक पर नमिनाथ भगवान के चरणों में अर्घ्य चढ़ाते हुये तीन परिक्रमा के साथ आगे बढ़ गये। फिर चौथी अरनाथ की टोंक पर पहुँचे। इसके बाद क्रम से मल्लिनाथ भगवान, श्रेयांशनाथ भगवान, पुष्पदंत भगवान, पद्म प्रभु भगवान, मुनिसुव्रतनाथ जहाँ पर राम ने सिद्धचक्र विधान किया था। इस प्रकार दोनों भ्राता-

भव्य जीव वेदियों के दर्शन करते हुये उस थैली के एक-एक मुट्ठी धान्य अर्पण करते हुये शांत परिणामों से देखभाल कर चलते हुये भाव सहित पूरी वंदना करने में लगे रहे।

वहाँ से वंदना को दो मार्ग निकलते हैं उन्होंने विचार किया कि किस रास्ते से वंदना करें। क्योंकि एक रास्ता जो चन्द्रप्रभु भगवान की टोंक और दूसरा रास्ता सीधा जलमंदिर को जाता है। वे दोनों अकेले ही वंदना कर रहे थे फिर भी रास्ता भूले नहीं और चन्द्रप्रभु भगवान की टोंक पर पहुँचकर भाव सहित तीन परिक्रमा देते हुए अपनी द्रव्य को अर्पित किया। वहाँ से आकर आदिनाथ भगवान, शीतलनाथ भगवान, अनंतनाथ भगवान, संभवनाथ भगवान, वासुपूज्य भगवान और अभिनंदननाथ भगवान की टोंक के दर्शन करते हुये जल मंदिर के रास्ते अपनी यात्रा को आगे बढ़ाते हुए अगले दर्शन हेतु बढ़ते चले गये।

इसके बाद धर्मनाथ, सुमतिनाथ, शांतिनाथ, महावीर, सुपार्श्वनाथ, विमलनाथ, अजितनाथ, नेमिनाथ और अंत में पार्श्वनाथ की टोंकों पर दर्शन, पूजन के बाद अपनी यात्रा वापिस धर्मशाला की ओर प्रारंभ की और सुबह के धुँधले प्रकाश में नीचे पहुँच गये। नीचे आकर मुनिराज को आहार दिया। उन्होंने सोचा कि नीचे की वंदना बाद में कर लेंगे। पहले थोड़ा आराम कर लेते हैं। जैसे ही वे लेटे तो उनकी नींद लग गई और सपने में ही तीर्थयात्रा करने लगे। सेठ जी भी विचार कर रहे थे कि पर्वत पर जायेंगे अच्छी-अच्छी द्रव्य चढ़ाएंगे चाँदी की थाली, सोने की कटोरियों में रख कर बहुत कीमती द्रव्य चढ़ाएँगे। ऐसी नारियल गोले बादाम पिस्ता अखरोट आदि जैसी अष्ट मंगल द्रव्य चढ़ाकर हम मंगल दर्शन करेंगे। ऐसी हमारे जैसी द्रव्य किसी के पास नहीं है।

एक बार तमिलनाडु की बात है मारवाड़ी समाज के व्यक्ति अपनी ओर से विधान कर रहे थे, वे सेलम के थे। हमारे संघ का सान्निध्य उन्हें प्राप्त हुआ। ऐसे विधान करने के लिए सभी इन्द्र-इन्द्राणियों के लिये अष्ट मंगल द्रव्य चढ़ाने हेतु थालियाँ लगाई गई। जब वे पति-पत्नि दोनों आये, जो कि विधान में सौधर्म इन्द्र बने हुये थे। तो उन्होंने अपनी थैली में से अखरोट, बादाम, पिस्ता, काजू, किशमिस धोकर अपनी थाली में सजा लिये। सभी लोगों की नजर वहाँ पड़ी और कहने लगे कि थाली जब इतनी अच्छी सजी है तो फिर क्यों आप अपनी द्रव्य निकाल रहे हो वे बोले-

भैया! जब मेरे घर में सबकुछ है, मेरी शक्ति है, जब मैं अच्छा-अच्छा चढ़ाऊँगा तो अच्छा-अच्छा चक्रवर्ती जैसा पाऊँगा। भगवान की सेवा, वैय्यावृत्ति जितनी अच्छी द्रव्य से करेंगे उतना ज्यादा पुण्य हमें प्राप्त होगा। कई व्यक्ति तो घर से द्रव्य नहीं ले जाते हैं और मंदिर की द्रव्य को ही धोकर पूजन कर आते हैं। वे दोनों लोग तो शिखर जी तक के लिये अपनी पोटली में द्रव्य लेकर गये और अच्छे भाव पूर्वक उसको चढ़ाया। अतः हमें अपने घर से अच्छी-अच्छी द्रव्य, उत्कृष्ट द्रव्य लेकर मंदिर में चढ़ाना चाहिए।

उधर सेठजी सुबह पर्वत की यात्रा के लिए निकल गये। सेठजी द्रव्य की सामग्री को लेकर बड़े ही उत्साह के साथ भाव सहित वंदना हेतु निकले। और सूर्योदय के पूर्व ही गौतम गणधर टोंक पर दर्शन के लिये पहुँचते ही वे चकाचौंध से चौक गये, क्योंकि वहाँ प्रकाश बहुत अधिक था। वेदी के नजदीक देखा तो उन्हें रत्न, मोती दिखे। और विचार करने लगे कि मुझसे पहले कौन अन्य व्यक्ति आया। जिसने इतने मूल्यवान रत्न अर्पण किये। लगता है कि कोई इन्द्र या कोई चक्रवर्ती आया होगा उसी ने ये रत्न चढ़ाये होंगे बाकी तो ऐसा कोई नहीं दिखता। उसके मन को खेद हुआ कि वे रत्न, मोती अर्पित करने में लगे हैं और ये हमारी द्रव्य रत्नों के आगे फीके पड़ रही है। सेठजी ने अपनी आगे की वंदना जारी रखी और प्रत्येक टोंक पर उन्हें लाल, नीले, पीले, रत्न मोती नजर आये। उनका मन निराश हो गया कि मुझसे कीमती रत्न यहाँ किसने चढ़ाये हैं।

इस प्रकार वंदना पूर्ण करने के बाद वहाँ नीचे कार्यालय में सभी से जानकारी ली कि उनके पहले वंदना के लिए कौन गये थे। सभी ने कहा सेठजी सबसे पहले आपकी ही वंदना शुरु हुई है और कोई नहीं गया। वे आश्चर्य चकित थे कि आखिर कौन हैं वो? जो सभी की नजरों से बचते हुए वंदना करके चले गये।

फिर उन्होंने द्वारपालों से पूछा कि आज पहले-पहले वंदना के लिये कौन-कौन गये थे? उन्होंने भी यही उत्तर दिया कि आपसे पहले कोई नहीं गया। हाँ! रात में 12 बजे दो व्यक्ति मैले कपड़े पहने हुये अवश्य गये थे। हमनें सोचा कि ये कर्मचारी होंगे।

उन्होंने विश्राम स्थल पर पहुँचने के बाद उन दोनों के बारे में जानकारी ली तो पता चला कि वे किसी स्थान पर सो रहे थे। वे धोती ओढ़कर विश्राम कर रहे थे।

उनको जगाते हुये पूछा कि क्या आप दोनों वंदना करने गये थे? उन्होंने हाँ कहते हुये घबराहट के साथ कहा कि मुझसे गलती हो गई। क्षमाकरना–क्षमाकरना। अब कभी नहीं जाऊँगा, मुझे क्षमा करना। क्या करूँ यह सोचकर रात्रि को ही वंदना के लिये निकल गया कि सभी के सामने तो माँ के द्वारा दी हुई सामग्री अर्पित नहीं कर सकेंगे। इस तरह से वे दोनों क्षमा–याचना करने लगे।

सेठ जी ने कहा कि तुमने वहाँ कुछ देखा था? उन्होंने कहा कि नहीं। मैंने मात्र भगवान की स्तुति, वंदना की और माँ के द्वारा दी हुई द्रव्य समर्पित की। सेठ जी बोले– वहाँ मोती रत्न चढ़े हुये थे वे नहीं देखे? वे बोले– नहीं मैंने नहीं देखे। सेठजी विचार करने लगे कि फिर वे रत्न मोती आदि किसने चढ़ाये। सेठजी ने कहा कि तुमने प्रत्येक वेदी पर क्या अर्पित किया। वे बोले– नहीं वह बात मत पूछिये। करुणामयी भाव से कहने लगे कि सेठजी हम लोगों ने तो सिर्फ माँ द्वारा दिये हुए ज्वार के दाने चढ़ाये थे।

सेठजी बोले वे ज्वार के दाने तो रत्न बन गये। उन्होंने कहा कि नहीं–नहीं, आप हमारी हँसी मत उड़ाइए। सेठजी बोले हम हँसी नहीं कर रहे हैं। हम वास्तव में कह रहे हैं जाकर देखो तो थोड़ा। नहीं ऐसा नहीं हो सकता; उस माँ की भावना का इतना प्रभाव कैसे हो सकता है।

धन्य हो वह मेरी माँ जिसने मुझे उपदेश दिया था कि 'देखभाल कर चलना', जिसके माध्यम से मुझे सम्यग्दर्शन का और व्रत संकल्पों का गुरुओं से उपदेश मिला। धन्य हो ऐसी बुढ़िया की भावना। उन्होंने जाकर देखा तो जहाँ उन्होंने ज्वार के दाने चढ़ाये थे। वहीं पर वे रत्न, मोती रूप में चढ़े हुए थे।

धन्य है उस माँ बुढ़िया का जीवन। जिसकी इतनी महान भावना थी। और ऐसे गुरुदेव भी धन्य हैं, जिनका आशीष उनको प्राप्त हुआ। दोनों लोग जब नीचे आये तो सभी लोग उनका सम्मान करने लगे उन्होंने कहा कि मेरा क्या स्वागत कर रहे हो। करना है तो मेरी माँ बुढ़िया का करो, जिसकी ऐसी महान भावना थी या यात्रा करवाने वाले सेठ जी का।

अन्ततः यह समाचार उस बुढ़िया तक पहुंच गया और वह उत्सुक हो गई कि कब आयेंगे वे मेरे बेटे, दोनों भाई। मैं उनको जल्द ही देखना चाहती हूँ।

सेठ जी को अंदर ही अंदर आश्चर्य हुआ कि ये दोनों सच्चे सम्यग्दृष्टि भक्त

हैं, जिनने ज्वार अर्पित की थी और वे ज्वार के दानें देवों द्वारा रत्नों में बदल गये। यह एक सम्यग्दर्शन व दान की महिमा है। सेठजी ने भी उनकी प्रशंसा की। जब वे पुनः नगर को आये तो सभी ने उनका स्वागत सम्मान किया। बहुत ही प्रशंसा की।

ज्यों ही बुढ़िया ने उनको देखा त्यों ही उन्हें अपने गले से लगा लिया और कहा कि बेटा तुमने तो बहुत बड़ा काम किया है। तुमने तो इतना बड़ा चमत्कार, अतिशय कर दिया। वे बोले–माँ! मेरा तो इसमें कुछ भी नहीं है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। तुम्हारी आस्था, शक्ति, श्रद्धा, भावना ने ही चमत्कार दिखाया है। धन्य है तुम्हारा जीवन!

गरीबों की भावना भी अगर ऐसी श्रेष्ठ हुआ करती है तो बड़े–बड़े अतिशय हो जाया करते हैं। ऐसे अतिशय प्राप्त करने वाले युवा थे **देवपद** और **खेवपद**।

ध्यान रखना कि अपनी भावना बड़ी पवित्र होनी चाहिए अच्छी द्रव्य हो, न्याय–नीति से कमाया गया धन हो, अच्छा नियम–संयम हो तो अतिशय भी प्राप्त होता है। भावना भव नाशनी कही गयी है। हमारी मान की भावना नहीं होनी चाहिए और न ही नाम की भावना होनी चाहिए। बस; निःकांक्ष भावना से धर्म करना चाहिए। कहा भी है कि– '**बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न भीख।**'

धन्य है वह क्षेत्र जहाँ ऐसा चमत्कार हुआ। ऐसा वह क्षेत्र है–सम्मेदशिखर। और जहाँ से वे लोग गये थे वहाँ शांतिनाथ भगवान का जिनालय था उस क्षेत्र का नाम था–देवगढ़। और जहाँ वापिस आने पर राजा आदिक के द्वारा दी गई सम्मान राशि से उन्होंने सैकड़ों जिन प्रतिमाओं के निर्माण कराने का भी सौभाग्य पाया और अंत में संयम धारण कर सद्गति को प्राप्त किया; धन्य। 'महावीर भगवान की जय'।

उस माहौल को याद करो जिससे हमें वैराग्य हुआ था। उस माहौल को भूल जाओ जिससे कभी राग-द्वेष हुआ था।

भगवान महावीर का पावन जीवन

कर्मों की महानता में जन्म की सार्थकता

ज्ञानीजन कहते हैं कि **आवश्यकता अविष्कार की जननी है**। हमें धर्ममार्ग बताने वाले ऋषभदेव, राम, कृष्ण और पार्श्वनाथ तीर्थंकर हुए, समय में बहुत कुछ बदलाव हुआ ज्ञानीजन कहते हैं कि एक समय वह जब ढ़ाई हजार वर्ष पहले मानव दानवता पर उतरने लगा था। देश में हिंसा का तांडव नृत्य होने लगा था। धर्म के नाम पर पशुओं की बलि और बकरों, अश्वों और कहाँ तक कहें कि नरों को भी होम कर यज्ञ होने लगे थे। साथ में यह भी प्रचार था कि इससे परलोक सुधर जाता है लेकिन जैन धर्म मात्र क्या; सभी धर्म अहिंसा की शिक्षा देते हैं लेकिन धर्म ग्रन्थों का उपदेश केवल शास्त्रों तक सीमित रह गया था। केवल भारत में कुछ जिन धर्मी अहिंसक इसे अमल में ला रहे थे और कुछ जानकर भी उपदेश देने में कतरा रहे थे। कहते हैं कि समय की लहर एक समान नहीं बहती। प्रकृति भी कहती है कि राहगीर को कहीं धूप कहीं छांव कभी उतार तो कभी चढ़ाव मिलता ही है। जब एक दिन लोगों ने कहा कि अब इस अति की इति कब होगी, वर्तमान में वर्द्धमान की आवश्यकता है, ऐसा अनुभव हुआ। तब बिहार के वैशाली नगर में राजा सिद्धार्थ के यहाँ राजा चेटक की पुत्री त्रिशला (प्रियकारणी) जो राजा सिद्धार्थ की धर्म पत्नी थी उनकी कूख से स्वर्ग से आये वर्द्धमान-महावीर चैत्र शुक्ल तेरस के दिन उत्पन्न हुये। सारे लोगों में खुशियाँ छायीं। देवलोक में घण्टे और गृहों के सामने बधाईयों के वाद्य बजने लगे। राज-भवन में रत्नों की वर्षा की गई। इन्द्र ने मंगल ताण्डव नृत्य रचाया जन्माभिषेक और शचिदेवी व देवों द्वारा की गई सेवा के साथ वर्द्धमान का ज्ञान विद्या पराक्रम क्रमशः वृद्धिगत होने लगा।

जन्म होते ही धन, वैभव, ऐश्वर्य, सुख-शान्ति, आनन्द में वृद्धि होने लगी इस कारण उनका नाम **वर्द्धमान** रखा गया। जब संजयंत और विजयंत नामक दो मुनिराजों को तत्त्वार्थ के विषय में कुछ शंका थी, उस शंका का राजकुमार महावीर के दर्शन मात्र से ही समाधान हो गया तब उन मुनियों ने उनका नाम **सन्मति** रख दिया गया। जब मदोन्मत्त हाथी को राजकुमार वर्द्धमान ने एक क्षण में वश में कर लिया तब सबने मिलकर उनका नाम **वीर** रख दिया। जब देव ने परीक्षा करने के लिए भयंकर

नाग का रूप धारण कर लिया और निर्भय वर्द्धमान उसके फण पर पैर रखकर उतरे और उसे खूब घुमकर निर्मद कर दिया तब देव ने प्रगट हो नमस्कार करके उनका **महावीर** नाम रख दिया। जब देव ने परीक्षा करने के लिए अप्सराओं को भेजकर, हर प्रकार से तप से डिगाना चाहा किन्तु महावीर सुमेरु की तरह अडिग साधना में तल्लीन रहे तब देवों ने उनका **अतिवीर** नाम रखा और चरणों में गिर पड़े। इस प्रकार इनके पाँच नाम प्रसिद्ध हुए।

महावीर का बचपन का नाम वर्द्धमान था। जब वे बचपन में थे, तभी से वे करुणामय हृदय के स्वामी थे और उनकी संवेदनशील और चिंतनशील प्रकृति ने उन्हें विभिन्न पापों के कारणों और उनके निवारण की खोज करने के लिए प्रेरित किया जो उन्होंने समाज के चारों ओर देखा। 30 वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन में व्यतीत करने के उपरांत उन्होंने आध्यात्मिक साधना करने के लिए संसार का त्याग कर दिया और निर्ग्रंथ बन गए। उन्होंने 12 वर्षों तक मुनि रूप में विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और एक उत्तम साधक तपस्वी आत्म सयंमी और आत्म शोधक का जीवन व्यतीत किया। 42 वर्ष की आयु में उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान(केवल ज्ञान अथवा कैवल्य) प्राप्त किया और कठोर साधना द्वारा जीवन और विश्वव्यापी सभी समस्याओं का समाधान जगत् को प्रदान किया। इस प्रकार कैवल्य द्वारा उन्होंने सांसारिक सुख और दुख पर विजय प्राप्त की। उनकी इस विजय के कारण उन्हें **महावीर** के रूप में जाना जाने लगा।

महावीर ने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत रूप पाँच महान सिद्धान्तों की शिक्षा दी। उन्होंने समस्त प्राणी जगत के प्रति प्रेम और करुणा का संदेश दिया। महावीर का मत था कि मनुष्य अपने सुख-दुःख का स्वामी स्वयं है और प्रत्येक आत्मा में इतनी क्षमता है कि वह परम सिद्धावस्था तक उठकर चरमावस्था को प्राप्त कर सके जिसे प्राप्त करने पर वह पुनर्जन्म के बंधन से मुक्त हो जाता है। भगवान महावीर ने समाज में प्रचलित सभी बुराईयों के विरुद्ध धर्म युद्ध छेड़ा। अहिंसा और अनेकांत महावीर के उपदेशों का मर्म थे। उन्होंने अपने अनुयायियों को किसी भी जीव की हत्या ना करने, किसी को पीड़ा ना पहुँचाने, किसी को दास ना बनाने, किसी को यातना ना देने, और किसी का शोषण ना करने उपदेश दिया। विश्व में जैन धर्म की अहिंसा का उपदेश ना केवल मनुष्य के लिए बल्कि जीवन के सभी

रूपों के लिए एक विशेष महत्व रखता है।

जैन दर्शन में अहिंसा अपने शाब्दिक अर्थ की अपेक्षा अत्यंत व्यापक अभिप्राय रखती है। इसमें करुणा, सहानुभूति, दान, विश्वबन्धुता और सर्वक्षमा समाविष्ट है। भगवान महावीर के उपदेश शाश्वत प्रासंगिक हैं और यदि इन्हें व्यवहार में लाया जाये तो न केवल ये किसी के भी जीवन को नया अर्थ देंगे बल्कि विश्व को भी रहने के लिए अत्यंत बेहतर स्वरूप प्रदान करेंगे।

ईस्वी सन् से 527 वर्ष, विक्रम संवत से 470 वर्ष, शक संवत से 305 वर्ष 5 माह पूर्व कार्तिक वदी सोमवार और अमावस्या मंगलवार के मध्य में प्रातःकाल, जब चौथे काल के समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रह गये थे और केवल ज्ञान की प्राप्ति होने के उपरांत 29 वर्ष 5 माह 20 दिन बाद अर्थात् 71 वर्ष 3 माह 25 दिन की आयु में भगवान महावीर ने महलों की पावापुर नगरी के पद्म सरोवर के मध्य खड्गासन मुद्रा में निर्वाण को प्राप्त किया। कुछ ही समय के अंदर देवताओं ने उस अंधेरी रात्रि में रत्न वर्षा कर रोशनी की, जनता ने दीपक जला कर उत्साह मनाया। राजाओं ने वीर निर्वाण की यादगार में कार्तिक अमावस्या की रात्रि को प्रति वर्ष दीपावली पर्व की स्थापना की। तब से आज तक सभी वर्गों के लोग उत्साहपूर्वक दीपावली पर्व मनाते चले आ रहे हैं।

प्रो. जोसेफ मेरी ए.बी.एस. जर्मनी ने ''**भगवान महावीर का आदर्श जीवन**'' पुस्तक में पृष्ठ क्रमांक 17 पर कहा है कि भगवान महावीर की आदर्श शिक्षाएं अत्यंत बलशाली आध्यात्मिक प्रतिक्रियाएं हैं। उन्होंने अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया है कि आत्मा शरीर की गुलाम नहीं है। उन्होंने भौतिक लालसाओं और इच्छाओं की दुनिया को नष्ट किया और हम उन्हें बहुत ही शानदार सुपरमैन कहते हैं। हम उनके लिए जर्मन विचारक हार्डर की निम्न पंक्तियों का उल्लेख करते हैं:-

''**वे रण क्षेत्र के विजेताओं के नायक हैं। वे शेर के शिकारियों के विजेताओं के नायक हैं। और वे नायकों के नायक हैं एवं स्वयं के विजेता हैं।**''

मिस्टर हर्बट वॉरेन इंग्लैण्ड ने '**वीर**' पुस्तक पर पृष्ठ क्रमांक 2 में कहा है कि ''भगवान महावीर का जीवन पूरी तरह सत्य ईमानदारी एवं पवित्रता से पूर्ण था। एवं उनका जीवन समस्त प्राणीयों को सुरक्षा देता है, उन्होंने किसी भी सम्पत्ति का बिलकुल भी संचय या परिग्रह नहीं किया यहाँ तक कि वस्त्र भी त्यागे। उनका जीवन

उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए उदाहरण है जो कि दुःखों से छुटकारा या मुक्ति पाना चाहता है।'' प्रो. टेन युनसेन चाईना (चीन) ने ''महावीर कममेमोरेशन'' पुस्तक वाल्यूम वन में कहा है कि सर्व प्रथम अहिंसा का पाठ अत्यंत गहराई में एवं सुव्यवस्थित तरीके से जैन तीर्थंकरों विशेष रूप से चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर वर्द्धमान द्वारा समझाया गया। इसके बाद पुनः भगवान बुद्ध द्वारा अंत में महात्मा गांधी के विचारों, शब्दों एवं कार्यों में परिलक्षित हुआ। विश्व के अप्रतिम विद्वान जार्ज बर्नाड्शा ने ''जैन शासन'' पुस्तक में पृष्ठ क्रमांक 30 पर कहा है कि जैन धर्म के सिद्धांत मुझे अत्यंत प्रिय हैं। मेरी आकांक्षा है कि मृत्यु के पश्चात् मैं जैन परिवार में जन्म धारण करूँ। डॉ. श्री राधाकृष्णन जी (राष्ट्रपति) ने ''शांति दूत महावीर'' पुस्तक में पृष्ठ क्रमांक 30 पर कहा है कि ''यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण में मार्ग पर चलना है तो भगवान महावीर के संदेशों को और उनके बताए गए मार्ग को ग्रहण किये बिना और कोई रास्ता नहीं है''। आचार्यश्री काका कालेलकर जी ने ''ज्ञानोदय'' पुस्तक में पृष्ठ क्रमांक 66 पर कहा है कि मैं भगवान महावीर को परम आस्तिक मानता हूँ। श्री भगवान महावीर ने केवल मानव जाति के लिए ही नहीं वरन समस्त प्राणीयों के विकास के लिए अहिंसा का प्रचार किया। उनके हृदय में प्राणी मात्र के कल्याण की भावना सदैव प्रबल थी। इसलिए वह विश्व कल्याण का प्रशस्त मार्ग स्वीकार कर सके। मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि उनके अहिंसा सिद्धांत से ही विश्व कल्याण तथा शांति की स्थापना हो सकती है। धन्य है ऐसे ज्ञानियों का संदेश जिसका हम सदैव स्मरण करते हैं।

कैदियों को सिखलाया धर्म का पाठ

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्द कुन्दार्यो, जैन धर्मास्तु मंगलं॥

आचार्यश्री आर्जवसागरजी ने केन्द्रीय जेल-दमोह में वहाँ के बन्दियों को महावीर के संदेशों को प्रवचन के माध्यम से दिया।

कैदी बन्धुओं! आप लोग यहाँ पर हैं यह जेल नहीं है वरन् वह आपको प्रायश्चित्त स्वरूप यह शिक्षा देने की शाला है। व्यक्ति गलती तो करता है, यहाँ उस गलती को सुधारने का एक शिक्षा केन्द्र है। आप लोगों को अपनी गलती का ध्यान तो आता ही होगा। हाँ, यहाँ आपको जैसी चाहो वैसी स्वतंत्रता तो नहीं है लेकिन यहाँ रहकर आगे आने वाले कल का माहौल तैयार कर रहे हो। आप लोग प्रतिदिन अपने-2 इष्ट देवता को याद करते होंगे- परिवार के दादा-दादी को भी याद करते होंगे। यहाँ आप लोगों को जेलर साहब एक अच्छा वातावरण देते होंगे जिससे आप अपने आगे के जीवन को सुधार सकें। किसी परिस्थिति वश कीचड़ में फिसल गये होंगे और उसके फलस्वरूप यहाँ आना पड़ा।

आज से करीब 2600 वर्ष पूर्व जो भगवान महावीर का जन्म हुआ था उस समय भारत की स्थिति बहुत ही नाजुक थी समाज में अति हिंसा का वातावरण था। बहुत बड़े-बड़े यज्ञ हो रहे थे जिसमें घोड़े आदि जानवरों की बलि दी जाती थी। यहाँ तक मनुष्यों को भी धर्म के नाम पर उस में जिंदा जला दिया जाता था। कहते हैं जब भी समाज में कोई अति होती है तो उसको मिटाने के लिए महापुरुष जन्म लेते हैं। मैंने पूर्व के प्रवचन में भी कहा था कि- आज से 2616 वर्ष पूर्व भ. महावीर का जन्म हुआ था, उनके जन्म से पन्द्रह माह पूर्व से ही अनेक अतिशय पूर्ण घटना होने लगीं थीं, प्रतिदिन 14 करोड़ रत्नों की वर्षा होती रही। जहाँ भगवान का जन्म होना निश्चित था, वहाँ की जनता/प्रजा धन-धान्य से सुखी हो गयी थी। कोई भी गरीब नहीं बचा था तो वहीं भगवान महावीर का जन्म होने से पहले हिंसक और चोरीजारी का वातावरण खत्म हो गया था। भगवान महावीर को पाँच नामों से जाना जाता है जो उनके जीवन शैली पर आधारित हैं। भगवान महावीर ने शादी नहीं की, वे अब्रह्म पाप से दूर रहे, उनके गृहस्थ जीवन काल में उन्हें कोई गरीब नहीं दिखा। देवता स्वर्ग से आकर उनके

भोजन-वस्त्र आदि की व्यवस्था करते थे। उन्होंने जो लोगों के कल्याण के लिये अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का संदेश दिया था उसे ही आज हम आचार्य परम्परा से पालन करते हुये भव्य जीवों के कल्याण के लिये उपदेश देते हैं। आप लोगों ने महात्मा गांधी का नाम तो सुना ही होगा जिन्हें आज राष्ट्रपिता के नाम से जानते हैं। उन्होंने भारत को स्वतंत्रता इस अहिंसा के सिद्धान्त पर ही अंग्रेजों से दिलवायी। भारत के पूर्व राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम से किसी ने प्रश्न किया कि वर्तमान में ऐसा कौन सी मिसाइल है जिससे विश्व में शांति स्थापित हो सके। तो उनका उत्तर था **अहिंसा ही ऐसी मिसाइल है जिससे शांति की स्थापना हो सकती है।** कोई हमसे पूछे कि महाराजजी आप ऐसे कैसे रहते हैं? तो आप जानेंगे यह दिगम्बर रूप अहिंसा महाव्रत को पालन के लिये है। यदि हम एक लंगोटी भी लगा लें तो उसकी सुरक्षा के लिये अनेक चिंतायें चालू हो जायेंगी, मुनि लोगों के जीवन में पाप रूपी विकारों का प्रवेश नहीं है। आप लोगों को मालूम होगा कि महात्मा गांधी एक धोती पहनते थे। उनके पास तो बहुत सारे कपड़े थे उन्होंने अफ्रीका से वकालत की शिक्षा प्राप्त की थी। जब वो भारत वापिस लौटे तो माँ ने पहले घर में प्रवेश नहीं दिया और यह कहा कि कहीं तुमने माँस भक्षण तो नहीं किया? उनके साथ आने वाले व्यक्ति ने उत्तर दिया, नहीं माँ, उन्होंने तो शाकाहार न मिलने पर उपवास किया लेकिन माँस भक्षण नहीं किया, तब घर में प्रवेश दिया।

एक बार गांधीजी एक तालाब के पास से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा कि महिला आधी साड़ी पहने हुये है और आधी धोकर सुखा रहीं है यह देखकर वे वहीं खड़े रहे, जब तक दूसरी आधी साड़ी न धुल गई और उसको पहन न ली। फिर नजदीक पहुँचते हुए उस महिला से पूछा कि आप ऐसा क्यों कर रही थीं, क्या दूसरी साड़ी नहीं है? तो उसका उत्तर यही था कि दूसरी साड़ी होती तो मैं ऐसा क्यों करती। उस दिन से उन्होंने संकल्प लिया कि वो भी सिर्फ एक धोती पहनेंगे वह भी स्वयं की बुनी हुई। विचार करो महात्मा गांधी एक धोती में काम चला सकते हैं तो हम भी क्या कम वस्त्रों में निर्वाह नहीं कर सकते हैं? ज्यादा परिग्रह में आत्म शान्ति नहीं मिलती है। मनुष्य ध्यान भी नहीं कर सकता है और ध्यान किये बिना संसार रूपी जेल से निकलने के लिये कर्मों का क्षय नहीं कर सकता, चित्त की एकाग्रता के लिये हिंसा आदि पाँच पापों का त्याग करना पड़ता है। तब कहीं जाकर हम जो अनादि से इस संसार में रहकर पाप कर रहे हैं उनको काटकर इस जेल से छूट पायेंगे। तो बन्धुओं आपने कुछ ऐसे कर्म किये

होंगे जिस कारण यहाँ आना हुआ। पूर्व में किये गये पाप-पुण्य कर्म कभी किसी को बिना कुछ फल दिये छोड़ते नहीं हैं। तो घोर तपस्या से पाँच महाव्रतों को पालन करते हुए पूर्व में उपार्जित कर्मों का क्षय किया जा सकता है। इसको हम एक उदाहरण से जानेंगे। एक माँ के दो पुत्र हुए, एक स्वस्थ-सुन्दर और बुद्धिमान है और दूसरा पुत्र अपंग है और मंद बुद्धि वाला है। विचार करो ऐसा क्यों होता है? यह सब अपने-अपने कर्मों का फल है पूर्व जन्म में हिंसा आदि पाँच पाप किये होंगे जिस कारण से वह अपंग-मंदबुद्धि वाला हुआ और दूसरे बेटे ने पुण्य के प्रभाव से सुंदर शरीर पाया है। इस तरह पूर्व कर्मों में आस्था रखो तब कहीं मन को शान्ति-संतोष होगा जो हमें वर्तमान में बुरे कार्य करने से रोके रखेगा। हिंसा वह है जो बेकसूर प्राणी को अपने स्वार्थ के लिये जान से खत्म करना अथवा बेकसूर से अपना मतलब सिद्ध करने के लिये राग-द्वेष उत्पन्न करना। उदाहरण के लिये जैसे- सीता का अपहरण रावण ने किया और राम ने रावण का वध करके सीता को छुड़ाया। देश की सुरक्षा के लिये सीमा पर मिलट्री तैनात है। इसमें स्वार्थ नहीं है बल्कि धर्म की और रक्षा की भावना छिपी है। जैन धर्म में हिंसा मूलतः दो प्रकार की कही है एक द्रव्य हिंसा दूसरी भाव हिंसा। आप लोग ध्यान दें द्रव्य हिंसा उसे कहते हैं जिसमें किसी का सीधा घात या मरण होता है और दूसरी भाव हिंसा जिसमें तुम्हारे कारण दूसरे व्यक्ति को दुःख पीड़ा हो। दोनों से ही पाप कर्मों का बंध होता है और उसका फल समय आने पर भोगना ही होगा।

जैन पुराणों में एक पुरुरआ भील का उदाहरण मिलता है जिससे हमें शिक्षा मिलती है कि किसी तरह जो कोई एक छोटा सा त्याग का संकल्प लेता हो तो उसका क्या फल मिलता है? वह भील जिसका काम तो हिंसा से ही पेट का भरण पोषण होता है। एक बार उसने दिगम्बर मुनि के प्रवचन सुने जो अहिंसा आदि विषय पर चल रहे थे। प्रवचन खत्म होने के बाद श्रोतागण अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार नियम ले रहे थे। वहाँ पर वह भी उपस्थित था, मुनि महाराज ने उसकी ओर भी इशारा किया और कुछ नियम लेने के लिये कहा। उसने विनय पूर्वक कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ? हमारा जीवन तो इसी में है। फिर भी संवाद के उपरान्त उसको कौवे के माँस त्याग करने के लिये कहा जिसे उसने सहज स्वीकार कर लिया क्योंकि ऐसा माँस तो उसने अब तक भक्षण नहीं किया था। फिर भी त्याग तो त्याग ही है। एक बार वह भील

बीमार हो गया तो वैद्य ने उसे कौवे के मांस लेने के लिये कहा लेकिन उसका तो त्याग था। पूर्ण मांस त्याग की भावना रूप संकल्प पर दृढ़ रहते हुए उसने अपने प्राण छोड़ दिये परिणाम स्वरूप वही भील का जीव स्वर्ग में देव हुआ। विचार करो कि छोटे से नियम का फल कितना अच्छा होता है। तो आप लोग भी अपने जीवन में इस तरह के विचारों को स्थान दें यह सबक लेते हुये कि गुणी योगी दर्शन से उसका जीवन ही बदल गया। हम सब लोगों के जीवन में भी दृढ़ संकल्प हो बस; आप सबके कल्याण हेतु ऐसी मैं भावना भाता हूँ।

आप लोग व्यसन के बारे में तो जानते होंगे जो मनुष्य के जीवन को तवाह कर देते हैं। धर्म शास्त्रों में सात व्यसन बताये गये हैं। जैसे जुआ, चोरी, शिकार, माँस, शराब, पर स्त्री सेवन, वेश्या गमन; एवं अन्य और भी व्यसन सब इन्हीं सातों में समाहित हो जाते हैं। इस तरह प्रत्येक मानव को इन व्यसनों से दूर रहना चाहिये। इसी को एक दृष्टांत के द्वारा समझाता हूँ। एक बार एक बालक एक योगी के दर्शन के लिये गया था। वहाँ श्रावकगण उन योगी महाराज से नियम ले रहे थे। इस बालक ने भी उन योगी से सप्त व्यसन के त्याग का नियम ले लिया और घर आकर अपने पिता से कह दिया कि मैंनें सप्त व्यसन त्याग का नियम ले लिया है। पिताजी यह सुन कर उस बालक पर कुपित हुए और कहने लगे कि जाओ यह नियम जिससे लिया है उसी के पास जाकर वापिस कर आओ। बालक भी प्रखर बुद्धि का था उसने पिताजी से कहा कि आप भी चलिये उन योगी के पास जिससे बड़ा अच्छा होगा। पिताजी ने कहा कि चलो हम चलते हैं। रास्ते में जाते हुए कुछ लोग जुआ खेल रहे थे, बालक ने पूछा पिताजी ये लोग क्या कर रहे हैं, पिताजी ने कहा– बेटा ये लोग जुआ खेल रहे हैं, तुम ऐसा मत करना इससे जीवन बरबाद हो जाता है। अरे पिताजी, मैने महाराज जी से यही नियम तो लिया है। चलो कोई बात नहीं तुम इस नियम को रख लो बाकी वापिस कर देना, बालक बोला ठीक है पिताजी। फिर आगे चले तो देखा एक व्यक्ति के हाथ, पैर में हथकड़ी डली थी और कुछ व्यक्ति (पुलिस) उसको ले जा रहे थे, बालक ने पिताजी से पूछा कि इस आदमी को ऐसे क्यों ले जा रहें हैं। पिताजी ने कहा बेटा इसने चोरी की थी इसलिये इसके अपराध में पुलिस पकड़ कर ले जा रही है इसको बन्दी बना कर रखेंगे। पिताजी यही दूसरा नियम भी मैंने लिया है कि मैं कभी भी जीवन भर चोरी नहीं करूँगा। चलो– ठीक है, इस नियम को भी रख लो। अब फिर आगे बढ़े तो

थोड़ी दूर पर देखा एक व्यक्ति तीर के निशाना बना कर मासूम जानवरों को मार रहा है, पुत्र ने पिता जी से प्रश्न किया कि यह क्या कर रहा है? उन्होंने उत्तर देते हुए कहा कि यह व्यक्ति मासूम जानवरों को मारकर उसके माँस का भक्षण करेगा हम लोग शाकाहारी हैं। हम किसी की हिंसा नहीं करते; क्योंकि यह बड़ा पाप है। देखो घोड़ा होता है वह घास-चना आदि खाता है और उसकी शक्ति का ही लोग उदाहरण देते हैं- क्या देते हैं- ''हॉर्स-पावर'' लायन पावर कभी नहीं कहते हैं क्योंकि वह माँसाहारी है जो मांसाहारी होते हैं उनके नाखून-दाँत नुकीले होते हैं और पानी जीभ से चप-2 करके पीते हैं। क्या हम लोग ऐसे हैं; तो नहीं। बेटा ऐसा कभी मत करना। अरे! पिताजी योगी ने ऐसा ही तो कहा था कि शिकार करना और माँस खाना पाप है वहीं तो मैंने नियम लिया है। अच्छा तो कोई बात नहीं, ये नियम भी रख लो। फिर भी वे दोनों आगे योगी दर्शन के लिये चलते रहे बीच में देखा कि एक व्यक्ति गंदी नाली में पड़ा है और कुत्ता उसके ऊपर गंदगी कर रहा है। बेटे ने पिताजी से पूछा यह आदमी नाली में क्यों लेटा है? पिता ने कहा कि इसने शराब पी ली है और इसको बिलकुल होश नहीं है। यह जो भी कमाता है सब शराब में खर्च कर देता है इसके पत्नी-बच्चे परेशान रहते हैं, तुम से भी कह रहा हूँ, तुम शराब कभी मत पीना। बेटा कहता है हाँ- पिताजी मैं कभी शराब नहीं पीऊंगा और यही नियम मैंने योगी महाराज से लिया था। अच्छा चलो ये भी नियम रख लो। इसी तरह और आगे बढ़े तो एक जगह देखा महिला की छेड़-छाड़ के कारण एक व्यक्ति को गरम लोहे की छड़ से उसके शरीर पर लोग निशान लगा रहे थे और वह बहुत रो-रो कर तड़प रहा था। बेटे ने पिताजी से पूछा इस आदमी को ये लोग क्यों परेशान कर रहे हैं? पिताजी ने कहा बेटा इस आदमी ने दूसरे की स्त्री से छेड़-छाड़ की और यह गंदी बात है। तुम इस तरह के कार्य मत करना, बेटा- हाँ पिताजी। यही नियम मैंने योगी से लिया था। हाँ कोई बात नहीं इसे रख लो। फिर आगे बढ़े तो देखा एक आदमी जो कभी बहुत बड़ा सेठ था आज फुटपाथ पर बैठा भीख मांग कर पेट भर रहा है। पूछा गया तो इसका कारण था वेश्यागमन। इससे आदमी अपना जीवन बर्बाद कर लेता है। बेटा तुम इस तरह की झंझट में नहीं पड़ना। अरे पिताजी! इन्हीं सप्त व्यसनों के त्याग का नियम मैंने योगी महाराज से लिया है। अच्छा बेटा! तुमने- मुझे पहले क्यों नहीं बताया? मैं तो बता ही रहा था लेकिन आपने मेरी पूरी बात सुनी ही नहीं। पिताजी बेटे से कहते हैं कि चलो बहुत अच्छा हुआ अब

हम अपने घर वापिस चलते हैं और इन नियमों को जीवन भर अच्छी तरह से पालन करना।

हम जब जैन तीर्थ शिखरजी की यात्रा पर थे तो बनारस बीच में पड़ता है तो वहाँ के जैन जेलर ने जेल में प्रवचन देने के लिये कहा था लेकिन समयाभाव के कारण प्रोग्राम नहीं बना। उसी तरह, शीतकाल में बरेली में भी जेल में प्रवचन की चर्चा चली, बात नहीं बनी। आप लोगों का पुण्य है कि यह व्यवस्था बनी। आप लोग यहाँ पर हैं किसी कारणवश मानो कीचड़ में फिसल गये होंगे। अब तो आप लोग हमारी इस धर्म की कंपनी के सदस्य बन जाओ और अहिंसक मार्ग को अपनाओ जिससे आप लोगों का शेष जीवन सुधर जायेगा। बोलो व्यसनों का त्याग करोगे ना। उठाओ हाथ कौन हमारे विचारों से सहमत हैं, सभी ने दोनों हाथ उठाये। सभी को मेरा आशीर्वाद है। अब हम आपको एक और सत्य घटना बताते हैं। किस तरह तंबाकू सेवन घातक है। इसमें निकोटिन होती है। जो तंबाकू सेवन करता है उसके शरीर में निकोटिन फैल जाती है। एक बार एक परिवार में तीन महीने के बच्चे का शरीर नीला पड़ गया घर के लोग डॉ. के पास भागे-भागे गये। डॉ. ने जब परीक्षण किया तो पाया अरे! इस बच्चे का शरीर निकोटिन के प्रभाव से नीला पड़ गया है। डॉ. ने पूछा कि क्या ऐसे व्यक्ति ने इसे हाथ में लिया जो तम्बाकू का सेवन करता हो। वहीं इस बच्चे के दादाजी खड़े थे उन्होंने स्वीकार किया हाँ मैंने इस बच्चे को लिया था और मैं तम्बाकू खाता हूँ। तब बच्चा मुश्किल से बच पाया और उन व्यक्ति ने भी तम्बाकू जीवन भर के लिये छोड़ दी । आप लोग भी इसका सेवन नहीं करना। अब चोरी के लिये उदाहरण देता हूँ जो जैनागम से है, यह कहानी चौथे काल की है, एक चोर महल से रत्न जड़ित हार चोरी कर भागा तो पुलिस ने देखा उसके पीछे भागी, चोर तो नहीं दिखा लेकिन हार चमक के कारण दिख रहा था। चोर ने सोचा अब सुबह होने वाली है पकड़े जायेंगे इसलिय हार फैंक दिया। और वह शमशान की ओर भाग गया वहाँ देखा कि एक व्यक्ति पेड़ से ऊपर-नीचे हो रहा था। उसने पूछा कि क्या कर रहे हो? यहाँ, मैं आकाश-गामिनी विद्या सिद्धि कर रहा हूँ। अच्छा! किसने बताई? जिनदत्त सेठ ने बताई है। अरे वो तो बड़े प्रसिद्ध सत्यवादी थे लाओ मैं सिद्ध करता हूँ बताओ कैसे क्या करना है? यहाँ पेड़ पर सींका बनाकर सब व्यवस्था बनाई है इसमें 108 रस्सियाँ हैं, णमोकार मंत्र पढ़कर एक-एक रस्सी काटना है अंत में विद्या सिद्ध हो गई तो आप

नीचे लगी हुई तलवारों के ऊपर गिरने से बच जाओगे। चोर ने सोचा वैसे भी पुलिस पकड़ने वाली है तो वैसे ही मारे जायेंगे इससे अच्छा यही काम करते हैं। तुरंत उस पर चढ़ा तब तक वहाँ मंत्र भूल गया। सिर्फ इतना ही याद रहा **''आणं ताणं कछु न जानम् सेठ वचन परमाणं''** इतना बोलते हुए सारी रस्सियाँ एक दम काट दीं और नीचे गिरने लगा बस इतने में विद्या ने उस चोर को अधर में उठा लिया और यह बोलते हुए कि आपने विद्या सिद्ध कर ली है। बतलाइये आपको क्या चाहिये। चोर ने कहा मुझे कुछ नहीं चाहिये जहाँ सेठजी है वहीं ले चलो। बस कुछ ही क्षणों में वहाँ से सुमेरु पर्वत पर पहुँच गया और सेठजी को सामने देखा तो ''जय जिनेन्द्र'' किया। सेठजी ने पूछा कौन हो तुम, कहाँ से आये हो? मैं अंजन चोर हूँ और आपके नगर से ही आया हूँ। यह विद्या कैसे मिली? बस आपका जो व्यक्ति था उसी से प्राप्त हुई। सेठजी ने विचार किया कि अब तो बहुत मुश्किल होगी बंदर के हाथों तलवार आ गई मानो, यह चोर अब क्या नहीं करेगा। इतने में वह सेठजी से निवेदन करता है कि मेरे लिये उपदेश दीजिये, मैं सब पापों का त्याग करना चाहता हूँ। सेठजी ने मुनिराज की ओर इशारा किया; उपदेश वहाँ मिलेगा। चोर तुरंत वहाँ पहुँचा और मुनिराज से अपने कल्याण के लिये निवेदन किया और दीक्षा लेकर कर्मों का क्षय करके संसार रूपी जेल से मुक्त हुआ। देखो अगले पल का भी भरोसा नहीं आप लोग भी अपने अच्छे व्यवहार से एक अच्छे मार्ग को अपना सकते हो।

अंत में मैं यही कहना चाहूँगा कि आप इन जेल दीवारों के बन्धनों से छूटने की भावना भा रहे और हम इस संसार रूपी जेल से मुक्त होने की भावना भाते हुए पुरुषार्थ कर रहे हैं। जेलर साहब से कहना चाहूँगा कि इन बन्दियों को यहाँ पर व्यवस्था दी जाये ताकि ये यहाँ से बाहर निकलें तो एक अच्छा जीवन व्यतीत करते हुए अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकें फिर पाप कर्म के मार्ग पर आने का विचार भी नहीं आये। इसलिये इन्हें योग-व्यायाम व धर्म का ज्ञान प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था हो जाये तो इन भव्यों का कल्याण होगा। इस तरह जेलर ने अपनी स्वीकृति भी दी और भविष्य में आपके बताये इस मार्ग का ही अनुसरण करने की इन्हें प्रेरणा अवश्य देते रहेंगे। सभी कैदियों ने और सभा में आये लोगों ने हाथ उठाकर कि कभी भी सप्त व्यसन आदि बुरे कर्म नहीं करेंगे, ऐसा संकल्प लिया।

प्रत्येक मानव के विकास के लिए, धर्म करके पुण्य का संपादन करने के लिए, सद्गति को पाने के लिये और विशिष्ट पुण्योदय हो तो मोक्षमार्ग में आकर तप करके संवर और निर्जरा के माध्यम से मोक्ष पाने के लिये जो बाल्यावस्था में संस्कार की बात की जाती है, वह बड़ी महत्वपूर्ण है। जैसे माता-पिता जब अपने बच्चों को समय देते हैं वैसे ही धर्म गुरु जो मेहनत करते हैं, जो स्नेह के साथ उन्हें अपनी संस्कृति का, धर्म का संस्कार देते हैं वह संस्कार देश, समाज और धर्म की रक्षा हेतु बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

अंत में चार पंक्तियाँ बोलकर आचार्यश्री ने प्रवचन का समापन किया-

धर्म जैन हो या हिन्दू हो, चाहे हो सिख, ईसाई।
मुस्लिम, बौद्ध सभी में देखो, नहीं कही हिंसा भाई॥
सभी धर्म जो दया मूल है, उसकी बात बताते हैं।
नहीं मारना किसी जीव को, यही सबक सिखलाते हैं॥

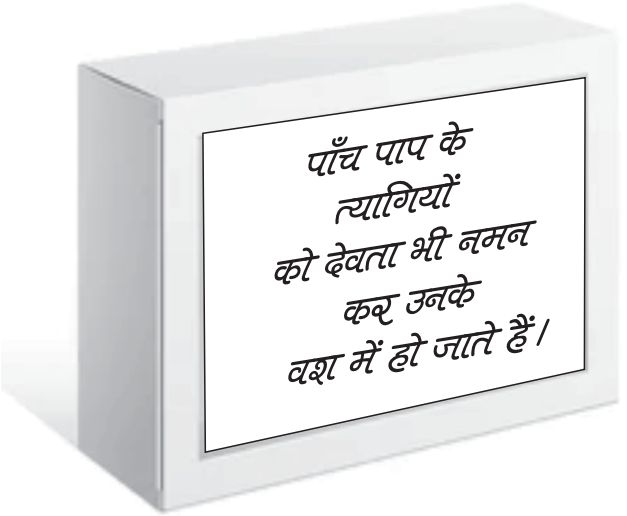

ध्यान और एक विज्ञान

★ ध्यान और ध्यान की प्रक्रिया
★ ध्यान में धर्म सहयोगी
★ ध्यान में क्या छोड़ना ?
★ संसार से निज ध्यान की ओर
★ दुनिया और शांति प्रदायक ध्यान
★ ध्यान में आलम्बन क्या ?
★ सम्यक् ध्यान से निज स्वभाव की उपलब्धि
★ संयोग और वियोग से परे है ध्यान
★ ध्यान का आधार द्रव्य
★ क्रियात्मक ध्यान में विवेक व सावधानी
★ ध्यान की प्रसिद्धि में मन व आहार
★ आज के विज्ञान में जैनधर्म की झलक
★ अहिंसा और विज्ञान
★ जैन धर्म व विज्ञान
★ षट्काल व्यवस्था व काल परिवर्तन में निमित्त ज्योतिष्क विमान
★ धर्म और विज्ञान पर समीक्षात्मक उद्बोधन

ध्यान और ध्यान की प्रक्रिया

भव्य आत्माओं के जीवन में सच्चे सुख और शान्ति के लिए तथा मुक्ति प्राप्ति के लिए, मोक्ष अवस्था का अनुभव करने के लिए ध्यान की निर्मलता परम आवश्यक है। ध्यान एक साधन है। मोक्ष उसका साध्य है। जैसे कारण के बिना कार्य नहीं होता, मार्ग के बिना मंजिल नहीं मिलती वैसे ही ध्यान के बिना साध्य रूप उस मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। अपनी आत्मा में स्थित अनादिकालीन एक सौ अड़तालीस (148) कर्म जो मूल में आठ कर्मों के रूप में है। उनको जलाने के लिए ध्यान एक अग्नि हैं। जैसे दूध को तपाया जाता है। फिर उसमें जामन डाला जाता है या जमाया जाता है। तब दही बनता है। फिर उसको मथानी से और दो रस्सियों के योग से मथा जाता है, तब उसमें नवनीत आता है। उस नवनीत को पुनः तपाया जाता है तब घृत बन जाता है। उसकी सुगन्धी चारों ओर फैल जाती है। एक बार घृत बनने के बाद पुनः वह दुग्ध नहीं बनता है। यह बात सर्वविदित है। बस इसी उदाहरण की तरह इस आत्मा को बारह तपों की आग में तपाया जाता है। अन्तिम तप वह ध्यान है इसके बाद कोई तप नहीं होता है। फिर तपके साथ भेद विज्ञान का जामन डाला जाता है। शरीर अलग है और आत्मा अलग है। ऐसे अनुभव में लाया जाता है तब कहीं बाईस परिषहों को जीतने की शक्ति इस आत्मा के अन्दर आती है। शरीर से निस्पृह होना पड़ता है। "**इच्छा निरोधो तपः**" वाली बात हमें ध्यान में रखनी पड़ती है। जब इच्छाओं का निरोध होता है तो सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं। एकाग्रता आती है, एकाग्रता का नाम ही ध्यान है। संसार में अनेक प्रकार के पदार्थ हैं। शरीर भी एक पदार्थ है। अनादि काल से मोह, ममता, राग, द्वेष चल रहा है। उसी बजह से साधक तुरंत ही अपनी आत्मा में लीन नहीं हो पाता। किसी समय भीतर और फिर बाहर आता है साधु बनने के बाद भी वे चौबीस घंटे या हमेशा उत्कृष्ट ध्यान में लीन नहीं हो पाते, या निश्चय में लीन नहीं हो पाते। उन्हें कुछ समीचीन व्यवहारिक रूप क्रियाओं में भी आना पड़ता है। फिर पुनः सामायिक के माध्यम से भेद-विज्ञान के माध्यम से अपनी आत्मा में पहुँच जाते हैं और निश्चय का अनुभव करने लग जाते हैं। फिर कुछ काल के बाद पुनः समीचीन व्यवहार में आकर के समिति और षट् आवश्यक रूप क्रियाओं

में लीन हो जाते हैं। निश्चय अप्रवृत्ति रूप में है और व्यवहार प्रवृत्ति रूप में है। ऐसे प्रवृत्ति, अप्रवृत्ति, निश्चय, व्यवहार चलता रहता है। निश्चय में जाते हैं तो अप्रवृत्ति रूप ध्यान अवस्था आ जाती है। व्यवहार में आते हैं तो प्रवृत्ति होने लग जाती है। लेकिन साधुओं का जीवन ऐसा है कि क्रिया रूप प्रवृत्ति में आने के बाद भी वे धर्म को नहीं छोड़ते, यही उनका समीचीन व्यवहार है। जबकि सामान्य गृहस्थ हमेशा व्यवहार में ही है। निश्चय तो उसको मिलता ही नहीं है। निश्चय को पढ़ सकता है, निश्चय को लक्ष्य बना सकता है, उस पर चर्चा भी कर सकता है प्राप्त करने की भावना भी कर सकता है। लेकिन निश्चय में लीन नहीं हो सकता, कारण कि उसके पास परिग्रह है। कारण कि उसके पास संसार है। जब तक वह पूर्ण निर्ग्रन्थ नहीं बनता तब तक उसके पास निश्चय रूप लवलीनता की बात नहीं आती । हाँ इतना कह सकते हैं कि पंचपाप रूप असमीचीन व्यवहार से व्रत, देश संयम रूप समीचीन व्यवहार तक आते हैं गृहस्थ लोग। पाँच पाप, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये असमीचीन व्यवहार कहे जाते हैं। इसके बिना गृहस्थों का जीवन चलता नहीं, कुछ न कुछ थोड़े रूप में पाप होते ही रहते हैं। उसी पाप से बचने के लिए और पापों के क्षय के लिए तथा निश्चय को पाने की भावना रखते हुए गृहस्थ लोग निर्ग्रन्थ पद की साधना करने हेतु समीचीन व्यवहार की ओर आते हैं। वे देवपूजा, गुरु, उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, दान में लीन होते हैं जो उनके षट् आवश्यक हैं। जैसे कि मुनियों के षट् आवश्यक समता, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग कहे गए हैं। श्रावक के ये षट् कर्म या मुनियों के षट् आवश्यक हैं जो साबुन के समान आत्मा को साफ करते रहते हैं। कपड़े को आप साफ करते हैं कि नहीं, नहीं करेंगे तो गंदा हो जायेगा, फट जायेगा, या गल जायेगा ,बस वैसे ही आत्मा को भी साफ नहीं करें तो पापों के भार से दुर्गति की ओर चली जायेगी। इसलिए प्रतिदिन साबुन के समान इस आत्मा को निर्मल बनाने वाले षट् कर्मों और षडावश्यकों को करते हुए ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

मात्र शरीर की सजावट, पर को प्रभावित भले करे परंतु वह समय व जीवन व्यर्थ कर देती है।

पृथ्वीधारणा

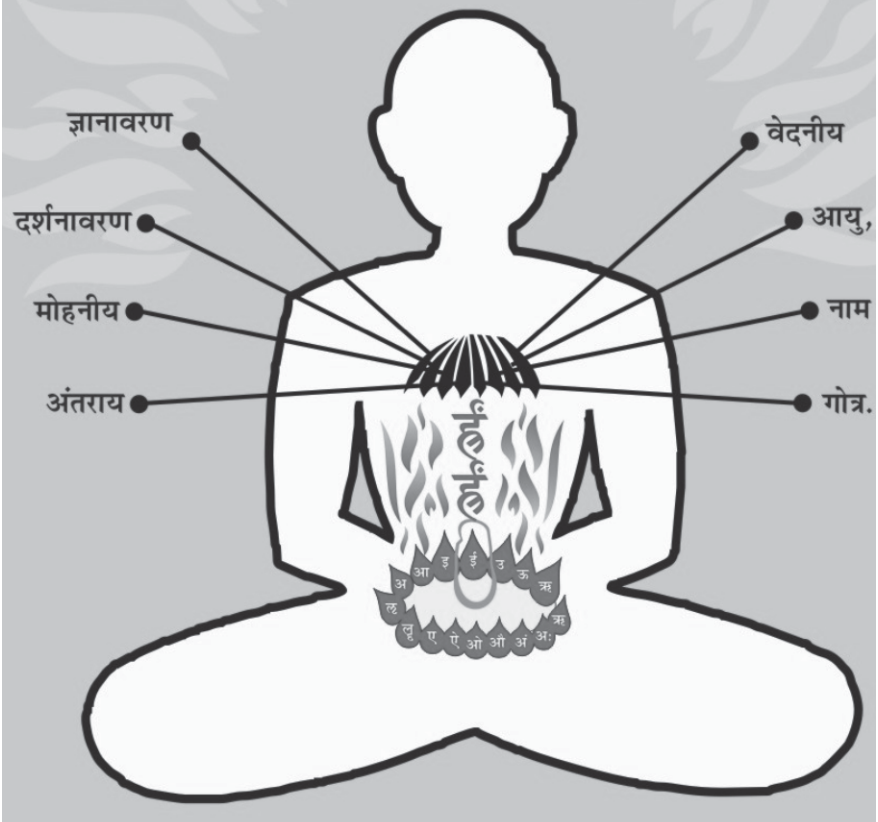
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अंतराय
वेदनीय
आयु,
नाम
गोत्र.
ॐ ह्रीं
अ आ इ ई उ ऊ ऋ
ऌ ॠ ए ऐ ओ औ अं अः

अग्निधारणा

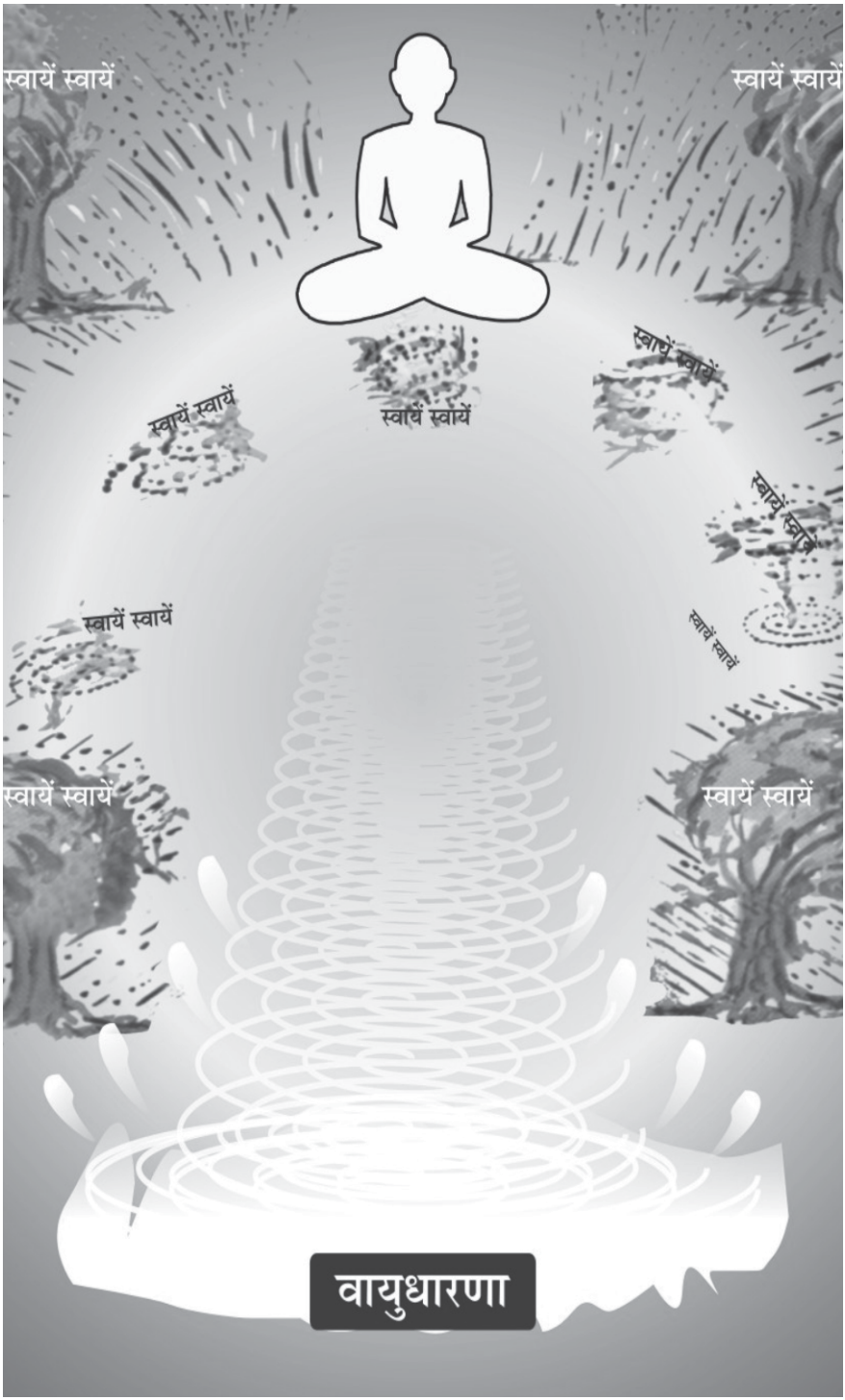
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
स्वायें स्वायें
वायुधारणा

जलधारणा

मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सामर्थ्य से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।

तत्त्वधारणा

ध्यान में धर्म सहयोगी

तीर्थंकर भगवान की दिव्य ध्वनि से प्राप्त श्रुत परम्परा में गृहस्थों के समीचीन व्यवहार रूप षट् कर्मों के सम्बन्ध में आचार्य पद्मनन्दी, 'पद्मनन्दी पञ्चविंशतिका' शास्त्र में कहते हैं कि–

''देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थाणं षट्कर्माणि दिने दिने ।।''

देवपूजा अर्थात् वीतराग प्रभु की पूजा, जो सच्चा देव है, जिसने राग द्वेष, काम आदि को जीत लिया है, मोह, ममता से परे हो गया है, पूर्ण रूप से निर्ग्रन्थ हो गया है, अपनी आत्मा में लवलीन है संसार की चिंता नहीं है और दृष्टि भी नाशाग्रदृष्टि है। आशाओं पर दृष्टि नहीं है नाशा पर दृष्टि है ऐसे महान प्रभु की उपासना करना चाहिए। कहते हैं कि

''नाम लेता हूँ तुम्हारा, तुम याद आते हो।
मैं वह खोई हुई चीज हूँ, जिसका पता तुम हो।।''

वास्तव में भगवान की याद, भगवान की वह स्मृति अपने आपको अपने स्वरूप का याद दिलाती है। इसलिये कहते हैं कि जब ध्यान करते हैं तो प्राथमिक अवस्था में कोई न कोई आलम्बन अवश्य लेना चाहिए। वह आलम्बन इतना पवित्र–पावन–पुनीत होना चाहिए कि जिसके माध्यम से अपने विकारी भाव नष्ट हो जायें और विकारी को याद करेंगे तो विकारी भाव ही आयेंगे ये ध्यान रखना। जैसा सामने दृश्य होगा वैसा ही वातावरण बनता है रोते को देखो तो रोना आता है, हँसते को देखो तो हँसना आता है। वीतरागी को देखो तो वैराग्य आता है। अपने आप हमारे अन्दर निर्मल भाव प्रकट हो जाता है ऐसे परमात्मा को देखने से। इसलिए परम आत्मा–परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। वह परमात्मा अपने भावों को निर्मल–परिमल बनाने वाला है। पूर्ण जगत् को भी जानने वाला है। लेकिन वे किन्हीं पदार्थो के कर्त्ता–धर्ता नहीं हैं। अगर वे करने–धरने लग जायें तो वे अपने आत्म ध्यान से च्युत हो जायेंगे। और करें तो सभी को अच्छा ही करें तब तो परमात्मा हैं, जो कुछ भी करता है तो ईश्वर करता है ऐसा कुछ लोग बोलते हैं मैं उन से पूछता हूँ कि भैय्या! इस जगत् में कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई झोपड़ी में, कोई महल में, कोई लँगड़ा–लूला, अंधा काना इस प्रकार जो तरह–तरह के दुःख पा रहे हैं लेकिन उस परमात्मा ने सब को एक

समान क्यों नहीं बनाया? सभी को सुखी बना देता सबको महल में रख देता और सबको सुन्दर बना देता। अगर दुःखी बना रहा है तो परमात्मा कैसा है? क्योंकि परमात्मा तो दयालु होता है। इसका मतलब है कि जो आप भी कहेंगे कि नहीं-नहीं जो दुःखी है सो कर्मों से दुःखी है। फिर जो सुखी हैं सो उसको भी कह दो कि कर्मों से सुखी हैं। जब कर्म ही है तो परमात्मा कौन हैं? परमात्मा अपने आप का कर्त्ता होता है। परमात्मा सब कुछ जानता देखता है। लेकिन किसी का कर्त्ता नहीं है। इस जगत् में कर्त्ता तो ये जीव स्वयं है। कहा भी है कि-

''अपनी-अपनी दुकान है, अपना-अपना खाता।
जो जैसी करनी करता, वैसा ही फल पाता।।''

और कुछ नहीं है, इस जगत में। और भी कहते हैं कि-

''स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।''

''सामायिक पाठ'' में कहा है कि - **स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा** अर्थात जिस आत्मा ने जो पहले कर्म किये हैं, **फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्** उसका वह वैसा ही फल पाती है बुरे कर्म किये तो बुरा पाती है। पुण्य किया तो सुख पाती है, पाप किया तो दुःख पाती है। **परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं** दूसरे के किये व दिये कर्मों का फल हमें मिलने लग जाय तो **स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा** अपने किये गये कर्मों का फल निरर्थक हो जायेगा। अपना कर्म निरर्थक हो जाय ऐसा होता नहीं है। कर्म निरर्थक नहीं होते हैं वे अपने फल को देते ही हैं या वे अपने प्रभाव को दिखाते ही हैं ये हमें ध्यान रखना पड़ेंगा। इसलिए हमें अपनी करनी अच्छी करनी चाहिए। तभी हम अच्छा फल पायेंगे। कर्मों को काटेंगे तो हम मुक्ति फल पायेंगे। पुण्य सँजोओगे तो सुख पावोगे, पाप सँजोओगे तो दुःख पावोगे यह तो आगम का कथन है ही इसलिए किसी ने किया हो पाप और कोई देदे सुख और पुण्य भर दे उसमें ऐसा होता नहीं। किसी ने किया हो पुण्य और उस पुण्य में बाधक बन जाय ऐसा होता नहीं है। माँगने से नहीं मिलता है ये तो करनी का फल स्वयमेव मिलता है। इसलिए ध्यान रखना कि हमें ध्यान को इतना पावन पुनीत बनाना है कि वह ध्यान मंगलमय हो और ऐसे परमात्मा का ध्यान हो जिससे कि हम स्वयं परमात्मा बन जायें और जब अपने आप में लीन हो जायेंगे तो फिर किसी परमात्मा का ध्यान नहीं करना पड़ेगा। जब तक हम अपवित्र हैं, जब तक हम संसार में हैं, जब तक हम परमात्मा नहीं बने हैं तब तक हमें ध्यान में

परमात्मा का आलम्बन लेना पड़ेगा। उसके बिना हम पावन-पुनीत नहीं बन सकते हैं। अगर आप अपनी आत्मा को स्वच्छ सुन्दर बनाना चाहते हो तो आपको क्या-क्या करना पड़ेगा? तो आपको सर्वप्रथम धर्म-ध्यान का आलम्बन अवश्य लेना पड़ेगा। आप गृहस्थ हैं इसलिए आपको षट् कर्मों को करना अनिवार्य है जैसे कि मुनि लोग भी अपने षट् आवश्यकों का पालन करते हैं और अपनी आत्मा को पवित्र पुनीत बनाते रहते हैं। कभी अनजाने में भी दोष लग गये हों तो भी दूर होते रहें, क्षय होते रहें ऐसा वे पुरुषार्थ प्रयत्न करते रहते हैं और आप लोग भी ऐसा ही पुरुषार्थ किया करें। आपका भी कर्त्तव्य है कि अपने षट् कर्मों में लीन रहा करें। आप गंदे पानी से कपड़ा धोयेंगे तो कपड़ा और गंदा हो जायेगा। गंदे दर्पण में आप मुख देखोगे तो आपकी वह दाग व कालिमा नहीं दिखने वाली है। आपका मुख साफ नहीं हो सकता क्योंकि आपको उस गंदेपन में वह दिख नहीं सकता अपना दाग। ऐसे निर्मल परमात्मा रूपी दर्पण में आप अपना मुख देखेंगे जिनके पास दोष नहीं है, सब प्रकार के दोषों से परे हो गये हैं, राग, द्वेष, ममता से परे हो गये हैं उन परमात्मा रूप उस दर्पण में अपना मुख या अपना वास्तविक जीवन अवश्य दिखेगा और अपने आपको निर्मल बनाने का पुरुषार्थ कर सकोगे। और गंदे दर्पण में दाग ही नहीं दिखेगा। तो फिर अपने आपको साफ कैसे करोगे। अपने आपको धर्म से कैसे जोड़ोगे आप समझोगे यही सब कुछ है तो यह काम भोग, राग, द्वेष इसी को करते चले जाओगे और समझोगे कि यही धर्म है। तो कभी धर्म के मर्म को नहीं जान पायेंगे। इस प्रकार हम लोग जानें, समझें अपने जीवन को महान बनायें साथ-साथ में हम लोग अपनी आत्मा को अगर निर्मल बनाना चाहते हैं तो अपने आपको उस परमात्मा रूप महान प्रभु के चरणों में समर्पित करें और उनको अपने ध्यान का आलम्बन अवश्य बनावें। देवपूजा करें, गुरु की उपासना करें, जो निर्ग्रन्थ गुरु हैं, महान आत्मा हैं **''वन्दे तद् गुण लब्धये''** गुणों की प्राप्ति के लिये उन्हें नमस्कार किया जाता है। और इसी के साथ स्वाध्याय करें शास्त्रों का अध्ययन करें। वे शास्त्र भी महान आत्माओं के द्वारा राग, द्वेष से परे आत्माओं के द्वारा विरचित हों, जिससे कि अपने आपको मोक्ष का मार्ग रूप सच्चा पथ मिल सके और जिनका चिन्तवन कर हम ध्यान में लवलीन हो सकें।

ध्यान में क्या छोड़ना ?

समीचीन ध्यान को करने के लिए हम अपनी आत्मा को संयम से जोड़ें । पाँचों इन्द्रियों पर कन्ट्रोल रखें। कहीं वे इन्द्रियाँ पंच पापों में न चली जायें। कहीं वे इन्द्रियाँ राग, द्वेष में न लग जायें, जीवों की हिंसाओं में न रत हो जायें अतः इन्द्रिय संयम, प्राणी संयम का पालन करना तथा अपने जीवन में अहिंसा का अन्य रूप से भी पालन करना जैसे – रात्रि भोजन, जमीकंद आदि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करना, निर्मल जल जो गालन किया गया है ऐसा शुद्ध पेय जल अर्थात् जिससे अहिंसा का पालन हो उस छने जल का उसका उपयोग करें। साथ–साथ में हम अपने जीवन में तप भी करें जैसे उपवास करें, एकाशन करें और रस परित्याग कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें। जो पर को अपना मान रखा है कि यह अपना है यह मेरा–तेरा है ऐसा कहने से ध्यान नहीं होगा जब शरीर भी अपना नहीं है तो इन्द्रिय विषयों में राग करना अज्ञानता ही है। लोग कहते हैं कि –

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥

फिर क्यों करते हैं मोह, जहाँ देह ही अपनी नहीं है तो दूर दिखने वाले पदार्थ अपने कैसे हो सकते हैं? तो ये सामने प्रकट रूप से दूर ही दिख रहे हैं। तो ये जब हमसे दूर हैं फिर भी पर पदार्थों को जो अपना मानना है कि ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ उसके लिए आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी समयसार के कर्त्ता–कर्म अधिकार में कहते हैं कि–

कम्मे णोकम्महि य अहमिदि अहकं च कम्मणोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धि अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥

'कम्मे णोकम्महि य' अर्थात् कर्म और नोकर्म; अष्ट कर्म हैं जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय भेद रूप, प्रभेद करेंगे तो 148 हो जाते हैं। 'अहमिदि अहकं च कम्मणोकम्मं' ये कर्म मेरे हैं, मैं इनका हूँ या नोकर्म जो दिख रहे हैं यह शरीर और भी शरीर से सम्बन्धित पदार्थ ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ 'जा ऐसा खलु बुद्धि' ऐसी जो बुद्धि है, इस अपनेपन की बुद्धि से 'अप्पडिबुद्धो हवदि ताव' वह अप्रतिबुद्ध अर्थात् अज्ञानी है। अज्ञानी बने रहेंगे तो कभी आत्मा का ध्यान नहीं हो पायेगा। आत्मा के ध्यान में उतरने के पहले सब पदार्थों का त्याग कर देना पड़ता है। यदि ऐसे त्याग न हो सके तो दान कर देना चाहिए। दान देना भी एक

धर्म ध्यान है। आप सत्पात्र को दान देते हैं। वस्तु को अर्पित करते हैं। जो आपने न्याय नीति से कमाया है वह धन धर्म वृद्धि का कारण होता है। योग्य पात्र को दिया गया वह दान एक राई के बराबर छोटे से वट-बीज से वृक्ष की तरह बड़े वैभव के साथ फलता है, बहुत बड़ी छाया, बहुत सारे फल जैसा विशाल रूप लेता है। ऐसे ही दान देना भी एक शुभकर्म षट् कर्मों में आया है। तो देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ऐसे षट् कर्मों के अन्त में जो चार प्रकार का दान है वह भी प्रतिदिन करना चाहिए क्योंकि कहा है 'षट्कर्माणि दिने दिने' कभी-कभी नहीं, प्रतिदिन करना है। जैसे कि मुनि लोग भी प्रतिदिन अपने षट्कर्म (आवश्यक) करते रहते हैं इसी प्रकार से श्रावक को अपनी आत्मा पावन, पुनीत बनाने के लिए ये षट्-कर्म आवश्यक रूप समीचीन व्यवहार हैं और समीचीन व्यवहार के बाद निश्चय का नम्बर आता है और निश्चय पर पहुँचने के लिए सम्पूर्ण परिग्रह को त्याग करना अनिवार्य है। तभी निश्चय पर पहुँच सकते हैं। क्योंकि कुन्दकुन्द आचार्य कहते हैं कि-

परमाणुमित्तियं पि हु य रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि॥

ध्यान का सबसे उत्कृष्ट ग्रन्थ समयसार माना जाता है, वहाँ पर वे कुन्दकुन्द आचार्य आज से 2000 वर्ष पहले कह चुके हैं जिनकी यह वाणी परम पवित्र, पुनीत है। सीमन्धर भगवान के समवसरण में सुनकर के आये थे, वे क्या कह रहे हैं कि परमाणु मात्र भी राग जिसके अन्दर विद्यमान है अर्थात् ये पर पदार्थ मेरे हैं, चाहे शरीर हो, चाहे कर्म हो, कुछ भी हो। तो 'परमाणुमित्तियं पि हु य रागादीणं तु विज्जदे जस्स' जिसके अन्दर परमाणु मात्र भी राग, द्वेष, मोहादि विद्यमान हैं तो 'णवि सो जाणदि अप्पा' वह अपने आत्मा को नहीं जान सकता चाहे 'णयं तु सव्वागमधरोवि' पूरे आगम को भी क्यों न जानता हो। इतना बड़ा मोह, इतने सारे वस्त्र, अलंकार इतना बड़ा घर, परिवार सब कुछ है तो भी वे क्या अपनी आत्मा को जान रहे हैं? आत्मा को लक्षण रूप से जानना अलग है और अनुभव करना अलग है और वह आत्मा का अनुभव उस मीठे की तरह है जिस आत्म ध्यान रूप मीठे का स्वाद नमक की डली रूप विषयों के उगले बिना नहीं आता केवल आत्मा-आत्मा रूप तोता रटन्त वाली बातों से कुछ होने वाला नहीं है। इसलिए हमें पुरुषार्थ करना पड़ेगा। राग, द्वेष, मोह से परे होना पड़ेगा। तभी हम अपनी आत्मा को जानेंगे। जैसे हमारे प्रभु ने जाना है। हम केवल प्रभु को तो जान सकते हैं न। अभी प्रभु को जानेंगे तो जरुर एक दिन नियम से वे प्रभु अपना जैसा बना लेंगे अर्थात् उनके मार्ग पर चलते-चलते उनके सदृश बन

जायेंगे। किसी ने ठीक ही कहा है कि-

पड़े रहो दरबार में, धका धनी का खाव ।
इक दिन ऐसा आयेगा, स्वयं धनी बन जाव ।।

अरे! आओ तो कम-से-कम दरबार में। प्रभु के दरबार में आओ, गुरु के पास आओ तो गुरु एक दिन तुम्हें ठोकते-ठोकते अच्छा सोलावानी का स्वर्ण बना देंगे। ठोके या तपाये बिना बनता है क्या स्वर्ण? सब निकाल देंगे तुम्हारे अन्दर से जो पाप-दोष रूप किट्ट-कालिमा है उसे। आत्मा में अनादिकाल से जो संसार का राग, द्वेष और मोह रूप कर्मों का कचड़ा भरा है उसे सब साफ कर देंगे। जो ऐसे महान हैं वे देव, शास्त्र, गुरु उनके चरणों में हम आयें और समर्पित हो जायें कि-मैं आपका हूँ, आप जैसा भी रूप-स्वरूप देना चाहो तो मैं तैयार हूँ। जैसे मिट्टी समर्पित होती है कुम्भकार के हाथ में। वह कहती है कि मैं कुछ नहीं हूँ, आना-कानी नहीं करूँगी आप जो बना दो, जो कुछ भी रूप देना हो सो दे दो। नहीं! नहीं! ऐसे नहीं करो वैसा नहीं करो ठोको-ठाको नहीं। तो जाओ, भाग जाओ हम नहीं बना पायेंगे तुमको। जब समर्पित हो जाते हैं तो उसको बोलते हैं 'उपसम्पत्'। मूलाचार में कहते हैं उपसम्पत् मैं जैसा हूँ सो हूँ, आपका हूँ आप जो भी करना चाहे तो कर लीजिए। मैं कुछ नहीं कहूँगा। तब बना लेते हैं अपना जैसा उसको। अच्छे रूप-स्वरूप देते हैं। ठोके-ठाके बिना तो कुछ होता नहीं। जैसे कुम्भकार पैरों से रोंदता है। सारे कंकड़-पत्थर को निकालता है, ठोकता है, पीटता है, जलाता है तब कहीं घड़े का रूप दे पाता है मिट्टी को। तो हमें भी समर्पित होना पड़ेगा। हम लोग तो अपनी मन की बात कहते हैं कि करना तो इतना ही करो नहीं तो मत करो। हम तो इतने ही सीधे हो सकते हैं और ज्यादा नहीं। तो रहे आओ भैय्या सीधे-साधे हमें क्या करना। बहुत ही सीधे-साधे हैं हसिया जैसे; हम क्या करें। और सीधे भी बोल रहे हैं आप कहने को सीधे हैं। तो सीधे होना समर्पण के बिना नहीं हो सकता। तो यह लोक जिसमें हम रह रहे हैं। यह लोक जो है कितना बड़ा है? इसमें सभी प्रकार के जीव हैं। षट् द्रव्य हैं हम किस रूप हैं और कौन-किस रूप है इसे भी थोड़ा जानिये-समझिये। तब कहीं हम जान पायेंगे कि ध्यान हमें क्यों करना है? कुछ पाना है तो कुछ करना है, कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पड़ेगा अर्थात् बाहरी संयोगज को छोड़े बिना आत्मा के ध्यान से नहीं जुड़ पाओगे और जो भी छोड़ोगे वह पर है अपना कभी छोड़ा नहीं जाता और पर को छोड़े बिना उत्तम ध्यान और मोक्ष संभव नहीं होता।

संसार से निज ध्यान की ओर

व्यवहार से समूचे विश्व या संसार को जानने के लिए और निश्चय से निज आत्मा को जानने के लिए हम ध्यान करें। हमें ध्यान कैसे, कहाँ और किस लिए ध्यान करना है? हम इन सब बातों को जानने के लिए आचार्य भगवन् ध्यान की साधना सिखाते हैं। वैसे तो अनादि काल से हम ध्यान कर ही रहे हैं। इस संसार में ऐसा कोई भी जीव नहीं जो ध्यान न करता हो और ऐसा कोई क्षण नहीं है जिसमें ध्यान न चलता हो। चौबीस घंटे ध्यान चल रहा है और हरेक आत्मा के द्वारा चल रहा है एकेन्द्रिय हो या संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हो। बात तो ठीक है क्योंकि ध्यान तो सोलह प्रकार के हैं; तो किसी का आर्त्त या रौद्र ध्यान चल रहा है, और किसी का धर्मध्यान या शुक्लध्यान चल रहा है। सम्यग्दृष्टि बने बिना धर्मध्यान की शुरूआत नहीं होती। निर्ग्रन्थ बने बिना शुक्ल ध्यान शुरू नहीं होता। बाकी आर्त्त, रौद्र ध्यान तो अनादिकाल से चल ही रहे हैं। मैं उस प्रशस्त ध्यान को बताना चाहता हूँ जिसको धर्मध्यान और शुक्लध्यान बोलते हैं। कम-से-कम सर्वप्रथम हम धर्मध्यान की चर्चा करते हैं- क्योंकि आप उसके पात्र हैं, आप भव्य हैं, आप सम्यग्दृष्टि हैं इसलिए आप धर्मध्यान कर सकते हैं। चलते-फिरते भी कर सकते हैं और आसन में भी कर सकते हैं। मैं सब कुछ बताऊँगा। सबसे पहले ध्यान करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकता होती है, उसमें सब कुछ आयेगा। द्रव्य में क्या आयेगा? शरीर आयेगा, शरीर मात्र नहीं आयेगा आत्मा भी आयेगी। जीव या आत्मा; ध्यान का आधार दव्य है। अपने परमात्मा का जब हम ध्यान करते हैं तो वह अपने ध्यान के लिए ध्येय है। तो इस तरह आधार और ध्येय द्रव्य से ध्यान होता है जिसमें जीव एक द्रव्य हुआ, परमात्मा भी द्रव्य हुआ। तीन लोक और तीन लोक में रहने वाले षट् द्रव्यों में जीव भी एक द्रव्य है पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों के बारे में चिंतन करना भी हमारा ध्यान का विषय है। द्रव्य के साथ शरीर और शरीर में क्या होना चाहिए? स्थिरता, आसन, शरीर निरोगी होना, निरोगता के लिए शुद्ध आहार होना चाहिए, आहार शुद्ध कहाँ होता है? चौका में। शुद्धता के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होना चाहिए। इस तरह प्रथम ध्यान के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और द्रव्य में भी शुद्ध आहार में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कहेंगे। इसके अलावा अपने लिए इस द्रव्य में और भी चीजें चाहिए। द्रव्य में मात्र यह शरीर

ही होता है ऐसा नहीं, शरीर के साथ और भी कई सामग्रियाँ आपेक्षित होती हैं। आसन है, आहार है और संहनन भी चाहिए। अगर उत्कृष्ट ध्यान करना हो या जो मोक्ष के लिए जो ध्यान होता है, उसके लिए उत्तम संहनन चाहिए। उत्तम संहनन में वज्रवृषभनाराच संहनन चाहिए क्योंकि इस संहनन से ही मोक्ष होता है। आज पञ्चम् काल में उस उत्तम संहनन का अभाव है। वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्र नाराच संहनन, नाराच संहनन ये तीन आज नहीं हैं। कीलक, अर्द्ध नाराच और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन ये तीन पाये जाते हैं। संहनन भी ध्यान में सहायक एक द्रव्य है। फिर द्रव्य में सामायिक की जो विधि है, कि हमें किस रूप में इस शरीर को बिठाना है ध्यान मुद्रा भी एक द्रव्य है। द्रव्य में सारी सामग्री आती है क्रम से एक एक का वर्णन करेंगे। फिर क्षेत्र; क्षेत्र कैसा होना चाहिए? एकान्त होना चाहिए। अभी संक्षेप में कह रहा हूँ। काल कौन सा होना चाहिए? सन्ध्या काल होना चाहिए। फिर भाव; भाव में अपना परिणाम विचार, भावना, कैसी होनी चाहिए इन सब का वर्णन करेंगे। उसमें वे परिणाम या भाव आयेंगे जिनमें सोलह प्रकार के ध्यान वर्णित होंगे। फिर हमें कौन-सा ग्रहण करना, कौन-सा त्याग करना है, परिणाम हमें कैसे सम्हालना है? इन सब बातों को हमें समझना है। फिर मुक्ति पाने के लिए भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की आवश्यकता है। वे कौन से हैं उन्हें भी समझेंगे। ऐसे भिन्न-भिन्न द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों को हमें समझना आवश्यक है। विषय बहुत गहन है और बहुत सूक्ष्म भी है जिसे समझने हेतु एकाग्रता की आवश्यकता है तो हम पहले समझ रहे थे कि हम हैं कहाँ? बोलिए तो कि कहाँ हैं हम? इसको हम नहीं जान पा रहे हैं अपना लौकिक परिचय तो बहुत जल्दी से दे देते हैं, लेकिन इस लोक का परिचय तो बताओ कि हम हैं कहाँ? लोक के अन्दर हैं कि लोक के बाहर? या कहीं ऊपर लटक रहे हैं, कि नीचे बैठे हैं, कहाँ है आप? अभी तक उस चिंतन पर नहीं पहुँचे हैं हम।

आज के वैज्ञानिक भी जैन दर्शन की ओर आ रहे हैं पहले कहते थे कि एक सूर्य, एक चाँद है अब कह रहे हैं कि दो सूर्य, दो चाँद हैं। हमारे जैन दर्शन में तो पहले कहा है कि असंख्यात सूर्य, चाँद हैं। लेकिन इस जम्बूद्वीप में मात्र दो सूर्य, दो चाँद हैं, आज जो दिख रहा है वह कल नहीं था। सूर्य के लिए दो दिन रात लगते हैं पूरे जम्बूद्वीप की परिक्रमा लगाने में। एक लाख योजन का यह जम्बूद्वीप है और हम कहाँ पर बैठे हैं? हम जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार क्या है? $526\frac{6}{19}$

योजन प्रमाण भरत क्षेत्र है। उसमें छः खण्ड हैं उनमें एक आर्यखण्ड है बाकी पाँच म्लेच्छ खण्ड है। आर्यखण्ड बहुत बड़ा है। बीच में पड़ता है। विजयार्ध पर्वत, जो बहुत ऊँचा 25 योजन उत्सेध वाला है। पाँच सौ धनुष की ऊँची काया वाला चक्रवर्ती उस पर्वत पर चढ़ नहीं पाया, अपनी सेना को नहीं ले सका। इतनी ऊँची काया वाला चक्रवर्ती नहीं जा पाया तो अपने सम्बन्ध में विचार कीजिए। छः महीने तक चक्रवर्ती को वहीं रुकना पड़ा। क्योंकि पर्वत में एक गुफा है उस गुफा का दरवाजा खोलते हैं तो उसमें से छः महीने तक आग सी निकलती है तो रुकना पड़ता है उसके बाद सेना लेकर उससे प्रवेश करके चक्रवर्ती म्लेच्छ खण्ड जाता है विजय प्राप्त करने के लिए। जिस चक्ररत्न के आधार से विजय प्राप्त करनी पड़ती है वह चक्ररत्न आगे चलता रहता है। वे लोग सहज रूप से पर्वत को नहीं पार कर पाये तो आज के लोग सहज रूप से पर्वत को कैसे पार करेंगे? आज जो दिख रहे हैं जो विदेश हैं वे विदेश कोई म्लेच्छ खण्ड नहीं हैं। यह छह महाद्वीप रूप पूरा का पूरा आर्यखण्ड ही है। पहले भरत क्षेत्र की एक ही अर्धचंद्राकार जैसी भूमि थी। बीच में कोई समुद्र नहीं था और पानी भी नहीं था। समुद्र का जल तो जम्बूद्वीप के चारों ओर चूड़ी के आकार में आगम में वर्णित है।

आपको अभी-अभी मालूम पड़ा हो कि लंका और भारत के बीच में एक सेतु बना हुआ है, ऊपर से फोटो लिये गये तो उसमें एक रेखा आयी है। जिसको रामसेतु कह करके पुकारा जा रहा है। वह सेतु-पुल कब, कैसे बना पहले ऊपर था फिर समुद्र के अन्दर कैसे चला गया? ये राम के समय बनाया गया था ऐसा कहते हैं। अभी तमिलनाडु में एक महाबल्लिपुरम् नाम का शहर है। उसके पास एक मैलापुरम् स्थान था वहाँ पर अपना जैन मंदिर भी था। उसकी प्रतिमा लाकर चित्तामूर मठ में रखी गयी है। यह तमिलनाडु में है । मैंने उसका दर्शन भी किया था वह प्रतिमा नेमिनाथ भगवान की है। हमने पूछा था कि यह प्रतिमा कहाँ से लायी गयी? बताया गया था कि मैलापुरम् से। मैलापुरम् कहाँ गया? समुद्र में डूब गया। जब मंदिर डूब रहा था और मंदिर के अन्दर समुद्र का पानी आ रहा था उसी समय प्रतिमा को निकला लिया और लाकर यहाँ रख दी। मैलापुरम् समुद्र में चला गया। ये सब हम आपको सुना रहे हैं यह वास्तविक घटना है ध्यान रखना। सुना है कि बाम्बे के पास भी समुद्र के अन्दर एक नगर खाजा गया है। विदेश की पनडुब्बियों द्वारा ढूंढ़ा गया है। बहुत विशाल नगर है

उसके अन्दर पत्थर की बड़ी-बड़ी रचनाएँ हैं और बड़े-बड़े महल हैं। उन्होंने कहा अगर और भी जानना हो तो भारत को खर्चा करना पड़ेगा। हो सकता है वह द्वारिकापुरी हो। गुजरात के पास द्वारिका थी। पहले पत्थर के महल थे वे कहाँ से मिट जायेंगे। भारत ने उनसे कहा भैया! ऊपर जो हैं इसी को नहीं सम्हाल पा रहे हैं तो नीचे क्या करेंगे? ऐसा कह दिया नहीं तो उजागर हो जाता और आप सब लोग देखने भी चले जाते। हम लोग सब जगह जाते हैं, सभी सम्प्रदाय के लोग मिलते हैं तो सब बातें सुनने को, जानने को मिल जाती हैं। एक चीज और है उड़नतस्तरी जो कई बार दिखती है आकाश में। खोज की गयी कि ये क्या चीज है? लेकिन आज तक नहीं जान पाये। वह एक विमान जैसा है। कहते हैं उसके पीछे वैज्ञानिक अपने विमान दौड़ाते है तो अपना विमान ही नष्ट हो जाता है लेकिन उसको नहीं जान पाये आज तक। वैज्ञानिक लोगों ने इतना ही जान लिया कि ये कोई विकसित स्थान पर रहने वाले लोग हैं और ग्रह, उपग्रह पर रहने वाले लोग हैं। हम से बहुत विकसित हैं, अग्रणीय हैं, उन तक पहुँचने के लिए हमें बहुत वर्ष लगेंगे। वे क्या हो सकते हैं आपको क्या मालूम? वे और कोई नहीं; विद्याधर होंगे। क्योंकि पञ्चमकाल में ऊपर के देवों के विमान तो नीचे आते नहीं है। तो विधाधर होंगे। विद्याधर विजयार्ध श्रेणियों में रहते हैं जिस विजयार्ध पर्वत को चक्रवर्ती नहीं लाँघ पाया जो 96,000 रूपों को धारण करता था तो आज कल के लोग कहाँ से लाँघ पायेंगे। विजयार्थ पर्वत से आज भी केवलज्ञान हो रहा है, मोक्ष हो रहा है। वह भी भरत क्षेत्र में ही है। आप सोचेंगे कैसे? भरत क्षेत्र में जो आर्यखण्ड के लोग रहते हैं; उनको ही मोक्ष होता ऐसा नहीं। विजयार्ध पर्वत में जो विद्याधर लोग रहते थे वे पहले यहाँ आते थे। तीर्थंकर बस यहाँ पर ही रहते थे। वहाँ आज भी विद्याधर हैं उन विद्याधरों के पास विद्यायें होती हैं। सिद्धि करके उससे वे विदेहक्षेत्र चले जाते हैं और मुनि बनके ऋद्धियाँ धारण करके विजयार्ध पर्वत भी आ जाते हैं और वहाँ से आज भी मोक्ष होता है। क्योंकि म्लेच्छ खण्ड में और विजयार्ध पर्वत में परिवर्तन नहीं है, परिवर्तन होता है बस आर्यखण्ड में। इसलिए यह विश्व जो है पूरा आर्यखण्ड है। इसके बीच में ऐसा पर्वत ही नहीं है। इसलिए इसको आर्यखण्ड बोलना चाहिए। आप बोलेंगे कि आर्यखण्ड में तो तीर्थंकरों का विहार होता होगा; हाँ जरूर होता होगा इसलिए तो विदेश में अपने मन्दिर पाये जाते हैं नन्दीश्वर द्वीप जैसे रचनाएँ हैं, इन्डोनेशिया, थाईलैंड आदि जगह में देखिये आप, कैसे-कैसे मन्दिर हैं।

आज लन्दन के म्यूजियम में भी अपनी बड़ी-बड़ी प्राचीन दिगम्बर जैन प्राचीन प्रतिमाएँ दो-तीन पंक्तियों में रखी हुई हैं। जिसके फोटो ग्राफ्स हमने देखे थे। इतनी सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएँ कहाँ से आयी होंगी? आज भी वहाँ पर कई मन्दिरों, कई अविशेष हैं। अपने पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं उनको नागबुद्ध बोलकर पूज रहे हैं वे लोग । क्योंकि हमारे लोग नहीं है वहाँ। पहले तीर्थंकरों का विहार वहाँ पर होता था। इन सभी बातों से हमारा श्रद्धान दृढ़ होता है हमारे आचार्य श्री के संघ में तो सब व्रती, मुनि लोग बहुत बड़ी-बड़ी डिग्री प्राप्त करके आये हैं। एजूकेटेड लोग हैं उन्होंने जाना है कि जैन दर्शन साईंटीफिक है तभी तो इस मार्ग में आये हैं। ऐसे ही नहीं आ गये कि घर में कुछ नहीं है तो दीक्षा ले लो। बड़ी बड़ी सर्विस करने वाले, लाखों की कमाई करने वाले लोग भी उसको छोड़कर के दीक्षित हुये हैं। सब लोग अच्छे परिवार के हैं, धनी परिवार के हैं। कॉलेज पढ़ करके आये हैं और गहराई से जैन दर्शन के मर्म को जाना है तभी तो मुनि बने हैं। अभी आप जिसे विश्व बोल रहे हैं वह विश्व नहीं है। आप कूप मंडूक बनकर बोल रहे हो। वह विश्व नहीं है। विश्व तो बहुत बड़ा है। आज का विश्व तो एक छोटा कुँआ सदृश है। इसमें क्या है? अभी आप सोचेंगे कि आर्यखण्ड के बीच में पानी कैसे आ गया ? तीर्थंकर तो समुद्र पार कर जाते नहीं होंगे। बीच में पानी नहीं था जो पहले हमने बात कही थी उसको याद करो। कितनी मिट्टी घुलकर समुद्र में जा रही है प्रतिवर्ष, और कितने पर्वत टूट कर पत्थर-रेत बनकर समुद्र में गये हैं। थाली में जिसमें पानी भरा हो मिट्टी डालेंगे तो क्या होगा? पानी ऊपर आयेगा न । ऐसे ही वह समुद्र का पानी जो गोल चूड़ी के आकर में लवण समुद्र के रूप में है उसका पानी ऊपर आ गया जिसने आर्यखण्ड को भेद कर दिया और यह England यह भारत अलग-अलग दिखने लग गये आपको। यही कारण है यह आर्यखण्ड का विशाल रूप अलग-अलग अनेक देशों के रूप में दिख रहा है। नहीं तो पहले उस समय तो एक ही था। ऐसे आर्यखण्ड के भारत देश में हम एक जगह निवास कर रहे हैं। ऐसी दुनियाँ और उसके परिवर्तन को, उसमें होने वाले राग-द्वेषमय आर्त्त, रौद्र ध्यान को हमने अगणित बार किया और उस दुनिया से वह नहीं छूटा, तो फिर आत्म शांति प्रदाता सम्यक् ध्यान कैसे होता अर्थात् कदापि नहीं होता।

समर्पित ऐसे होना धर्म में मन घुल मिल
जाये और फिर भेद-भाव कुछ न भाये।

दुनिया और शांतिप्रदायक ध्यान

इस जगत् में सबसे उत्कृष्ट अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने वाला सुख और शान्ति का प्याला पिलाने वाला वह समीचीन ध्यान है। हमें अपना व्यवहारिक परिचय भी जानना जरूरी है। फिर व्यवहार को समीचीन व्यवहार रूप करते हुए हम सम्यक् ध्यान के द्वारा परमार्थ पर पहुँचने की साधना, भावना करें और वैसा मार्ग अपनायें जैसा कि अपने पूर्व पुनि, ऋषियों ने अपनाया था। निश्चय को पाकर के वे अपनी आत्मा को निर्मल बना करके परमात्मा के रूप में अनन्त सुख में लीन हो गये। हम भी वह सुख पा सकते हैं लेकिन उन जैसी प्रक्रिया, उन जैसा पुरुषार्थ, उन जैसी साधना करने की जरूरत है।

मध्यलोक में जो एक लाख योजन वाला जम्बूद्वीप है उसमें भरत क्षेत्र का विस्तार 526 $\frac{6}{19}$ योजन है, जहाँ पर हम छः खण्डों के विभाग में आर्यखण्ड में विराजित हैं। यहाँ पर वर्तमान में पञ्चम काल चल रहा है। तीर्थकरों का अभाव है, लेकिन आज भी तीन परमेष्ठियों का सद्भाव है आचार्य, उपाध्याय, साधु हमारे सामने विराजमान हैं। भरत क्षेत्र में अभी हमारे सामने तीर्थंकर नहीं होते हुये भी हम उनको परोक्ष में नमस्कार करते हैं विदेह क्षेत्र में तो प्रत्यक्ष विद्यमान हैं उनकी दिव्य ध्वनि हमारे जीवन को सार्थक बनाती है। वह दिव्यध्वनि द्वादशांग के रूप में रचित होकर के आज की परम्परानुसार हमें हजारों शास्त्रों में आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित होकर के मिली है। कम-से-कम आज जैन धर्म के शास्त्रों को अगर गिना जाये तो लगभग 10,000 शास्त्र हो सकते हैं। लेकिन आज हम विचार करें कि जैन धर्म जानने के लिये आज तक हमने 5, 10 शास्त्रों का भी अध्ययन किया क्या?। 10,000 में से 5, 10 भी शास्त्र नहीं पढ़ पाए तो बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। इसलिए हमें कम-से-कम 5, 10 शास्त्र तो पढ़ना ही चाहिए जैसे 1. छहढाला 2.तत्त्वार्थसूत्र 3.रत्नकरण्डक श्रावकाचार 4.उत्तर पुराण 5.स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा और 6.ज्ञानार्णव जो ध्यान का उत्कृष्ट शास्त्र है। अगर ये 6 शास्त्र हमने पढ़ लिये तो हमने जैन धर्म के मर्म को संक्षिप्त में समझ लिया है समझो। कौन-कौन भव्य पढ़ना चाहते हैं? (बहुत लोगों ने हाथ ऊपर उठा दिये और अपनी आस्था का परिचय दिया) क्योंकि ध्यान करने के लिये हमें ज्ञान भी चाहिए। जिसमें अपने मन को रमा सकें।

हम इस आर्यखण्ड स्थित भारत देश में हैं। हिन्दू धर्म के एक महान शास्त्र ''महाभारत'' में कहा है कि- ''हम उन वृषभनाथ को नमस्कार करते हैं जो नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र थे। जिनके ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम से इस देश का भारत नाम पड़ा।'' भरत चक्रवर्ती छः खण्ड का अधिपति हुआ था। प्रथम तीर्थंकर का पुत्र था। उनके नाम से इस देश का नाम भरत पड़ा ऐसा कहा है। तो जहाँ से हमारे तीर्थंकरों ने मुक्ति पायी, जन्म लिया अयोध्या नगरी उनका जन्म स्थान रही। अनादि काल से सभी तीर्थंकरों का जन्म स्थान अयोध्या नगरी रहा और अनादि काल से सम्मेदशिखर जी मुक्ति का स्थान रहा। लेकिन वर्तमान में हुण्डावसर्पिणी काल की वजह से किन्हीं तीर्थंकरों का जन्म अयोध्या को छोड़कर अन्य जगह में भी हुआ और अन्य जगह से मोक्ष भी हुआ। चार तीर्थंकर अन्यत्र स्थान से जैसे श्री आदिनाथ जी कैलाश पर्वत से, श्री वासुपूज्य जी चम्पापुरी से, श्री नेमिनाथ जी गिरनारजी पर्वत और श्री महावीर भगवान पावापुरी से मोक्ष गये हैं। शेष 20 तीर्थंकरों ने सम्मेदशिखरजी से मोक्ष पाया है। सामान्य केवलियों के तो मोक्ष स्थान या सिद्ध भूमियाँ पूरे भारत में हैं और ढाईद्वीप में सभी जगह प्रायः सिद्ध क्षेत्र माना जाता है उनके लिये कोई स्थान का बन्धन नहीं है। इस प्रकार ऐसे क्षेत्र पर जहाँ पर ऋषि, मुनि आज भी विद्यामान हैं, वे धर्म्य ध्यान करते हैं और अपनी ध्यान की रश्मियों को इस भूमि पर बिखराते रहते हैं और जिन्होंने सिद्ध पद पाया उन जीवों ने भी इस भूमि को पावन पुनीत किया है और अपनी आध्यात्मिक वर्गणाओं को इस भूमि पर बिखेरा है। जहाँ पर हम लोग जा करके स्वयमेव अपने आप ध्यान में लवलीन होने लग जाते हैं, इस भूमि का बड़ा प्रभाव है। कई विदेशी लोग तो यहाँ आकर के ध्यान के केन्द्रों में ध्यान करना सीखने लगे हैं और इस धरा के पावन पुनीत पवित्रता के गुण गाते हैं। तो ऐसा हमारा यह भारत देश है।

ऋषि, मुनियों का विहार पूरे भारत में होता है, लेकिन आप लोगों का गमन पूरे भारत में तो नहीं; हाँ; करते भी होंगे, लेकिन आपका मोह आपका सम्बन्ध किसी एक स्थान से होता है। ऋषि, मुनियों के पैर चलते हैं लेकिन मन स्थिर होता है और गृहि के पैर स्थिर होते हैं लेकिन मन चंचल होता है। देखिए किनता बड़ा फर्क है। ऋषि, मुनि कहीं भी चले जाएँ उन्हें अपनी आत्मा में रमने के लिए बहुत प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती, ज्यादा उद्यम के बिना ही सहजता से अपनी आत्मा में रमना हो जाता है। क्योंकि उनका जग से अटेचमेन्ट (सम्बन्ध) नहीं है किसी भी

पदार्थ से, जैसा कि आपका सम्बन्ध है। इसलिए आप जैसे राग, द्वेष भी नहीं होते। करण कि वे अपनी आत्मा से सम्बन्ध रखते हैं धर्म से, धर्म उपकरण के साथ रहते हैं। वे उपकरण भी "**उपकारम् करोतीति उपकरणम्**" पिच्छि, कमण्डल और शास्त्र हैं बस, और क्या चाहिए उनको? जहाँ कहीं जिनालय मिल गया, धर्मशाला मिल गयी, गुफा मिल गयी, पर्वत या जंगल मिल गया बस वहीं पर ध्यान करते रम जाते हैं। एक स्थान से मोह नहीं रखते हैं वे। "**बहता पानी रमता जोगी**" वाली बात रहती है। ऐसे मुनि लोग रहते हैं और वे मोक्षमार्गी को ही अपने साथ में रखते हैं जो उन जैसी साधना करता है, गम्भीरता से वैराग्य के साथ अपनी आत्म साधना में लवलीन होना चाहता है। ऐसे वैरागी को ही वे अपने साथ लेते हैं या ज्ञान, दर्शन देते हैं और मोक्षमार्ग में शिष्यों का अनुग्रह करते हुए स्व-पर कल्याण में निरत होते हैं। हाँ, वास्तव में ठीक भी है कि जहाँ पर मन की एकता हो, जहाँ एक प्रकार की साधना हो तो जोड़ी बनाने में कोई बात नहीं है। आप लोग कहते ही रहते हैं कि-

"चित्त मिले तो चेला कीजे, मित्र मिले तो मेला।
साधु मिले तो संगत कीजे, सबसे भलो अकेला॥"

इस प्रकार से ये बात आप लोग जानते हैं कि चित्त की एकता ही धर्म की उन्नति में सहायक है। हम ये भी समझें कि हम कौन हैं? हम एक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी मनुष्य हैं उसमें भी जैन कुल के संस्कारों से संस्कारित हैं। जैन कोई जाति नहीं है, जैन एक धर्म है। इसका कोई भी पालन कर सकता है किसी भी व्यक्ति द्वारा इस धर्म की शरण लेने के लिए अपनी भावना प्रकट की जा सकती है गुरुओं ने ऐसा उपदेश दिया है। जैन धर्म किसी एक जाति से नहीं बंधा हुआ है, ये तो जीव मात्र के लिए है, कोई भी इसका पालन कर सकता है और करते ही हैं, दीक्षित भी हुये थे। भगवान के समवसरण में शरण पाने वाले मानव की तो बात ही अलग है जहाँ तिर्यञ्च भी आकर के इस धर्म की शरण को पाते हैं और अणुव्रत तक पा लेते हैं ऐसे इस धर्म की महिमा बहुत महान है। हम सब मनुष्य हैं, मनुष्य होकर के भी जैन धर्म के संस्कारों से संस्कारित होने के करण हम भव्य भी हैं। हमें अब एक ही अपने अन्दर भावना रखना है कि मेरा जो लक्ष्य मोक्ष है वह शीघ्र मिले। हम मोक्ष लक्ष्य रूपी मञ्जिल को प्राप्त कर अनन्तसुखी हो जावें वैषयिक-सामग्रियाँ तो अज्ञानी चाहते हैं। लेकिन हम चाहते हैं हमें इन पापों से मुक्ति मिली है और सब संसार से भी मुक्ति मिले,

कषाय, राग, द्वेष से परे होकर के भगवान जैसे बनकर के हम लोक की अन्तिम ऊँचाई पर पहुँचकर सिद्धालय में बस जायें और कर्म, नोकर्म, भावकर्म सबसे रहित होकर के अशरीरी बनकर अनादि कालीन इस संसार का अन्त करके हम अनन्त सुखी बनकर के अनन्ताकल तक लिए वहीं पर विराजमान हो जायें ऐसी मंगल भावना को लेकर के हम यहाँ पर बैठे हैं। अतः आसन्न भव्य भी हो सकते हैं, भव्य किसको कहते हैं? तो पद्मनन्दी पञ्चविंशतिका में पद्मनन्दी आचार्य कहते हैं कि-

तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन, येनवार्तामपिश्रुता।
निश्चितं सा भवेत् भव्यो, भावि निर्वाण भाजनम्॥

जो प्रीति चित्त के साथ धर्म की वार्ता को सुनता है वह भव्य है। वह नियम से आगे निर्वाण का भाजक होगा। आप लोग भी भव्य हैं क्योंकि आप लोग भी यहाँ पर बहुत उत्साह के साथ इस धर्मामृत का पान कर रहे हैं। इसलिए आप भव्यत्व से परे नहीं हैं। यहाँ तक हम कह सकते हैं कि भव्य का मन बहुत निर्मल होता है, धर्म को सुनकर के वह पिघल जाता है। संसार को तजने के लिए वह उत्सुक होता है और मोक्षमार्ग पर चलने के लिऐ उत्साहित होता है। और अभव्य के लिये कभी इस बात का कोई भाव नहीं आता, उसके मन में यह जिज्ञासा भी नहीं होती कि मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ मुझे मोक्ष मिलेगा कि नहीं मिलेगा? इस प्रकार का चिंतन जिसके मन में आता है वह निश्चित रूप से भव्य ही है। और कुछ लोग यह सोचते हैं कि भव्य होकर के सब लोग मोक्ष चले जायेंगे तो यहाँ पर कौन रहेगा? महाराज जी को आहार कौन देगा? यह भव्य का लक्षण नहीं है। आप लोगों को तो ऐसा चिंतन नहीं है न! भव्य जीव को मूंग के समान कहते हैं क्योंकि वह पानी में डालने से, उबालने से, सीज जाती है या मुलायम हो जाती है और उसी में एक और मूंग होती है उसको कितना भी पानी डालो तो वह सीजती नहीं है। उसको ठर्रा मूंग बोलते हैं। कन्नड़ में कल्लकालु कहते हैं, तमिल में कल्लपयिरू बोलते हैं और मराठी में खुच्चर मूंग कहते हैं ऐसे विभिनन देशों की भाषा में तरह-तरह से पुकारते हैं। अभव्य तो ठर्रा मूंग के समान है। ठर्रा मूंग के समान इस सभा में शायद कोई नहीं होंगे क्योकि सब लोग प्रवचन में आ रहे हैं, बड़ी रुचि से सुन रहे हैं, आपकी आत्मा में तो परिवर्तन आया है आपने अपना कदम आगे बढ़ाया है दिशा और दशा परिवर्तित होकर के **''दृष्टि बदली सृष्टि बदली बदल गया सारा जीवन मेरा''** वाली बात हो रही है। आप लोग भव्य है

नियम से, आपकी ऐसे ही दृष्टि बदलती जायेगी तो क्या बात कहें सब कुछ बउल जायेगा। बस सृष्टि की एक शाश्वत अवस्था है वह जैसे की जैसे ही रहेगी तो क्या बात कहें सब कुछ बदल जायेगा। बस सृष्टि की एक शाश्वत अवस्था है वह जैसे तैसे ही रहेगी लेकिन हम उसकी ओर से मोह, ममता दूर करके अपनी ऊर्जा का संचार अन्तस् की ओर कर लें, जो ऊर्जा हमारी बाहर की ओर बह रही है अशुभ ध्यानों के माध्यम से व्यर्थ हो रही है, हमारी वह ऊर्जा बहिर्–गमिनी हो रही है वह अन्तस् की ओर बहेगी तब हमारे अन्दर एक नई क्षमता आयेगी। अनन्त शक्तियाँ जागृत होंगी और एक दिन कभी केवलज्ञान भी हो सकता है ऐसे समीचीन ध्यान के माध्यम से। वह समीचीन ध्यान क्या है? उसे ही हम समझने जा रहे हैं।

लोक का हरेक प्राणी ध्यान कर रहा है अनादिकाल से। और यह ध्यान चौबीस घंटे चल रहा है आप सोचेंगे कि जब हम आसन लगाकर बैठेंगे तभी ध्यान होगा; लेकिन आप जब खा रहे हैं, पी रहे हैं, तब भी ध्यान चल रहा है। दुकान में हैं तब भी ध्यान चल रहा है और सोते समय भी चल रहा है, सो रहे हैं तो ध्यान नहीं चल रहा है ऐसा नहीं है, ध्यान तो हर समय चलता रहता है हर समय हरेक प्राणी किसी न किसी प्रकार का ध्यान करते रहते हैं। और वह भी एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक। बस इस जगत् में कोई जीव ध्यान से परे हैं सिद्धात्मा। उनका कोई ध्यान नहीं, ध्यान कारण है, अब तो कार्य की प्राप्ति हो गई, साध्य की प्राप्ति हो गई अब साधन की आवश्यकता नहीं है। जब पार हो गये समुद्र से तो नाव की क्या आवश्यकता है? नाव के बिना भी पार नहीं होत और नाव को छोड़े बिना भी पार नहीं होते तो नाव में बैठना तो पड़ेगा, ध्यान करना पड़ेगा। लेकर पार हो गये तो फिर ध्यान की आवश्यकता नहीं अब तो स्वाभाविक अवस्था में पहुँच गये।

ध्यान तो मन से होता है या इस आत्मा से, लेकिन ध्यान से कर्मों का क्षय करना ही एक उद्देश्य होता है। जब कर्मों का क्षय हो गया तो अनादि कालीन कर्म छूट गये और अब अनन्त काल तक लिए स्वाभविक अवस्था प्राप्त हो गई स्वच्छ दर्पणवत् और वह स्वच्छ निर्मल केवलज्ञान दर्पण सभी पदार्थों को दिखा रहा है, सभी पदार्थ स्पष्ट झलक रहे हैं अब देखने की आवश्यकता नहीं सब अपने आप झलकते हैं। दर्पण किसी को चलाकर नहीं देखता, अपने आप युगपत् झलकते हैं सब। ऐसे ही अरहन्त केवली के ज्ञान में, सिद्धों के ज्ञान में, सब पदार्थ युगपत् झलकते हैं। व्यवहार

से कहो दर्पण देखता है ऐसे ही भगवान सर्वज्ञ हैं ये व्यवहार है, निश्चय से तो वे आत्मज्ञ हैं। वे किसी को नहीं देखते बल्कि सब दिख जाते हैं। जो एक को जानता है वह सब को जानता है। प्रवचनसार में यही बात कहते हैं कुन्दकुन्द आचार्य कि जो आत्मा को जानता है वह सब जगत् जान सकता है। जो सब को जान सकता है वह एक को (आत्मा को) भी जान सकता है। जो आतमा को नहीं जानता वह सब को नहीं जानता, जो सबको नहीं जानता वह आत्मा को भी नहीं जान सकता है। तो सर्व प्रथम सब को जानने से केवलज्ञान नहीं होता है। केवलज्ञान तो अपने को जानने से होता हे। ''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय'' अपनी आत्मा की साधना करने से सब कुछ उपलब्ध हो जाता है और सब विषय-भोगों को जानते रहेंगे तो जीवन बीता जायेगा लेकिन वह केवलज्ञान नहीं मिलेगा। तो निर्ग्रन्थ बन कर अन्तर दृष्टा बनो या शुभ ध्यानों से अपनी ऊर्जा को अन्दर की ओर बहाओ। बाहर से उसका वेस्टेज मत करो यही ज्ञानीपन है। कहा ही है कि-

दुनिया के जितने मजे हैं, वे हरगिज न कम होंगे।
वे तो यहाँ पर होंगे, लेकिन हम यहाँ न होंगे॥

ध्यान में आलम्बन क्या

अनादि काल से संसारी जीव का कौन सा ध्यान चल रहा है ? तो आर्त्त, रौद्र ध्यान चल रहा है। बहिर् विषय कषायों की ओर जो ध्यान है वह आर्त्त रौद्र ध्यान ही तो है। उसमें हमारी ऊर्जा बाहर की ओर जाती है और धर्म शुक्ल ध्यान में ऊर्जा अन्तस् की ओर प्रवाहित होती है। इस कारण हमें मोक्ष के कारण रूप ध्यानों का आलम्बन अवश्य लेना चाहिए और संसार के कारण रूप ध्यानों को छोड़ देना चाहिए वे हेय हैं और धर्म शुक्ल ध्यान उपादेय हैं और मोक्ष के कारण हैं। हमारा ध्यान मूल में चार भेद रूप है –

''आर्त्त रौद्र धर्म्यशुक्लानि'' ।। (त.सू. 9/28)

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि ध्यान चार प्रकार के हैं आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। इनमें से **''परे मोक्ष हेतू''** ।। 9/29 ।। अन्त के दो ध्यान मोक्ष के कारण हैं। और एक सूत्र हमने बना लिया है कि – ''पूर्वे संसार हेतू''। शेष पहले के दो ध्यान संसार के कारण हैं। आर्त्त ध्यान के चार भेद हैं – इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिंतन, निदान। रौद्र ध्यान के भी चार भेद हैं – हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द, परिग्रहानन्द। ये अशुभ ध्यान हैं और वर्जनीय हैं।

धर्म ध्यान के चार भेद कौन से हैं? तो – आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय तथा शुक्ल ध्यान के चार भेद कौन से हैं? तो पृथक्त्ववितर्क वीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रिया निवृत्ति। शुभचन्द्र आचार्य द्वारा रचित ध्यान का एक महान ग्रन्थ ज्ञानार्णव है जिसमें धर्म ध्यान के दस भेद भी बताए हैं। और मुनियों को होने वाले ध्यानों में धारणायें भी वर्णित हैं। उसमें पृथ्वीधारणा, अग्निधारणा, वायुधारणा, जलधारणा, और तत्त्वधारणा ऐसी धारणाओं का भी वर्णन ध्यानान्तर्गत किया गया है। इन सब ध्यानों को हम आगे समझेंगे। हमें अशुभ

ध्यानों से बचना चाहिए। वे रांग साईड के समान हैं। वे हमारी आत्मा को बहिरात्मा बनाते हैं। जग के दुक्खों में भटकाते हैं, हमारे ध्यानों को वे अशुभ बनाते हैं इसलिए हम मन को सम्हालें। मन की सम्हाल ही सबसे बड़ी सम्हाल है। मन एक बन्दर के समान है। बहुत उछल, कूद मचाता है। पूरे-पूरे धर्म के बगीचे को नष्ट कर देता है। इसलिए उस मन को श्रुत रूपी वृक्ष पर जड़ाओ ऐसा गुणभद्र आचार्य आत्मानुशासन में कहते हैं। एक ही पेड़ में रम करके सारे बगीचे को नष्ट नहीं कर पायेगा। यह मन भी संसार में सब जगह भाग रहा है, सभी असीमित विषयों में भाग करके अपनी आत्मा में राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इनके माध्यम से आस्रव व बंध करा रहा है। अतः ऐसे मन को अवश्य सम्हालें। जैसे अगर बच्चा शरारत करता है जो कुछ भी उठाता है, उसे खराब कर देता है अतः उसको अच्छे से अच्छा एक खिलौना पकड़ा देते हैं जिसमें वह रमा रहे, बस वैसे! ही जिसका मन बहुत भटकता है बहुत शरारत करता है तो आचार्यों ने कहा है कि लो तुमको धर्म का खिलौना दे देते हैं। ये धर्म क्रियाओं का खिलौना जिसे मिल गया उसमें ही मन को जो रमायेगा तो यह मन धर्म की हानि या पापास्रव न करता हुआ, आत्मा को कुछ पुण्य लाभ भी प्रदान करायेगा जैसे अगर छोटे बच्चे को खिलौना नहीं पकड़ाते हैं तो वह शोर मचाता है या रुदन मचाता है क्योंकि बच्चा बड़ों जैसा बहुत देर तक एक आसन में शान्त नहीं बैठ सकता। उसे कुछ न कुछ क्रीड़ा करने की वस्तुएँ चाहिए। यह बात भी सर्व विदित है ही कि बच्चे खेल खेलते-खेलते ही बड़े होते हैं चाहे तीर्थंकर भी क्यों न हों। इसी तरह मन को भी प्राथमिक अवस्था में कोई न कोई विषय चाहिए अगर संसारी व्यक्ति के पञ्चेन्द्रिय विषय छूट जाते हैं तो उसका मन मचलने लग जाता है क्योंकि प्रथम अवस्था में मन को शून्य पर नहीं टिकाया जा सकता। अगर उस मन को विषयों से मोड़कर धार्मिक विषयों में, षट् आवश्यकों में या तत्त्व चिन्तन में लगाते हैं तो फिर उसी में रम जाता है, बस इतना जानना आवश्यक है कि उसे धर्म विषय की महिमा को जानकर उत्तम लक्ष्यानुसार उसमें सुरुचि जगाना चाहिए तभी मन पर

विजय पाकर सम्यक् ध्यान सम्भव होगा। बच्चों को स्कूल में खिलौने में ही सब सिखाया जाता है, पढ़ाया जाता है, गिनती सिखायी जाती है, एक स्लेट देखी थी मैंने, उसमें आधे हिस्से तरफ तो लिखने का स्थान था और आधे तरफ गिनने के गुरियाँ लगे थे। रंगीन-रंगीन गुरियाँ जो लगे हुए थे उनमें से एक-एक को खिसकाते हुए एक, दो की गिनती बच्चे सीखते थे। हमने कहा बहुत अच्छा सिस्टम है खेल भी रहे हैं और सीख भी रहे हैं। एक-एक खिलौने के माध्यम से सबक सिखाया जाता है। वैसे ही हमारी आत्मा के बारे में सीखने के लिए आचार्यों ने व्यवस्था की है। चलो सीखो आत्मा में उतरने का खेल सीखो, कैसे सीखेंगे ? तो चलो लेलो हाथ में चावल और सोचो देखो ये चावल कितने सफेद हैं ये शुक्ल लेश्या का प्रतीक है। ऐसा धवल हमको बनना है। जिस धान के ऊपर छिलका था वह उतर गया छिलका उतारना परिग्रह त्याग का प्रतीक हैं। लालामी गयी यह कषाय त्याग का प्रतीक है और पुनः इसको भूमि में बोयेंगे तो उत्पन्न नहीं होगा यह अक्षय पद का प्रतीक है। ऐसे निर्ग्रन्थ, निष्कषाय और जन्म नहीं लेने की शिक्षा देने वाले चावल को चढ़ायेंगे तो हम भी परिग्रह से रहित, कषायों से रहित, शुक्ल लेश्या प्राप्त करते हुए एक दिन अक्षय पद पायेंगे सिद्ध भगवान बन जायेंगे। इसलिए इसको वीतराग प्रभु के या निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में चढ़ाया जाता है। ना कि सरागी देवी, देवताओं के चरणों में चढ़ाया जाता है ना कि कोई परिग्रही के चरणों में चढ़ाया जाता है। क्योंकि यह निर्ग्रन्थपने का द्योतक है न कि सरागी का। और वीतराग बनने का सन्देश दे रहा है। हमको खिलौना-सा देकर आचार्य कह रहे हैं कि सीखो निर्ग्रन्थ बनने का सन्देश। जल चढ़ाओगे तो सीखो जन्म, जरा, मृत्यु नाश हो जाय। अगर चन्दन चढ़ाओगे तो सीखो यह संसार का ताप नष्ट हो जाय। एक-एक द्रव्य चढ़ाते समय एक-एक भावनायें आपको सिखायी गयीं हैं। इन भावनाओं-सह आप इन पदार्थों के माध्यम से वह भावना अपने अन्दर साकार करो और ये धर्म के खिलौने आपको एक दिन भगवान बना देंगे। आपको धर्म की शिक्षा देकर के आपको परमात्मा बना देंगे। आपको मन्दिर मिला है, और मन्दिर में जाप, शास्त्र, पूजा की सामग्री और भगवान सब कुछ

मिले हैं। ये ही सामग्रियाँ धर्म के खिलौने जैसे हैं ये आपको आत्मा में रमाती हैं व रमायेंगी। हमें विषयों से छुड़ाती हैं और हमको संसार याद नहीं आता और हम मस्त हो जाते हैं धर्म के कार्य में। ऐसे शुभ और शुद्ध भाव की ओर ले जाने वाले ये पवित्र साधन हैं। पहली क्लास में ऐसा ही सिखाया जाता है फिर आगे की क्लास में धीरे-धीरे खिलौने छूटते चले जाते हैं फिर छुट्टी के समय ही खेलना होता है। आप सच्चे श्रावक, ऐलक, क्षुल्लक बन जायेंगे तो ये अष्ट द्रव्य के खिलौने नहीं मिलेंगे फिर आपके खिलौने शास्त्र, माला आदि ही रहेंगे। इससे ही धर्म ध्यान करो अपने मन को प्रशस्त करो, पिच्छि, कमण्डल धारी बन पिच्छी से अहिंसा पालन करो आदि। आप और आगे बढ़ जायेंगे भगवान अर्हन्त प्रभु बन जायेंगे तब तुम्हारे पास शास्त्र आदि नहीं रहेंगे, सब कुछ छूट जायेंगे। बस अब तो शरीर मात्र बचा रहेगा। वे तो अपनी आत्मा में लीन रहते हैं उनको कोई इच्छा नहीं है फिर भी शरीर चलता रहता है, शरीर से उनको कोई काम नहीं है। लेकिन अपने लिए काम का है उससे हम पूजा, अभिषेक करते हैं, दिव्यध्वनि सुनते हैं, प्रभु का दर्शन करते हैं इत्यादि। वह शरीर रूपी खिलौना जब अपने काम का नहीं रहता वह भी जब छूट जाता है तब सिद्ध परमेष्ठी बन जाते हैं। वहाँ न दिव्यध्वनि आदि होती है अर्थात् सब कुछ यहीं छूट जाता है। अर्थात् इस संसार में लोगों का मन लगाने के लिए ये सब सुविधायें मिली हुई हैं लेकिन राग, द्वेष करने के लिए नहीं। इन संसार के पदार्थों को देखें जानें, समझे लेकिन राग, द्वेष न करें। राग, द्वेष करेंगे तो कर्मों से बंधेंगे। ये सारा दृश्य हमारे सामने दिख रहा है लेकिन यह मेरा है, मैं इस रूप में हूँ, नष्ट हुआ तो मेरा बहुत कुछ नष्ट हो गया तो उसके लिए क्रोधादि कषायें करने लगे तो कर्मों का आस्रव हो जाता है, संसार के पदार्थों को रहने दो लेकिन उनको अपना मत समझो, फिर कैसा समझो तो कहा है समाधितंत्र में कि-

अचेतनमिदं दृश्यं, मदृश्यं चेतनं तथा।
कोरुष्यामि कोतुष्यामि, माध्यस्थोहंभवामि तत्।।

इदं दृश्यम् अचेतनं - जो यह दृश्य देखने में आ गया है ये सब अचेतन

है यह जो शरीर देखने में आ रहा है वह अचेतन है। अदृश्य चेतनं तथा – चेतन देखने में नहीं आता। कोरुष्यामि कोतुष्यामि – किस में राग करुँ, किस में द्वेष करुँ जो दिख रहा है वह अचेतन है और जो देख रहा है वह चेतन है इसका उसका सम्बन्ध नहीं हैं। किसको अपना समझूँ। किसको पराया समझूँ माध्यस्थोहं भवामि तत् – इन सभी में मैं माध्यस्थ होता हूँ। सांसारिक पदार्थों में माध्यस्थ रहो इन्हें न अच्छा–न बुरा, न अपना–न पराया समझो। जो है वह मेरा नहीं है गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज मूकमाटी में कहते हैं कि –

''बाहर ये जो कुछ दिख रहा है सो मैं नहीं हूँ और मेरा भी नहीं है, ये आँखे मुझे देख नहीं सकती, मैं सभी का दृष्टा हूँ, मैं स्वयं का सृष्टा हूँ। बाहर ये जो कुछ दिख रहा है सो में नहीं हूँ और मेरा भी नहीं है''। ऐसा ही ध्यान पावन है शान्ति व संतोष का कारण है।

सागर सम गंभीरता
और विनयशीलता धर्मात्मा और
मोक्षमार्गी की पहचान है।

सम्यक् ध्यान से निज-स्वभाव की उपलब्धि

इस विश्व में हम सब लोग अपने ध्यान को निर्मल बनाते हुये अन्तस् की यात्रा करने हेतु पुरुषार्थसह प्रयत्नशील हैं। समीचीन ध्यान; आत्मा को निर्मल, पावन, पुनीत बनाता है यह सब जानते हैं और ये अनुभव की बात है। जो हम करना चाहते हैं वह सम्यक् ध्यान; जब हम बाहर से सब चीजें भूल जायेंगें; नो अटेचमेन्ट रूप अवस्था होगी तभी हमारी शक्ति (ऊर्जा) जो बाहर की ओर बह रही है वह अन्तस् की ओर बहेगी और वह शक्ति इतनी पावरफुल होगी कि चारों ओर से जो हमारे मन को चलायमान करने वाले पदार्थ वह विषयों की लहर अपने आप थम करके हमें बाधा उत्पन्न करने में सक्षम नहीं हो पायेगी। एक एयरडोर के समान हमारी एनर्जी हमारी रक्षा करेगी।

मकान में खिड़कियाँ होती हैं। चारों तरफ से खिड़कियाँ खुली हों तो हवा आती है और कभी तूफान आता है, कभी धूल आती है, कभी किसी की आवाज आती है इसलिए मकान के अन्दर स्थित व्यक्ति का मन चलायमान हो जाता है, अस्थिर होता है, बाधित होता है। जब चारों तरफ से खिड़िकियों को बन्द कर देते हैं तो चलायमान करने वाली, वह जो वस्तु है, बाधित तत्त्व है उसका निरोध हो जाता है। इसी तरह से कोई जल तालाब का हो या कुए का हो अथवा कोई बड़े बर्तन में हो तो हवा के झोंकों से वह तरंगायित होता है। तरंगें उठती हैं तो आप देखते हैं उस जल में अपने मुख को आप नहीं देख पाते हैं या उसके सामने अपना मुख करेंगे तो अपना मुख नहीं दिखता है। कारण वह तरंगायित है। जब उन वायु के झोंकों का रुकना होता है तब स्थिर हुये उस जल में आपको अपना मुख दिखने लग जाता है। स्थिरता आती है तो सही-सही अवलोकन प्रारम्भ होता है। ऐसे ही अपनी आत्मा में अपना दर्शन करना हो, अन्तस् का दर्शन करते हुए शान्ति सुख का अनुभव करना हो, निर्विकल्प होना है तो हमें क्या करना पड़ेगा? हमारी आत्मा में जो लहरा रहा है शान्ति सुख का सरोवर, सुख का सागर लेकिन तरंगायित है इसलिए शान्ति सुख का अनुभव नहीं होता आत्म दर्शन नहीं होता विकल्प उठते रहते हैं। विकल्पों को उत्पन्न करने वाली वह विषयों की

हवा, राग, द्वेष के तूफान निज अन्तस् को झकझोर देते हैं। उन तरंगों के माध्यम से हम परेशान हो जाते हैं। शान्ति सुख का अनुभव नहीं कर पाते हैं। उन तरंगों को रोकने के लिए हमें क्या करना पड़ता है? स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत ये पाँच इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं। स्पर्शनेन्द्रिय अच्छा-अच्छा स्पर्श चाहती है स्पर्श में राग-द्वेष करती है। रसना इन्द्रिय अच्छा-अच्छा चखना चाहती है। घ्राण इन्द्रिय अच्छा-अच्छा सूंघना चाहती है। चक्षु इन्द्रिय अच्छा-अच्छा देखना चाहती है। कर्ण इन्द्रिय अच्छा-अच्छा सुनना चाहती है मधुर-मधुर संगीत, प्रशंसा के शब्द उसे अच्छे लगते हैं। पाँचों ही इन्द्रियाँ अपने विषयों को चाहती हैं। इन विषयों के ग्रहण से अपनी आत्मा में विकल्पों की तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। ये अच्छा है, बुरा है, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये दोष आत्मा में उत्पन्न हो जाते हैं और अपनी आत्मा की एनर्जी बाहर की ओर बह जाती है। ये विषय और शारीरिक इन्द्रियाँ ये सब बाहरी चीजें हैं और उसके सम्बन्ध में होने वाले राग, द्वेष परिणाम या भाव विभाव रूप हैं स्वभाव नहीं है।

स्वभाव क्या है और विभाव क्या है? इसको जानना पड़ेगा। जल में शीतलता क्या है? स्वभाव है। जल में उष्णता क्या है? विभाव है। अग्नि का स्वभाव क्या है? उष्णता। दूध का स्वभाव शीतलता है। मान लीजिए दूध गरम हो गया या दूध उबल रहा है उबलते समय आप सोचते हैं ये उबलना बंद हो जाय क्योंकि ये इसका विभाव है। अगर उस पर कोई छीटें डालता है तो उफनना कुछ क्षण के लिए बंद हो जाता है। लेकिन उष्णता अभी भी बनी रहती जो उसका विभाव है वह तात्कालिक है। अपने अन्दर शान्ति और सुख स्वभाव है और ये राग-द्वेष आदि विभाव हैं। विभाव तात्कालिक होते हैं और स्वभाव त्रैकालिक होता है। लेकिन आप कहेंगे कि हमें अनुभव में तो आ नहीं रहा है अनुभव में तो क्रोधादि कषाय ही आ रहे हैं। वह स्वभाव कहाँ चला गया? हे भगवन्! आप दे दीजिए, महाराजजी आप बता दीजिए स्वभाव कहीं मिल जाय तो हम ले लें। तो भैया! ये दिखने की चीज नहीं है। विभाव है तो स्वभाव कहाँ गया? स्वभाव गया, कहाँ गया? छुप..... गया, बाहर नहीं, गया छुप गया, तो अन्दर में तो है। लेकिन ढक गया है। दूध का स्वभाव अग्नि के निमित्त से तो देखने में नहीं आता। जैसे मेघ आ जाते हैं तो सूर्य का प्रकाश ढक जाता है लेकिन

प्रकाश कहीं नहीं गया, छुप गया। ज्यों ही मेघ हट जाते हैं तो स्वभाव अपने आप प्रकट हो जाता है। बाहरी पदार्थ अपने स्वभाव के लिए बाधक बनते हैं और आगम का ज्ञान, देव, शास्त्र, गुरु, उनका सत्संग और अपना पुरुषार्थ, अपना ध्यान अपनी धारणायें ये सब अपने स्वभाव को उद्घाटित करने में सहायक बनते हैं। अब हमें क्या करना पड़ेगा? अब हमें ऐसी चीज का आलम्बन लेना पड़ेगा जिसका आलम्बन लेने से अपना स्वभाव प्रकट हो जाय और हमारा पुरुषार्थ जागृत हो जाय। उस विभाव को हटाने में और विभाव जिन साधनों से या जिन कारणों से होता है उनको हटाने में हम समर्थ हो जायें। जैसे अग्नि को हटाना है तो पुरुषार्थ करना पड़ेगा तब कहीं दूध का छुपा हुआ स्वभाव बाहर आयेगा। हमारी आत्मा के स्वभाव को हमें अनुभव में लाना है तो क्या करना पड़ेगा? विभाव के कारण स्वरूप पदार्थों को दूर करना पड़ेगा या तुम दूर हो जाओ बात एक ही है। अग्नि को हटाने से दूध और पानी अपने आप स्वभाव में आ जाता है। वैसे ही हमें अपने स्वभाव की प्राप्ति करने के लिए संयोग को छोड़ना पड़ेगा। संयोग में सबसे बड़ी चीज है पुद्गल या परिग्रह और संयोग-वियोग का जोड़ा है। जो-जो वस्तु बाहर से आयी है उसका वियोग जरूर होगा। आप छोड़ें या ना छोड़ें लेकिन वह जरूर छूटेगा। छूटेगा तो आप को दुःख होगा और छोड़ेंगे तो सुख होगा।

अपनी आत्म कल्याण की भावना से विभाव की दृष्टि से आप उन संयोगों को छोड़ोगे तो आनन्द की अनुभूति होगी। और कर्म निर्जरा का भी अवसर मिलेगा। फिर पुनः आप उससे नहीं जुड़ेंगे और न वह जुड़ेगा कारण कि आपने उसको अन्तस् से छोड़ा है, जान करके छोड़ा है, ज्ञान करके छोड़ा है, परिणाम को पहचान करके, स्वभाव को जान करके छोड़ा है उससे आपको ग्लानी हुई है तब तो सवाल ही नहीं है। बस इस संयोग या परिग्रह से ही व्यक्ति पंच पाप करता है, कषाय करता है, मोह, राग, द्वेष करता है बस यही एक मात्र कारण है। इसी के पीछे हैं सब; जो दिख रहा है उसके प्रति मोह लगा हुआ है। ''मूर्छा परिग्रहः'' दिखने मात्र से कोई परिग्रह नहीं हो गया, तुमने उसको अपना समझा, बस; तव-मम, तव-मम मेरा-तेरा, तेरा-मेरा में है परिग्रह। मेरा नहीं है तो तेरा भी नहीं है। जहाँ मेरा आयेगा वहाँ तेरा भी आ जाता है। तेरा, मेरा में ही परिग्रह है। ''मूर्छा परिग्रहः'' का अर्थ यह है कि जो दशों ओर से

आत्मा को मूर्छित करता है या ग्रहण किया जाता है, अपने स्वभाव से जो दूर करता है वही है परिग्रह। जब तक यह विभाव रूप परिग्रह रहेगा तब तक आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए तो कहते हैं कि सच्चा सुख कहाँ है? आप लोग पढ़ते ही हैं छोटे-छोटे शास्त्रों में जैसे कि छहढाला में कहते हैं -

आतम को हित है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहिं न तातैं शिवगम लाग्यो चहिये ।।

(आतम को हित है सुख) आत्मा का हित सुख है। (सो सुख) वह सुख (आकुलता बिन कहिये) आकुलता से रहित है। आकुलता कहाँ नहीं है? जहाँ-जहाँ परिग्रह है वहाँ आकुलता है उसकी सम्हाल की इच्छा, रखने की, लाने, भोगने की इच्छा है। (आकुलता शिव माहिं न) आकुलता मोक्ष में नहीं है क्योंकि वहाँ परिग्रह नहीं है, संयोग नहीं है। (तातैं) इसलिए अगर आपको वह सुख पाना है तो (शिवमग लाग्यो चाहिये) मोक्षमार्ग पर लग जाना चाहिए। देखिये दो पंक्तियों में पूरा सार कह दिया। संयोग है तो वियोग नियत है। बाहर जो दिख रहे हैं पदार्थ उसका वियोग इसी जन्म में हो जाता है। आप नहीं छोड़ पाते हैं तो मरण के बाद अपने आप छूट जायेगा तब दुःख होगा। अब देख लीजिए आप; आपके जेब में पैसा है दान में दे दिया तो सुख है और दे नहीं पाये, जेब कट गया तो दुःख होता है। छोड़ने में सुख और छूटने में दुःख होता है। एक व्यक्ति ने उपवास कर लिया आज चारों प्रकार के आहार का त्याग है आज कुछ नहीं खाना ऐसा जिसने सोच लिया उसका मुख देखो तो बहुत प्रसन्न है ऐसा लग रहा है कि उसने भोजन भरपूर ही कर लिया हो और एक ने एक-दो घण्टे तक बनाया, आधा-एक घण्टे तक खाया और बाहर निकल गया उल्टी हो गयी उसका मुख देखो कैसा लग रहा है? तो अप्रसन्न, इतना अंतर है छोड़ने में और छूटने में। अब आप लोग सोच लो हमें क्या करना है? अगर हम छोड़ेंगे-छोड़ेंगे कहते रहे और बीच में ही आत्मा निकल गयी तो क्या करेंगे? परिग्रह से मोह करते रहें और वह छूट गया तो दुःख हुआ। लेकिन कुछ ज्ञानी लोग उस समय भी सम्हल जाते हैं। छोड़ने के भाव जब हुये तभी छोड़ देते हैं। और शान्ति सुख के मार्ग से समीचीन ध्यान के द्वारा अपनी मंजिल भी पा लेते हैं यही है स्वभाव प्राप्ति का मार्ग ।

संयोग और वियोग से परे है ध्यान

परिग्रह छोड़ने में सुख है और उसे बांधने में दुःख। पूरा छोड़ नहीं पायें तो थोड़ा-थोड़ा छोड़ें, लेकिन- अचानक ही मरण का अवसर आ जाए तो संक्षेप प्रत्याख्यान एक मार्ग है। जब तक उपसर्ग या बाधायें दूर न हो जाएँ तब तक के लिए खाने-पीने आदि सारी चीजों का त्याग कर देना इसको बोलते हैं संक्षेप प्रत्याख्यान। ऐसे ही लोग आज भी सल्लेखना लिया करते हैं। यह एक जघन्य सल्लेखना का रूप ही है। अगर अचानक मरण आ गया तो सारी चीजों का त्याग कर देना चाहिए।

2004 भोपाल चातुर्मास के बाद की बात है। वहाँ पर एक महिला थी जिनने कि काफी कई प्रकार के व्रत उपवास कर लिये थे। शायद वह अणुव्रत लेने की साधना कर रही थी अशुभ कर्मोदय से उसे कैन्सर हो चुका था। डाक्टर ने कह दिया कि छह महीने बस। जब अन्त में परिवार के लोगों ने बहुत प्रयास किया उसका इलाज करवाने का लेकिन उस माँ ने कह दिया कि अब कुछ भी इलाज नहीं करवाओ और मैंने सब कुछ छोड़ दिया अब मेरी इतनी बात सुन लो; अगर मानना चाहो तो मान जाओ, मेरा हित हो जायेगा। बोले क्या करना माँ? माँ बोली अन्तिम समय में मुझे मुनि महाराजजी के पास ले चलना। मरने के पहले मुझे महाराज जी के दर्शन करा देना यही मेरी अन्तिम इच्छा है। घर वालों ने वास्तव में बात सुन ली। अन्तिम स्टेज आ गयी, अन्त में घर छोड़ा तो नहीं अब उसकी उतनी शक्ति नहीं थी कि हमसे संयम ले सकें, दीक्षा ले सके लेकिन उसने कहा था अन्तिम जीवन मेरा महाराजजी के चरण में हो। तो वास्तव में उसको लेकर के हमारे पास आ गये। मैं था पद्मनाम नगर में, जो भोपाल में ही है। सामायिक कर रहा था। करीब दो बजे उसको लेकर आ गये। उसको श्वास की नली वगैरह लगी हुयी थी। सबकुछ निकाल कर उन्होंने मन्दिर में मेरे सामने एक तरफ लिटा दिया और कहा कर लो महाराजजी का दर्शन, पहले उसने कई बार नवधाभक्ति से आहार भी दिया हुआ है, बहुत धर्म किया था। जब दर्शन कर लिया तो लोगों ने कहा, महाराजजी आपका आशीर्वाद माँग रही हैं। घर के लोग रोने लगे और कहने लगे कि बस! आज महाराजजी इनका जीवन हो जायेगा पूरा कुछ नियम व्रत बता दीजिए। मैंने कहा अब ऐसे समय ले आये आप लोग, अब क्या त्याग करना आप लोग समझाओ। लेकिन आप लोग रोते रहेंगे तो हम पास में नहीं आयेंगे, न आशीर्वाद

दे सकेंगे। आप अगर उनकी सल्लेखना करना चाहते हो तो रोना बंद कर दो, अगर रोना बंद नहीं हुआ तो हम पास में नहीं आयेंगे। खूब हँसना चाहिए। उसने इतने व्रत किये हैं, अन्तिम समय महाराजजी के पास आने की इच्छा व्यक्त की है तो समझिये वह आत्मा सद्गति में जाने वाली है। नहीं तो कोई नहीं आता, हाय! हाय! पानी लाओ, दूध लाओ यही होता और कुछ नहीं होता। उसको ये भाव नहीं था कि इन्हीं महाराजजी के पास ले जाना, कोई भी महाराजजी के पास ले जाना ये था। कोई नहीं रोना वो रो रही हैं क्या? नहीं रो रही हैं! फिर आप लोग क्यों रो रहे हैं। अन्त में उसने मोह छोड़ने के लिए बोला न, अब घर मत ले जाना। सब रोना बंद करो। अब समाधिमरण पढ़ो, णमोकार मंत्र पढ़ो तो मैं आऊँगा। नहीं तो नहीं आऊँगा।

बड़ा हॉल जैसा स्थान था थोड़ी दूर लिटाये हुये थे उसे। सब लोगों ने रोना बन्द कर दिया। भजन पढ़ने लगे, णमोकार मन्त्र पढ़ने लगे। तो मैं पास में गया वहीं खड़ा रहा आशीर्वाद दिया और हमने कहा अब सब कुछ त्याग कर दो। सहर्ष स्वीकार किया, हाथ जोड़े उसने और कहा कि महाराज जी सब कुछ त्याग कर दिया हमने खाना, पीना सब कुछ। पानी तो ले सकती हो, इशारे से कहा मैंने, नहीं नहीं, पूरी सचेत थी वह; पानी भी नहीं चाहिए पूरा त्याग कर दिया। हमने कहा परिग्रह, घर, परिवार, सब छोड़ दो। तो स्वीकार किया; छोड़ दिया। अन्त में रंगीन कपड़े जो तन पर पहने हुयी थी उसकी ओर संकेत कर दिखा रही थी कि इसको बदलवा दो। पिच्छी की तरफ भी इशारा कर रही थी मुझे पिच्छी दे दो। उसका भाव था कि कम से कम मुझे क्षुल्लिका दीक्षा दे दो। मैंने फिर लोगों को कहा देखो ऐसा भाव है लेकिन अब शक्तिहीन अवस्था में कुछ नहीं होता पिच्छी का उपयोग ही नहीं है तो पिच्छी देने से क्या मतलब है। केवल अणुव्रत लिये जा सकते हैं तो अणुव्रत दिला देते हैं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह वगैरह त्याग दिला देते हैं। पूरा त्याग करवा दिया तो पूरा सचेत होकर के उसने सुना और स्वीकार लिया। बार-बार इशारे से यही कह रही थी कि ये रंगीन कपड़ा बदलवा दो। तो मैंने कहा देखो आप लोग समझ रहे हैं न; बदलवा दो। तो बाजू में थोड़ी दूर एक कमरे में जाकर के रंगीन कपड़े बदलवा दिये सफेद साड़ी पहना दी लोगों ने। फिर पुनः दर्शन को लाये दर्शन लिया तो शाम हो गयी थी। रात होने वाली है यहाँ पर जगह कम है। अलग से स्थान नहीं है तुम परिवार वाले भी साथ हो रात भर क्या करोगे यहाँ। मन्दिर भी छोटा है मन्दिर में समाधि हो जाए तो अच्छा भी नहीं है।

मन्दिर भी पूरा शुद्ध करना पड़ेगा। तो कहा तुम कहीं ओर ले जाओ। कहाँ ले जायँ घर का तो इन्होंने त्याग किया है। घर नहीं ले जाओ नेहरू नगर में जो धर्मशाला है न, वहाँ पर तुम ले जाओ मेरी आज्ञा है मेरा आशीर्वाद है। एक कमरा अलग से ले लेना। वहीं पर पहुँचा दिया लोगों ने और रात को आठ बजे समाधिमरण हो गया। त्याग सब कुछ हो ही गया था यहाँ तक कि रंगीन कपड़े भी छोड़ दिये थे। ये है देखो संयोगज पदार्थों को अपने आँखों के सामने छोड़ना। हाँ उतना तो नहीं छोड़ा लेकिन इतना तो छोड़ा आंसू नहीं आये। त्याग की ओर इशारा किया जो कहा सो हाँ बोला। ये है उसका पुण्य उदय इतने सारे व्रत पालन किये थे उसका ही ये फल मिला। अन्त में महाराज जी भी मिल गये। त्याग करने को भी मिल गया। नहीं तो कौन त्याग कराता ये। लोग रोते-रोते अपने परिणामों को भी खराब कर लेते हैं और आर्त्त, रौद्र-ध्यान के साथ चले जाते हैं। तो हमने समझा दिया तो कोई नहीं रोया। सब कुछ अच्छा हो गया। हम लोग भी पहले ले सकें तो और भी अच्छा है, तो दीक्षा लेकर भी सल्लेखना ले सकते हैं। सब कुछ छोड़कर तपस्या कर सकते हैं। ऐसा होता है त्याग आप लोग भी समझें। संयोग है तो वियोग निश्चित है। छूटने में दुःख है और छोड़ने में सुख है। इस बात को ध्यान में रखते हुए अपना जीवन धन्य करें। हम लोगों को उत्तम ध्यान करने के लिए अन्तस् की ओर झाँकना जरूरी है। हम अभी तक बाहर की चीजों में उलझे रहे लेकिन सुलझे नहीं। इसलिए हमें अपना परिचय Address जानना अत्यंत आवश्यक है। आप कहेंगे हाँ महाराज जी हमारे पास तो Address है। हम इस नगर की इस गली में रहते हैं इस नम्बर का घर हमारा है और विज़िटिंग कार्ड (Visiting Card) भी दे देंगे। लेकिन यह तो बाहरी परिचय है। आन्तरिक परिचय क्या है? इसको समझना जरूरी है और याद भी कर लेना चाहिए अपने मन रूपी कम्प्यूटर में सेव (Save) कर लेना चाहिए क्योंकि इसको जाने बिना हमें यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि हमें किसका ध्यान और किसलिए ध्यान करना है और अपना लक्ष्य क्या है इसलिए परिचय का वर्णन सुनें, पांच प्रश्नों के उत्तर ही अपना परिचय है।

कोह कीदृग्गुणः क्वत्यः, किंप्राप्यः किंनिमित्तकः।
युत्यूह प्रत्यहं नो चेदन्यस्थानेमतिर्भवेत् ।।

छत्र चूड़ामणि शास्त्र के जीवन्धर चरित्र में कहते हैं कि मैं कौन हूँ? कौन से गुण वाला हूँ? कहाँ से आ रहा हूँ? हमें क्या प्राप्त करना है? और वह कैसे प्राप्त होगा?

इस प्रकार के प्रश्न अपनी आत्मा से करें। तो आत्मा से उत्तर मिलेगा। मैं कौन हूँ? मैं सेठ हूँ, व्यापारी हूँ, पूजारी हूँ, कौन हूँ? ये तो बाहर का परिचय है ये नहीं हूँ मैं; मैं तो एक आत्मा हूँ। कौन-से गुण वाला हूँ? काला हूँ, गोरा हूँ, तो नहीं; ज्ञान, दर्शन गुण वाला हूँ। कहाँ से आ रहा हूँ? मैं शहर से आ रहा हूँ या घर से आ रहा हूँ, नहीं; मैं तो चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ आ रहा हूँ। मुझे क्या प्राप्त करना है? संसार की वस्तुयें, तो नहीं; हमें तो मोक्ष प्राप्त करना है। क्योंकि वही हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है और वहीं पर आकुलता रहित सच्चा सुख है इसलिए हमें वही प्राप्तव्य है। और वह कैसे मिलेगा? मकान या बैंक बेलेंस बनाने से, तो नहीं; वह तो मोक्षमार्ग से मिलेगा, मोक्षमार्ग क्या है? तो **''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः ।''**

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों की एकता का नाम मोक्षमार्ग है। चारित्र के अन्त में ही तो ध्यान आता है। पंचाचार में तपाचार और तपाचार में अन्तिम ध्यान है। ध्यान से ही मोक्ष होता है। जहाँ निश्चिय चारित्र है या स्वरूपाचरण चारित्र है। तभी सच्चा ध्यान है और ऐसे ध्यान से ही कर्म कट पाते हैं। इसलिए स्वरूपाचरण की प्राप्ति अन्तिम है और फिर मोक्ष है। उत्तम ध्यान के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में द्रव्य के अन्दर संहनन भी एक है। किस संहनन से कर्म कट सकते हैं तो कहते हैं कि –

''उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्त्तात्।'' त.सू. (9/27)

उत्तम संहनन वालों के जो चिंताओं को निरोध करके एकाग्रता लायी जाती है वह अन्तर्मुहूर्त्त तक चलती है। 48 मिनिट का एक मुहूर्त्त हो जाता है उसके अन्दर सब अन्तर्मुहूर्त्त में आता है। बहुत सारे भेद हैं अन्तमुहूर्त्त के। सबसे ज्यादा अगर कोई ध्यान कर पाता है एकाग्रता प्राप्त कर पाता है तो वे उत्तम संहनन वाले ही कर पाते हैं। वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन ये तीन उत्तम संहनन हैं। इसमें वज्रवृषभनाराचसंहनन वाला ही उत्कृष्ट ध्यान करके मोक्ष पाता है। बाकी नहीं, आज ध्यान तो होता है लेकिन उत्कृष्ट नहीं, हाँ! यह ध्यान भी परम्परा से मोक्ष का कारण बनेगा। आज भी जो अन्तिम तीन संहनन हैं अर्ध नाराच संहनन, कीलित संहनन, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इनके माध्यम से किया गया ध्यान परम्परा से मोक्ष का कारण होगा। शुक्ल ध्यान नहीं तो धर्मध्यान होगा। द्रव्य में जीव भी एक द्रव्य है और सबसे उत्कृष्ट द्रव्य में, और जिसको हम ध्येय बनायेंगे वे हैं सिद्ध परमात्मा,

उसके बाद अरिहन्त भगवान, नवदेवता, पंच परमेष्ठी में से कोई भी हो सकते हैं और भगवान की मूर्तियाँ, तीन लोक की रचना, इसमें रहने वाले षट्द्रव्य, पंच अस्तिकाय, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ ये सब प्रथम भेद रूप द्रव्य में गर्भित हैं। इनके माध्यम से ध्यान होता है। इससे आगे बढ़कर आसन, मुद्रा और आहार का क्रम है। आहार कैसे होता या उपवास, एकाशन आदि ये द्रव्य, ध्यान के लिए आवश्यक हैं। अब आगे इन द्रव्यों के बारे में सूक्ष्मता से समझेंगे।.

मुनिदीक्षा ही मोक्ष का साधन है।

ध्यान का आधार द्रव्य

जीव द्रव्य जिसका जितना श्रेष्ठ होगा अर्थात् संज्ञी पञ्चेन्द्रिय, भव्य, जिनधर्म सम्यक्त्व से संयुक्त या अणुव्रती, महाव्रती होगा या क्षपक श्रेणी वाला या केवलज्ञानी होगा उसका उतना उत्कृष्ट जीव द्रव्य कहलायेगा और वह उतने ही श्रेष्ठ ध्यान को पायेगा। प्रशस्त ध्यान करने के लिए संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भव्य जीवों के लिए जिनधर्म से संयुक्त जैनी और सम्यग्दृष्टि बनना अति आवश्यक है। अणुव्रती बनना अगर सबके वश की बात नहीं है तो सम्यग्दृष्टि बनने मात्र से धर्मध्यान शुरु हो जायेगा वर्ना धर्मध्यान भी नहीं होगा। सोलह प्रकार के ध्यानों में आर्त्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल इन चार के चार-चार भेद हैं। ये आर्त्त, रौद्र ध्यान तो अनादिकाल से चल रहे हैं। लेकिन धर्म ध्यान पाने के लिए सम्यग्दृष्टि बनकर चतुर्थ गुणस्थान हुये बिना धर्मध्यान शुरु नहीं होता। इसलिए हमें सम्यग्दर्शन का प्रकरण सुनना बहुत जरूरी है। व्यवहारिक सम्यग्दृष्टि बनने के लिए अणुव्रत, महाव्रत नहीं लेना पड़ता है और न ही घर छोड़ना पड़ता है। मात्र जैनधर्म के नियम और एक वीतरागता पर अटूट श्रद्धा हो, इतना हो गया तो आप सम्यग्दृष्टि बन गये। वह सम्यग्दर्शन पच्चीस मल दोषों से रहित होना चाहिए। सम्यग्दर्शन जीवन का आधार है सद्गति पाने का उपाय है और वही मोक्ष रूपी महल की प्रथम सीढ़ी भी है। कहते हैं छहढाला में कि-

''मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहे सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ।।''

सम्यग्दर्शन (मोक्ष महल की परथम सीढ़ी) मोक्ष रूपी महल की प्रथम सीढ़ी है (या बिन ज्ञान चरित्रा) इसके बिना ज्ञान और चारित्र (सम्यक्ता न लहे) सम्यक्ता को प्राप्त नहीं होते (सो दर्शन) वह सम्यग्दर्शन (धारो भव्य पवित्रा) हे भव्य जीवों! तुम धारण करो। इसके बिना तो द्वादशांग का ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहलाता है। जिसके बिना सभी व्रत, चारित्र भी मिथ्या चारित्र कहलाते हैं अतः उस सम्यग्दर्शन को तुम लोग धारण करो। जो ऐसे सम्यग्दर्शन रूपी रत्न पा लेते हैं उनके आठ दुर्गतियों पर ताला लग जाता है। आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्डक में कहते हैं कि-

सम्यग्दर्शन शुद्धा नारकतिर्यंङ नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुल विकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिका ।। 35।। र.श्रा.

अणुव्रत नहीं लिये तो भी अगर सम्यग्दर्शन मात्र से जो शुद्ध हो गया और जिसने वीतराग को ही आलम्बन या आधार बना लिया अर्थात् अब मैं सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, नवदेवता, चार शरण, पंच परमेष्ठी के अलावा यह मस्तक कहीं पर भी नहीं झुकाऊँगा। इतनी अटूट श्रद्धा हो जाती कि मैं उस निर्दोष परमात्मा को ही नमन करूंगा जो राग, द्वेष, काम आदि विकारों से मुक्त होना चाहिए। चाहे वो कोई भी नाम वाला हो चाहे वो राम भी क्यों न हों। राम भी मोक्ष गये हैं। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं में हम उन राम, हनुमान आदि सभी परमात्माओं को नमस्कार कर लेते हैं। इसलिए ध्यान रखना जो निर्दोष परमात्मा के चरणों में ही मस्तक झुकाता है वही है सम्यग्दृष्टि।

जहाँ पर पंच पाप पल रहे हैं वहाँ पर सर नहीं झुकाता, अगर झुकेगा तो सम्यग्दर्शन नहीं आयेगा। इसी श्रद्धा के साथ जो सम्यग्दर्शन को धारण करते हैं वे लोग ऐसे समीचीन ध्यान को प्राप्त करते हैं। तो उस श्लोक में यह कह रहे हैं कि जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हो गया वह नरक, तिर्यञ्च, नपुंसक, स्त्री, दुष्कुल, विकलांग, अल्प आयु और दरिद्र इन आठ अवस्थाओं को प्राप्त नहीं होता इन पर ताला लग जायेगा समझो। अगर मरण करेगा और बद्धायुष्क नहीं है तो सीधे स्वर्ग ही जायेगा और वहाँ से सीधा समवशरण जायेगा साक्षात् भगवान का दर्शन करेगा। अगर ये फल तुम्हें पाना हो तो अपनी श्रद्धा को निर्मल बनाओ। सम्यग्दर्शन को अपने जीवन में लाओ। ऐसी आत्माओं को परमात्मा पद दूर नहीं है। यह संस्कार या धार्मिक अनुष्ठान परमात्मा बनाने के लिए बहुत ही श्रेष्ठ कार्य करता है। अभी तो केवल भगवान महावीर मोक्ष गये ढ़ाई हजार वर्ष हुये। 21,000 वर्ष का यह पञ्चम काल है। साढ़े अठारह हजार वर्ष अभी बाकी हैं।

कहते हैं कि यह स्वप्न में देखा गया या एक महान आत्मा के स्वप्न में आया कि दो बछड़े एक रथ को खीच रहे हैं। इसका फल बतलाया गया कि पञ्चम काल में धर्म रूपी रथ को खीचने वाले जवान होंगे, कम उम्र वाले ही उस रथ को खीचेंगे वृद्धों से वह रथ नहीं खिचने वाला है। इसलिए अन्तस् कहता है कि ऐसे बाल पीढ़ी को

और जवानों को धर्म की ओर आकृष्ट करें। उन्हें सिखायें धर्म के सूत्रों को, ध्यान को, आचरण को, जिसके माध्यम से उनकी एनर्जी-ऊर्जा अन्दर की ओर बहे। वह अन्दर में बहने वाली ऊर्जा बहुत पावरफुल (Powerful) होती है। वह परम्परा से हमारे धर्म को पूरे पञ्चम काल के अंत तक प्रवाहित करती रहे यह जीव द्रव्य की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है वही आधार द्रव्य है।

ध्यान के प्रकरण में द्रव्य के बारे में वर्णन चल रहा है। द्रव्य कैसा होना चाहिए? तो जिसके माध्यम से ध्यान किया जायेगा यह शरीर व्यवस्थित हो उसके पहले जो इस शरीर में जीव द्रव्य है वह देखने में नहीं आता उसके आधार से ही ध्यान होता है। वह द्रव्य ही ध्यान का एक प्रमुख साधन है। जीव ही ध्यान करता है और श्रेष्ठ परमात्मा का अगर ध्यान करते हैं तो यह एक द्रव्य है यह एक आलम्बन स्वरूप है। उस ध्यान के लिए और भी बाहरी सहायक रूप निमित्त द्रव्य हैं जैसे कि शरीर, संहनन और शरीर के लिए आवश्यक हैं सामग्रियाँ अपना शुद्ध खान, पान। सब है लेकिन उसके साथ सहयोगी हैं अपने संयम, शील ऐसा सधा हुआ जीवन साधक का नियम से साध्य सम बन जाता है। ऐसे ही हम एक आदर्श जीवन के बारे में सुनने जा रहे हैं जिससे अपने लिए ज्ञात होगा कि ध्यान के योग्य द्रव्य कितना उत्कृष्ट होना चाहिए।

एक बार की बात है कि एक समय एक नगर में निर्ग्रन्थ मुनि महाराज जी आये हुये थे। लोगों ने बड़ी भक्ति भाव से उनका सत्संग पाया। सभी उनकी परिचर्या में लीन हैं। प्रवचन भी चल रहे हैं। नियम, संयम की साधना भी चल रही है। कोई छोटे-कोई बड़े ऐसे नियम ले रहे हैं। उन्हीं श्रावकों में से एक युवक वह विचार करता है जो कि बालक से युवा की ओर जा रहा है; उसने विचार किया है कि हम जो गुरुदेव के चरणों में आकर इनके ज्ञान को सुनकर प्रभावित हुए हैं, इनके चरणों की शरण पाकर इन जैसे ज्ञानी बन जायें, ज्ञानी बनकर अच्छे ध्यानी बन जायें और इनके समान कभी बन सकें तो बन सकें लेकिन कम-से-कम सच्चे श्रावक तो बन जायें। इस ढंग से वह उनके चरणों में रहने के लिए अनुमति माँगता है तो गुरुदेव कहते हैं कि रह तो सकते हो लेकिन यहाँ तो वैराग्य की प्रमुखता है, राग-रंग से रहित गंभीरता के साथ रहकर के ज्ञान; अध्ययन करना होता है। ठीक है गुरुदेव स्वीकार है। इसके पहले जो

तुम्हारे स्वामी हैं, रक्षक हैं, तुम्हारे लिए जिन्होंने जन्म दिया है उनकी अनुमति भी आवश्यक है। अगर वे अनुमति दे देते हैं तो बहुत अच्छा होगा, वैसे तो प्रत्येक आत्मा को धर्म पालन की स्वतंत्रता है फिर भी उनकी अनुमति बहुत श्रेष्ठ बात है। जाकर कहो माता-पिता से। तो कहा ठीक है गुरुदेव। आज्ञा जरूर मिलेगी मुझे आशा है और चला गया। जाकर माता-पिता को पूछ लिया और उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया, कहा बेटा तुमने बहुत अच्छा विचार किया है; तुम जाओ जाकर गुरुओं की सेवा करो, सेवा कर ज्ञान पाओ, ज्ञान पाकर के पुनः घर पर आना, घर आकर के हम लोगों को भी ज्ञान देना। अनुमति मिल गयी चला गया। जंगल, उपवन, नगर पर विहार होता रहा। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग रूप शास्त्र का अध्ययन चलता रहा। जब श्रावक के योग्य शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण हो चुका तब गुरुदेव ने कहा अब अध्ययन तो पूर्ण हुआ है अब आगे पढ़ना है तो मुनि बनकर के पढ़ना होता है। सिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन श्रावकों को नहीं करवाते इसलिए अब इसको जीवन में उतारो। संसार में ये परिग्रह पंचेन्द्रिय के विषय आत्मा को सुख देने वाले नहीं हैं। अपने जीवन में इस स्वाध्याय का फल संयम और चारित्र है।

मूर्ति की तरह इस आत्मा में परमात्मा प्रकट हो सकते हैं। मात्र कर्मों को तोड़ने की जरूरत है।

क्रियात्मक ध्यान में विवेक व सावधानी

''सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ सम्यक्-चारित लीजे।'' जैसा आज कहा है वैसा ही गुरुदेव ने अपने शिष्य को कहा कि- ऐसे महान ज्ञान के साथ चारित्र आयेगा तभी उस ज्ञान की शोभा है नहीं तो केवल सुगंध रहित पुष्प के समान है। ठीक है गुरुदेव। और जब वह भव्य जाने लगा तब गुरुदेव कहते हैं कि अरे! ऐसे ही जा रहे हो कुछ नियम तो ले लो! कुछ गुरु दक्षिणा तो देकर जाओ! वह कहता है कि क्या दे दें गुरुदेव आपको; क्योंकि आप तो अपने पास कुछ रखते भी नहीं हैं; धन, वैभव से तो आप बिल्कुल दूर हैं क्योंकि आप निर्ग्रन्थ हैं फिर आप जो मांगें सो देने को तैयार हूँ। गुरुदेव ने कहा पैसा ही गुरु दक्षिणा है ऐसा नहीं है; कोई नियम, संयम, चारित्र ले लो वही गुरु दक्षिणा होगी ऐसा कहा। तो क्या लेना है दे दीजिए आप। नहीं बेटा मैं नहीं देता तुम अपने मन से लेलो। तब उसने सोचा, चलो जीवन पर्यन्त के लिए एक नियम लेता हूँ, उसने ऐसा नियम लिया जो कि गुरुदेव ने पहले ही कहा था कि ध्यान करने के लिए मन की एकाग्रता जरूरी है और एकाग्रता हेतु संयम आवश्यक है। साथ ही अपने शरीर की जो शक्ति है उसका उपयोग भी प्राथमिकता से अपने ध्यान के लिए करना चाहिए अपनी एनर्जी को (शक्ति को) व्यर्थ नहीं खोनी चाहिए।

ब्रह्मचर्य के माध्यम से उत्कृष्ट ध्यान की उपलब्धि होती है वह ऊर्जा अधोगति की ओर न जाए ऊर्ध्वगति की ओर हो अन्तस् की ओर हो इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना चाहिए। चलो इतनी अधिक शक्ति तो नहीं अपने पास लेकिन कम से कम साधना तो प्रारम्भ कर ही देते हैं। और अपने मन को निर्मल बनाने के लिए आजीवन के लिए शुक्लपक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार कर लिया। शादी तो अभी नहीं हुयी है, क्या मालूम कौन-सा मार्ग मिलेगा मुझे? मोक्ष-मार्ग जल्दी से नहीं मिले तो कम से कम शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत तो रखेंगे गुरु दक्षिणा में यही दिया और देकर घर आ गया। आकर के धर्मध्यान में लवलीन हुआ। सभी लोग भी धर्म लाभ ले रहे थे। स्वाध्याय कर रहे थे। बिल्कुल सुबह चार बजे उठना, सामायिक, ध्यान, स्तोत्र पाठ करना फिर शुद्ध होकर पूजन, स्वाध्याय, शुद्ध आहार और सामायिक फिर दोपहर के स्वाध्याय बाद शाम को भोजन, फिर प्रतिक्रमण, भजन, आरती, फिर सामायिक, रात्रीकालीन स्वाध्याय, जाप ऐसे सब कुछ चल रहा था। अध्ययन और

अध्यापन से बड़ी प्रभावना हो रही थी।। गाँव-गाँव के लोग लाभान्वित हो रहे थे। चलिए अब अन्य एक जगह की और बात करें।

एक जगह आर्यिकाजी का संघ आया हुआ था। बहुत प्रभावना हो रही थी। कई छोटे-छोटे नियम संयम भी ले रहे थे लोग। लाभ लेते-लेते वहाँ पर जब उनका गमन होने लगा तब एक कन्या बोलती है जो जवानी की ओर बढ़ रही थी। जिसके मन में आया कि क्यों न हो इन माताजी के पास रहकर इन जैसा ज्ञान प्राप्त कर लें और वह बोली कि हे माताजी! हमें आशीर्वाद दें तो मैं भी आपके पास रहकर के आप जैसा ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। माताजी ने सोचा कि यह कन्या गंभीर तो है, शान्त है, चलो अपने पास रख लेते हैं लेकिन उसके पहले माता-पिता की अनुमति भी आवश्यक है। जाकर के उसने गृह में पूछा तो माता-पिता ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहा कि अच्छा है; अच्छा ज्ञान प्राप्त करो साथ ही ज्ञान प्राप्त करके घर आ जाना हमें भी ज्ञान देना। अनुमति मिल गयी बस चली गयी गुरुणी के साथ क्रम से शास्त्रों का अध्ययन हुआ। जब श्राविका के योग्य अध्ययन पूर्ण हुआ फिर वापिस घर आने लगी तब वही बात आर्यिका जी ने पूछा कुछ गुरु दक्षिणा तो देकर जाओ; हाँ! क्या गुरु दक्षिणा देऊँ कहिए चूंकि आप तो परिग्रह के त्यागी हैं अतः धन पैसा लेंगी नहीं; फिर क्या देऊँ? गुरुणी ने कहा कि धन-पैसा देना ही गुरु दक्षिणा है ऐसा नही, कुछ नियम, संयम ले लो। तो आप दे दीजिए। नहीं अपने मन से ले लो। तो उसने कहा मैं कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत पालन करूँगी और आशीर्वाद मिल गया। राजी खुशी घर आ गयी। अच्छे ढंग से धर्म ध्यान में निरत हो गयी।

धर्म ध्यान-मय षट् कार्मों को करने-कराने में प्रभावना खूब चल रही थी। लेकिन कब तक कन्या को घर पर रखेंगे लोग, अगर मोक्ष-मार्ग में चली गयी तो निश्चिन्त भी हो जाते हैं माता-पिता। नहीं तो परम्परा से संसार मार्ग तो है ही। कब तक घर में रहेगी कन्या, उनको चिंता सताने लगी कि इसका विवाह करना है। और योग्य पति मिल जाए जिससे इसका नियम संयम पलता रहे। इसका धर्म सुरक्षित रहे इसको कोई बाधा न हो ऐसा कोई सुयोग्य कुल मिले, धार्मिक परिवार मिले, ऐसी खोज में निकले पिताश्री। खोजते-खोजते उसी नगर में पहुँचे जहाँ जिसने गुरु के पास रहकर धर्माचरण पाया था। चलो देखते हैं कुंडली मिलती है कि नहीं, गुण धर्म मिलते हैं कि नहीं। नहीं मिले तो कुछ गड़बड़ हो जाती है। डॉयवर्स वगैरह हो जाता है। गुण

धर्म मिल जाय तो घर स्वर्ग बनेगा अच्छा रहेगा नहीं तो गृह में महाभारत होने लगेगा। गुण धर्म मिलाने लगे। भाग्य से दोनों के गुण धर्म मिल गये। सगाई हो गयी और शादी भी हो गयी। अपन तो उस मार्ग में गए ही नहीं हैं तो अपन जानते भी नहीं ज्यादा कि कैसे हुई क्या हुई? सब हो गया घर में बहू बनकर आ गयी। एक कमरे में दोनों बैठकर एकान्त में बात करते हैं कि किसके कितने नियम हैं जिससे कि अपन उसमें सहयोगी बन सकें तो पत्नी ने पति से पूछा बताइए जिन गुरुदेव के पास आपने स्वाध्याय किया था उनसे आपने कौन से नियम, संयम लिये थे? तो पति ने बोला हाँ मैंने आजीवन शुक्ल पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया है! सुनकर उस बहू को बहुत आनन्द हो गया। भाव तो था ही कि हम आर्यिका बन जायें नहीं हुआ तो पापों से अलिप्त बने रहेगें और अन्त में वह साधना हमको पूर्ण रूप से संयम दिलायेगी। पति ने पूछा कि तुम्हारा क्या नियम है उसने कहा मैंने भी गुरुणी के पास आजीवन कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत लिया है तो पति देव को बहुत आनन्द हो गया। चलो सोचा ही था कि मुनि पद का लाभ हो अब संसार से अलिप्त रहकर उसी पद की साधना करेंगे। देखिए शादी होने के बाद भी दोनों ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त रहे और दोनों भाई-बहन के समान घर में रहकर मोक्ष मार्ग पर चलने की साधना करने लगे। अब एक से दो मिल गये तो धर्म की प्रभावना और अधिक होने लगी। एक महिलाओं को पढ़ाती और एक पुरुषों को पढ़ाते। गाँव-गाँव से भी बुलावा आता। नित्य प्रति सामायिक, पूजन, सामूहिक स्वाध्याय करते चले जाते। प्रशस्त भावना और प्रभावना के साथ धीरे-धीरे चार, पाँच वर्ष बीते। सास तो कुछ तेज स्वभाव की थी। वह बोलने लगी कि कैसी बहू आयी है घर में अभी तक तो कोई सन्तान नहीं दिखती। अब बताओ भैया वे लोग तो कितने संयम से रह रहे हैं यह कौन जाने।

धीरे-धीरे दिन बीत रहे हैं प्रभावना बढ़ रही है। चारों तरफ बहुत प्रशंसा थी एक दिन क्या हुआ कि एक व्रती महिला थी उसके यहाँ प्रतिदिन चौका रहता ही था क्योंकि व्रती तो थी ही। पहले जमाने में तो सबके घर में शुद्ध भोजन ही बनता था। शुद्ध वस्त्रों से भोजन बनाते थे और करते थे। आज-कल के लोगों की बात क्या कहें लेकिन पहले काल में तो रोज वस्त्र धोते थे रोज पहनते थे। ज्यादा वस्त्रों का ज्यादा परिग्रह भी नहीं रखते थे, योग्य काल में पड़िगाहन करने खड़े हो जाते थे। भोजन करने के पहले द्वारापेक्षण करते ही थे। आहार बेला निकलने के बाद ही श्रावक लोग आहार

ग्रणह किया करते थे। ''मुनि को भोजन देय फिर निज करहिं अहारें'' मुनियों की आहार बेला टलने के बाद ही आहार करते थे। वहाँ पर भी यही हो रहा था। तो वह एक वृद्ध व्रती महिला रोज पड़िगाहन करने खड़ी होती थी और प्रतिदिन कुएँ से पानी लाना अच्छे शुद्ध ढंग से मोटे कपड़े से छानकर जीवानी को जहाँ से पानी निकाला था वहीं पर विधिवत् छोड़ना आदि जलगालन क्रिया किया करती थी। एक दिन घर के लोगों के साथ हाथ में कलश लेकर पड़िगाहन के लिए खड़ी थी। उसके भाग्य से जंगल से महाराज जी आ रहे थे। ज्यों ही सामने महाराजजी दिखने लगे तो बोलने लगीं। आप लोग क्या बोलते हैं हे स्वामी! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु, अत्र, अत्र, अत्र, तिष्ठो, तिष्ठो, तिष्ठो। बस बस यही तो सुनना चाहता था। तो आपकी इसमें कोई कमी तो नहीं है। देखो और समझ लो हे स्वामी! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु तो ठीक है और अत्र का मतलब यहाँ। तिष्ठो मतलब रुकिए। आपने आइए कहाँ बोला? पूजा में तो बोलते हैं; वास्तव में पड़िगाहन में भी यह बोलना चाहिए, कुछ लोग बोलते भी हैं कि हे स्वामी! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु, अत्र, अवतर, अवतर, अवतर तिष्ठ स्वामी तिष्ठ। अत्र (यहाँ) तो एक बार, और अवतर (आइए) तीन बार तथा जब पास में आ गये हों तो तिष्ठ (रुकिये) बोलना चाहिए। वरना कोई संस्कृत जानने वाला सुने तो क्या कहेगा कि क्या बोल रहे हैं ये लोग; आइए तो बोल नहीं रहे हैं। इसलिए आप लोगों से बुलवाया है। हम लोग कहाँ भूल रहे हैं। इसको समझिये। तो महाराजजी हम लोग संस्कृत तो जानते नहीं है? आप कहें कि हम लोग हिन्दी में बोल देंगे कि हे स्वामी नमस्कार हो यहाँ आइए, यहाँ आइए, यहाँ आइए, यहाँ रुकिए पधारिए। आप हिन्दी में बोलेंगे तो मराठी वाले मराठी में बोलेंगे हे स्वामी नमस्कार इकड़े या, इकड़े या, इकड़े या इकड़े थाम्बा। महाराजजी को मराठी नहीं मालूम हो तो क्या जानेंगे। फिर कर्नाटक में जायेंगे तो कन्नड़ में बोलेंगे हे स्वामी! नमोस्तु इल्ली बन्हीं, इल्ली बन्हीं, इल्ली बन्हीं, इल्ली निल्लसी। बड़ा कठिन हो जायेगा। फिर तमिलनाडू जायेंगे तो तमिल में बोलेंगे कि हे स्वामी वणक्कं! इंगे वारूङगल, इंगे वारूङगल, इंगे वारूङगल, इंगे निल्लुङगल समझना बड़ा कठिन हो जायेगा। इसलिए सब जगह संस्कृत में बोलने की परम्परा है। संस्कृत तो महाराज जी परम्परा से जानते हैं। श्रावकों को भी समझना चाहिए। इसलिए मैंने बोला समझ में आया है न। अब तो कुछ परिवर्तन लाना है।

उन अम्मा जी ने पड़िगाहन किया जब महाराजजी रुक गये तब तीन प्रदक्षिणायें दीं और हे स्वामी मनशुद्धि, वचनशुद्धि कायशुद्धि, आहार जलशुद्धि है मम गृह में प्रवेश कीजिए बोली। घर से दूर पड़िगाहन किया हो तो गृह के द्वार पर आने के समय पुनः शुद्धि बोलते हैं। फिर गृह प्रवेश के समय सर्वजन पैर धोकर चौके में प्रवेश करते हैं। लेकिन महाराजजी तुरन्त अन्दर नहीं जाते चौके के बाहर ही खड़े हो जाते हैं और जब श्रावक बोलेंगे कि हे स्वामी! भोजनशाला में प्रवेश कीजिए! तब महाराजजी अन्दर जायेंगे और फिर एकदम बैठ नहीं जायेंगे। हे स्वामी! उच्चासन ग्रहण कीजिए! ऐसा बोलेंगे तभी बैठेंगे, फिर प्रादप्रक्षालन किया, पूजा की, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जल शुद्ध है भोजन ग्रहण कीजिए नमोस्तु महाराजजी बोली। हो गयी न नवधाभक्ति 1. पड़िगाहन 2. उच्चासन 3. पादप्रक्षालन 4. पूजन 5. मनशुद्धि 6. वचनशुद्धि 7. कायशुद्धि 8. आहार जलशुद्धि और 9. नमोस्तु ये नवधाभक्ति कहलाती है।

फिर महाराजजी को आहार दिखाया, जो जो त्याग था सो उठवा दिया फिर गद्-गद् भावों से आहार दिया और लजिए, और लीजिए महाराज! अभी तो कुछ लिया ही नहीं है। सब लेने के बाद भी बोलते हैं कुछ लिया ही नहीं है और महाराजजी लोग तो सब लेते भी नहीं हैं पूरा-पूरा तो लेते ही नहीं हैं, बहुत त्यागी रहते हैं, कुछ रस परित्याग भी रखते हैं, आप लोग जैसे आहार नहीं लेते।

वहाँ उस अम्मा ने महाराजजी को सम्पूर्ण आहार कराया फिर, महाराजजी को उच्चासन बिठाया, स्तुति भजन भी पढ़ लिये, फिर महाराजजी से पूछा कि महाराजजी हमें छोटा-सा नियम लेना है। क्या लेना है? मुझसे कुछ दोष लग गया है, मैं रोज जीवानी करती हूँ, कुएँ से पानी निकालती हूँ, सूर्य प्रकाश भी न दिखे ऐसे मोटे छन्ने को दुहरा (डबल) लगाती हूँ उससे पानी छानती हूँ फिर उस जीवानी को विधिवत् (कुंदे वाली बाल्टी से) नीचे कुएँ में छोड़ती हूँ। मतलब ऊपर से नहीं फैकती हूँ। देखो भैया आज एक बूँद में 36,450 जीव बताये हैं फिर इलॉक्ट्रानिक माइक्रॉस्कोप से देखा गया कि एक बूँद पानी में करीब पाँच लाख से भी अधिक जीव बताये हैं और अपना जैन धर्म तो और भी सूक्ष्म है क्योंकि जिसका वैज्ञानिक लोग परमाणु बोल रहे हैं वह हमारे यहाँ स्कन्ध है परमाणु और भी छोटा है तो हमारे जैन धर्म से पूछा जाय तो एक बूंद पानी में असंख्यात जीव हैं। मैंने स्वयं एक बार देखा था

कि एक बूंद रखी है जिसमें कुछ नहीं दिख रहा है और उस प्लेट को जब लेन्स के नीचे रख देने पर देखा तो कोपर के बराबर वह बूंद दिख रही है और मक्खी के समान असंख्यात जीव यहाँ वहाँ भाग रहे हैं; अरे भगवान! एक बूंद पानी में इतने जीव हैं तो एक ग्लास में कितने होंगे एक बाल्टी में कितने होंगे आज ऐसे ही बहा देते हैं पानी। या लोग गट्-गट् पी भी जाते हैं तो सभी जीव मर जाते हैं पेट में, वे बैक्टीरिया-वायरस हैं और वे ही वायरस रोगों को उत्पन्न करते हैं। खूब ट्रीटमेन्ट करते हैं। खूब दवाईयाँ सौंफ-सुपाड़ी के समान खाते रहते हैं लोग। इसलिए आज बहुत हॉस्पिटल बन रहे हैं। एडमिट होने को जगह नहीं है। यह सब क्यों हो रहा है? लोगों का अशुद्ध खान-पान है इसलिए और निर्मल भावों का होना भी मुश्किल है जिससे उत्तम ध्यान हो सके। इस प्रकार से उस अम्मा ने कहा कि महाराजजी जब मैं जीवानी छोड़ रही थी तब हाथ काँपने से छन्ने से थोड़ी-सी जीवानी नीचे गिर गयी। तब थोड़ी-सी जीवानी नीचे गिरने से जो बड़ा पाप लगा हो तो मैं अणुव्रती हूँ इसलिए मुझे प्रायश्चित्त दीजिएगा। जैसा काल रहता है वैसा प्रायश्चित्त दिया जाता है। महाराजजी ने कहा तुम्हें रोज दो व्रतियों को आहार कराना है। कोई कठिन नहीं है महाराज; कराते ही हैं महाराजजी; रोज ही चौका रहता है। महाराजजी ने कहा ठीक है कराते रहना। हाँ महाराजजी हम तो कराते रहेंगे लेकिन प्रायश्चित्त कब पूरा होगा? महाराजजी ने कहा- जिस दिन तुम्हारे यहाँ असिधारा व्रत वालों का आहार होगा-तब तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा होगा। असिधारा व्रत किसको कहते हैं? शादी होने के बाद भी जो ब्रह्मचर्य से रहते हैं उसका नाम है असिधारा व्रत। जो पति-पत्नी एक साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्य से रहते हों ऐसे व्रत वाले जब तुम्हारे घर पर आ जायेंगे तो तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा हो जायेगा। तो हमें कैसे मालूम पड़ेगा महाराजजी; हम किस-किस से पूछेंगे इस संबंध में? तो उन्होंने कहा तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा हो गया; इसके बोलने के लिए एक संकेत तुम्हारे चौके में होगा, जो चंदोवा लगा है वह काला पड़ गया है और जिस दिन तुम्हारा प्रायश्चित्त पूरा हो जायेगा उस दिन वह चंदोवा सफेद हो जायेगा।

बस; वह रोज ही देखने लग गई चंदोवा को कई व्रती लोग आये कई दिन निकले लेकिन चंदोवा सफेद नहीं हुआ। एक दिन वह अवसर आया कि एक पति-पत्नि गृह पधारे आमंत्रण तो किया ही था। बहुत अच्छे से नीचे देखते हुए आ रहे थे। यहाँ-वहाँ नहीं देखते थे ज्यादा कुछ भी ज्यादा बात भी नहीं करते थे। बहुत ही

सादगी, बहुत गंभीरता थी उनमें, आइये बोला तो घर के सामने खड़े हो गये वे और जब पैर धोने के लिए पानी दिया तब पैर धोकर अन्दर आये, फिर खड़े हो गये, फिर चौके में बुलाया तो चौके में आये, बैठिये कहने के बाद बैठे। भोजन दिखाया तो बहुत कुछ चीजें त्याग थीं, वे चीजें उठवा दीं, ऐसा लग रहा है कि आज ऐसा तो नहीं है कि इनसे हमारा प्रायश्चित्त पूरा होने वाला है। इनको देख कर ऐसा लग रहा है ये कहीं मुनिराज के पास रहे हों और ये आर्यिका के पास रही हों ऐसा लग रहा है। इतनी पवित्रता, शुद्धता, गम्भीरता है। भोजन करने के लिए निवेदन किया, फिर हाथ धो लिये एक-एक चीज को अच्छे से शोध लिया। हाथ धोकर कायोत्सर्ग किया और सिद्धभक्ति पढ़ कर आहार शुरु किया और बीच-बीच में परोसते समय इशारे से कुछ मना करते जा रहे थे। तुम लोग तो नहीं करते हो मना, लाओ-लाओ रखो-रखो कहते हो, कि मना करते हो? श्रावक मना नहीं करते किसी को दुःखी नहीं करते हो न? मँगा ही लेते हो। कुछ लोग ऐसे भी रहते हैं मालूम है?

एक जगह क्या हुआ कि एक बार एक दामाद साहब या लालाजी ससुराल आये हुये थे। जब भोजन करने बैठे तो दामाद साहब देख रहे थे कि पापड़ सामने ही तलकर रखा हुआ है लेकिन सास परोस नहीं रही हैं। मंगा तो सकते नहीं और मौन भी नहीं था। तो दामाद साहब ने सासूजी से कहा सासूजी आज मेरा मन हो रहा है कि आपको एक कथा सुनाऊँ। अच्छा सुनाओ। मैं एक बार बड़े घोर जंगल में गया था। जंगल में? हाँ जंगल में। वहाँ बहुत से प्राणी देखे थे हमने। शेर, चीता, हाथी देखा और एक बहुत बड़ा सर्प भी देखा। सर्प? हाँ सर्प! कितना बड़ा था? यहाँ से लेकर उस पापड़ तक था, तो सासूजी को पापड़ याद आ गया अरे पापड़ नहीं परोसा; फिर परोस ही दिया। सासूजी थोड़ी अलग प्रकृति की थीं। घी की कटोरी ठंडे पानी में रखती थी तो घी जमा रहता था। जब घी परोसने का नम्बर आये तो कटोरी को 'हूँ' करके एक तरफ रख देती थी। घी की कटोरी टेढ़ी क्या? ओंधी करने पर घी नहीं आता दामाद साहब बहुत परेशान; 'हूँ' करके रख देती है घी तो आता ही नहीं। थोड़ा सासूजी पानी लेने अन्दर चली गयी तब तक दामाद साहब ने घी की कटोरी को आँच दिखा के रख दी। सासूजी आयी और खिचड़ी परोसी और घी डालने के लिए घी की कटोरी उठायी और 'हूँ' कर दी तो पूरा घी थाली में चला गया। अब सासूजी विचारमग्न हो गयी और बोलती हैं कि दामाद साहब आज मुझे एक इच्छा हो रही है। क्या इच्छा? आज आपके

साथ भोजन करने की इच्छा हो रही है। आ जाओ! जब भोजन करने बैठी तो खिचड़ी में ऐसी लकीर बनायी कि पूरा घी अपनी तरफ आ गया। तो भय्या इतने विकल्प रहते हैं लोगों को जब भोजन करते हैं तो तरह-तरह से लोभ लालच की बातें करते हैं, अतः अपना मन प्रशस्त होना चाहिए। राग द्वेष रूप विकल्प निकल गया तो ध्यान अच्छा हो जायेगा। लोगों को इतना समाधान नहीं रहता है; कहते हैं कि जो व्यक्ति मौन से आहार करते हैं, जो आ जाय थाली में उसे अपना भाग्य समझकर खा लेते हैं। कुछ भी इशारा नहीं करते हैं जैसा है वैसा ले लेते हैं उनके अन्तराय कर्म का क्षय होता है क्योंकि तुम्हारा अगर लाभान्तराय कर्म होगा तो तुम्हारी थाली में वह वस्तु नहीं आयेगी उस लाभान्तराय कर्म के उदय से तो वस्तु आकर भी कोई न कोई बाधा उपस्थित हो जायेगी। बताइए वह घी पूरा नहीं मिलना था अतः उसने लकीर बना ली। अर्थात् अपना-अपना कर्म कितना तीव्र प्रभाव दिखाता है ये इससे जान लो और साथ-साथ में अपना-अपना अन्तराय कर्म क्षय करो उसके लिए तुम्हें क्या करना पड़ेगा मौन के साथ आहार ग्रहण करो। मोक्षमार्गी महाराजजी लोग तो अन्तराय कर्म का क्षय कर रहे हैं। अन्तराय का नियम है अतः उनके आहार में मानो कि कोई बाल आ गया या जीव आ जाये तो अन्तराय कर देते हैं क्योंकि अन्तराय कर्म क्षय को प्राप्त हो जायेंगे; नहीं तो फिर कभी भी उदय में आयेंगे। अतः इसी जन्म में क्षय कर दो, क्योंकि अनादि काल के बहुत सारे कर्म काटना हैं इसलिए नियम लेते हैं। आप लोगों का नियम नहीं है और बाल आ गया तो अलग किया और खाया, फिर अन्तराय कर्म क्षय नहीं होंगे। आपको एक काम करना है! मौन के साथ आहार लेओ। जो भी हमको परोसे उसमें सन्तुष्टि रखो। इशारा मत करो। तुमने इशारा कर दिया तो अन्तराय कर्म नहीं निकलेगा। भोजन होने के बाद; कम परोसने वाले को डांट लगा दी तो भी नहीं निकलेगा। बिल्कुल भी कुछ मत बोलो और ये सोचो कि दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम। बस! यही है धर्मध्यान का रास्ता।

ध्यान की प्रसिद्धि में मन व आहार

ध्यान के योग्य द्रव्य के प्रकरण में आहार द्रव्य पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। आहार शुद्ध और सात्विक होना चाहिए। आजकल लोग आहार के क्षेत्र पर कोई ध्यान नहीं दे पाते हैं। जो भी बाजार में मिलते हैं तो ले आते हैं और बहुत रुचि लेकर खाते हैं, पैसे भी अधिक बर्वाद करते हैं। वे अम्माजी जब उन दोनों व्रती पति-पत्नि के लिए अच्छे से आहार करा रही थीं। वे दोनों भी शोधन करते हुए भोजन ले रहे थे और ज्यों ही आहार पूरा हुआ त्यों ही ऊपर की ओर देखने लगीं तो वह चंदोवा पूरा सफेद हो गया और अहिंसा परमो धर्म की जय, शील धर्म की जय बोलने लगीं। धन्य हैं आज मेरा प्रायश्चित्त पूरा हुआ है, असिधारा व्रत वाले मेरे घर आये और जयकारा बोलती हुई घर तक छोड़ने के लिए गयीं। जय जयकार सुनकर लोग कहने लगे कि कोई महाराजजी आ गये हैं क्या? बाहर आकर देखा अरे! क्या हो गया जय जयकार क्यों बोल रही हो? बोला अरे! आज हमारा सौभाग्य है ऐसे महान असिधारा व्रत धारक ये बेटा, बहू हैं जिनका आज मेरे घर में आहार हुआ मेरा प्रायश्चित्त भी पूरा हुआ। असिधारा व्रत क्या कहलाता है? ऐसा पूछे जाने पर कहा कि तुम्हारे बेटा-बहू दोनों ब्रह्मचर्य व्रत से रहते हैं। अरे! मैं तो सोच रही थी कि संतानें नहीं हो रही हैं ऐसा कह करके वह सास माथा ठोकने लगी ''मैं कितनी पापी हूँ''। सब लोगों ने सम्मान किया उन दम्पत्तियों का। वे असिधारा व्रत धारक सोचने लगे कि अब हमें क्या करना है? अब तो बहुत धर्म प्रभावना हो गई बहुत साधना कर ली। संसार तो हमें बढ़ाना नहीं, परिवार तो रचाना नहीं इसलिए आप लोग हमें आज्ञा दे दें। हम जाकर अपना आत्म कल्याण करें। आज्ञा दी सबने। वह जाकर के अपने गुरु के पास मुनि दीक्षा लेकर विजयसागर बन गया और यह जाकर के अपनी गुरुणी के पास आर्यिका दीक्षा लेकर विजयामति बन गयी। दोनों ही महान बन गये।

ध्यान साधना करने के लिए भोजन पर कन्ट्रोल रखना चाहिए। कम से कम रात में तो नहीं खायें। दिन भर मिला है खाने के लिए फिर भी रात को खाते हैं। लोग थोड़ा मुंह को विराम तो दे दें। पेट कहता है नो अडमिशन विदाउट परमिशन। फिर भी डालते जाते हैं। यह रात्रि भोजन नहीं करना जैनियों का प्रथम चिन्ह है। जैन धर्म के अनुसार रात में बहुत जीवों की उत्पत्ति होती है वे भोजन में गिर जाते हैं तो उसको

सेवन करते समय उन जीवों का घात होने से मांस सेवन का दोष लगता है और विज्ञान के अनुसार भी रात में भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि रात में अपनी जठराग्नि जो पाचन क्रिया में सहायक है वह मंद पड़ जाती है, आक्सीजन भी पर्याप्त मात्र में नहीं मिलती है और पूरा पेट भर खाकर सोने पर बुरे-बुरे स्वप्न आते हैं, सिरदर्द, कब्ज आदि भी हो जाता है। इसलिए रात को नहीं खाना चाहिए। चिड़ियाँ तोते आदि पक्षी भी रात में नहीं खाते। खाने की बात तो दूर है, बोलते भी नहीं हैं। क्या हम व्रतों में चिड़िया से भी छोटे हैं; कि बड़े हैं? सोचिए एक और उदाहरण सुनिये कि कैसे तिर्यञ्चों ने भी व्रत को पालन किया।

एक बार जंगल में बहुत प्यासा एक सियार भटक रहा था। भटकते-भटकते उसको एक जगह धर्मामृत वर्षाते हुए एक मुनि महाराजजी मिल गये। गुरु महाराजजी वाणी में इशारे के साथ समझा रहे थे कि रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। सूर्यास्त होने के बाद पानी भी नहीं पीना चाहिए। उसने अपने अन्दर व्रत को धारण कर लिया। फिर चल दिया। प्यासा था इसलिए यहाँ-वहाँ पानी को ढूँढ रहा था। तो एक कुँयें में उसको पानी दिखा और सीढ़ियाँ भी बनी हुयी थी। लेकिन बहुत गहरा था। उतरकर अन्दर गया तो अन्धेरा सा लगा सोचने लगा कि अंधेरे में पानी कैसे पीऊँ? तो वापिस ऊपर आया। अरे अभी तो प्रकाश है सूर्यास्त नहीं हुआ सोच करके वापिस नीचे गया तो और बहुत अन्धेरा सा दिखने लगा तो वापिस ऊपर आया तब तक तो सूर्यास्त हो ही गया था। तो प्यासा ही बैठा रहा, वृद्ध भी हो गया था। उसने अपने त्याग के साथ रात में पानी भी नहीं पीया और प्राण छोड़ दिये। चारों प्रकार के आहार छोड़ दिये थे। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय। खाद्य में रोटी, भात आदि स्वाद्य में सोंफ, सुपाड़ी आदि, लेह्य में रबड़ी आदि पेय में दूध, पानी आदि इस प्रकार चारों प्रकार के आहार माने जाते हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में लिखा है कि जो रात में चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैं उनको एक वर्ष में छः महीने के उपवास का फल मिलता है। ऐसे ही हिन्दू धर्म के पुराण में लिखा है कि एक महीने में 15 दिन के उपवास का फल मिलता है। रात में पानी भी नहीं पीना चाहिए। मध्यप्रदेश के शिक्षा मंत्री मेरे पास अशोक नगर में आये थे। तो लोग बोले कि आइये भोजन कीजिए; तो नहीं मैं करके आया हूँ मैं शाम को छः बजे के बाद कुछ भी नहीं लेता हूँ। अरे! पेय तो ले लीजिये। अरे! महाराजजी मुझे किसने मंत्री बना दिया। पूछा क्यों? तो कहा महाराजजी हमने तो रात में चारों

प्रकार के आहार का त्याग किया हुआ है। क्यों; कैसे? हमारी माँ ने ऐसा संस्कार दिया है कि मैं चउव्विहा करता हूँ रात में पानी भी नहीं पीता हूँ। किसने मंत्री बना दिया। हमने कहा कि अरे! लोग तो बहाने बनाते हैं कि हमें बाहर जाना पड़ता है, वे तो प्रायः बाहर ही घूमते हैं। वे पाँच बजते ही अपना डब्बा खोल कर अपनी कार में ही बैठ के ही खाने लगते हैं। ऐसे मंत्री आज भी हैं। बताइये श्वेताम्बर जैन होकर मिनिस्टर अवस्था में भी हो करके पालते हैं लेकिन कुछ लोग तो बहाने बनाने में बड़े माहिर हैं। एक स्यार ने वह नियम पाला और वह मर करके एक सेठ का पुत्र हुआ। उसका नाम हुआ था प्रीतिंकर, चतुर्थकाल में जन्म हुआ। जो भी पुत्र को देखते थे तो बहुत आनन्द होता था इसलिए प्रीति को उत्पन्न कराने वाला प्रीतिंकर कहलाता था। बहुत वैभव था फिर भी दीक्षा लेकर तपस्या करके मोक्षपद को प्राप्त हुआ। वह देखिये एक स्यार तिर गया तो फिर क्या यह मानव नहीं तिर सकता है। अवश्य तिर सकता है लेकिन पुरुषार्थ की बात है। अपना शरीर रूपी द्रव्य कैसा होना चाहिए यह उन विजय, विजया के कथानक से सुना। सात्विक आहार से उत्तम ध्यान होता है । अशुद्ध आहार अपने अन्दर विकृति को पैदा करता है। जैसे आप लोग कहते हैं न, कि ''जैसे खावे अन्न, वैसे होवे मन। जैसे पीवे पानी वैसे होवे वाणी।।'' जैसा अन्न खाते हैं वैसे भाव उत्पन्न होने लग जाते हैं। चोरी का आहार दिया जाए तो चोरी के भाव हो जाते हैं और हुआ भी था ऐसा।

एक योगी जंगल में रहते थे। निर्ग्रन्थ तो नहीं थे, कपड़े वाले थे। कोई आकर के आहार के लिए बुला ले तो उनके यहाँ चले जाते थे। एक दिन किसी महिला ने बुला लिया। बुला तो लिया लेकिन मान ख्याति के लिए देखो! इसने योगी का आहार अपने घर में करवाया है इस प्रकार सब प्रशंसा करेंगे। ऐसा सोचकर बुला लिया लेकिन व्यवस्था नहीं थी। जितना था उतना परोस दिया। जो कम रह गया तो बाजू वाले घर में गयी और बिना पूछे कुछ सामान ले आयी और उन योगी को परोस दिया। बिना पूछे कुछ भी पर वस्तु उठाना चोरी है। वह चोरी का आहार योगी ने खाया। खाते-खाते ही परिणाम बदल गये। पचने की बात तो अलग है। उनके बाजू में एक सोने की कटोरी रखी थी। उसमें बाती लगायी गयी थी दीपक जैसा बना हुआ था। उसके ऊपर उनकी नियत बिगड़ गयी। चोरी का खाया तो चोरी का भाव हो गया। वह महिला कुछ काम में लग गयी थी तब उन्होंने वह सोने की कटोरी उठायी और अपने

डिब्बे में डाल लिया। पानी का डिब्बा लेकर अपनी झोपड़ी में आ गये। आने के बाद आहार पचते-पचते सोचने लगे कि हमने ये क्या कर लिया। कभी भी हमने ऐसा किया नहीं फिर किस कारण हुआ। ये समझ में नहीं आया और ज्यों-ज्यों आहार पचता चला गया त्यों-त्यों उनको पश्चाताप होता गया और पूरा आहार पच गया तो उनके पूरे परिणाम निर्मल हो गये। मैंने बहुत अनर्थ कर दिया। इसको वापिस देकर आना चाहिए। ये तो मेरे कर्त्तव्य के विपरीत है चोरी करना तो महापाप है। तुरन्त चल दिये और जहाँ जिस नगर में जिस घर में आहार हुआ था वहाँ पर गये और उन अम्माजी को सोने की कटोरी वापिस दे दी। अम्माजी कहने लगी अरे! यही तो ढूंढ़ रही थी कि सोने की कटोरी कहाँ गयी, योगी जी तो ले जायेंगे नहीं और कोई आया भी नहीं। योगी जी कहने लगे मैंने तो कुछ नहीं छुपाया, पूरा-पूरा बताया दिया अब तुमने क्या किया वह भी सही-सही बताओ। मैं किसी से नहीं कहूँगा, तुमने जो आहार दिया था वह आहार कैसा था? क्या चोरी का तो नहीं था? उसका सिर नीचे हो गया और कहा योगीजी बहुत बड़ी भूल हो गयी। बता दो क्या हमारे पास जो वस्तु नहीं थी तो मैं बाजू के घर से बिना पूछे ले आयी और आपकी थाली में परोस दी। बस! समझ में आ गया '**जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन**' चोरी का आहार दिया तो चोरी के भाव हुए। तो जानिये आज अशुद्ध आहार से विचार बदल रहे हैं। लोगों का मन धर्म से हट रहा है, विलग हो रहा है इसका एक कारण आहारादिक की अज्ञानता तो है ही दूसरा कारण धर्म का प्रचार कम है। तीसरा योगियों का सान्निध्य भी कम है। पढ़ाई व सर्विस के लोभ में माता-पिता के संस्कार और जिनातनों से लोग दूर भाग रहे हैं जिस कारण आज का खान-पान बहुत बिगड़ चुका है। बहुत अशुद्धता आ गई है, अन्याय, अनीति से धन कमाया जा रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि विचार-आचार बदल रहे हैं क्योंकि आचार-विचार भी खान-पान पर आधारित हैं। इसलिए कहते हैं आहार शुद्ध होना चाहिए और धन न्याय, नीति से कमाया हुआ होना चाहिए। तभी सम्यक् ध्यान की प्रसिद्धि होना संभव है।

जब तक सद्गाचारियों से मन मिलता है तब तक गुणों के दल खिलते हैं और जब मन छलता है तब दुखों के शूल मिलते हैं।

आज के विज्ञान में जैन धर्म की झलक

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म भूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां,वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

हम मनुष्य हैं ! मनुष्य किसको कहते हैं ? मनुष्यत्व स्वभाव वालों को मनुष्य कहते हैं। मनुष्यत्व स्वभाव का मतलब जो ''मनु'' की परम्परा से आये हैं, या उनके उपदेश से चल रहे हैं ऐसा अर्थ लेना चाहिए। ''मनु'' कौन हैं ? कुलकरों को ''मनु'' कहते हैं। इस भू पर मनुष्य लोक में उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी ऐसे काल आते हैं। इस हुण्डावसर्पिणी काल के कुलकरों में आदिनाथ (वृषभदेव) भी एक कुलकर हुये हैं। कुलकर; साधारण मनुष्यों को धर्म-कर्म और जीने का उपदेश देते हैं। उन्होंने हम सबको धर्म-कर्म और जीने का उपदेश दिया है, जीवन की उन्नति के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे चार पुरुषार्थ बतलाये हैं तथा लोगों को असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या ऐसे जीवन जीने के छः उपाय या कर्म बताये हैं।

यह आत्मा जब धर्म पुरुषार्थ से मोक्ष पुरुषार्थ करने की इच्छुक रहती है तब उस आत्मा को मोक्षमार्ग की आवश्यकता पड़ती है। आदिनाथ प्रभु ने राज्य वैभव सब छोड़कर स्वयं दीक्षा लेकर हम सबको मोक्षमार्ग दिखाया है। वह मोक्षमार्ग कौन-सा है?

''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।'' त.सू.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों की एकता का नाम ही मोक्षमार्ग है। वे आदिनाथ प्रभु स्वयं ही निर्ग्रन्थ बनकर दीक्षा लेकर मोक्षमार्ग पर चले और कठोर तपस्या करके उन्होंने एक दिन केवलज्ञान को प्राप्त किया। ऐसे केवलज्ञान को भी वीतराग-विज्ञान के आधार से ही प्राप्त किया। उन्होंने जिस मोक्षमार्ग को धारण कर उसका पालन किया था, उसी धर्म का सभी लोगों को उपदेश भी दिया। हमने भी मनु की परम्परा से चार पुरुषार्थों का उपदेश प्राप्तकर, मनुष्य जीवन को प्राप्त किया है। मनुष्य गति में जन्म लेने मात्र से मनुष्य नहीं होते हैं। हमें कुछ कर्त्तव्यों को करना चाहिए। जीवन व्यतीत करना, खाना, सोना मात्र हमारा जीवन नहीं है। किन्हीं चार्वाकों का कहना है कि-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भष्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥

जितना जीना है सुख से जियो, ऋण करके भी घी पियो क्योंकि इस शरीर

के नष्ट हो जाने पर पुनः आगमन कहाँ है ? लेकिन ऐसा नहीं है जीवन; क्योंकि ऐसा सोच रखने वाले नास्तिक होते हैं। जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए नहीं तो–

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्य लोके भुवि भार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जिनके जीवन में विद्या नहीं है, तप नहीं है, दान नहीं है, ज्ञान नहीं है, शील नहीं है, गुण नहीं है और धर्म नहीं है, वे मनुष्यगति में जन्म लेने पर भी तिर्यञ्च के समान विचरते हुये इस भूमि पर भार रूप रहते हैं।

इस जीवन में अपनी आत्मा के लिए धर्म कार्य करना, सभी जीवों को समान देखना, सभी जीव सुखी रहें ऐसा सोचना ये सब कार्य करना मनुष्य का स्वरूप है।

धर्म का पहला अंग या आधार अहिंसा है। जहाँ अहिंसा है वहाँ पर ही चारित्र रूपी महल स्थिर रह सकता है। जहाँ अहिंसा नहीं है, वहाँ पर कुछ भी धर्म नहीं है। इसलिए तो **''धर्मस्य मूलं दया''** धर्म की जड़ दया–करुणा है ऐसा कहा है। महल बनाने वाले पहले नींव बनाते हैं। वह बहुत पक्की होना चाहिए, जितनी पक्की नींव बनेगी उतना ऊँचा महल बनेगा। पक्की नीव नहीं तो शीघ्र ही महल टूट जायेगा मिट्टी बन जायेगी। वैसे ही हम जितने अच्छे ढंग से अहिंसा पालन करेंगे उतने अच्छे ढंग से आगे गुणों का विकास करेंगे। अन्यथा विचलित हो जायेंगे।

उस अहिंसा को जानने के लिए उस को बतलाने वाले तीर्थंकरों पर, उस पर चलने वाले ज्ञानियों पर, महान आत्माओं पर, हमें श्रद्धा–(विश्वास), रुचि रखना चाहिए। जो वीतराग विज्ञान से केवलज्ञान को प्राप्त कर अपनी आत्मा से इस लोक को जानते हैं, देखते हैं, उन्होंने ही हमें इस लोक का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप और वस्तु का स्वरूप बतलाया है और हम भी एक दिन इस लोक का स्वरूप साक्षात् जान कर ही वीतराग विज्ञानी बन करके ही अपने लक्ष्य–मोक्ष को प्राप्त कर सकेंगे।

यह आत्मा सब कुछ करता है। सभी वस्तुओं का अनुभव करता है। इस वस्तु में सुख नहीं मिला है, उसमें मिलेगा, उसमें नहीं मिला इसमें मिलेगा ऐसा हमेशा विचरता हुआ ऐसे ही सांसारिक कार्यों में लगा रहता है। जैसा सुख महान आत्माओं को वीतराग विज्ञान से मिला है वैसा सुख आज तक हमें नहीं मिला। हमें भी एक दिन निर्ग्रन्थ बनकर उसको प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि इस परोक्ष ज्ञान से कभी भी वैसा सुख नहीं मिल सकता। उस आत्म सुख के लिए वीतराग विज्ञान ही चाहिए।

इस भारत देश में बड़ी–बड़ी ज्ञानी आत्मायें हुईं हैं। तीर्थंकर और तीर्थंकरों

के काल में भी ऐसी महान आत्मायें हुयीं हैं। यह भारत देश महान आत्माओं का खजाना है। इस भारत देश में बहुत जगह सिद्ध क्षेत्र हैं, पर्वत, गुफाएँ आदि भी बड़े अतिशययुक्त धार्मिक क्षेत्र हैं। आज भी बहुत संख्या में तपस्वियों का विहार ऐसे क्षेत्र में हो रहा है। उनकी चर्या, साधना आदि हमें साक्षात् देखने को मिलती रहती है। आज भी सर्व परिग्रह त्याग करने पर बहुत शांति उनके जीवन में देखते हैं। साधारण लोगों के पास यह देखने को नहीं मिलती। वीतराग होने के बाद ही विज्ञान जागृत होता है ऐसा आज भी हम कह सकते हैं। जिस **'वि' विशिष्ट रूपेण 'ज्ञानं' इति विज्ञानं** ऐसा कहा जाता है। वह विज्ञान ही अपने आत्म सुख का कारण है। क्योंकि हमारे पास जितने पदार्थों का संयोग है उतना ही हमारा मन उनकी तरफ बाहर की ओर दौड़ता है। हम हमारी शाश्वत् शांति सुख को छोड़कर मात्र लोक की परवस्तुओं में सुख को खोज रहे हैं। उन महान आत्माओं को शांति और सुख बाह्य के संयोग से नहीं मिला, उसको छोड़ने से ही मिला है। जितना छोड़ते हैं उतना शांति और सुख का लाभ होता है; इसका अर्थ क्या हुआ? तो परवस्तु, परिग्रह अशांति का कारण है। उत्कृष्ट वैभव वाले तीर्थंकरों ने भी उसको छोड़कर उससे मुख मोड़कर अपनी आत्मा में ध्यान लगाया, जंगल में रहकर आत्म साधना करके उस महान शांति को प्राप्त किया और वीतराग विज्ञान के आधार से सभी कर्मों को नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त करके, मोक्ष सुख को पाया। जैसे दूध से घी बनकर बाद में वापस घी से दूध नहीं बनता वैसे ही यह आत्मा सभी कर्मों से छूटने के बाद मोक्ष जाने के बाद फिर वापस कभी इस संसार में नहीं आती। ये सब परिग्रह त्याग, आत्मध्यान और वीतराग विज्ञान का ही प्रभाव है।

इस भरतक्षेत्र में भगवान आदिनाथ प्रभु को आदि लेकर चौबीस तीर्थंकर हुये हैं। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी हुये हैं। उनकी परम्परा में हुये आचार्य श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी; वे द्वादशाङ्ग के ज्ञानी श्रेष्ठ आचार्य थे। उनका मंगल विहार दो हजार वर्ष पहले इस भारतदेश में हुआ। सम्राट चन्द्रगुप्त ने जिनको गुरु मानकर उनके चरणों में जिनदीक्षा धारण की थी और गुरु की सेवा में अनुरक्त थे। आचार्य भद्रबाहु स्वामी के प्रथम शिष्य विशाख मुनि थे। आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने अन्तिम समय में अपना आचार्य पद विशाख मुनि को दे दिया। आचार्य होने के बाद उन्होंने तमिलनाडु की ओर विहार किया था। वहाँ के चोल, पाण्ड, पल्लव राजाओं के नम्र निवेदन से वहाँ लगभग बारह वर्ष रहे। अनेक भव्य आत्माओं का आत्म कल्याण हुआ। लोगों के व्रत, संयम और ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई। आज भी उनकी धर्म प्रभावना

और विहार के सम्बन्ध में वहाँ के पहाड़, गुफाओं और क्षेत्रों से बड़ा महत्व मालूम पड़ता है। तमिलनाडु में एक पहाड़ है, उसका नाम है 'यन्नायिरम् मलै' यन्नायिरम् मतलब आठ हजार और मलै मतलब पर्वत अर्थात् आठ-आठ हजार मुनियों ने उस पहाड़ पर ध्यान किया था, ऐसा उस पहाड़ की गुफाओं से शय्याओं और दिगम्बर मूर्तियों से भी ज्ञात होता है।

जैनधर्म हमें त्याग करना सिखलाता है। राग ही दुःख का कारण है व त्याग सुख का साधन है। उन विशाखाचार्य की परम्परा में आचार्य कुन्दकुन्ददेव हुये जिन्होंने समयसार आदि चौरासी पाहुड ग्रन्थ लिखे थे वे समयसार में कहते हैं कि-

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज।।150॥ (स.सा.)

रागी जीव तो कर्मों का बंध करता है और वैराग्य को प्राप्त हुआ जीव कर्मों से मुक्त होता है। इसलिए हमें वैरागी बनना चाहिए। वैराग्य होने के बाद ही भेदविज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं। शरीर अलग है, आत्मा अलग है इसका नाम ही भेदविज्ञान है। जहाँ पर वैराग्य है वहीं पर समीचीन ज्ञान की प्राप्ति भी हो सकती है।

अपनी वस्तु क्या है ? जो हमेशा अपने साथ रहे वही अपनी वस्तु है दूसरी नहीं। पर वस्तु से मोह को दूर करना चाहिए। यह शरीर, यह कर्म मेरा नहीं है ऐसा चिन्तन करके ज्ञानी लोग इसे छोड़ते हैं। ज्ञान का लक्षण कहते हुए मूलाचार कहा गया है कि-

जेण रागाविरज्जेज्ज जेण सेये सु रज्जदि।
जेण मेत्तिं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे॥268।। (मूलाचार)

अर्थात् जिसके द्वारा विषय-राग छूट जाय, जिसके द्वारा श्रेयमार्ग रूप मोक्षमार्ग में रुचि जग जाय और जिसके द्वारा मैत्री की भावना जागृत हो वह जिनशासन में ज्ञान कहा गया है। इसी को हम विज्ञान कहते हैं। ''विशिष्ट रूपेण ज्ञानं इति विज्ञानं'' जो विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त कराता है और जो अपनी वस्तु का परिचय कराता है वही विज्ञान है। अपनी वस्तु तो आत्मा है। इसमें ज्ञान (विज्ञान) दर्शन गुण हैं। यह शरीर जड़ है, पुद्गल है, नश्वर है, और हमारे साथ सदाकाल नहीं रहने वाला है ऐसा चिन्तन करने से शरीर से ममत्व छूट जाता है। शरीर से ममत्व छूटने पर शरीर सम्बन्धी जितने भी पदार्थ हैं उससे भी ममत्व छूट जाता है।

विज्ञान को वि-विराग+ज्ञान=विज्ञान ऐसा भी कह सकते हैं। विराग-वैराग्य से

सम्बन्धित ज्ञान जिसमें राग से सम्बन्ध नहीं है वही विज्ञान है। उसी वीतराग विज्ञान से ही महान आत्माओं ने शांति और सुख को प्राप्त किया है और आगे भी प्राप्त करेंगे। वीतराग विज्ञान कभी भी बदलता नहीं है। वीतराग विज्ञान से केवल ज्ञान प्राप्त होता है। केवलज्ञान से इस लोक को जानकर जो सिद्धान्त प्ररूपित गया है वह सिद्धान्त भी बदलेगा नहीं। क्योंकि वह सीधा आत्मा से जाना जाता है, केवलज्ञान से जाना जाता है। इन्द्रियों से पदार्थों का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि इन्द्रियज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान है और वह अनन्त को विषय नहीं करता।

आरातीय आचार्यों से वर्णित लोक स्वरूप को आज भी हम देख रहे हैं। पुण्य-पाप का फल क्या है? इसको भी हम साक्षात् देखते हैं। एक ही परिवार में एक ही माता-पिता के दो बच्चे उत्पन्न होते हैं, एक काला है, एक गोरा है, एक सुन्दर है, एक असुन्दर है, इसका कारण क्या है? यह अपने-अपने पुण्य-पाप रूप कर्म का ही फल है यह पुण्य पापकर्म कब किया होगा? माँ के पेट में तो नहीं; बल्कि पूर्व जन्म में किया होगा। इसी तर्क से पुनर्जन्म व उसमें किये गये कर्म की भी सिद्धि हो जाती है जिस कारण से ही कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई धनवान है, कोई गरीब है, ऐसे अनेक तरह से देखे जाते हैं। अज्ञानी लोग इन्द्रियों के विषयों में लीन होकर तरह-तरह के हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह आदि पाप कर अशुभ कर्मों का बंध करते रहते हैं। इन पापों से दूर होकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रतों का पालन करना चाहिए। यह आचरण ही सच्चे सुख को प्राप्त कराता है। ऐसा हमारे तीर्थंकरों ने उपदेश दिया है। जिसके साक्षात् फल को हम लोक में देख रहे हैं।
आज के विज्ञान को लौकिक विज्ञान, यन्त्र विज्ञान ऐसा कहते हैं। सामान्य लोगों की अपेक्षा यह ज्ञान श्रेष्ठ है। इसलिए विज्ञान कहते हैं। लेकिन जैनसिद्धान्त इसको विज्ञान नहीं मानता जैनसिद्धान्त तो विराग ज्ञान/विशिष्ट ज्ञान को ही विज्ञान कहता है। क्योंकि इसका विषय केवलज्ञान गम्य है।

आज का विज्ञान कितना बदल गया है देखो! जिस पुद्गल को माइक्रोस्कोप से जानकर परमाणु बतलाया था आज उसी को स्कन्ध बोलते हैं। वह ज्ञान और सूक्ष्म हो गया है। पहले उनको मालूम नहीं था कि वह स्कन्ध है मतलब कि धीरे-धीरे उनकी बातों में अन्तर होता जा रहा है।

लोक गोलाकार है ऐसा कहते थे। लेकिन आज के वैज्ञानिकों में कुछ लोग

लेटेस्ट न्यूज में लोक गोलाकार नहीं है, थाली जैसे आकार में है ऐसा कहना स्वीकार करते हैं। अच्छा है, धीरे-धीरे वे लोग जैनसिद्धान्त की ओर आ रहे हैं। एक दिन वीतराग विज्ञान ही उन्हें पूर्ण ज्ञान एवं शांति का कारण बनेगा।

आज की भव्य बाल एवं युवा पीढ़ी के जीवन में धर्म संस्कार की बड़ी आवश्यकता है। आज की युवा पीढ़ी बहुत कुछ काम कर सकती है उनके पास बहुत ग्रहण शक्ति है। हम जैसा चाहें वैसा उनको बना सकते हैं। अगर हमने उनको धर्म के मार्ग में नहीं लाया और उन्हें धर्म के बारे में नहीं समझाया तो वे फॉरेन के संस्कारों में लीन हो जायेंगे। वहीं अच्छा लगेगा। जहाँ पञ्चेन्द्रिय के विषय भोगों को ही श्रेष्ठ मानेंगे। आज का लौकिक विज्ञान भी इन्हीं उपलब्धियों के पीछे जा रहा है।

अब जब हमने जान ही लिया कि लौकिक विज्ञान के सिद्धान्त भी हर समय बदलते ही रहते हैं। वस्तु कैसी है ? लोक कैसा है ? ऐसे निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं। लेकिन भगवान ने इस विषय को केवलज्ञान के माध्यम से जानकर लोक कैसा है इसका ऐसा निर्णयात्मक बोध हमें दिया है, जो कभी भी नहीं बदलेगा। धीरे-धीरे विज्ञान भी इस वीतराग विज्ञान की ओर आ रहा है। उसको मान रहा है। एक दिन पूरा-पूरा मानेगा। क्योंकि वह वीतराग विज्ञान पूर्ण ज्ञान रूप है। अतः वही ज्ञान सबको सुख, शांति प्रदान करता है।

इसलिए आज की युवा-पीढ़ी को अपनी मानसिक शक्ति का सदुपयोग करना चाहिए। उस शक्ति का सत्कार्य, परोपकार, धर्म संस्कृति रक्षण, पालन आदि धर्म कार्यों में उपयोग करना चाहिए। साम्राट चन्द्रगुप्त के स्वप्नों में एक स्वप्न है कि एक रथ को दो बछड़े खीच रहे हैं। इसका फल बतलाया कि एक समय पञ्चमकाल में इस धर्म रूपी रथ को युवक ही खीचेंगे। बूढ़े लोगों के द्वारा इस रथ को खीचना दुःसाध्य कार्य होगा। पञ्चमकाल में शरीर की शक्ति बहुत कम हो जाती है इसलिए युवा अवस्था में ही धर्म-कार्य करने की अच्छी सामर्थ रहती है। इसलिए हमें अपनी बाल पीढ़ी की शक्ति को धर्म कार्यों में अवश्य उपयोग करना चाहिए।

जर्मन के शास्त्र भण्डार में हजारों शास्त्र हैं। उन शास्त्रों में जैन शास्त्र भी बहुत हैं। जो एक महान शास्त्र, 'गन्धहस्ति महाभाष्य' है जो 18 हजार श्लोक (84,000 श्लोक) प्रमाण है-ऐसे बड़े-बड़े शास्त्र वहाँ पर हैं। वहाँ शास्त्रों की विषय-सूची में इस महाभाष्य का नाम मिलता है। लेकिन उसको देखना बहुत दुर्लभ है। आज अनेक

वैज्ञानिक लोग हमारे शास्त्रों को रखकर नयी नयी बातों की खोज करते हैं। हम अगर अपने शास्त्रों को पढ़ेंगे व सूक्ष्मता से जानेंगे तो बहुत बड़े वैज्ञानिक बनते देर नहीं लगेगी।

पहले हमें हमारे आचार्यों द्वारा लिखे हुये शास्त्रों को पढ़ना चाहिए। जो सम्यग्ज्ञान रूप हैं। सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञानी होने के बाद सभी ग्रन्थों को पढ़कर अच्छे परिपक्व ज्ञानी हो जायें, फिर हम दूसरे शास्त्र पढ़ें। क्योंकि अपने शास्त्रों को पढ़े बिना दूसरे शास्त्रों को पढ़ने से जरूर ब्रेनवाश हो सकता है, और सम्यग्ज्ञान भी नहीं रहेगा। फिर सम्यग्ज्ञान में रुचि होना बहुत कठिन है। प्राथमिक अवस्था में दिया हुआ संस्कार जीवन भर रहेगा।

छहढालाकार कहते हैं–

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

यह वीतराग विज्ञान–धर्म हमको अपरिग्रह का बोध कराता है। क्योंकि निर्ग्रन्थ बनकर अकेले में ही शांति है। एकान्त स्थान पर शांति है। परिग्रह और लोगों के बीच में अशांति होती है। तब उस जगह को छोड़कर अकेले में रहने की इच्छा होती है। एकान्त स्थान में सभी विकल्प, चिन्तायें दूर हो जाती हैं। सभी संयोग छूट सकते हैं। जितना परिग्रह छोड़ते हैं उतनी आत्म शांति को प्राप्त करते हैं। परिग्रह अशांति का कारण है। अनादि काल से इस संसार में भ्रमण कर रहे हैं और कितने काल तक करेंगे मालूम नहीं। जब तक कर्म रहेगा तब तक इस संसार में रहना होगा। कर्म एक प्रकार का पुद्गल है। यह आत्मा को संसार में रुलाता है और चतुर्गति में भटकाता है।

कर्म को किसी यन्त्र से देख नहीं सकते, जान नहीं सकते। शब्द को जैसे देख नहीं सकते ऐसी ही वस्तु है कर्म। अपनी आत्मा में कर्म कोआस्रवित Catch कर सकते हैं। हमारी आत्मा में जैसा शुभ और अशुभ भाव उत्पन्न होता है वैसा कर्म भी शुभ–अशुभ, पुण्य–पाप रूप में बँध जाता है। आत्मा में कुछ काल तक वह रहता है। अपने को सुख–दुःख पहुँचाता है। जब तक कर्म रहेगा तब तक हमें पूर्ण शांति नहीं मिलेगी। मोक्ष भी नहीं मिलेगा। वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष बनता रहता है। वैसी ही कर्म व्यवस्था है। संसार में कर्म और कर्म से संसार भ्रमण चलता रहता है। वैसी ही हमारी सांसारिक यात्रा चलती रहेगी।

बंध कैसे होते हैं ? कर्म बंध को तो सब मानते हैं। इस पर श्रद्धा करना नया विषय नहीं है और आश्चर्य की बात भी नहीं है। कपड़े गन्दे होते हैं कैसे होते हैं? धूल से होते हैं! और कैसे तो; दूसरा उदाहरण कहता हूँ कि जैसे सूक्ष्मता से देखेंगे तो टेपरिकार्ड में शब्द को Catch करते हैं, इसको हम देखते हैं। वह कौन-सी शक्ति है? जिसको सुलभता से नहीं मिटा सकते अगर मिटा सकते हैं कैसे? रेड बटन को दबाने से उस शब्द को मिटा के दूसरे शब्दों को Catch कर सकते हैं। वैसे ही अपनी आत्मा में जो कर्म बंध होता है उसे कुछ लोग मानते नहीं। क्योंकि उसको किसने देखा ? ऐसा कहते हैं जैसे शब्दों को देख नहीं सकते, लेकिन सुन सकते हैं, अनुभव से जान सकते हैं। सब जगह शब्द भरे हुये हैं।

कुछ शब्द तो हम सुनते हैं और कुछ तो हमें सुनने में नहीं आते। यहीं पर बी.बी.सी. लन्दन, सिलोन जैसे भाषा वर्गणाओं के शब्द हैं। लेकिन हम नहीं देख सकते। रेडियो में बेण्ड बदलने से उसको हम सुन सकते हैं। सिलोन वाला आये तो लन्दन वाला नहीं आता, लन्दन वाला आये तो सिलोन वाला नहीं आता है। जिसे हम अलग-अलग सुन सकते हैं। लेकिन शब्द रहते हुए अपने कानों में नहीं आता, सुन नहीं पाते हैं। वैसे ही कार्मण वर्गणायें सब जगह फैली हुई हैं। वे आँखों से नहीं दिखती। वे एक पुद्गल रूप ही हैं। तेईस प्रकार की वर्गणायें होती हैं। उनमें से कार्मण वर्गणायें अपने आत्म प्रदेशों के आजू-बाजू में भी उपस्थित रहती हैं। हम जैसे भाव करते हैं, वे उस समय उस शुभ-अशुभ भाव से पुण्य-पाप रूप में बंध जाती हैं। पुण्य से जीव को सुख मिलता है और सुख के साधन भी मिलते हैं। अपना जीवन सुखमय रहता है। जब अशुभ भाव करते हैं तब उस समय-पाप रूप बंध होता है। इससे जीव को दुःख मिलता है। जीव जैसे भाव करेंगे वैसा ही बंध होगा। वह वर्गणा रूप पुद्गल द्रव्य आठ कर्मों के रूप में परिवर्तित होता रहता है।

शब्द टेप में catch होता है। सुन्दर बोलेंगे तो सुन्दर catch होता है। उसको सुनते समय आनंद होता है। बुरा बोलते समय बुरा catch होता है, उसको सुनते समय कष्ट होता है। अपनी आत्मा में कर्मों की स्थिति भी वैसी ही है। जिसके आधार से हम सुख-दुःख को प्राप्त करते हैं अर्थात् जैसे टेप में शब्द catch होता है वैसे ही आत्मा में कर्मों का बंध होता है। इसलिए जो दिखता नहीं है उसको नहीं मानना ऐसा उचित नहीं है।

इस लोक में कर्मों का फल नहीं मिलता है तो सभी लोग समान दिखना

चाहिए। सभी धनवान होना चाहिए और सभी सुन्दर होना चाहिए। वैसे क्यों नहीं है? छोटे बड़े क्यों? अच्छे बुरे क्यों? अमीरी, गरीबी क्यों? इसका क्या कारण है? तो इसका कारण अपना कर्म ही है। हमारे भावों से बंधे हुए वे पुण्य-पाप कर्म ही हैं जिस कारण से ही इस लोक के हर एक व्यक्ति में बहुत अन्तर दिखता है।

आगे भी जैन अलौकिक वीतराग विज्ञान के बारे में हम सोच सकते हैं कि एक जीव को मोक्ष होकर ऊर्ध्वगमन कैसे होता है? जीव का सिद्धलोक की ओर ऊर्ध्वगमन पूर्व प्रयोग से, सम्बन्ध छूटने से, बंध का नाश हो जाने से और ऊर्ध्वगमन का स्वभाव होने से मुक्तजीव ऊपर की ओर चला जाता है। पहले बहुत बार प्रयोग करने से जीव को मोक्ष हो जाता है अथवा हमें मोक्ष प्राप्त हो; ऐसी भावना बार-बार करके पुरुषार्थ करने से जीव सिद्धालय की ओर गमन करता है। जैसे कुम्हार का चाक घुमाना पड़ता है फिर वह बिना घुमाये घूमता रहता है या स्कूटर चालू करने के लिए किक मारनी पड़ती थी, वैसे ही ऊपर जाने के लिए बहुत बार भावना करने से संयोग छूटने पर आत्मा ऊपर की ओर चली जाती है। उसका यहाँ पर रहने का कारण क्या है ? तो कर्मबंध है। मिट्टी के लेप सहित तुम्बी जल में डूब जाती है परन्तु मिट्टी हट जाने पर वह तुम्बी ऊपर आ जाती है, उसी प्रकार कर्म मल से मुक्त होने पर जीव ऊपर की ओर जाता है। जिस प्रकार एरण्ड का बीज फली के फटने पर ऊपर को जाता है, उसी प्रकार जीव बन्धन मुक्त होने पर ऊपर को जाता है, उसी प्रकार जीव बन्धन मुक्त होने पर ऊपर की ओर जाता है। यही मात्र कारण नहीं; आत्मा का स्वभाव भी ऊपर की ओर जाना ही है। उसका स्वभाव ही वैसा कार्य करता है। जिस प्रकार अग्नि की शिखा स्वभाव से ऊपर की ओर जाती है, उसी प्रकार जीव भी स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करता है। तत्त्वार्थ सूत्र भी एक विज्ञान शास्त्र है। इसको अवश्य पढ़ना चाहिए, जानना चाहिए। केवलज्ञानी वीतराग विज्ञानी हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट वीतराग विज्ञान को हम श्रद्धा से स्वीकार करें यही हमारा मंतव्य है। ज्योतिष लोक के वर्णन के बारे में आज का विज्ञान धीरे-धीरे जैन शास्त्रों में बताये हुए निर्णय पर आ रहा है।

हमारे शास्त्रों में जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्र हैं। लवण समुद्र में 4 सूर्य, 4 चन्द्र हैं। ऐसे ढाईद्वीप तक दुगने-दुगने एवं ढाईद्वीप के बाहर असंख्यात सूर्य-चन्द्र हैं। वे अवस्थित हैं। ढाईद्वीप के अन्दर जो सूर्य, चन्द्र रूप ज्योतिष देव हैं वे मेरू पर्वत की परिक्रमा देते हुए सदा गमन करते रहते हैं। इस कारण से घटी, घण्टा, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, अयन आदि होते हैं। जिसका हमारे जैनसिद्धान्त में सूक्ष्मता से वर्णन आया है।

अणु-परमाणु के बारे में आज के वैज्ञानिक अपने जैनदर्शन में बताये गये तथ्यों को अपना रहे हैं ऐसा कह सकते हैं जैसे ''भेदादणु'' भेद से अणु बनता है। जिसमें आगे भेद नहीं कर सकते हैं वह परमाणु है। लेकिन विज्ञान इसमें भी थोड़ा पीछे है। आज जिसको वह परमाणु कहता है कल उसी को स्कन्ध कहता है। भेद करते ही जा रहा है। हम लोग जिसे परमाणु बोलते हैं, उस परमाणु का भेद नहीं कर सकते हैं और न आँखों से देख सकते हैं और न ही यंत्र से देख सकते हैं। उसको तो अवधिज्ञान आदि आत्मा के प्रत्यक्ष ज्ञानों से जान सकते हैं। स्कन्धों की उत्पत्ति भेद से, संघात से और भेद-संघात से ऐसे तीन प्रकार से होती है। जैनदर्शन में इसके बारे में अति सूक्ष्मता से बताया है। इसी सूक्ष्मता की ओर आज का विज्ञान भी जा रहा है। हमारे जैनदर्शन की अनेक सूक्ष्म बातों का आज भी विज्ञान सहारा ले रहा है।

ऐसा अनादिकाल से चल रहा है कि पहले कौन है? वृक्ष है कि बीज। आप बता नहीं सकते लेकिन हम अगर एक बार बीज को जला देंगे तो फिर वृक्ष नहीं बनेगा। वैसे ही हमारी आत्मा में बैठे हुये कर्मों को ध्यान रूपी अग्नि में जला देना चाहिए। ध्यान रूपी तप से ही वह नाश को प्राप्त होगा। फिर इस संसार में जन्म-मरण नहीं होगा। आत्मा मुक्ति को प्राप्त हो जायेगी। अनन्तकाल तक के लिए सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जायेगी।

इस काल के विज्ञान ने बहुत विचार करके अनेक यंत्र बनाये हैं। आकाश में जाने के लिए भी यंत्र बनाये हैं। राकेट (Rocket), प्लेन (Plane), सेटेलाइट (Satelite) इत्यादि बनाये हैं। लेकिन आत्मा के लिए कुछ भी नहीं। शांति के लिए वीतराग विज्ञान ही श्रेष्ठ है। संसार, शरीर से मोह को हटाकर प्रत्यक्ष ज्ञान से सीधे आत्मा से उत्पन्न हुआ ज्ञान ही आत्मा से विकल्पों को दूर कर शांति प्रदान कर सकता है। आज भी कुछ जगह ऐसी हैं जहाँ विज्ञान की पहुँच नहीं, जैसे आकाश में विमान जैसी एक वस्तु बहुत तेज गति से जाती दिखाई देती है अभी भी इसको जानने के लिए विमान द्वारा प्रयास किया जा रहा है। वह विमान कैसा है ? उसके अन्दर कौन हैं ? किस शक्ति से चल रहा है ? ऐसा चिन्तन किया जा रहा है। उसको देखने के लिए यन्त्र से पास में गये तो उस विमान की शक्ति से यन्त्र जल गया, नष्ट हो गया। बहुत बार प्रयास करने पर भी पास में नहीं जा सके। बहुत दूर से देखा था। उसका ठीक आकार भी नहीं दिखा। वे कितने आगे हैं ? कहाँ रहते हैं ? उनका स्थान कैसा है ? मालूम नहीं। हम कितने पीछे हैं ? वहाँ रहने वाले बहुत शक्तिशाली हैं। वहाँ पर जा नहीं पा

रहे हैं कितने वर्ष लगेंगे ? कब देख पायेंगे? लेकिन प्रयास रत हैं। इससे मालूम पड़ता है कि विज्ञान कितने पीछे है। जो विमान-सा दिखा उस वस्तु को Flying Saucer कहते हैं। समुद्र में जाते समय अन्तिम सीमा तक जाएँ ऐसा वे सोचते हैं। लेकिन अन्तिम सीमा तक नहीं जा सके वे। उनका जहाज रुक जाता है वहाँ पर कौन-सी शक्ति है ? फिर भी जाने के लिए प्रयास किया, लेकिन नहीं जा सके। उसी तरह सूर्य, चन्द्र एक ही है ऐसा कहते थे। फिर दो सूर्य, दो चन्द्र हैं ऐसा कहने लगे। फिर अभी अनेक सूर्य, अनेक चन्द्र हैं ऐसा भी कहते हैं। लेकिन पूर्ण निर्णय पर नहीं पहुँच पाते। अमेरिका से आये एक वैज्ञानिक बतला रहे थे कि सेटेलाइट से किन्हीं वैज्ञानिकों ने देखा है कि उत्तर दिशा में एक बहुत ऊँची और गोल-गोल एक वस्तु है अर्थात् एक पर्वत है जिसकी वजह से चुम्बकीय सुई उत्तर दिशा की ओर घूम जाती है। तो वह गोल और ऊँचा पर्वत सुमेरुपर्वत ही माना जा सकता है, लेकिन वह पर्वत बहुत दूर एवं एक लाख चालिस योजन ऊँचा है उसे यन्त्रों से पाना शक्य नहीं और वह प्रत्यक्ष ज्ञानियों का विषय है। उनका प्रत्यक्ष ज्ञान ही सभी पदार्थों को जान सकता है। यन्त्र से सभी पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता।

आज का यन्त्र विज्ञान जब वीतराग विज्ञान को मानेगा तभी वह पूर्ण होगा। जैनधर्म में वीतराग विज्ञान ही सभी विज्ञानों का सार है। ऐसे विज्ञान को अनेकान्त स्याद्वाद भी कहते हैं। ऐसा जिनशासन सदा जयवन्त रहे और सबका कल्याण करे।

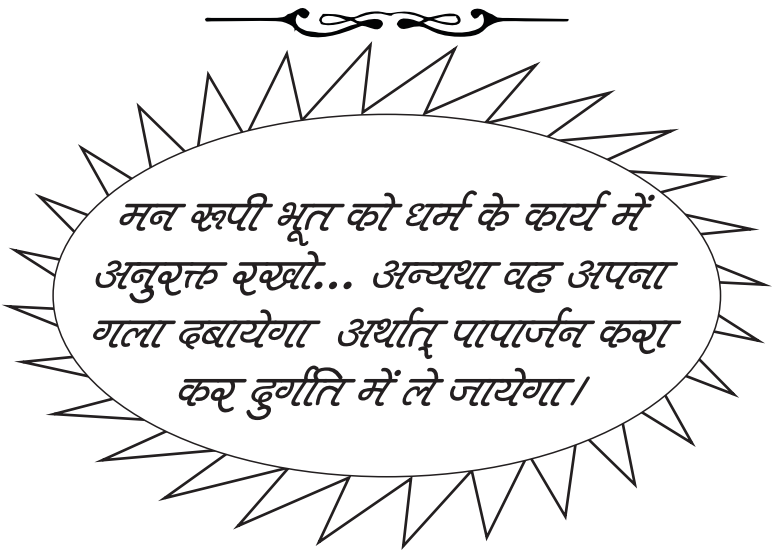

अहिंसा और विज्ञान

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

किसी को कष्ट पहुँचाना हिंसा है उसके विपरीत अहिंसा है। विशिष्ट ज्ञान को विज्ञान कहते हैं अर्थात् जो ज्ञान जीव की आत्मा की ओर जाता है वह विज्ञान है अहिंसामयी परिणाम जीवात्मा को विशिष्ट ज्ञान के अबलम्बन से आत्मानुभव व आत्मा से साक्षात्कार करवाता है। आज विशेषतया डॉक्टर्स-वकील-अधिकारी वर्ग व उपस्थित वित्त मंत्री आप लोगों के कल्याण के लिये कर्म करते हैं और हम लोग उन्हें प्रेरणा देते रहते हैं। हम स्वार्थी हैं, हम चाहते हैं, आप लोग हम जैसे बन जायें और आप चाहते हैं कि हम आप जैसे बन जायें। डॉक्टर्स की ड्रेस सफेद होती है और एड्वोकेट की पोशाक काली होती है। सफेद पोशाक दाग-धब्बे को छुटाती है स्वच्छ रखती है ऊँचाई को छूती और काली पोशाक दोषों को ढकती है अर्थात् वह उपगूहन व स्थितीकरण अंग का सूचक है। डॉ. के पास मरीज बालकवत् अपने रोग के निदान के लिये बिना कुछ छिपाये सबकुछ कह देता है। उसी तरह हमारे पास अपनी अंतरंग में चल रही हलचल को बिना किसी मात्सर्य के प्रगट कर देता है उसे लगता ही नहीं है कि वह जो कह रहा है वह गलत है या सही। सहज ही कह जाता है। जैसे हमारे पास अपने बेटे को लेकर माँ आती है और कहती है कि मेरा बेटा बिल्कुल पढ़ता नहीं है आप इसे पढ़ने के लिये अच्छा सा आशीर्वाद दें। बेटा भी कह देता है, महाराज जी मेरी माँ दिन-भर टी.वी. देखती रहती हैं। उसको यह कहते हुए मालूम नहीं होता कि माँ की शिकायत कर रहा है। उसी तरह मरीज भी डॉ. से सब कुछ कह देता है तभी तो डॉ. मरीज का सही तरीके से इलाज कर देता है। रोग भी धवल वस्त्र पर दाग की तरह है जिसे ठीक करने के लिये जब तक डॉक्टर उसकी पूरी बात नहीं सुन लेता है तब तक वह अच्छी तरह से इलाज नहीं कर सकता है। वकील के पास कैसा ही अपराधी आ जाये वह उसको भगाता नहीं है। उसे बहुत धैर्य से सुनता है और उसके अपराध रूपी दोषों रूपी धब्बों को ढककर धीरे-धीरे छुटाता है और स्वच्छ बनाता है। अपने-अपने तरीके से ये ठीक करने के साधन हैं। जैसे कृष्ण ने सुदामा को आते ही गले लगा लिया, यह विचार नहीं किया कि उसके वस्त्र मैले-कुचैले हैं, धूल लगी है। इस तरह

कृष्ण ने सहज ही अपनाया था वैसे ही हमें अपनाना चाहिये। अधिकारी वर्ग दोनों को ही यथावत बनाता है। नेता कौन होते हैं? जिन्हें जन सामान्य ही चुनकर सरकार में प्रवेश दिलाते हैं। संस्कृत में 'नेतृ' धातु ले जाने के अर्थ में आती है जिस धातु से नेता शब्द बनता है। नेता समाज को अच्छी दिशा की ओर ले जाते हैं और समाज का उद्धार करते हैं। मुनि लोग भी भव्य जीवों के कल्याण के लिये कार्य करते हैं। साधुलोग मोक्ष-मार्ग के नेता हैं। अपने कल्याण के साथ-साथ आप लोगों के उज्ज्वल भविष्य के लिये जिनवाणी का उपदेश देते हैं और तीर्थंकर तो मुनियों के भी नेता होते हैं। भगवान महावीर ने समवसरण सभा में कहा है कि 'अहिंसा' धर्म का मूल है।

हम महाव्रती हैं जिसमें अहिंसा प्रथम महाव्रत है इसका जितनी सूक्ष्मता से पालन करेंगे उतने ही हम धर्म की गहराई में उतरते चले जायेंगे, उतनी ही हमारी तपस्या में ऊँचाई को छूती चली जायेगी। एक अहिंसा महाव्रत के पालने से शेष चार महाव्रतों (सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और अपरिग्रह महाव्रत) का पालन सहजरूप से हो जाता है। गाय लाल है, गाय काली है, गाय सफेद, और गाय अनेक रंगों वाली है। गाय तो गाय है सभी परोपकारी हैं, और ये नाम इसकी पर्याय हैं। इसी तरह अहिंसा, दया, करुणा, अनुकम्पा आदि ये पर्यावाची कहलाते हैं। कवि तुलसी दास ने भी कहा है-

दया धर्म का मूल है, पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छाड़िये, जब लौं घट में प्राण॥

वर्तमान में भौतिक विज्ञान तरक्की कर रहा है। किस दृष्टि से प्रगति हो रही है? पंचन्द्रिय विषयों की वृद्धि के लिये वह साधन उपलब्ध करा रहा है। इन सबमें प्रधानतया हिंसा ही बढ़ रही है। देश में प्रतिदिन कितने ही हजारों मूक प्राणियों का आधुनिक तरीकों से वध हो रहा है। भगवान महावीर की अहिंसा का संदेश विदेशों में बढ़ रहा है लोग अब प्राकृत, संस्कृत भाषा का अध्ययन कर रहे हैं और भगवान महावीर की वाणी को समझने का प्रयास कर रहे हैं। सोलापुर (महाराष्ट्र) के व्यक्ति ने हमें बताया कि जर्मनी की एक लायब्रेरी की सूची में एक ग्रन्थ ''गन्धहस्ती-महाभाष्य'' है, उसका उन्होंने नाम वहाँ देखा जो ग्रन्थ आज हमारे यहाँ उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ की रचना आचार्य समन्तभद्र ने अठारह हजार श्लोक प्रमाण तत्त्वार्थसूत्र पर टीका रूप में की थी। लेकिन वह यहाँ उपलब्ध नहीं है। उस व्यक्ति ने वहाँ के

अधिकारी से उस ग्रन्थ को देखने की जिज्ञासा व्यक्त की। उन अधिकारियों को यह मालूम हुआ कि यह व्यक्ति भारतीय है तो उन्होंने उस व्यक्ति से यह कह कर मना कर दिया कि यह नाम विषय सूची में तो है परन्तु वह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। विचार करो कि क्या एक लायब्रेरी में ऐसा हो सकता है? उन्होंने क्यों नहीं दिखाया? क्योंकि उसमें करणानुयोग का विस्तृत वर्णन होगा जिसके आधार से आज वे विज्ञान की दृष्टि से आगे पहुँच रहे हैं। जैसा कहा था कि हमारे जैन शास्त्रों में बहुत पहले से वर्णित है वह कठोर वस्तु सुमेरु पर्वत है जो उत्तर दिशा में इस जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित है। चुम्बकीय सुई उत्तर की दिशा में क्यों स्थिर होती है? इसका कारण गुरुत्वाकर्षक सुमेरु पर्वत है। ऐसे ही हमें मालूम हुआ है कि वैज्ञानिकों ने एक साथ दो सूर्यों के फोटो लिये हैं। उनके लिये यह खोज का विषय हो सकता है पर जैन शास्त्रों में स्पष्ट रूप से पहले ही वर्णित है। हमें खुशी होती है कि आज के विज्ञान ने भी जैन धर्म को एक आदर्श रूप में स्वीकार किया है।

इस लोक में अनंत पुद्गल वर्गणायें ठसा-ठस भरी हुई हैं वे तेईस प्रकार की वर्गणाएं हैं। उनमें ग्राह्य वर्गणाएं पांच हैं, जैसे आहार वर्गणा, तैजस वर्गणा, भाषा वर्गणा, मनो वर्गणा और कार्मण वर्गणायें। जो कुछ भी इन्द्रियों से हम जान रहे हैं वह सब वर्गणाओं का समूह स्कन्ध रूप है। ये वर्गणाएँ पौद्गलिक हैं। पुदगल जो पूरन-गलन स्वभाव वाला है वह रूपी पदार्थ है हमें वही सब दिखाई देता है। जीव या अन्य द्रव्य हमें दिखाई नहीं देते हैं। फिर भी जीव इन पुद्गल-वर्गणाओं के अवलंबन से हमें शरीरादि रूप दिखाई देता है। स्थावर जीवों के पाँच भेद हैं जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, अग्निकायिक और वनस्पतिकायिक। इनके शरीर पुद्गल वर्गणाओं से निर्मित हैं। हमारे शरीर की रचना भी पुद्गल वर्गणाओं का स्कन्ध है। वनस्पति में तो जीव के आस्तित्त्व की सिद्धि जगदीश चन्द बसु ने की है। जैन दर्शन के अनुसार पाचों स्थावरों में जीव होता है। उदाहरण के लिये जब कहे कि अग्नि में जीव है तो उसे सिद्ध करने के लिये हम समझें। खदान में प्रवेश करने के पहले ऑक्सीजन की उपस्थिति का अनुमान लगाते हैं और वहीं तक हम जाते हैं उसके आगे कृत्रिम ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उसको परखने के लिये जलती हुई लालटेन को छोड़ते हैं। नीचे जहाँ तक लालटेल जलती रहेगी वहीं तक ऑक्सीजन की उपस्थिति होती है। मतलब अग्नि को श्वासोच्छवास की आवश्यकता होती है। जिस तरह हम

लोगों के लिये श्वासोच्छवास एक प्राण है उसी तरह अग्नि का भी श्वासोच्छवास एक प्राण है। इससे सिद्ध होता है कि अग्नि में जीव है। उसी तरह पृथ्वी में भी जीव है उसमें वृद्धि देखी जाती है। भगवान महावीर की वाणी में यह सब आया है और हम तक आचार्य परम्परा से उपलब्ध है। जैन शास्त्रों में लिखा है कि अग्नि कायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन दिन होती है उसके बाद फिर दूसरे जीव प्रवेश कर जाते हैं। पृथ्वीकायिक जीवों की आयु बीस हजार वर्ष व वनस्पति कायिक जीवों की आयु अधिकतम आयु दस हजार वर्ष होती है और वनस्पति कायिक जीवों की अधिकतम आयु बीस हजार वर्ष होती है। एक बूंद पानी में छत्तीस हजार चार सौ पचास त्रस कायिक जीव होते हैं यह विज्ञान की प्रयोगशाला से सिद्ध हुआ है। भगवान महावीर की वाणी से उद्धत शास्त्रों में एक बूंद जल में असंख्यात जैसे त्रसकायिक जीव होते हैं। इसलिये प्रत्येक जैनी जल को गाढ़े (मोटे दुहरे) छन्ने से छान कर सेवन करता है जिससे जीवों की हिंसा से बच सके। विचार करो भगवान महावीर की वाणी में अहिंसा को कितनी सूक्ष्मता से प्राथमिकता दी है। आज 90% लोग बीमार हो रहे हैं तो अशुद्ध खान-पान के प्रभाव से। डॉक्टर्स का दवाखाना तो अशुद्ध खान-पान से चल रहा है। रात्री भोजन से पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और उसके प्रभाव से अनेक प्रकार के रोग बढ़ रहे हैं। जैनों के तो संस्कार हैं कि ये सूर्यप्रकाश में ही भोजन करते हैं। अहिंसा व्रती गृहस्थ सूर्योदय के 48 मिनिट बाद और सूर्यास्त के 48 मिनिट पहले भोजन करते हैं।

भगवान महावीर की अनेकान्तात्मक वाणी भव्य जीवों के कल्याण के लिये उद्घाटित हुई। जैन धर्म अनेक दृष्टि से वस्तु के धर्म को कहता है। यह धर्म मानव पर्याय के कल्याण के लिये है जो शाश्वत सुख में पहुँचाता है। एक वस्तु-या पदार्थ में अनेक धर्म होते हैं। उदाहरण के लिये भगवान राम जिन्होंने मुक्ति रूपी शाश्वत सुख पाया है। वे राम; सीता के पति थे, लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता थे, दशरथ के पुत्र थे, लवकुश के पिता थे और राजा जनक के लिये वे दमाद थे। यदि किसी बिल्डिंग के लिये कथन करें तो वह दीवारों से निर्मित है, दरवाजे-खिड़कियों से बनी है, यह सीमेन्ट-गिट्टी से बनी है, यह पत्थरों से बनी है। सही मायने में तो बिल्डिंग इन सब वस्तुओं के आधार से बनी है यह तो आपलोग जानते हैं। उसी तरह हम हाथी के लिये कहें कि चार अंधे थे, उन्होंने हाथी को जाना नहीं था, जिज्ञासावश हाथी एक स्थान पर

मिल गया सबने अपने-अपने तरीके से हाथी को जाना। एक ने हाथी को पीठ पर हाथ लगाया तो उसने कहा कि हाथी दीवाल के समान है, दूसरे ने हाथी के कानों को छुआ तो उसने कहा, हाथी सूपे के समान है, तीसरे ने हाथी के पैरों को छूकर बोला, यह तो खंबे के समान है चौथे ने पूँछ को छुआ तो वह बोला यह तो झाड़ू के समान है जब चारों एक साथ बैठे तो आपस में अपना-अपना अभिप्राय रखते हुए विवाद करने लगे। थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति ने देखा ये विवाद कर रहे हैं तो उसका कारण पूछा तो सभी अपने-अपने तरीके से हाथी का स्वरूप बताने लगे। तो इस पर उस व्यक्ति ने कहा कि अरे विवाद की बात नहीं है अपनी-अपनी अपेक्षा से सभी सही हैं क्योंकि हाथी में ये सभी अवस्थाएँ हैं। ऐसे ही जैन धर्म है वह वस्तु के अनेक धर्मों का कथन करता है जो उस वस्तु में विद्यमान हैं।

भगवान महावीर ने चार प्रकार की हिंसा बतायी है, जैसे संकल्पी हिंसा, विरोधी हिंसा, आरंभी हिंसा और औद्योगिक हिंसा। इन चारों हिंसाओं में जो जिस का त्यागी है वह उसका पालन करता है। मुनि महाराज तो अहिंसा महाव्रती हैं उनका तो चारों प्रकार की हिंसा का त्याग है। लेकिन अवस्था अनुरूप सब इसका पालन करते हैं। सामान्य से जो सैनिक बार्डर पर तैनात है उनको तो विदेशी आक्रमणकारियों की हिंसा करनी पड़ती है क्योंकि पूरे देश की सुरक्षा का प्रश्न है। यह विरोधी हिंसा की श्रेणी में आता है। उसी तरह राम ने रावण से युद्ध किया वह एक आत्मा की शील की रक्षा के लिये था। राम तो उसी भव से मोक्ष गये थे वे अहिंसक थे।

हम से लोग पूछते हैं, महाराज आपने तो घर छोड़ दिया है आप तो पाप करते नहीं हैं तो आप इतना त्याग क्यों करते हो? हाँ हम अनादिकाल से संसार में हैं उन कर्मों को शीघ्र खपाना है इसलिये हमें इतनी त्याग-तपस्या आवश्यक है। आप लोग भी रोज पाप कर्म करते हैं उन कर्मों की निर्जरा के लिये देव-पूजा-गुरुपास्ति आदि करते हो रोज के रोज कर्ज चुकाना पड़ता है तभी आप लोग आगे बढ़ पाओगे, नहीं तो और संसार के गर्त में फंसते चले जाओगे। प्रतिदिन आप लोग मंदिर में आकर आलोचना पाठ पढ़ते हो ताकि हमारे पाप कर्म हल्के हो जायें।

'सुनिये जिन अरज हमारी हम दोष किये अतिभारी।' 'भगवन् हमने अवगुण बहुत किये।' हम ने जितने भी पाप किये वे तीनों आँखों से नहीं बच सकते एक स्वयं की, दूसरी कर्मों की आँखें और तीसरी भगवान की आँखें। इसीलिये तो

भगवान के सामने सब कुछ साफ-साफ कह देते हो। भगवान तो दर्पण के समान है, तुम्हें दाग छुटाना है तो तुम्हें ही पुरुषार्थ करना होगा।

हम लोग पिच्छी क्यों रखते हैं, यह संयम का सूचक है, वस्तु उठाते, रखते समय जीव रक्षा का साधन है, यह इतनी कोमल होती है कि किसी की आँख में भी लग जाये तो भी कुछ नहीं होता। ये पंख दिवाली के समय मयूर स्वयं छोड़ देते हैं और उन पंखों से पिच्छी तैयार होती है। इसी तरह साधु लोग अहिंसा पालन हेतु दिन में चार हाथ भूमि देखकर चलते हैं जिसे ईर्या समिति कहते हैं। आप लोगों को भी जीव हिंसा से बचने देख कर चलना चाहिये। अहिंसा की दृष्टि से आटे की मर्यादा तो ठंडी, गर्मी, वर्षाकाल में 7-5-3 दिन की होती है। वैसे ही गर्म जल का उपयोग समय की मर्यादा से ही करते हैं। एक शहा डॉक्टर जो आलंद कर्नाटक के थे वे स्वयं गर्म किया हुआ पानी पीते थे उन्होंने बताया था कि अपने शरीर के तापमान के अनुरूप गरम जल का उपयोग करने से पाचन क्रिया आसानी से होती है। हम लोग यह सब धर्म की दृष्टि से करते हैं। लेकिन आप लोग शरीर के आरोग्य की दृष्टि रखते हो। हम व्रतों की सुरक्षा के लिये करते हैं। जैन धर्म इतना सूक्ष्म है जितनी गहराई में चिन्तन करोगे उतनी ही आत्म-विशुद्धि बढ़ेगी। जार्ज बर्नार्ड सॉ ने कहा था कि मेरा अगला जन्म हो तो जैन धर्म मिले। ऐसी भावना उन्होंने व्यक्त की थी। ऐसा कहा जाता है कि उनके बंगले के परिसर में बहुत सुन्दर बगीचे थे और उनमें बहुत सुन्दर-सुन्दर फूल थे। लेकिन टेबल पर जहाँ पर अपना अधिकांश समय व्यतीत करते थे उस पर एक भी फूल नहीं था। किसी व्यक्ति ने पूछा, सर! आपके बगीचे में अनेक प्रकार सुन्दर फूल खिले हैं लेकिन आपकी टेबल पर एक भी नहीं है ऐसा क्यों है? उन्होंने उत्तर दिया जैसे मानव का सिर शरीर पर शोभित होता है वैसे ही फूलों की शोभा वृक्ष लताओं पर होती है। महाराष्ट्र के एक व्यक्ति को एक बीमारी ने घेर लिया, बहुत परेशान था। चेन्नई गया और वहाँ इलाज करवाया, वहाँ कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया तब कहने लगा कि डॉक्टर तो मरीज के लिये भगवान होते हैं, डॉ. कह दे कि माँस खाना बन्द कर दो यदि तुम अपना जीवन बचाना चाहते हो तो! वह रोगी तुरंत माँस सेवन छोड़ देता है क्योंकि उसको मरण से भय होता है। पूना में एक (B.W.C.) कंपनी है जो उजागर/सर्च करके यह बतलाती है कि कौन वस्तु हिंसक है या अहिंसक ऐसे ज्ञान की आज बड़ी जरूरत है। एक लेपटाप पर किसी ने दिखाया था कि एक विदेशी

फेक्टरी में एक दिन में एक पट्टे पर जाते हुए मशीन के अन्दर पाँच लाख चूजे(मुर्गी के बच्चे) पिसते हैं और कुछ मीठा आदि मिलाकर उसकी राड जैसी बनाकर उसको टुकड़ों में विभाजित कर अच्छे से पेकिंग कर बाजार में चॉकलेट के रूप से लाया जाता है। विचार करो प्रतिदिन कितनी हिंसा हो रही है। क्या ऐसे कार्यों पर रोक नहीं लगनी चाहिये? या अपनी नई पीढ़ी को इन चीजों से दूर अवश्य रखना चाहिये। ऐसे ही प्रचार हो रहा है अण्डा शाकाहारी है यह धारणा गलत है। एक अण्डे का जो बाहर सफेद कवच होता है उसमें पन्द्रह हजार छिद्र होते हैं जैसे हमारे शरीर में रोम के छिद्र हैं। उन छिद्रों के द्वारा उसमें पनप रहा जीव श्वास लेता है। डाक्टर्स को इन विषयों पर विचार करना चाहिये और वर्तमान में चल रही हिंसा को रोकना चाहिये। हमने सन् 2008 में ग्वालियर में भी डॉक्टर्स की संगोष्ठी करवाई थी जिसमें चार सौ डाक्टर्स बुलवाये गये थे और अहिंसा प्रचार की शपथ दिलाई थी।

एक देश में राजा की आज्ञा से माँसाहार की बन्दी थी। किसी समय एक प्रदेश के एक मंत्री ने राजा के पास विनती करते हुये कहा, राजन हमारे प्रदेश में धान्य की बहुत कमी है अतः लोगों के जीवन के लिये मांसाहार करने की छूट दी जाये। यह सुनकर राजा चिंतित हुआ क्या निर्णय दिया जाये। वहीं राजकुमार भी उपस्थित थे तो उन्होंने राजा से निवेदन करते हुये कहा कि इस पर निर्णय लेने के लिये कुछ समय दिया जाये और रात्रि में राजकुमार एक-एक करके सभी मंत्रियों के कमरे में गया और कहा कि राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है इसलिये आपका एक तोला माँस चाहिये, मंत्रियों ने लाखों की सम्पत्ति देने पर भी अपने शरीर का माँस देने के लिये मना कर दिया। इस तरह सभी मंत्रियों और राजा के बीच दूसरे दिन जब सभा लगी तब मंत्रियों ने देखा कि राजा तो स्वस्थ हैं, फिर माँस की जरूरत क्यों हुई। तब राजकुमार ने रहस्य खोलते हुए कहा कि आप लोग राजा के लिये एक तोला माँस नहीं दे सकते हैं। फिर बेकसूर तिर्यंच मूक प्राणियों की हत्या करके उनका माँस भक्षण किया जाय, ऐसी छूट कैसे दी जाये? इस तरह उस प्रदेश के लिये माँस की छूट नहीं प्रदान की गई।

तंबाकू खाने वाले व्यक्ति के शरीर में निकोटिन का प्रभाव पूरे शरीर में हो जाता है। एक बार की घटना है, एक व्यक्ति ने दो-तीन माह के बच्चे को कुछ देर अपने पास अपने हाथों पर रखा, थोड़ी देर बाद बच्चे का शरीर नीला हो गया। तब डाक्टर के पास दौड़े उन्होंने कहा जिसने इसे कुछ देर पकड़ा है वह तम्बाकू खाता है? ऐसा लगता

है। ऐसा सुनते ही तम्बाकू के दुष्प्रभाव को जानकर तम्बाकू खानेवाले ने तम्बाकू छोड़ दी।

राम जब अयोध्या वापिस आ गये तब हनुमान ने राम से बोला अब मैं अपने देश वापिस जा रहा हूँ। जाते समय आप मुझे मंगलमय संदेश दें। तब रामचन्द्र जी कहते हैं तुमने मुझ पर जो उपकार किया है वह उपकार मुझे तुम्हारे पर नहीं करना पड़े बस; देखो! कितनी गहरी बात कही कि मेरे साथ जो घटना घटी ऐसी घटना तुम्हारे साथ न हो। आज के लोग यह विचार करते हैं कि जल्दी से जल्दी हम अपना कर्जा चुका दें। अर्थात् किसी की दुर्घटना पर की गई सेवा से यह सोचना गलत है कि हे भगवान सामने वाले की दुर्घटना जल्दी हो जिससे उसकी सेवा कर हम कर्ज चुका दें। लेकिन किसी को भी कष्ट न हो ऐसे भाव रखना ही अहिंसा है।

हनुमान जब पहली बार सीता जी से लंका में मिलने राम का संदेश लेकर गये थे। तो उन्होंने सीता जी को राम की दी हुई ''मुद्रा'' दिखाते हुए कहा कि मैं रामचन्द्र जी का कुशल क्षेम लेकर आया हूँ और शीघ्र आपको वापिस लेकर जायेंगे। आपके विरह के दस दिन बीत गये हैं आपने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया है। आज आप यह फलाहार ग्रहण करें सीता ने कहा ऐसे कैसे कह सकते हो कि मुद्रा राम ने भेजी है। कुछ और पहचान बतायें। तब हनुमान ने कहा-कि

न मांसं राघवो भुङ्ते, न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं, भक्तमश्नाति केवलं॥

रामचन्द्र जी कभी माँस भक्षण नहीं करते न ही मधु का सेवन करते हैं वे तो वन में पैदल विचरण करते हैं और शाकाहार करते हैं। तब सीता जी को विश्वास हुआ और अपने संकल्प को शिथिलकर हनुमान के द्वारा लाये गये बहुत प्रकार के फलों का आहार किया। निःस्वार्थी सच्चे डॉक्टर तो वहीं होते हैं जो ऐसा विचार करें कि मेरे क्लीनिक पर कोई रोगी नहीं आये। हाँ अगर कर्मों से सताया रोगी आवेगा तो उपचार करना मेरा कर्त्तव्य समझूँगा। गुरु की बात को बुरा नहीं मानना चाहिये। शिष्य और शीशी में डाट लगानी चाहिये। शिष्य को डाँट नहीं लगायें तो बिगड़ जायेगा और शीशी को डाँट नहीं लगायें तो दवाई 'बगर/गिर' जायेगी। गुरु वह होते हैं जो शिष्य के धार्मिक जीवन की शुरुआत कर देते हैं। शिष्य अगर बाँस है तो उस बाँस को बांसुरी बना देते हैं।

महाभारत के सोलहवें अध्याय में कहा है–

मद्यमांसाशनं रात्री भोजनं कंद भक्षणं।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः॥

यदि शराब, माँस, भक्षण, रात्रि भोजन, कंदमूल सेवन आदि जो करते हैं तो उनकी तीर्थ यात्रा जप तप आदि क्रिया करना व्यर्थ है। अंत में हमारा यही संदेश है कि माँसाहार निरशन हो वकीलों को चाहिये अपराधियों का साथ नहीं दें। अन्याय का समर्थन कदापि नहीं करना चाहिये।

अन्यायोपार्जितं वित्तं, दस वर्षे हि तिष्ठति।
प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे, समूलं तद् विनश्यति॥

अन्याय से उपार्जित धन अधिक से अधिक दस वर्ष तक रह सकता है फिर मूल के साथ चला जाता है। अन्यायी की संतानें लूली–लंगड़ी आदि अपंग भी पैदा होती हैं।

अंत में यही संदेश देता हूँ भगवान महावीर की अहिंसा वर्तमान में भी पूर्ण उपयोगी है वही आत्मा के कल्याण का विशिष्ट ज्ञान है इसलिए विज्ञान है। इन समीचीन सिद्धांतों को अपनाकर आज भी जीव अपना कल्याण कर सकते हैं। आप लोग समाज के बुद्धिजीवी हैं, भगवान महावीर के सिद्धांतों को जीवन में उतारकर अपने कल्याण के साथ समाज का भी कल्याण कर सकते हैं।

अंत में गुरुवर की चार लाइनें बोलता हूँ –

ज्ञान ही दुःख का मूल है, ज्ञान ही भव का कूल।
राग सहित प्रतिकूल है, राग रहित अनुकूल॥
चुन-चुन इनमें उचित को, मत चुन अनुचित भूल।
सब शास्त्रों का सार है, समता बिन सब धूल॥

मूर्ति बनती नहीं
प्रकट होती है क्योंकि
शिल्पी को तो पाषाण में
मूर्ति पहले दिखती है वह तो
मात्र अनावश्यक पाषाण
को अलग कराता है।

परिग्रह दुःख का कारण है। जहाँ परिग्रह आता है वहाँ तव-मम (हमारी-तुम्हारी) भावना चालू हो जाती है। जहाँ परिग्रह है वहाँ तरह-तरह के संकल्प-विकल्प मन में उठते हैं और यह परिग्रह वात्सल्य-स्नेह को भी नष्ट कर देता है। परिग्रह के प्रति ममत्व-भाव छोड़ने से वात्सल्य-भाव बढ़ता है।

इस संसार में सबसे बड़े (श्रेष्ठ) कौन हैं? जो अपने समान सबको देखते हैं वे ही बड़े हैं। सभी जीव सन्मार्ग पर चलें और हमसे पहले सबको मोक्ष मिले, सुख मिले ऐसा जो भाव करते हैं वे ही सबसे बड़े होते हैं। जिसके पास नाम, ख्याति, पूजा आदि नहीं है और किसी से भी राग-द्वेष-भाव नहीं हैं, वे ही लोक में श्रेष्ठ माने जाते हैं। इस तीन लोक के जीव देव भी क्यों न हों, बड़े-बड़े राजा भी क्यों न हों, सभी उनके चरणों में नत मस्तक हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने सभी जीवों को समान माना है, देखा है, सुखी देखना चाहा है तभी तो वे ही सबसे उत्तम होते हैं।

जो वस्त्रादि सभी परिग्रहों और सम्बन्धों से रहित होकर के जंगल में रहकर जीवन व्यतीत करते हैं वे ही महान आत्मा हैं, उन्हें सभी देवता भी पूजते हैं। वे साधु, मुनि, दिगम्बर, पाणिपात्री, अनगार, आदि नामों से पुकारे जाते हैं। आगम में उनकी स्तुति करते हुए कहा है कि-

गिरिकन्दर दुर्गेषु, ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्र पुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम्॥

-योगी भक्ति

अर्थात् पर्वतों में, गुफाओं में, दुर्गों में रहने वाले दिगम्बर (वस्त्र, अलंकार से रहित) और हाथों को ही पात्र बनाकर आहार ग्रहण करने वाले, ऐसे वे मुनिगण मुझे परमगति अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त करावें।।

आतिथ्य रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदा मेतत्तिस्त्रो रात्रीः सुरा सुता॥

(यजुर्वेद अध्याय 19)

अर्थात् अतिथि, मासोपवासी, नग्न-मुद्रा धारक भगवान महावीर की

उपासना करने से तीन प्रकार के (कुमति, कुश्रुत, कुअवधि रूप) अज्ञान अंधकार रूपी रात्रि नष्ट हो जाती है। ऐसा ग्रन्थों में गया है।

जोड़ना सरल है, छोड़ना बहुत कठिन है। दूर करना चाहो तो सभी पापों को दूर करना चाहिए। जोड़ने में हमेशा लगे रहते हैं पाँचों पाप चलते ही रहते हैं। इससे दूर होने के लिये पंचेन्द्रियों को संयमित करना पड़ेगा। आत्मा के अंदर जाना पड़ेगा। सभी सम्बन्धों को छोड़कर के ध्यान करना पड़ेगा। इसलिए यह कार्य इतना कठिन लगता है। लेकिन जिन्होंने मोह छोड़ दिया, मुक्ति पाना अपना लक्ष्य बना लिया और जो वैरागी बन गये उनके लिये तो ये संयम और ध्यान सरल हो जाते हैं। सबकुछ छोड़ना बहुत कठिन है। लेकिन हम अपने मन को अपनी ओर मोड़कर जीवन को सरल तो बना सकते हैँ। जितना परिग्रह कम होता है उतना अपने आत्म-ध्यान के लिये, स्वाध्याय के लिये, ग्रंथ पठन और लेखन के लिये अधिक से अधिक समय मिलता है। उतनी अधिक आत्म शांति भी मिलती है। इसलिए अपना जीवन कैसा होना चाहिए? Simple living and high thinking सादा जीवन उच्च विचार वाला होना चाहिए। सादा जीवन होगा, परिग्रह कम होगा तो साधना रूप जीवन बनेगा। (Facility) सुविधाओं में आराम न करते हुये हमारा मन पवित्र हो, धार्मिक चिंतन हो, ये सब बातें उच्च विचारों में आती हैं। High thinking यही है।

लोक कल्याण की भावना करनी चाहिए। लोक कल्याण की भावना से ही तीर्थंकर भी बनते हैं, जो सुख (मोक्ष) हम प्राप्त करना चाहते हैं उसको हम से पहले सभी जीव प्राप्त करें, यह भावना ही लोक कल्याण की भावना है।

इस लोक में कई धर्म, कई मत हैं। वे सब अपने-अपने स्थान पर अपना-अपना मार्ग बताते हैं। बतलायेंगे भी। मोक्ष किससे होता है? यह बात दूसरी है। लेकिन लोक में अनेक वस्तु व उनके गुणधर्म होते हैं। इसको हम सत् बोलते हैं धर्म है; तो अधर्म भी है। अधर्म है; तो धर्म भी है पुण्य है; तो पाप भी है। संसार है; तो मोक्ष भी है। इस प्रकार एक-दूसरे के अपेक्षा भेद से ही अनेकान्त की स्थापना होती है।

एक वस्तु, दूसरे वस्तु की पूरक होती है। एक धर्म दूसरे धर्म को साथ लेकर चलता है। एक दूसरे का साथ देते हैं। ऐसा ना होता तो अनेकान्त, स्याद्वाद रह नहीं सकता। इसलिए अनेकान्त किसको कहते हैं? यह जानना चाहिए। ''**एक वस्तुनि वस्तुत्व निष्पादकं अस्तित्त्व, नास्तित्व, द्वयादि स्वरूप परस्पर विरुद्ध सापेक्ष शक्ति द्वयं यत्तस्य प्रतिपादनम् स्यादनेकान्तो भण्यते॥**''

अनेकान्त का क्या अर्थ है- इसके बारे में कहा है कि- एक पदार्थ में वस्तुत्व का प्रतिपादन करते हुए उसमें अस्तित्व और नास्तित्व दोनों स्वरूप को परस्पर में विरोध न करके अपनी अपेक्षा शक्ति से दोनों का प्रतिपादन करना अनेकान्त या स्याद्वाद कहते हैं।

पर सम्बन्ध से रहित ज्ञान, दर्शन वाली आत्मा शुद्धात्मा है। वही आत्मा किसी अपेक्षा से अपने रूप या पर रूप, अथवा नित्य रूप या अनित्य रूप, एक रूप या अनेक रूप, सत् रूप या असत् रूप आदि से सहित है। ऐसा अनेकान्त बताता है। इसको ऐसा जाने- कि आत्मा ज्ञान की अपेक्षा अपने रूप, मतिज्ञान आदि की अपेक्षा पर रूप है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा एक रूप है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनेक रूप है।

अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा असत् रूप है पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा असत् रूप है। द्रव्यार्थिक नय से नित्य रूप और पर्यायार्थिक नय से अनित्य रूप है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा भेद रूप है और वही द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अभेद रूप है।

इस प्रकार आत्मा अनेक धर्मात्मक है यह अनेकान्त से सिद्धि होती है। अनेकान्त के लिये कई परिभाषाएँ हैं- ''अनेकेअन्ताः धर्माः यस्मिन सः अनेकान्तः।'' जो अनेक अन्त अर्थात् अनेक धर्मों से सहित है उसको अनेकान्त कहते हैं। जिसको अनेक नयों से जानते हैं, उसको अनेकान्त कहते हैं। एक वस्तु के अनेक दृष्टिकोणों को जानना अनेकान्त है।

पैर, पेट, पूँछ एवं कान आदि अंग एक हाथी में पाये जाते हैं। अतः हाथी इन सभी से सहित होता है। इस प्रकार ऐसे ज्ञानी पुरुष की बात सुनकर एक-एक ही अंग पर छठाग्रह कर लड़ने वाले चारों अंधों को जैन धर्म के अनेकान्त, स्याद्वाद धर्म का मर्म ठीक-ठीक समझ में आया। इसी प्रकार धर्मों की सिद्धि भी अनेकान्त से होता है। कथञ्चितवाद, स्याद्वाद भी कहते हैं। कथञ्चित एक अपेक्षा से ऐसा भी है। कथञ्चित एक अपेक्षा से वैसा भी है। वस्तु स्वरूप ऐसा ही है दूसरे प्रकार से है ही नहीं, ऐसा कहना एकान्त हो जायेगा।

''स्यात् कथञ्चित् विवक्षित प्रकारेणानेकान्त रूपेण वदनं वादो आलापः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वादः।''

स्यात् का अर्थ होता कथञ्चित अथवा किसी एक अपेक्षा या दृष्टि से वाद

अर्थात् वचन शैली से कथन करना स्याद्वाद रूप अनेकान्त कहलाता है। इस प्रकार किसी अपेक्षा दृष्टि,विवक्षा, अविवक्षा, मुख्य, गौणता, वक्तव्य, अवक्तव्य और अर्पित-अनर्पित ये सब एकार्थ वाचक हैं। वस्तु को अनेकान्त स्वरूप कथन करना यह जैन धर्म का मूल आधार है। जैन धर्म में अनेकान्तात्मक स्याद्वाद रूप वचन-शैली होने से अनेक प्रकार के वाद-विवाद यहीं पर समाप्त हो जाते हैं। अपनी-अपनी दृष्टि से सभी धर्म रहते हैं।

मोक्ष प्राप्त करना है तो एक जैन-धर्म मात्र ही आपको मोक्ष प्राप्त करा सकता है। क्योंकि यहाँ पर राग-द्वेष सहित सभी सम्बन्धों से, इन्द्रिय-विषयों से छूटने का उपाय बताया गया है। वीतराग-विज्ञान के लिये यही मूल आधार है। यह आत्मा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शुद्ध है ऐसा आपको श्रद्धान कराता है। एक दिन आप भी वैसी शुद्ध आत्मा बन सकेंगे, ऐसा क्यों बोला जा रहा है क्योंकि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से आत्मा अशुद्ध भी है। कर्मबंध की अपेक्षा अशुद्ध है। लेकिन उसे शुद्ध किया जा सकता है। शक्ति की अपेक्षा शुद्ध है, व्यक्तिकरण की अपेक्षा शुद्ध नहीं है। पुरुषार्थ किया तो हम शुद्ध बन सकते हैं।

द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा देखा जाय तो सोना है लेकिन पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा देखा जाय तो किसी आभरण रूप या कि कालिमा से ढका हुआ है, काला है। उसको शुद्ध करना पड़ेगा। उसको जब अग्नि में तपाया जायेगा तब शुद्ध बनेगा और अपनी कान्ति को प्रगट करेगा। वैसे ही आत्मा में भी सिद्ध बनने की शक्ति है। लेकिन अभी उसका व्यक्तिकरण नहीं हुआ है। आत्मा अपनी शक्ति से ही मुक्ति को प्राप्त करती है। इस लोक में जितनी भी भव्यात्मायें हैं वे सब मोक्ष जाने की शक्ति रखती हैं। सभी आत्माओं के पास यह शक्ति नहीं है कोई जीव भव्य होते हैं, कोई अभव्य होते हैं। उदाहरण के लिये जैसे- खड़ी मूंग; उस मूंग को कितना भी पानी में डालो फिर भी उनमें भी ऐसी कोई मूंग होती है जो सीजती नहीं है उसको ठर्रा मूंग कहते हैं। वैसे ही इस संसार में कई आत्मायें हैं, जिनके पास मोक्ष जाने की क्षमता नहीं है और रत्नत्रय प्राप्त करने की भी योग्यता नहीं है। क्योंकि निमित्त मिलने के बाद भी उपादान साशक्त नहीं है, इसलिये मोक्ष नहीं जा सकते हैं। लेकिन भव्य आत्मा हों तो वे कहीं भी रहें नरक-तिर्यञ्च, मनुष्य और देव कहीं भी हों उसके पास मोक्ष जाने की पात्रता है एक दिन वह सुयोग्य मनुष्य बनकर अवश्य मोक्ष जायेगा क्योंकि सामर्थ्य उसके पास है।

अपने पुरुषार्थ से सभी भव्य जीव एक दिन मोक्ष जा सकते हैं। लेकिन जो दूरानुदूर भव्य है जो एक प्रकार से भव्य जीव है उसके पास भी मोक्ष जाने की उपादान शक्ति है फिर भी उसके योग्य उन्हें निमित्त नहीं मिलते इसलिए वे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। उपादान और निमित्त दोनों हो तब कार्य बनता है। साधन नहीं तो साध्य नहीं, कारण के बिना कार्य नहीं सम्पन्न होता है।

धर्म या भगवान मोक्ष नहीं देते हैं। मोक्ष जाने के लिये वे निमित्त मात्र हैं। उनके निमित्त से भव्य, त्याग-तपस्या आदि पुरुषार्थ करके मोक्ष को साधता है। जो सिद्ध बन गये हैं वे सिद्ध; लोक के ऊपर नहीं जा सकते क्यों नहीं जा सकते? क्योंकि उपादान में अनन्त शक्ति होने के बाद भी उन्हें, निमित्त की आवश्यकता पड़ती है। धर्मास्तिकाय रूप निमित्त न होने से लोक के ऊपर नहीं जा पाये। निमित्त मिलने के बाद पुरुषार्थ करें तो कार्य सिद्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। भव्य जीव भगवान बन सकता है इस प्रकार की शक्ति उसके पास है। एक बार भगवान बन गये, फिर वे नीचे भव लोक में नहीं आते हैं और न ही वे लोक की व्यवस्था बनाते हैं।

यह लोक स्वयं अनादिकाल से अपने स्वभाव से ही स्थित है इसको किसी के द्वारा बदला नहीं जा सकता है। इसको कोई बना भी नहीं सकता और न ही इसकी कोई रक्षा ही करता है, तथा न कोई मिटा सकता है। अपने आप में प्रकृतिक रूप से बना हुआ है। अपने आप सुरक्षित है। ब्रह्मा जगत की सृष्टि करता है; विष्णु जगत का रक्षक है और महेश-रूद्र सृष्टि का विनाशक है इत्यादि मान्यता यह सब मिथ्या कल्पना है, सही नहीं है। क्योंकि जैन धर्म में मात्र नहीं; बल्कि हिन्दु धर्म में- तेजोबिन्दु उपनिषद में भी कहा है कि-

''रक्षको विष्णुरित्यादि, ब्रह्मा सृष्टस्तुकारणम्।
संहारे रुद्र इत्येवं, सर्व मिथ्येति निश्चितु॥

अर्थात् ब्रह्मा सृष्टि का कर्ता है, विष्णु सृष्टि का रक्षक है, महेश सृष्टि का विनाशक है ऐसी मान्यता निश्चित रूप से मिथ्या (झूठ)है। मतलब ऐसा श्रद्धान छोड़ना चाहिए, यही सच्चा विचार है। यदि भगवान को लोक के कर्त्ता-धर्त्ता बनायेंगे तो फिर उनके धर्म में भगवान का लक्षण ही नहीं घटेगा। क्योंकि भगवान तो राग-द्वेष, काम, परिग्रह इन सब से दूर होते हैं। कर्त्ता-धर्त्ता बनना उनका काम नहीं है। जीवों को बड़े-छोटे, सुन्दर असुन्दर, गरीब-अमीर बनाना ये ईश्वर का काम नहीं। ईश्वर तो सब कर्मों का नाश करके अपनी आत्मा में लीन रहते हैं। उन्हें सर्वज्ञ कहना भी

व्यवहार नय से होता है। सच में तो वे आत्मज्ञ हैं। आत्म-सुख का अनुभव करते हैं। जैसे दर्पण में सब पदार्थ युगपत् झलकते हैं लेकिन दर्पण अपने आप में स्थिर होता है इसी तरह राग-द्वेष से रहित वे भगवान भी अपने आत्मा सुख में लीन हैं। उनके ज्ञान में सभी पदार्थ अपने आप झलकते हैं। इसलिए वे व्यवहार नय से सर्वज्ञ हैं और निश्चय नय से वे आत्मज्ञ कहलाते हैं। अपनी आत्मा में लीन हुये भगवान जब इस संसार को देखते ही नहीं हैं फिर वे इस सृष्टि के कर्त्ता-धर्त्ता कैसे बनेंगे? निश्चित रूप से नहीं बन सकते हैं।

ये सब केवलज्ञान रूप वीतराग विज्ञान की महिमा है आज का यह यांत्रिक विज्ञान इस वीतराग-विज्ञान के आधार से पूर्ण बनेगा। जैनधर्म में वीतराग-विज्ञान ही सभी विज्ञानों का सार है। ऐसे विज्ञान का प्रदाता अनेकान्त, स्याद्वादमय जिन शासन हमेशा जयवन्त रहे।

'षट्काल व्यवस्था एवं काल परिवर्तन में निमित्त ज्योतिष्क विमान'

वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाये तो 'षट्काल व्यवस्था एवं काल परिवर्तन और उसके निमित्त' बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है और आज की जनता के सराहनीय और अनुकरणीय भी है।

छह काल कैसे होते हैं, उनमें क्या-क्या व्यवस्थाएँ होती हैं? कर्म भूमि, भोग भूमि, में होने वाले षट्काल परिवर्तन और साथ-साथ में उनके धार्मिक जीवन, उनके व्रत-आचरण और वहाँ से होने वाली गति-अगति इत्यादि के बारे में हम सुनेंगे। कैसे प्रलय होता है? फिर कैसे रचना होती है? इन सब बातों का विवरण आएगा हम कहाँ बैठे है? सारा वर्ल्ड कहाँ है? जिसको आज हम विश्व बोलते हैं और उसका विस्तार कितना है? लोग तो कूप मंडूक जैसे बनके बैठे हैं एक कुएँ में जैसे मेंढक होता है और बोलता है कि यही कुआ ही पूरा संसार है। लेकिन कितना बड़ा है संसार? जब कुएँ से बाहर आए तब जाने। ऐसे ही समूचे विश्व के सम्बंध में हम सुनेंगे। ''भूरामल'' शास्त्री जी जैसे महान ऐसे चोटी विद्वान हो चुके हैं और जो कि 'वीरोदय' जैसे काव्य लिखने वाले महान ज्ञानी थे जिस काव्य में मिथ्या मतों का खंडन किया गया है। जब ''बनारस'' में किसी ब्राह्मण विद्वान ने बोला कि आपके जैन दर्शन में क्या साहित्य है? कुछ भी नहीं है संस्कृत में साहित्य! तब उन्होंने 'वीरोदय काव्य' नामक चित्रालंकार काव्य बनाया था और मुनि दीक्षा अंगीकार करके आचार्य विद्यासागरजी के गुरुवर आचार्य ज्ञानसागरजी बने थे। जिनके काव्य को पढ़कर विद्वान दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। जब बड़े-बड़े विद्वानों के पास वह काव्य पहुँचा। तो उन्होंने कहा मुझे पढ़ना मुश्किल हो रहा है, इसका अर्थ मैं कैसे करूँ आप ही करेंगे इसका अर्थ, ऐसा पन्नालाल साहित्याचार जी जैसे बड़े-बड़े विद्वानों ने बोल दिया था। हम साहित्याचार्य हो करके भी इसके गूढ़ अर्थों को नहीं निकाल सकते; आप ही निकाल सकते हैं या आपके चरणों में बैठकर ही हम इसका अर्थ कर सकते

हैं। तब उन्होंने स्वयं ही उस काव्य का अर्थ किया था। ऐसी ही आगमिक परम्परा के प्रभाव से जो यहाँ संगोष्ठी हो रही है। इसका एक ही उद्देश्य है कि आज जो कई विद्यालयों में तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थ सिद्धि के तीसरे, चौथे अध्याय को छोड़ दिया जाता है; क्या उनका जिनधर्म पर विश्वास नहीं है? लेकिन बच्चों के लिए जो आज स्कूल में पढ़ाया जाता है उसमें विज्ञान कुछ कहता है और हमारा यह जैन दर्शन कुछ; लेकिन हम ये नहीं सोच पाते हैं और न लोगों को बता पाते हैं कि विज्ञान भी कितना हमारे जैन दर्शन की ओर आया है ? और कितने सारे तथ्यों को उसने स्वीकार किया है। हमारे जैन दर्शन के बिना विज्ञान का नाम नहीं चल सकता। जर्मनी की लायब्रेरी में जो नाम है ''गंधहस्ती महाभाष्य'' का; वह गंधहस्ती महाभाष्य तत्त्वार्थ सूत्र की टीका रूप है, जो हजारों श्लोक प्रमाण है, ऐसा शास्त्र समन्तभद्र आचार्य के द्वारा आज से 2000 वर्ष पहले बनाया गया था। कितना विशाल वर्णन होगा उसमें, तीसरे-चौथे अध्याय का, सारे भोग भूमि, कर्म भूमि, सारे ज्योतिष्क विमान कितना विस्तृत विवेचन होगा। आज उसका नाम है केवल लायब्रेरी में, ग्रंथ नहीं दिखाते वे हमारे लिए। वह ग्रन्थ वहाँ होना अवश्य चाहिए। आज वहाँ संस्कृत पढ़ते हैं लोग और संस्कृत सीखते भी हैं। जर्मनी में हमारे देश से गये साहित्य को वे सुरक्षित रखे हुए हैं और उस पर रिसर्च करते हैं और उसमें से वैज्ञानिक लोग नई-नई खोजों पर पहुँचते हैं। ये अणु-परमाणु नाम कहाँ से आए। ये जैन दर्शन के ही नाम है। परमाणु किसको बोलते हैं, हमारे यहाँ आया है कि जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता वह परमाणु है। इस अणु-परमाणु के बारे में मैंने यहां पर पधारे जो वैज्ञानिक हैं उनको कहाँ था कि आप अणु-परमाणु पर वैज्ञानिक ढंग से लेख लिखिए और जैन दर्शन से सिद्धि कीजिए। वे आपको यहाँ भी कुछ संदर्भ बताएंगे। फिर नया विषय भी मैंने दिया है जैसे उड़न-तस्तरी क्या होती है। ये तो फ्लाईंग सेन्टर बोलते, कई उड़न-तस्तरी देखी हैं? वैज्ञानिकों ने, वे नहीं पहचान पाए कि यह क्या चीज है? मैंने कहा कि ये आपको बताना पड़ेगा उसके बारे में, क्योंकि आप वैज्ञानिक हैं ऐसे ही ये जो विद्याधरों के विमान हैं, ऐसे ही सूर्य-चाँद आदि की गति और उनका जो भ्रमण है और दिन-रात आदि का वर्णन ये सारा, पूरा वैज्ञानिक ढंग से आपके सामने उपस्थित करने वाले हैं और भी नये वैज्ञानिकों ने भी ज्योतिष्क

मण्डल पर बहुत अच्छा विषय तैयार किया है कई कॉपी करके भी लाए हैं आपको यहाँ दिखाऐंगे, चित्र भी दिखायेंगे यहाँ पर उन्होंने दिखाने की बहुत अच्छी तैयारी की है। ऐसे और भी सभी विद्वानों को मैंने एक-एक विषय दिए हैं और सारे इसी शीर्षक पर हैं कि 'षट्काल व्यवस्था और काल परिवर्तन में निमित्त ज्योतिष्क विमान'। आप सभी बड़े मनोभाव से सुनते रहना बस।

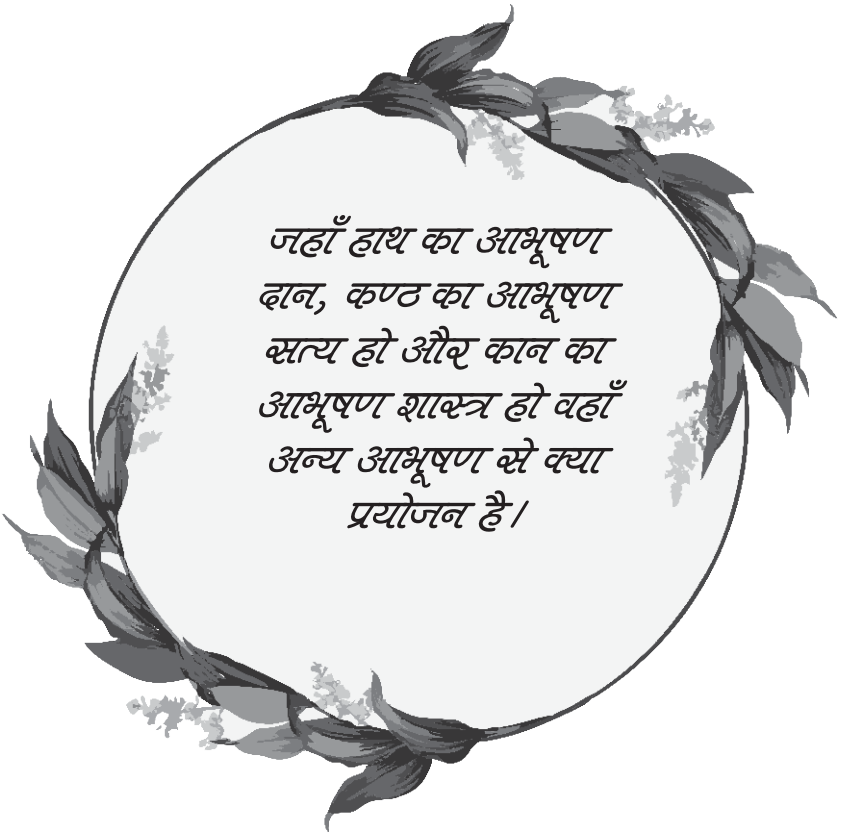

धर्म और विज्ञान पर समीक्षात्मक उद्‌बोधन

लोक सम्बंधी एक विशेष चिन्तवन को सभी जिनधर्मी पढ़ते हैं और सभी सम्प्रदाय के लिए भी अनुकरणीय और इष्ट होता है। इस जगत में हरेक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। जैसे कहा जाता है कि एक बीज के अन्दर वृक्ष बनने की शक्ति होती है। हरेक आत्मा परमात्मा बन सकती है लेकिन वह भव्य होना चाहिए। जैसे कि स्वर्ण पाषाण जमीन से निकलता है और उससे स्वर्ण निकलता है। एक और ऐसा भी पाषाण होता है जिसको हम अन्धपाषाण बोलते हैं। उससे स्वर्ण कदापि नहीं निकलता है। उसके अन्दर उपादान इतना सशक्त नहीं होता कि अपने अन्दर से वह शक्ति व्यक्त कर सके। कहते हैं कि मयूर के पंख में स्वर्ण होता है लेकिन उसको कोई बाहर नहीं निकाल सकता और किसी भी प्रक्रिया से वह बाहर नहीं निकाला जा सकता। ऐसे कुछ दूरानदूर भव्यजीव इस जगत में हैं वे भले ही मोक्ष पाने की शक्ति रखते हों लेकिन कभी उसका व्यक्तिकरण नहीं होता। कहीं शक्ति हो तो भी व्यक्तिकरण के लिए वैसे निमित्त चाहिए और वैसे निमित्त मिलने पर भी अगर उपादान सशक्त नहीं है तो वहाँ कार्य नहीं हो पाता।

जहाँ उपादान सशक्त होता है तो कई बार अपने आप भी निमित्त मिलने लग जाते हैं। हम इस जगत में हरेक आत्मा को परमात्मा की शक्ति से देख सकते हैं। लेकिन शक्ति से ही देख सकते हैं वहाँ व्यक्ति वर्तमान में हुई नहीं। हम बीज में वृक्ष की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन वर्तमान में बीज को हम वृक्ष नहीं बोल सकते। हम कह सकते हैं कि शक्ति की अपेक्षा से उसमें वृक्ष और फल सब कुछ छुए हुए हैं। दुग्ध में घी की शक्ति है। वह शक्ति कब बाहर आती है? जब उसके साथ वैसे निमित्त मिलते हैं और उस प्रकार की प्रक्रिया की जाती है तब घी रूप में उसकी व्यक्ति होती है तब एक अलग ही स्वाद मिलता है। योग्यता आवश्यक होती है प्रत्येक कार्य के लिए जैसे कि आप बीज को भूमि में डालोगे तो भूमि कितनी साफ सुथरी होना चाहिए? कंकड़ पत्थर से रहित होना चाहिए। मृदु होना चाहिए और उसमें पानी डालोगे, खाद डालोगे और रक्षा करोगे तो फिर वह बीज अंकुरित होगा और धीरे-धीरे वह वृक्ष रूप लेकर के हमें फल भी देगा। इसी तरह से जैसे कि घी को भी पाने के लिए दूध को तपाना पड़ता है और नवनीत को भी तपाना पड़ता है तब वहाँ घी बनता है। घी की शक्ति युक्त दूध

को पीकर घी का स्वाद नहीं ले सकते। ऐसी ही वर्तमान में हम इस आत्मा में परमात्मा की शक्ति तो बोल सकते हैं। परंतु व्यक्तिकरण नहीं हैं अतः उसका स्वादादि लेकर अनुभव हम नहीं कर सकते।

यह बात भी हमें अच्छी तरह से समझना चाहिए कि अभी हम इस संसार में रहते हैं तो इस संसार में इन जीवों की स्थिति क्या है? जैसे जीव दो प्रकार के हैं संसारी और मुक्त। हम लोग संसारी जीव हैं। चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारों गतियों में अनादि काल से भ्रमण चल रहा है। चौरासी लाख प्रकार के योनि स्थान जीवों के जन्म लेने का स्थान है इनमें जीव जन्म-मरण कर रहे हैं अनादिकाल से। '**संसरतीति संसारः**' संसरतीति मतलब चतुर्गति भ्रमण; जिसका अर्थ संसार होता है। हम संसार से पार हो सकते हैं कैसे हो सकते हैं? बताइए कि बीज से वृक्ष बनता है या वृक्ष से बीज? बीज पहले है कि वृक्ष पहले है? आप बोलेंगे बीज पहले है तो बीज कहाँ से आया? वृक्ष कहाँ से आया? कौन पहले आया? कौन बाद में आया? कोई नहीं बता सकता। ऐसे ही अनादिकाल से यह आत्मा इस संसार में है, कर्मों से सहित है, कभी मुक्त थी बाद में संसारी बन गयी ऐसा नहीं है। अनादिकाल से कर्मों का संयोग लगा हुआ है। एक बात निश्चित है कि इस भव्य आत्मा को परमात्मा पद मिल सकता है जैसे हमें बीज से वृक्ष नहीं चाहिए तो क्या करना पड़ेगा? अगर हम बीज को जला देंगे तो वृक्ष नहीं बनेगा। ऐसे ही इस संसार में उत्पत्ति का कारण है कर्म। हमारी आत्मा में जो अष्ट कर्मों का बन्ध है। उसे कार्मण शरीर बोलते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गौत्र और अन्तराय इन अष्ट कर्मों के बन्ध से आत्मा अनादिकाल से इस संसार में भ्रमण कर रही है। कर्मों का बन्ध होता है। कर्मों से गति होती है। गति में शरीर मिलता है। शरीर में इन्द्रियाँ मिलती है। इन्द्रियों को विषय भोग मिलते हैं। विषय भोग में रागद्वेष होता है। राग-द्वेष से कर्म बंध होता है और कर्मों में पुनः गति ऐसे यह चक्र अनादि काल से चल रहा है। इससे निकलने का क्या उपाय है ये हमें सोचना चाहिए। कर्म रूप बीज को जिसने जला दिया तो वह इस संसार में जन्म, मरण नहीं करता। इस लोक में संसारी आत्माओं में वे भी आते हैं जो जीवन मुक्त हैं हमारे केवली भवगान आठ कर्मों में से चार घातिया कर्मों का नाश करके वे केवली भगवान बन जाते, प्रत्यक्ष ज्ञानी बन जाते हैं और समवसरण या गंधकुटी की रचना होती है। उनका इस जीवन में

नियम से मोक्ष होगा। अब वे इस संसार में जन्म नहीं लेंगे इसलिए उनको जीवन मुक्त कहा जाता है और जो आठों कर्म से दूर हो जाते हैं वे कर्म मुक्त कहलाते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी बन सिद्धालय में जाके विराजमान हो जाते हैं फिर इस संसार में नहीं आते हैं। जैसे एक बार दूध से घी बनने के बाद क्या कभी वह घी दूध बनता है? नहीं बनता। वैसे ही एक बार आत्मा मोक्ष जाने के बाद पुनः इस संसार में अवतरित नहीं होती। जब तक ये आत्मा चार गतियों में कभी नरक, कभी देव, कभी मनुष्य, कभी तिर्यञ्च ऐसी गतियों में घूमती रहती है तब तक संसार चलता रहता है और जब इन चारों गतियों से निकल जाती तो फिर पुनः इस संसार में नहीं आती।

संसार निवारण हेतु स्वस्तिक का विवेचन बड़ा मार्मिक है। एक जगह बहुत अच्छा विवेचन देखा था स्वस्तिक का। जैसे हमने बनाया तो उसमें खड़ा डण्डा जन्म का प्रतीक है। आड़ा डण्डा मरण का प्रतीक है। चारों तरफ चार डण्डे चार गतियों के प्रतीक हैं। जन्म, मरण चलता है और चारों गतियों में भ्रमण चलता रहता है। उसमें चार शून्य रखे हुये हैं उनमें तीन, चौबीस, पाँच और चार ऐसे अंक खिलते हैं ये किसके प्रतीक हैं? रत्नत्रय का पालन करना, चौबीस तीर्थंकरों को मानना, पाँच परमेष्ठियों पर श्रद्धा करना और चारण ऋद्धिधारी मुनियों का ध्यान करना। ऐसा धर्म का जो हमारे भगवान ने उपदेश दिया है उसके अनुसार चलकर जन्म, मरण के चक्कर से दूर होकर यह आत्मा कहाँ जाती है? अब अपन ने जो स्वस्तिक बनाया है उसमें चारों कोणों में थोड़ी तिरछी रेखाएँ भी बनायी हुयीं हैं। जिसका अर्थ यह होता है कि जब यह आत्मा धर्म का पालन करती है तब इस संसार से निकल जाती है और मोक्ष को प्राप्त जाती है। अच्छा लगा न! कितना अच्छा चिंतन किया है स्वस्तिक के सम्बंध में। धन्य-धन्य वे भव्यात्म लोग जो इस संसार में रहते हुए भी ध्यान आदि के द्वारा कर्मों का क्षय कर देते हैं और यह आत्मा भव से मुक्त हो जाती है। कर्मों से मोक्ष पाने के लिए सबसे प्रमुख ध्यान है और वह ध्यान कैसे होता है? तो जब तक हमारा परवस्तु से सम्बंध रहता है तब तक एकाग्रता नहीं आती जैसे कि एक छोटी-सी वस्तु लँगोट है वह फट गयी तो सुई चाहिए, सुई को धागा चाहिए, सुई, धागा रखने के लिए डब्बी चाहिए, डब्बी के लिए पेटी चाहिए पेटी रखने के लिए घर चाहिए और घर में लगाने के लिए ताला चाहिए। ताले टूटे तो केस डालेंगे। फिर केस में लड़ने के लिए पैसे चाहिए और पैसे के लिए दुकान चाहिए सब कुछ चाहिए। इसलिए छोटे से

परिग्रह से भी बहुत बड़ा परिग्रह आ जाता है और चिंताओं पर चिंताएँ बढ़ती जाती हैं। चिंताएँ बहुत रहती हैं। प्रवचन चलते हुए भी बार-बार बाहर भागना पड़ता है आपको; क्योंकि मोबाइल से सम्बंध जोड़ रखा है और अगर मोबाइल में सिम न हो या नेटवर्क से सम्बंध जुड़ा न हो तो क्या घंटी आयेगी? नहीं आयेगी, घंटी नहीं बजेगी तो आपको यहाँ-वहाँ दौड़ना नहीं पड़ेगा, दो बार लाल स्विच दबा दिया आपने तो बन्द हो गयी घंटी, अब कोई सम्बंध नहीं। सम्बंध रखते हैं तो हमें आकुलता होती है। मन वहाँ भाग जाता है। सभा में बैठे हुए भी हमारा मन दुकान तरफ चला गया। दुकान से फोन आ गया, घर से फोन आ गया तो हमारा मन भटक जाता है। हमारे भगवान ने क्या किया था? मुनि बनकर सब सम्बंध तोड़ दिया था जब सम्बंध तोड़ दिया तो मन एकाग्र हुआ। अपनी आत्मा में ही तल्लीन हो गये और कर्मों का क्षय हो गया। एक और बात आप सोचेंगें कि क्या ऐसे ही कर्मों का क्षय हो गया? देखो एक छोटा-सा उदाहरण है-

सूर्य की किरणें सब जगह पड़ रही हैं और बहुत तेज गर्मी का समय है समझो; लेकिन वे किरणें एक पेपर को भी नहीं जला पा रही हैं पेपर धूप में पड़े रहते हैं जलते नहीं और उन ही किरणों को एक लेन्स के द्वारा इकट्ठा करके एक प्वाइन्ट पर छोड़ते हैं तो पेपर जल उठता है। यहाँ पर छोटे-से उदाहरण से पूरा रहस्य खुल गया अगर हमारी ध्यान रूपी किरणें विश्व के समस्त विषयों की ओर फैल रही हैं और न जाने कहाँ-कहाँ से सम्बंध जुड़ा है। इसलिए तो हम आत्मा में एकाग्र नहीं हो पाते। जैसे लेन्स के द्वारा सारी किरणों को एक प्वाइन्ट पर छोड़ा गया वैसे ही हम अगर सभी ओर से ध्यान को हटा करके उसे एक जगह केन्द्रित करके अपनी आत्मा पर छोड़ेंगे तो कर्म रूपी पेपर जल उठेगा और आठों कर्म नष्ट होकर के आत्मा मुक्त हो जायेगी, परमात्मा बन जायेगी। बस! उसी साधना के लिए मुनि बनना पड़ता है। अब हम दूसरी तरफ से विचार करेंगे कि मुनियों ने कपड़ा क्यों छोड़ा? कपड़ा होगा तो चिंताएँ रहेंगी, धोने की, सुखाने की, प्रेस करने की, मंगाने की और पानी की भी चिंता, क्या-क्या बताएँ; इसलिए तो साधु उस परिग्रह को छोड़ देते हैं। घर, मकान भी छोड़ देते हैं और प्राकृतिक सहज जीवन जीते हैं क्योंकि ऐसा ही तो जन्म हुआ है, कोई कपड़ा तो पहनकर आया नहीं और वे एक यथाजात बालक के समान रहते हैं। उनके अन्दर कोई विकार नहीं होता क्योंकि निर्ग्रन्थ भेष विकार से रहित होता है। उनका जीवन निर्मल

जीवन माना जाता है। और इससे वे कर्मों का क्षय करते हैं, पंच पाप नहीं हो पाते हैं। हिंसा से दूर हो गये, कृषि व्यापार आदि सब परिग्रहों से दूर हो गये तो हिंसा नहीं। न स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाते हैं, और न किसी को भोजन बनाने के लिए बोलते हैं। वे तो आहार चर्या के निमित्त कोई नियम लेकर के निकलते हैं, विधि मिल गयी तो आहार हो जाता है। उन श्रावकों ने कहा कि आहार शुद्ध है तो आहार लेते हैं नहीं तो वापिस आ जाते हैं। आपने मुझे यह नहीं दिया वह नहीं दिया, ऐसा नहीं दिया, वैसा नहीं दिया ऐसा कुछ नहीं बोलते हैं। शास्त्र पढ़ना हो तो वह उन्हें मंदिर में मिल जाता है। पिच्छिका और कमण्डल बदलना हो तो आप लोग दे ही देते हैं, उन्हें और क्या चाहिए बस सभी स्त्रियाँ तो उनके लिए माता के समान या बहिन के समान हो गयीं। जिसके लिए लोग झूठ बोलते हैं और चोरी करते हैं उस परिग्रह को तो पहले ही छोड़ दिया मात्र उपकरण हैं साथ में। पिच्छिका है, कमण्डल और शास्त्र हैं और आँखें कमजोर हो तो चश्मा है। वह भी शास्त्र पढ़ने या समिति पूर्वक चलने के लिए है इसलिए उपकरण में आ जायेगा। 'उपकारं करोतीति उपकरणं'। जो उपकार करता है वह उपकरण है। इसका मतलब यह नहीं है कि धन, पैसा भी रख लें। उसके लिए तो कितनी चिंताएँ बढ़ जाती हैं। और हिंसा का भी कोई साधन नहीं रखते हैं कि मोबाइल रख लें, मोबाइल में भी हिंसा है क्योंकि लाइट (अग्नि) का सम्बंध है अग्नि को भी जीव माना है। उसके अन्दर आपको लाइट चार्ज करनी पड़ती है। सेल है या बैट्री यह जो चीज है उसमें भी सूक्ष्मता से हिंसा है। उसके लिए कितना धन वैभव का झमेला होता है। उस मोबाइल में सिम डालना पड़ती है और क्या-क्या करना पड़ता है क्यों भैय्या? क्या कहते हैं उसको? हाँ बेलेन्स डालना पड़ता है। आप पैसे वाले हैं अतः बेलेन्स डालते रहते हैं लेकिन साधु किससे याचना करेंगे। फिर परिग्रह आ जाय और वही पैसे वाली बात भी आ जायेगी। इसलिए मोबाइल नहीं रखते। गाड़ी में बैठकर चलने से गाड़ी के नीचे दबकर जीवों के मरने की सम्भावना रहती है अतः साधु अहिंसा की दृष्टि से पैदल ईर्यापथ पर ईर्या समिति से दिन में धर्म कार्य हेतु विहार करते हैं। इस प्रकार का जीवन होता है उनका और एक जगह के बन्धन में भी नहीं रहते वे। कारण कि एक जगह रहने लगेंगे तो मोह हो जायेगा। राग, द्वेष होने लगेंगे। इसलिए हमेशा विहार करते रहते हैं। बोलते हैं कि साधुओं के पैर चलते हैं और मन अपने धर्म में स्थिर रहता है, लेकिन श्रावकों के क्या होता है? पैर स्थिर रहते हैं और

मन चंचल होता है। वे एक घर में बंधे रहते हैं, लेकिन मन सब जगह घूमता है। लेकिन साधुओं के पैर चलते हैं, समूचे भारत में वे विहार करते रहते हैं लेकिन मन अपनी आत्मा में स्थिर रहता है जहाँ पर भी जाय, जहाँ पर भी जहाँ पर भी है धर्म ध्यान करते हैं बस। अपने आप से मतलब है, अपने आवश्यकों से मतलब है। यही उनका जीवन है। यह तो संक्षेप से उपदेश हुआ, लेकिन अब जो यहाँ शंकाएँ उठायी गई हैं उसका भी समाधान करना आवश्यक है। भोग भूमि में जितने भी जीव हैं वे सब देव गति को प्राप्त होते हैं। ये विशेषता बहुत अच्छी विशेषता है। लेकिन वे देवगति को ही क्यों प्राप्त करते हैं? इस पर थोड़ा सा चिंतन करें। तत्त्वार्थ सूत्र के छठे अध्याय के उन्नीसवे सूत्र में कहा है कि 'निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्' अर्थात् व्रत और शील से रहितपना देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक इन चारों आयु का कारण है। यहाँ एक शंका जन्म लेती है कि व्रत और शील से रहितपना देवायु के आस्रव का कारण कैसे हो सकता है? तो इसका समाधान इस प्रकार है कि भोग भूमि में कोई व्रत-शील नहीं होता तो भी वे शान्त परिणामी होते हुए देव अवस्था को ही प्राप्त होते हैं यह आगम में नियम है अतः इसी भोग भूमि की अपेक्षा से व्रत, शील से रहितपना देवायु का कारण माना है।

भोगभूमि के सम्बंध में किसी भव्य को ऐसा भी प्रश्न उठ सकता है कि भोग भूमि के जीव देवगति के अलावा अन्य गतियों में क्यों नहीं जाते? इस प्रश्न का समाधान यह है कि उन्हें पूर्व संचित विशिष्ठ पुण्य का फल ऐसा ही मिलता है। इसके अलावा जिस परिग्रह के पीछे व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और मूर्छा करता ऐसा परिग्रह उन्हें दस तरह के कल्पवृक्षों से सुलभ रूप से समयानुसार प्राप्त हो जाता है जिस कारण दुःखदायी निम्न गतियों को प्राप्त कराने वाले पापों को करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आज एक आनन्द और खुशी; मात्र हमारे लिए नहीं सबके ही मन में यह आनन्द और खुशी है कि कई दिनों की तैयारी और कई महीनों से जिसकी प्रतीक्षा थी वह कार्यक्रम आज सानन्द समापन की ओर है। विद्वत् संगोष्ठी का कार्यक्रम आज जो हम यहाँ देख रहे हैं यह कई दिनों की मेहनत की सफलता का परिणाम है और समाज को एक नई दिशा, नई दशा की ओर ले जाने वाले विद्वानों के ये आलेख-वाचन, प्रवचन रूप चिंतन बहुत ही मार्मिक रहे। हमने जितना नहीं सोचा था उससे कहीं अधिक ही हुआ। ज्ञान का जो आदान-प्रदान हुआ इससे भविष्य में बहुत

कुछ लाभ होगा। सारी जनता ने लाभ लिया। यह यहाँ की समाज को तीसरा अवसर मिला है। एक तो हुआ षोडशकारण व्रत महोत्सव, दूसरा दसलक्षण पर्व में श्रावक संस्कार साधना महोत्सव जिसे आप भले ही शिविर नाम देते हैं पर हम तो दस दिनों तक प्रतिमाधारी बनने की साधना करवाते हैं। कुएँ के पानी से चौके जैसा शुद्ध आहार होता है और जिसके साथ-साथ में जप, ध्यान, पूजा, अध्ययन को करवाना मुख्य उद्देश्य रहता है। इससे श्रावक बनने की साधना और आगे साधु पद की ओर बढ़ने की भी साधना हो जाती है। इसी शृंखला में विद्वत् संगोष्ठी यही तीसरा अवसर है। इसमें भारत के कोने-कोने से ख्याति लब्ध विद्वान् लोग आये हैं। जितने भी विद्वान लोग आये हैं सब चरित्रवान हैं, भक्तिवान हैं। इन्होंने अपने महत्वपूर्ण आलेखों को प्रस्तुत किया है। बार-बार घड़ी की ओर देखने लग जाते हैं; क्योंकि रात्रि में भोजन नहीं करते। हमें तो भोजन की चिंता रहती नहीं है। क्योंकि साधुओं को तो प्रतिक्रमण करना होता है इसलिए हम तो अपने प्रतिक्रमण आदि के समय का याद रखते ही हैं। अपने-अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखना ही धर्म है।

सब लोग भक्ति भावना से बहुत दूर-दूर से अपना समय निकाल कर आये हैं। कई लोग तो कॉलेज में प्रोफेसर हैं, बड़े-बड़े कार्य हाथ में लिए हुए हैं, और अनेक ग्रंथों की भी रचनाएँ करते हैं। हम लोगों ने आलेख लिखने के लिए बोला तो बिल्कुल नये आलेख और अपनी राईटिंग में लिख कर लाये हैं। उसको टाईप तक नहीं करवाया क्योंकि महाराजजी को नये पुराने का संदेह न हो जाये। लेकिन कई लोगों का आलेख हमें पुनः देखना है पढ़ना है, कई बातें जो नये विषय के रूप में हैं उसको समाज के सामने रखना आवश्यक है। बहुत जगह इसका अनुवाद भी हो सकता है। तमिलनाडु वाले चाहते ही हैं कि हमें हिन्दी की कृतियाँ मिलें जिससे हम उसको तमिल में अनुवाद कर सकें। ऐसे इस विद्वत् संगोष्ठी के कार्यक्रम से इस नगर का नाम लोगों की दृष्टि में रहेगा। आज के दिन जो संगोष्ठी हुई है इसका नवनीत आपके सामने है। आज यहाँ पर कर्म-भूमियाँ, भोग-भूमियाँ, षट्काल परिवर्तन के सम्बंध में तीन दिन से जो विषय चल रहे हैं उसका नवनीत रूप में हमने जाना है कि कितनी कर्म भूमियाँ होती हैं, कितनी भोग भूमियाँ होती हैं, उनमें रहने वाले जीव किस प्रकार के होते हैं और वहाँ के किस प्रकार के दुःख, किस प्रकार के सुख, किस प्रकार के कर्म, किस प्रकार की वहाँ की व्यवस्थाएँ हैं, वहाँ की आयु आदिक के

परिवर्तन होने, न होने के सम्बंध में, धर्म-कर्म की जो अवस्था-व्यवस्था है, साथ-साथ में ज्योतिष्क मण्डल व्यवस्था जो कि इस भूमि से 790 योजन से शुरू होकर के 110 योजन के भीतर है। वे ज्योतिष्क ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर से ही सुमेरू पर्वत की प्रतिक्षणा देते हैं। यह प्रदक्षिणा देने का जो कार्य है वह इस ढाई द्वीप के अन्दर ही है। बहिरवस्थिताः बोलते हैं अर्थात् बाहर में सारे के सारे ज्योतिष्क मण्डल अवस्थित हैं। बहुत हैं बहुत बड़ी संख्या में हैं। हम एक चिंतन करते हैं इनका ढाई द्वीप के अन्दर ही भ्रमण क्यों है; इससे बाहर क्यों नहीं? जिससे हमें मालूम पड़ता है कि हमारा कितना विशेष पुण्य है, विशेष पुण्यशाली ही इस ढाई द्वीप में जन्म लेते हैं और जो मनुष्य बनते हैं वे तो और भी बड़े पुण्यशाली हैं देखो जहाँ हम सबके लिए अपने धार्मिक कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिए निमित्त बनते हैं ये ज्योतिष्क विमान। इसलिए तो तत्त्वार्थ सूत्र में एक सूत्र हैं 'तत्कृतः काल विभागः' अर्थात् उन ज्योतिष्क विमानों के द्वारा काल का विभाग किया गया है। आप जो घड़ी, घण्टा, प्रहर बोलते हैं और इसके साथ में दिन, रात, पक्ष, अयन, वर्ष इत्यादि बोलते हैं ये सब इन सूर्य, चाँद आदि के द्वारा किये गये काल विभाग हैं। ये व्यवहार काल हैं। इस काल के द्वारा हम धर्म, कर्म की व्यवस्था में सजग होते हैं। सूर्य का उदय होता है वह हमें कर्त्तव्यशीलता सिखाता है। अपनी अनवरत गति से गतिमान हैं। हम भी गतिमान रहते हैं जीवन भर अपने कर्त्तव्य में। हमेशा सजग रहते हैं कि सुबह से उठना सिखा रहा है सूर्य, उठिये सूर्य उदय हुआ अपने कर्त्तव्यों में लग जाइये। आज का जमाना बदल रहा है। लोग सुबह उठने में आलस्य करते हैं आठ, नौ बजे तक उठते हैं और रात में बारह, एक बजे तक जगते रहते हैं। हम उनसे कहते हैं भैय्या! निशाचर जैसे कार्य करना अच्छा नहीं है; कारण कि हम जो वास्तविक प्रकाश है उसमें तो सोते हैं और जो वास्तविक प्रकाश नहीं है उसमें जगते रहते हैं। लाईट में कितनी हिंसा है, उसे बनाते समय भी हिंसा है। जब लाईट बनती है पानी से तब आप देखे तो वहाँ पंखी घूमती है कितने मेंढक, कितनी मछलियाँ मर जाती हैं ऐसे ही जलकायिक जीव भी मरते हैं, इस तरह से लाईट तैयार होती है और जब लाईट जलाते हैं तब भी कितने जीव आते हैं, पैरों के नीचे दब कर मर जाते हैं। पहले के जमाने में तो लाईट नहीं थी। अभी कुछ शताब्दियों से ही लाईट प्रचलन में आयी है। पहले क्या करते थे लोग? पहले तो रत्नों के प्रकाश में रहते थे। चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि और भी कई प्रकार के साधन थे। आप जानते

हैं कोहीनूर नाम का हीरा था। कितना प्रकाशित रहता था। आज नहीं है वह हमारे देश में। कहीं चला गया, इंग्लैण्ड चला गया। ऐसे रत्नों से लोगों को प्रकाश मिलता था। और ऐसा रत्न किसके पास रहता था बड़े-बड़े सम्पन्न लोगों के पास रहता था। बाकी लोगों के पास तो नहीं था तो वे क्या करते होंगे? दीपक से काम चलाते होंगे और वे लोग दिन में ही सब काम कर लेते थे मतलब रात्रि होने के पहले ही सब काम करके रात्रि होने के बाद विश्राम करना ही प्रमुख रहता था। थोड़ा बहुत धर्म ध्यान करके सामायिक, ध्यान, स्तोत्रों का पाठ, जाप वगैरह करके 9, 10 बजे आराम करते थे और सुबह 4 बजे उठ जाते थे। 6 घण्टे की निद्रा पर्याप्त है। विज्ञान के अनुसार भी 6 घंटे की निद्रा पर्याप्त है 6 घण्टे से ज्यादा कोई आवश्यक नहीं है; नहीं तो अपना आवश्यक समय ही चला जाता है। बच्चों के लिए ज्यादा से ज्यादा 8 घंटे, आपके लिए 6 घण्टे निद्रा बहुत होती है। आप दस बजे सो जायेंगे तो नियम से 4 बजे नींद खुल जायेगी, आप जबरदस्ती ओढ़कर फिर सो जोओगे तो यह प्रमाद है। काम-धाम नहीं तो सोओगे ही; लेकिन नींद जब खुल जाती है तो ध्यानादि कर सकते हैं इस प्रकार का सिस्टम बनना चाहिए। आजकल तो बहुत देर तक जगते हैं और बहुत देर तक सोते हैं। अपने सिस्टम को हमने बिगाड़ लिया है। सूर्य, चाँद हमें दिनचर्या सिखाते हैं। हमारे उपकार के लिए निकलते हैं। पाँच मेरू द्वीपों में सूर्य, चाँद की प्रदक्षिणा से दिन-रात का विभाग होता है। हम लोग इसमें संयम पालन करते हैं। सूर्य किरणें अपना प्रभाव डालती हैं जिस वजह से कुछ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। रात्रि में भोजन करने वालों को बहुत चिंतनीय विषय है कितना साइन्टिफिक है हमारा जैन धर्म, इसे हम जाने अतः आज के लोगों को एवं विज्ञान पढ़ने वालों के लिए ऐसे प्रवचनों की नितांत आवश्यकता है जिस मार्ग से उनको शीघ्र हम मोड़ सकते हैं धर्म की ओर।

बड़े-बड़े लोग शास्त्र ज्ञान के अभाव में ये भोग भूमियाँ, कर्म भूमियाँ क्या हैं नहीं जानते इनका वर्णन भी आज के लोगों के बीच में लुप्त जैसा हो गया। कहो तो हँसी आती है लोगों को; अभी ये तीन दिन की संगोष्ठी में लोगों को बहुत कुछ नया विषय मिला। मैंने तो एक दो महीने के पहले से ही यह भूमिका बनायी थी कि पंडितजी लोग भी आयेंगे। उनके मुख से भी आप सुनेंगे कितना महान है जैन धर्म। बहुत आस्था के साथ कर्म भूमि, भोग भूमि का वर्णन आप सभी ने सुना, षट्काल

परिवर्तन सुना, ज्योतिष्क विमान के सम्बंध में सुना और उनके द्वारा काल का विभाग होता है ये भी हमने समझा। इसके साथ में हमें यह भी कहना है कि यह ज्योतिष्क मण्डल मध्यलोक मे ही है, ये नीचे दिखते जरूर नहीं है लेकिन हमारा मध्यलोक एक लाख चालीस योजन का होने से (अर्थात् मध्य लोक में जो 1 लाख 40 योजन का जो सुमेरु पर्वत है) पूरा वहाँ तक मध्यलोक चलता है और ये ज्योतिष्क विमान तो इस मध्यलोक के ऊपर 1 हजार योजन के अन्दर ही हैं। अत: वे मध्यलोक में ही है और ये जो देव विमान हैं सो ज्योतिष्क कहलाते हुये भवनत्रिक में आते हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क इन तीनों को भवनत्रिक कहते हैं। इनमें मिथ्यात्व के साथ जन्म लेते हैं देव लोग, कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता है। हाँ, जन्म लेने के बाद सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं वे। लेकिन सभी बन जायें ऐसा नियम नहीं है। वहाँ पर अनेक अकृत्रिम जिनालय भी हैं। अधोलोक में भी ऐसे जिनालय हैं जहाँ भवनवासी रहते हैं और यहाँ मध्यलोक जैसे ही वे अकृत्रिम जिनालय हैं। जिनालायों में सब जगह जो जिन प्रतिमाएँ हैं उनकी पूजा विमानवासी देवगण भी किया करते हैं। जो मिथ्यादृष्टि देव हैं वे कुल देवता समझकर पूजा करते हैं और सम्यग्दृष्टि बहुत भक्ति भाव से नि:कांक्षित भावना से पूजा करते हैं इस प्रकार का अन्तर है।

हमें विशेष और समझना है कि आज जो ग्रहों के बारे में हमने बहुत कुछ सुना है कि विज्ञान क्या कहता है, और जैन धर्म में या जैन दर्शन में क्या है, कहाँ कौन-से ग्रह हैं, कितनी दूरी पर हैं, कौन घूमता है, कौन स्थिर रहता है ये सब बातें हमने जान ली हैं। आज विशेष विषय दिया गया था नवग्रह के बारे में। चिंतन करें कि जिनका विषय था उन्होंने यह कहा कि 'भय का भूत' है आज वास्तव में यही हुआ है आज के मानव को। भय का भूत हो गया है लोगों को। लोगों को भूत सा लग गया है क्योंकि नवग्रह के चक्कर में वे जाते हैं, हाथ दिखाते हैं, अनेक प्रकार के रत्न, मालायें पहनते रहते हैं। मुझे समझ में नहीं आता, हमारे यहाँ जो कर्म सिद्धान्त है हम उसको क्यों भूल गये हैं। नवग्रह से भी बड़े-बड़े देव हैं ऊपर; जिनका प्रभाव सबसे ज्यादा है। कहा गया है कि उनके पास शापानुग्रह शक्ति सबसे ज्यादा पायी जाती है। आप पढ़ते ही हैं तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में आया है कि ऊपर-ऊपर के देवों में क्या-क्या विशेषताएँ हैं? ऊपर-ऊपर उनकी प्रभाव शक्ति, शरीर में कान्ति, आभरणों की कान्ति, अवधिज्ञान का विषय इत्यादि ज्यादा-ज्यादा हैं। ऊपर ज्यादा-ज्यादा है तो भी उनको महत्व न

देकर इन नवग्रहों को महत्व ज्यादा क्यों दे रहे हैं? ये सुमेरु पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं और अपना सौभाग्य समझते हैं क्योकि वहाँ पर जिनालय हैं, उनमें 500-500 धनुष की ऊँची जिन प्रतिमाएँ हैं उनकी परिक्रमा लगाकर देवगण अपना सौभाग्य समझते हैं। लेकिन मूढ़ लोग उन देवों की परिक्रमा लगाते हैं। अरे! अनादि काल से यह आत्मा मिथ्यात्व भी करती रही है तो सम्यक्त्व भी अनादि काल से चल रहा है। अतः सम्यक्त्ची बनें, लोगों को जिसका अभी तक ज्ञान नहीं था इसलिए उससे दूर रहे अब तक। लेकिन अभी सुधर सकते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जिनके अन्दर वह अज्ञानता अभी भी है। वे देव तो मेरु के चक्कर लगा रहे हैं या भगवान की परिक्रमा दे रहे हैं और कुछ लोग उनकी परिक्रमा लगा रहे हैं। इसके बारे में मुझे एक प्रश्न करना है कि नवग्रह को सबने जाना कितने सारे ग्रह हैं कितने नक्षत्र हैं यहाँ पर सब कुछ बताया था आज दिगम्बर जैन धर्म में एक अज्ञान और आ गया है कि जगह-जगह नवग्रह विधान होने लगे हैं यह नवग्रह विधान क्या किसी आचार्य ने लिखा है? लगता है किसी पंडितजी का लिखा है या दक्षिण के कोई पंडितजी हुये या भट्टारकों की परम्परा बीच में आयी है तो उन्हीं के निर्देशन में कुछ लिखे गये विधान हो सकते हैं। विधान का अर्थ पूजा होती है। मतलब यह नवग्रह की पूजा हो गई और उनमें तीर्थंकरों को निश्चित किया गया है, नौ तीर्थंकर निश्चित कर दिये हैं कोई बोलते हैं चौबीस, आज कई जगह जहाँ नवग्रह मंदिर बनाये वहाँ की बात कह रहा हूँ कि हमने देखा नवग्रह मंदिर बनाये उसमें नौ ही तीर्थंकर रखे। एक-एक ग्रह पर एक-एक तीर्थंकर निश्चित कर दिये। एक प्रश्न है मेरा जिसका जवाब आप सबको देना है कि चौबीस तीर्थंकरों में कोई भी तीर्थंकर ऐसे नहीं है जिनमें से किसी में शक्ति ज्यादा हो और किसी में कम हो लेकिन नवग्रहों में नौ ही तीर्थंकरों को क्यों लिया, बाकी को क्यों छोड़ दिया? नव ही तीर्थंकरों की कल्पना उनके विमानों में करना गलत बात है। नौ तीर्थंकरों को ले लिया और बाकी को छोड़ दिया तो जब यह वर्तमान चौबीसी हुई ही नहीं थी तब कौन से तीर्थंकर थे वहाँ? तो यह अनादि काल की व्यवस्था नहीं रही। यह तो इसी काल की कल्पना है। तमिलनाडु में मैंने देखा, मैं सात वर्ष वहाँ पर रहा था, जहाँ जिनमंदिरों के अलावा मात्र एक जगह ही नवग्रह मंदिर था। नवग्रह की मूर्तियाँ थी उसके ऊपर एक-एक करके नौ तीर्थंकर भगवानों की आकृतियाँ बनी थी। इसके बाद धीरे-धीरे हिन्दुओं जैसा प्रचलन हुआ और कई गाँव में कई जगह जहाँ मेरा विहार नहीं होता था

या जहाँ मैं नहीं गया था वहाँ पर भट्टारकों के मार्गदर्शन में नवग्रह मंदिर बनाये गये नया प्रचलन चल पड़ा है। जिसका मैंने खण्डन भी किया था और कहा था कि नवग्रह की जगह आप नवदेवता रखो। एक जगह तो नवदेवता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। समाज वालों को भी बहुत भक्ति थी इसलिए वहाँ पर नवग्रह के जगह पर नवदेवता बिम्ब रखा गया। नवदेवता रखेंगे तो हम भी परिक्रमा लगायेंगे अन्यथा हम वहाँ जायेंगे भी नहीं और आप लोगों को महा मिथ्यात्व का दोष लगेगा ऐसा समझाया था। अभी उत्तर भारत में जो प्रचलन चल रहा है उसकी क्या आवश्यकता है? आप चौबीसी बना सकते हैं, नवदेवता मंदिर बना सकते हैं जिसमें पंच परमेष्ठी और जिन धर्म, जिन श्रुत, जिन चैत्य और जिन चौत्यालय इस प्रकार नवदेवता की पूजा कर सकते हैं। अन्यथा सरागता में क्या रखा है? कुछ भी नहीं।

किसी किसी जगह हम देखते हैं कि समवशरण की रचना में बड़ी कमी रहती है जैसे शिखरजी में एक समवशरण बना है जो बहुत पहले से बना हुआ है, गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी जब आये थे तब भी था। हमने कुछ गल्तियाँ देखीं जो आगम से बड़ी भूल मानी जायेगी वह क्या है कि बारह सभाओं की चार सभाओं में ही देवियाँ बैठती हैं लेकिन उन्होंने क्या किया है कि भगवान के नीचे जो कटनी रहती है उसमें देवियाँ बिठायी हैं, यक्ष, यक्षणी बिठा रखी हैं बल्कि वे तो जब भगवान की दिव्यध्वनि सुनती हैं तो भगवान के तरफ मुख करके बैठती हैं और सभाओं में बैठती हैं। यक्ष देव चँवर ढोरते हैं चँवर ढोरने वाले यक्ष दिखते नहीं हैं केवल चँवर मात्र दृष्टिगोचर होते हैं ऐसा आगम है और कोई देव धर्मचक्र लेकर भी खड़े रहते हैं। लेकिन कटनी में सभा के लोगों की तरफ मुख करके कोई देव, देवता नहीं रहते हैं सम्मेद शिखर के समवशरण को देखकर के हम ऐसा सबक न लें कि हमें भी ऐसा ही समवसरण का रूप बनाना चाहिए। इसलिए आज यह कहना जरूरी था और साथ में ये नवग्रह मंदिर बनना भी आगम नहीं है, और नवग्रह विधान भी आगमिक नहीं लगता। आप नवदेवता विधान करिए या शान्ति विधान करिए। शान्ति विधान इतना श्रेष्ठ है कि इसमें सम्पूर्ण तीन लोक के देवताओं को, चारों निकाय के देवों को बुलाते हैं कि आप भी आइये और हमारे साथ पूजा रचाइये। ऐसे वर्णन सहित बहुत अच्छा विधान है। उस नवग्रह विधान की जगह पर आप यह शान्ति विधान करेंगे तो सारे देव आप से खुश हो जायेंगे। नहीं तो नवग्रह मात्र ही आयेंगे और कौन आयेंगे? सौधर्म इन्द्र

वगैरह देव आपसे नाराज भी हो सकते हैं। वे कहेंगे कि मैं भवनत्रिक से ऊपर बैठा हूँ उनका दादा या राजा कहिये और तुम लोग मुझे याद नहीं करते और तुम तो हमारे नौकर-चाकर को याद करते हो, मैं ही तो उनको कहता हूँ कि पानी वर्षा करो, हवा बहाओ और चाँवर ढोरो, यह करो, वह करो, और वे मेरे अनुसार कार्य करते रहते हैं ऐसे नौकर-चाकर सदृश देवों को तुम मनुष्य लोग याद करते हो। और मेरे जैसे सौधर्म इन्द्रादि को क्यों छोड़ दिया है। हमने तो तीर्थंकरों के पंच कल्याणक किये, जीवन भर सेवा की फिर भी मुझे क्यों छोड़ दिया और मेरे नौकर-चाकरों को याद करके पूजा में लगे हो ऐसी योग्यता का विचार न करना भी मित्थ्यात्व है। यह बिल्कुल गलत है। अतः आज सम्यग्दर्शन को धारण कर उसके प्रचार प्रसार की भी बड़ी आवश्यकता है।

अब हम आगे चलते हैं पाँच स्थावरों के बारे में भी चिंतन करते हैं। कई लोग सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर हैं और इनमें जीव कैसे हैं? वनस्पति को तो जीव मानते ही हैं चलो, वायु भी मान लें क्योंकि वह विक्रिया होती है और यहाँ-वहाँ जाती भी है। जल भी उसी तरह मान लें जल भी जीव है। लेकिन पृथ्वी को जीव कैसे मान लिया? तो उसका उत्तर यह है कि वह पृथ्वी बढ़ती है, चट्टाने बढ़ती हैं, ठोस भी बन जाती हैं। परतदार चट्टान, आग्नेय चट्टान आदि का विषय बचपन में पढ़ते ही थे। चलो तो पृथ्वी को भी जीव मान लिया गया। अब अग्नि में जीव कैसे मानना? अग्नि तो जला देती है। जीवों को भी समाप्त कर देती है। अग्नि में जीव कैसे मानेंगे? वस्तुतः इसकी सिद्धि में कुछ लोग मौन रह जाते हैं। लेकिन मैं इसकी सिद्धि आपके सामने बतलाता हूँ कि किसी भी जीव का श्वास के बिना जीवन नहीं रहता। मतलब प्राण तो दस होते हैं परन्तु एक जीव के कम से कम चार प्राण होते हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव के पास एक स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। अब देख लीजिए कम से कम चार प्राण के बिना कोई जीव नहीं रहता। आप बोलेंगे कि अग्नि के पास कहाँ श्वासोच्छ्वास है? तो मैं बताऊँ आपको; देख लीजिए एक प्रयोग है जैसे एक कुआ है या सुरंग है बहुत गहरा है। उसमें एक लालटेन छोड़ते हैं, एक रस्सी आदि के सहारे उसे छोड़ा जाता है। जब तक या जहाँ तक वह जलती रहेगी वहाँ तक वायु है। उसके नीचे वायु नहीं और वहाँ हमें जाना अशक्य है। ये सामान्य प्रयोग हैं जिसे लोग नीचे उतरने के लिए करते हैं।

जहाँ तक वह दीपक जलता रहेगा वहाँ तक वायु है ऐसा अनुमान कर लेते हैं। इसका मतलब क्या हुआ कि अग्नि को भी प्राण वायु (आक्सीजन) की आवश्यकता थी। अग्नि वहीं पर रह सकती है जहाँ पर वायु है। क्योंकि अग्नि को श्वास लेने के लिए वायु चाहिए। वायु नहीं तो दीपक बुझ जायेगा। सिद्ध हो गया न कि अग्नि जीव है। अगर जीव नहीं होता तो क्यों बुझती। अर्थात् श्वास के लिए वायु चाहिए। सिद्धि हो गयी न एक सिम्पल उदाहरण से। आगम को विधिवत् सिद्ध करने से सिद्धि हो जाती है। अतः अपने आगम को अच्छे ढंग से सिद्ध करने में प्रयत्न किया करें। अपना पुण्य ही है जो हमें ऐसे तर्कों को अपने चिन्तन में लाता है फिर कहीं पर भी शंका नहीं रह पाती है। बस, इसी के लिए यह संगोष्ठी हुई है।

अब यहाँ म्लेच्छ खण्ड के सम्बंध में विचार करते हुए कहा जा रहा है कि उसे जघन्य भोगभूमि नहीं मान सकते हैं क्योंकि म्लेच्छ खण्ड में चतुर्थ काल के समान ही उत्सेध वगैरह पाया जाता है। चतुर्थकाल के शुरु से अन्त तक के समान परिवर्तन होता रहता है। वहाँ षट्कर्म व्यवस्था नहीं है, जैसे कि यहाँ असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या होती है वैसी व्यवस्था वहाँ नहीं है। इसलिए हम उसको आर्यखण्ड भी नहीं मानते हैं। कर्मभूमि होते हुए भी हमारे आर्यखण्ड जैसे कर्म वहाँ नहीं है। क्योंकि ज्यादा हिंसा आदि में प्रयुक्त रहते हैं वे लोग। लेकिन एक विशेष बात यह कहनी है मुझे कि वहाँ के जो मनुष्य हैं वे आर्यखण्ड में आकर के शिक्षित, प्रशिक्षित होकर व्रत, संयम भी धारण कर सकते हैं। जब जयधवला की वाचना चल रही थी (पपोराजी में) तब आचार्यश्री के मुख से सुना था कि चक्रवर्ती बत्तीस हजार रानियों को वहाँ से लाता है। बत्तीस हजार आर्यखण्ड सम्बंधी, बत्तीस हजार विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में रहने वाले विद्याधरों सम्बंधी और बत्तीस हजार म्लेच्छ खण्ड सम्बंधी, ऐसी छयानवें हजार रानियाँ होती हैं। उनको जैन धर्म के संस्कार देने के बाद विवाह रचाता है अन्यथा नहीं। अब उनके रहने की बात अलग है, कौन-से महल में रहती होंगी इसकी शंका न करें। क्योंकि शंका होने के बाद समाधान नहीं मिले तो लोगों को अश्रद्धा हो जाती है। इसलिए समाधान दे रहा हूँ कि वे रानियाँ यहीं एक जगह ही आती होंगी। ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन आप लोग फिर सोचेंगे कि एक जगह नहीं रहेंगी तो क्या मतलब रहा रानी बनने से? चक्रवर्ती कैसे जायेगा, रोज-रोज उनके पास? किन्तु यह ध्यान रखना कि चक्रवर्ती के पास एक

विशेषता रहती है कि वह विक्रिया शक्ति वाला होता है। वह छयानवे हजार रूप बना लेता है और प्रत्येक रानी के पास जाकर उन्हें संतुष्ट करता है मूल रूप तो पट्टरानी के पास रहता है। इसलिए इनमें शंका करने की बात नहीं, आपको अश्रद्धा न हो इसलिए मैंने कहा है और जब छयानवे हजार रूप बना लेता है; सबके पास पहुँच जाता है तब सबको लगता है कि मेरे सामने ही चक्रवर्ती खड़ा है। म्लेच्छ खण्ड के जो मनुष्य हैं वे यहाँ आकर के जैन बनकर संयम भी धारण कर सकते हैं और संयम धारण करते ही उनकी विशुद्धि यहाँ के संयमियों से भी ज्यादा होती है भले ही दूसरे समय में विशुद्धि यहाँ से भी कम हो जाती है। यह प्रकरण भी आचार्यश्री के मुख से ही सुना था। अच्छा एक बात और कहूँ कि जो विजयार्ध की श्रेणियाँ हैं उन श्रेणियों से आज भी मोक्ष हो रहा है। क्योंकि वहाँ आर्यखण्ड है, भरतक्षेत्र है। विजयार्ध पर्वत या उनकी श्रेणियों में चतुर्थ काल जैसा वातावरण है, आज भी वहाँ मुनि बन रहे हैं। कई विद्याधर तो विदेह क्षेत्र जाकर दीक्षा लेकर फिर विद्याओं का प्रयोग न करते हुए क्योंकि विद्यायें परिग्रह हैं; चारण ऋद्धि प्राप्त करके वहाँ से विजयार्ध पर्वत आते होंगे और लोगों को दीक्षा देते होंगे, कारण कि वहाँ पर उत्तम संहनन भी होने से आज भी मोक्ष जाने में कोई बाधा नहीं। वहाँ विद्यायें प्राप्त होती हैं। यहाँ पर तो जब रावण, हनुमान, जैसे विद्याधर रहते थे और यहाँ से हनुमान आदि मोक्ष भी गये लेकिन आज यहाँ पर आयु वगैरह कम हो गयी और पुण्य भी कम हो गया, इसलिए वे यहाँ पर नहीं आते। साक्षात् रूप से नहीं आते पर कभी-कभी निकलते होंगे जैसे उड़नतश्तरी के बारे में कहा था मैंने कि- उड़नतस्तरी क्या है? कोई देव का विमान है या विद्याधर का विमान हो सकता है ऐसे तो कई वैज्ञानिकों ने खोज की है। उड़नदश्तरी को देखा है जो कोई विमान सदृश है, बहुत तेज भागता है वह उन्होंने उसके पीछे अपनी शक्तियों को छोड़ा लेकिन नहीं पकड़ पाये उसको पकड़ने में अपनी शक्तियाँ नष्ट हो गयी। क्या चीज है वह, एक बार और चर्चा हुई थी विज्ञान में विशेष रुचि रखने वालों से, तो उन्होंने कहा था कि विज्ञानी लोगों ने उत्तर दिया है कि वह विशेष विमान है, विशेष शक्तियाँ हैं उनके पास, विशेष जगह पर रहते हैं वे, हम वहाँ पर अभी तक नहीं पहुँच सके। उसको खोजने में कई वर्ष लग जायेंगे। अभी तक समर्थ नहीं है उसको समझने में। इसका मतलब वे कौन होंगे? मैं समझता हूँ कि स्वर्ग के विमान तो आते नहीं है पंचम काल में, हो सकता है कि वह भवनत्रिक के देवों का विमान हो अथवा किन्हीं विद्याधरों के विमान

हो सकते हैं क्योंकि उनके पास विशेष शक्तियाँ भी हैं। अभी वे पंचमकाल में दिखते नहीं है। और अतिनिकट जाने पर आपके विमान को नष्ट भी कर सकती हैं उनकी शक्तियाँ। इसलिए लगता है कि विज्ञानी बहुत पीछे हैं अभी। इन सब चीजों के बारे में अनभिज्ञता है उन्हें अतः हमारे विद्याधरों एवं देवों के विमानों को वे नहीं जान पा रहे हैं न उनकी पूर्ण खोज कर पा रहे हैं। पहले वैज्ञानिक लोग एक सूर्य, एक चाँद मानते थे फिर दो सूर्य, दो चाँद मानने लगेंगे और धीरे-धीरे वे हमारी ओर आते ही जा रहे हैं। पहले वे जिसको परमाणु कहते थे अब उस परमाणु को भी भेद कर दिया है फिर पहले वाला तो परमाणु स्कन्ध ठहरता है। पहले कह रहे थे कि एक बूँद पानी में 36, 450 जीव होते हैं फिर आज इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप आ गया है उससे बता दिया है कि एक बूँद पानी में लाखों की संख्या में जीव हैं। इसका मतलब अभी का निर्णय, वास्तविक निर्णय नहीं है आगे और भी सूक्ष्मता पर पहुँचेंगे किन्तु हमारे जैनदर्शन में तो कहा है कि एक बूँद पानी में असंख्यात जीव होते हैं। और परमाणु वह है जो आँखों से नहीं दिख सकता; चाक्षुष नहीं है वह।

वैसे तो हम परमाणु के विषय में पढ़ सकते हैं, ज्ञान भी कर सकते हैं लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान से ही देख सकते हैं उसे। अवधिज्ञान से भी जाना जा सकता है, ऐसा मेरा एक चिंतन है। कौन सम्यग्दृष्टि? कौन मिथ्यादृष्टि? इसको कौन-सा ज्ञान जान सका है? केवलज्ञान तो जानता ही है चलो, मनः पर्याय ज्ञान भी जान जाय। मन सम्बंधी सब कुछ जान जाय। लेकिन मेरा एक चिंतन ऐसा है जिसे सुनिये कि परमाणु को अवधिज्ञान भी जान सकता है क्योंकि परमाणु रूपी है और वह परमाणु भी स्कन्ध बन जाता है जैसे कुछ कर्म परमाणु रूप स्कन्ध बन जाते हैं तक यह व्यक्ति सम्याग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है आत्मा इसमें कौन सी वर्गणाओं का बन्ध हुआ है ऐसा यह अवधिज्ञान का विषय हो सकता है। अवधिज्ञान भी विभिन्न प्रकार का होता है, ऐसे देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। सभी प्रकार के अवधिज्ञान उसे जानते हैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ। लेकिन ऐसी चर्चाओं के माध्यम से ऐसे ही अच्छे-अच्छे नवनीत के समान विषय खुलते हैं। अतः मेरी भावना यह है कि इस संगोष्ठी का जो विषय है वह पूरे भारत में एक नया विषय रहे। आज के लोग अनभिज्ञ हैं इन विषयों से। भोग भूमि, कर्म भूमि क्या है? ज्योतिष मण्डल क्या है? नवग्रह पूजा के लिए निषेध करते हैं हम लोग क्योंकि वहाँ पर तो सरागी देवी, देवता हैं उनके आदर के लिए ज्योतिष का

विषय नहीं रखा गया है। लेकिन वहाँ की व्यवस्था क्या है? जो कि आज का विज्ञान सीमित ही जानता है और उसकी सूक्ष्मता को तो जानता नहीं, परंतु इस विषय पर चिन्तनकर हम लोग सच्चा ज्ञान कर सकें। और सभी यहाँ पर जो नवनीत निकल रहा है ऐसे मन्थन का यह नवनीत सारे भारत को और विश्व को मिलना चाहिए। इसलिए यहाँ की समाज ने एक संकल्प किया है कि इन संदर्भों की हम एक पुस्तक बनायेंगे। अच्छा है बहुत ही अच्छा है जिससे समूचे भारत में जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हो यही मेरी भावना है।

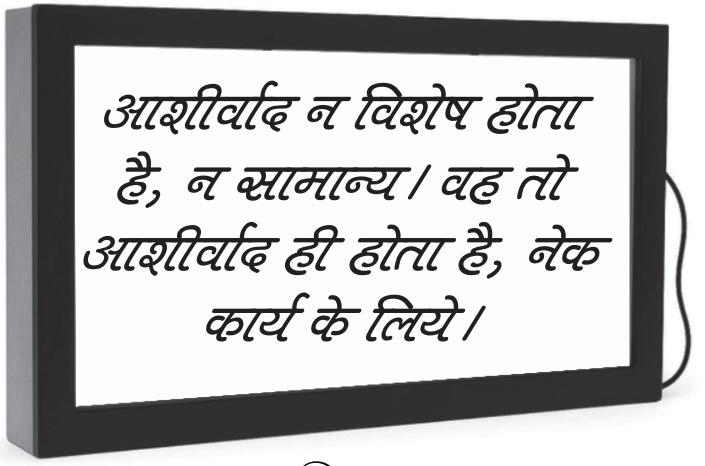

परमार्थ साधना

- ★ नारियल में मोक्षमार्ग
- ★ भक्ति और मुक्ति
- ★ धर्म का प्राण; दया
- ★ धर्म की महिमा (दस धर्म विशेष)
- ★ पूजा से पूज्य
- ★ पूजन की महिमा
- ★ जगत् हितंकर जैन धर्म
- ★ धर्म से सिद्धत्व तक
- ★ ज्ञानामृत से आत्मिक तृप्ति
- ★ आत्मिक दोषों का प्रक्षालन
- ★ सादा जीवन उच्च विचार
- ★ घड़े की शिक्षा
- ★ आत्म परिचय

नारियल में मोक्ष मार्ग

मुनियों का जीवन मोक्षमार्ग से जुड़ा हुआ होता है। और भी कोई भव्य अगर मोक्षमार्ग पर चलने को उत्सुक हो, तो उसे भी राह दिखाते हैं। इसी अवसर पर मुझे एक उदाहरण याद आया जिसके द्वारा आप लोग संक्षेप में सम्पूर्ण मोक्षमार्ग को समझ सकते हैं। कोई एक व्यक्ति भूमि को साफ-सुथरा करके पानी का सिंचन करके एक बीज बोता है, खाद-पानी और बाड़ लगाकर उसको सुरक्षित रखता है, एक दिन वह पौधा पेड़ बनकर फलित होता है। जब उसे तोड़ते हैं तो वह भी मीठा-मीठा पानी देता है, जो ग्लुकोज का काम करता है, शक्तिवर्द्धक होता है। कभी कुछ खाने को भी मिलता है। उस वृक्ष से बड़े परोपकार का उपदेश हमें प्राप्त होता है: ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' इस सूत्र को चरितार्थ करता है। किसी ने पानी दिया था, उसने भी उसे पानी दिया और अपनी जिन्दगी भर भी देता रहता है, कोई पत्थर भी मारे तो फल ही देता है। जैसे कि कहा गया है-

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाःपरोपकाराय वहन्ति नद्याः।
परोपकाराय दुहन्ति गावाः परोपकाराय सुतांप्रसूतिः॥

जिस प्रकार परोपकार के लिए वृक्ष फल देते हैं, परोपकार के लिए नदियाँ बहती हैं, परोपकार के लिए गाय दूध देती है, इसी प्रकार परोपकार के लिए माँ बेटे को जन्म देती है। इस प्रकार परोपकार करना प्रत्येक मानव का धर्म है। यह हमें उपदेश उस नारियल के वृक्ष से मिला। यह तो हुई नारियल के अपने वृक्ष रूपी परिवार की बात। अब कहता हूँ कि जब वह नारियल सूख करके स्वतः ही वृक्ष को छोड़कर नीचे आता है, उससे यह उपदेश मिलता है कि जो भव्य अपने परिवार से मोह, लगाव रूप सम्बंध तोड़ देता है वह सद्गुरु के चरणों में आ जाता है। इसके बाद जब उस फल को उपयोग में लाना हो, तो उसके ऊपर का सूखा पीला कवच (छिलका) निकाला जाता है, जिससे समझें कि मोक्षमार्ग में गुरु के समीप आकर भव्य दीक्षा धारण करने हेतु पहले वस्त्रों का मोचन करता है। इसके बाद जैसे नारियल की जटा उखाड़ी जाती है, वैसे ही भव्य केशलोंच करता है। जटा-जूट निकल जाने के बाद जिस प्रकार उस फल में तीन चिह्नों का दर्शन होता है, उसी तरह पूर्ण परिग्रह रहित और केशलोंच के बाद

साधु में रत्नत्रय के दर्शन होते हैं। उन तीन चिह्नों को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का प्रतीक मानना चाहिए। ये तीन दिखते हैं तो क्या हैं? आँखें? आँखें नहीं बोलना चाहिए। किसी ने कहा था कि जब अजैन लोग किसी रागी देवी-देवताओं के सामने पशुओं की बलि देते थे और जब उन्हें किसी समय पशु नहीं मिलते थे, तब वे नारियल की जटा उखाड़कर उसमें दिखने वाले तीन चिह्नों में से दो को आँखें एवं एक मुँह मानकर एक पशु की बलि रूप में उसे उन देवी-देवताओं के सामने शस्त्र से काट देते थे और आधा नारियल वहाँ चढ़ाकर आधा घर ले जाते थे। इस प्रकार उस परम्परा को रूढ़िरूप से दक्षिण के लोग अपनाते रहे, लेकिन इसका रहस्य समझने वाले लोग बलि के पाप से बचने हेतु कभी भी नारियल को देवता के सामने नहीं काटते और न ही आधा समर्पित करते तथा ना ही आधा वापस घर ले जाते थे।

'मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति' बोलकर श्रीफल पूरा-पूरा ही चढ़ाया जाता है, जिससे कि पूरा-पूरा ही मोक्ष मिल सके। अगर कोई नारियल को फोड़कर आधा चढ़ाए तो आधा ही मोक्ष मिलेगा, कहीं बीच में ही लटक जाएगा। इतना ही नहीं नारियल फोड़कर चढ़ाने से बलि प्रथा का भी समर्थन होता है तथा आधा घर ले जाने से निर्माल्य खाने का भी दोष लगता है। इसके बाद सूखा हुआ वह फल बजाने से खट-खट बजता है। मानो यह उपदेश देता है कि निर्ग्रन्थ अवस्था प्राप्त होने पर साधु को भेद विज्ञान अनुभव में आता है। इसलिये तो उन्हें सभी परीषह और उपसर्ग सहज रूप से समतापूर्वक सहन करने में आ जाते हैं। इसके बाद वह फल ऊपर से इतना कठोर और देखने में मटमैला होता है कि लोगों को अच्छा नहीं लगता। लेकिन अंदर स्वच्छ सफेद और मुलायम होता है। वह कहता है कि मुझे जो तुम ऊपर से देख रहो हो, वही मात्र मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है। वास्तविक स्वरूप तो अंदर देखने पर ही मालूम पड़ता है, इसलिये तो हमारा बाहरी नाम नारियल अर्थात् बाहर से मैं नो-रियल हूँ अन्दर में ओरिजनल हूँ, इसलिए मेरा नारियल नाम भी सार्थक है। इसी तरह साधु लोग ऊपर से किसी पाप, पाखण्ड, मिथ्यात्व, रूढ़िवाद आदि का खण्डन करते हुए कठोर से प्रतीत होते हैं। अस्नान व्रत होने से कभी उनका रंग अच्छा सा प्रतीत न हो, मैला-कुचैला-सा लगे, तो अंदर में वे भावों से बहुत नरम, सबके हितकर्ता और स्वभाव से बहुत कोमल होते हैं। इसके बाद जब उस नारियल की खोपड़ी को तोड़ा जाता है, तब अन्दर गोल भेला के दर्शन होते हैं, उसी तरह जब साधु अपने शुक्ल

ध्यान से मोहनीय कर्म का नाश करते हैं, तब परम वीतरागी कहलाते हैं। नारियल की खोपड़ी की कठोरता बतलाती है कि मोहनीय कर्म बड़ा कठोर होता है और जिसके जाने पर अन्य कर्मों का जाना बहुत सहज हो जाता है। इसके बाद जैसे भेले के ऊपर का छिलका धीरे-धीरे निकाला जाता है, तब धवल भेला निकलता है। वैसे ही साधु लोग क्रमशः ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय करते हैं, तब कैवल्य की प्राप्ति करके अर्हन्त पद पाते हैं। वह अर्हन्त अवस्था एक धवल भेले के समान समझना चाहिए। अभी नारियल पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हुआ है, अभी उसमें और कुछ अशुद्धता बाकी है, लेकिन जब उसे भेले से तेल निकाला जाता है तब वह पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है। इसी तरह केवलज्ञानी की अर्हन्त अवस्था पूर्ण शुद्ध नहीं मानी जाती, क्योंकि तब तक अघातिया कर्म उनकी आत्मा में बैठे रहते हैं। जब श्रेष्ठ शुक्ल ध्यान द्वारा अघातिया कर्मों का भी नाश कर दिया जाता है, तभी तेल के समान पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं। अब देखो वह तेल अगर एक दूध भरे बर्तन में डाला जाए, तब वह तेल नीचे दब जाएगा क्या? अथवा ऊपर आएगा? ठीक है ऊपर आएगा न तो कहाँ तक ऊपर आएगा? जहाँ तक दूध है, उसके ऊपर तो नहीं जाएगा क्योंकि उसे भी सहारा, साधन चाहिए। इसी तरह अघातिया कर्म दूर होने के उपरांत वे सिद्ध परमेष्ठी कहाँ जाते हैं? ऊपर की ओर जाते हैं। कहाँ रुक जाते हैं? सिद्धशिला पर रुक जाते हैं। उसके ऊपर क्यों नहीं जाते? उनके पास तो अनन्त शक्ति है, फिर और भी ऊपर जाना चाहिए। अनन्त आकाश पड़ा है, जाते ही रहना चाहिए, उनको रोकने वाला कौन? तो आप बोलेंगे ''धर्मास्तिकायाभावात्'' धर्मास्तिकाय का अभाव है इसलिए ऊपर नहीं जा पाते, तो मैं पूछता हूँ कि एक अनंत शक्ति के धारक सिद्ध परमात्मा को भी परद्रव्य के आलम्बन की आवश्यकता पड़ी। इसका मतलब कि बिना निमित्त के उनका भी काम नहीं चल सकता। धर्मास्तिकाय निमित्त के बिना वे परमेष्ठी ऊपर नहीं जा पाए, और हम-तुम लोग निमित्त की उपेक्षा करें, तो हमारा जीवन कैसे चलेगा? सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष तक निमित्त भी उपादान के साथ-साथ काम करता रहता है, अतः अनेकांत को समझने वाले लोगों को कभी निमित्त को छोड़ने की बात नहीं करना चाहिए। आप लोगों को उपादान में कुछ तो हमारे चातुर्मास रूपी निमित्त की आवश्यकता रही होगी, इसलिए तो आप लोगों ने नारियल चढ़ाकर चातुर्मास का निवेदन किया। यह नारियल श्रीफल भी कहलाता है, श्री का अर्थ लक्ष्मी

होता है, जो मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करे उसे श्रीफल कहते हैं। वैसे लक्ष्मी तीन प्रकार की होती है- पहली अंतरंग लक्ष्मी अर्थात् अनन्त चतुष्टय, दूसरी बहिरंग लक्ष्मी- समवशरण आदि विभूति और तीसरी है मोक्ष लक्ष्मी। इन तीनों की पूजा, उपासना करनी चाहिए, अन्य किसी सरागी की नहीं। नारियल जब चढ़ाते हैं तब उसकी चोटी ऊपर की ओर रखते हैं। इससे वह सिद्धशिला जाने की भावना प्रगट करता है। इसलिए उसका श्रीफल भी नाम सार्थक है। इस प्रकार हम लोगों ने एक नारियल या श्रीफल के उदाहरण से मोक्षमार्ग को समझ लिया। यह शार्ट एण्ड स्वीट उदाहरण देने मात्र से आपका काम चल जाएगा। अब हम चातुर्मास में मौन बैठ सकते हैं। लेकिन आप लोगों के संकेत से मालूम पड़ा कि आप बहुत कुछ सुनना चाहते हैं। मैं रोज सुबह-शाम सुना सकता हूँ, आपके बंधन में बंधकर नहीं अपने व्रतों के बंधन को मुख्यता देते हुए शास्त्र सुनाऊँगा। इस श्रीफल की ही यात्रा को विस्तृत करके सुनाऊँगा, जिससे आप लोगों को शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

भक्ति और मुक्ति

हमारे जिन शासन में रत्नत्रय को मुक्ति का मार्ग बतलाने वाला ''सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणिमोक्ष मार्गः'' (त.सू.) यह आगम का सूत्र भव्यों को मोक्ष मार्ग दर्शाता है। इस सूत्र से मोक्ष प्राप्ति के लिए रत्नत्रय की अनिवार्यता सिद्ध होती है और रत्नत्रय में सारा जैनाचार गर्भित-समाहित है। रत्नत्रय को समझाने के लिए तत्त्वार्थ सूत्र से भी पूर्व पठनीय रत्नकरण्डक श्रावकाचार आद्य कुञ्जी है।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने आज से दो हजार वर्ष पहले अनेकान्त-स्याद्वाद और समीचीन धर्म का डंका बजाते हुए, सारे भारत में अहिंसा का शंखनाद करते हुए जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना की थी।

ऐसे आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अधिकतर ग्रन्थ स्तुतिपरक लिखे हैं और जिन ग्रन्थों में अनेकान्तमय कर्म सिद्धान्त का रहस्य उद्घाटित होता है। उनके समीचीन ये धार्मिक वचन भव्यों को विषय वासनाओं से हटाकर जीवों के कर्त्तव्यों का ध्यान दिलाते हुए स्वयमेव वीतरागी के चरणों में जाने को प्रेरित करते हैं तथा समीचीन भक्ति से मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। जैसे कि उन्होंने एक जगह वीतरागी का स्वरूप और भक्ति की महिमा के बारे में कहा है कि-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः, पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः॥ 5॥

(स्वयंभूस्तोत्र)

अर्थ- हे भगवन्! पूजा वन्दना से आपको कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि आप वीतरागी हैं। इसी तरह निन्दा से भी आपको कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि आपकी आत्मा से बैर-भाव (द्वेषांश) बिल्कुल निकल गया है। फिर भी आपके पुण्य गुणों का स्मरण लोगों के चित्त (मन) को पाप मलों से दूर कर पवित्र करता है।

जिस प्रकार टेप रिकार्ड में आवाज को केसिट में टेप करते समय हमारी आँखों में नहीं दिखने वाली आवाज मधुर हो या कठोर, सुन्दर हो या असुन्दर केच होकर टेप हो जाती है और जब (रिवर्स करके) सुनते हैं तब संसारी लोगों को वह आवाज सुख-दुःख का अनुभव कराती है। समझ लीजिए इसी तरह आत्मा भी एक टेप रिकार्ड सदृश हैं जिसमें जब तक कार्मण शरीर रूपी केसिट है तब तक धर्म-

अधर्ममय भावों द्वारा आँखों में नहीं दिखने वाली कार्मण वर्गणाएं ज्ञानावरणादि कर्म के रूप में आत्मा के भीतर टेप होती (बंधती) चली जाती हैं।

अतः आत्मा में सदा काल कर्मों का सम्पादन जारी है। किसी समय शुभ और किसी समय अशुभ। आत्मा का जिस समय धर्म में उपयोग होता है उस समय आत्मा में शुभ या पुण्य कर्म का संपादन होता है और किसी समय अधर्म या पंच पापों में उपयोग होने से अशुभ या पाप कर्म का संपादन होता है। शुभ कर्म का फल सुख-शान्ति है एवं अशुभ कर्म का फल दुःख-अशांति है।

''जो जैसा बोता है वैसा पाता है'' यह कहावत चरितार्थ है। अतः आत्मा रूपी भूमि में समीचीन श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शनपूर्वक धर्म का बीज बोने से आत्मा चाहे किसी भी गति में हो सुखी नजर आती है।

जिस प्रकार मुनियों के चारित्र में भिन्न-भिन्न षट् आवश्यक आदि धार्मिक कार्य बतलाए गए हैं उसी तरह श्रावकों के लिए दान, पूजा, शील और उपवास आदि धर्म कार्य बतलाए गए हैं। जिसका कारण यह है कि किसी एक-न-एक धर्म में उनका मन स्थिर बना रहे तथा आत्मा पाप कर्म के आस्रव से दूर बनी रहे।

आज पञ्चेन्द्रियों के विषयों की ज्वाला में जल रहे प्राणी को भगवान के या पञ्च परमेष्ठी के गुणगान रूप भक्ति, स्तुति और पूजा ही, जो शान्ति देने वाले अमृत के समान है, संतृप्त कर सकती है। क्योंकि मानव की जीवन रूपी नैया में अनेक पाप रूपी छिद्रों से संसार रूपी सागर में डुबोने वाला जल भरता जा रहा है, उसे रोकने वाला यह वीतराग धर्म ही एक अवलम्बन है जो धर्म, संसार समुद्र से पार कराने में समर्थ साधन है।

पाँच पापों से हमेशा गृहस्थ की आत्मा मैली-कुचैली बनती रहती है और उन पापों के न धोए जाने से वह दुःखों के सागर में डूब जाती है इसलिए बुद्धिमान लोग वस्त्रों को साफ करने जैसा दान, पूजा आदि उत्तम धर्मों से नित्य अपनी आत्मा का मैल धोते रहते हैं। जिस कारण अशुभ (पाप) कर्म का भार न बढ़ने से धर्म ध्यान से कराए गए पुण्य द्वारा भावी जीवन में मोक्ष के साधन रूप उत्तम कुल निरोगता और आयतनों के समागम को प्राप्त करते रहते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में से मानव धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ को छोड़कर बाकी पुरुषार्थों में अपना सारा समय गवां देता है। लेकिन धर्म पुरुषार्थ की ओर दृष्टिपात नहीं करता इसका कारण

पूर्व जन्म के संस्कार के साथ-साथ इस जन्म के पारिवारिक जीवन या अपने पुरुषार्थ की कमजोरी समझना चाहिए। जैसे मंद भूख वाला व्यक्ति जब भोजन के पास जाता है तब भोजन की गन्ध या रूप आदिक के सम्पर्क से भूख खुलने लग जाती है उसी तरह जन्मों-जन्मों से धर्म से दूर हुआ व्यक्ति जिसकी धर्म की भूख अति मंद या समाप्त-सी हो गई है वह अगर धर्म के क्षेत्र में आकर उनके अनेक साधनों पञ्च कल्याणक पूजा, समवशरण जैसी विभूति और सद्भक्ति स्तुति आदि को सुनकर देखकर वैषयिक सुखों को, जो कि दुःख प्राप्ति के कारण हैं, स्वयमेव छोड़ देता है।

हमारे जैनाचार्य विद्वानों ने स्तुति पूजाओं और भक्तियों में सारे अनेकान्त मय सिद्धान्त को भर दिया है। जिसके समन्तभद्राचार्य द्वारा विरचित स्वयंभूस्तोत्र, जिन शतक आदि मानतुंगाचार्य द्वारा विरचित भक्तामर स्तोत्र, कुमुदचन्द्रचार्य विरचित कल्याण मंदिर स्तोत्र और वादिराज सूरि विरचित एकीभाव स्तोत्र आदि अतिशय से युक्त अच्छे उदाहरण हैं। जिन्हें पढ़कर भव्य वीतरागी की भक्ति में जैन धर्म के हृदय को छूता हुआ इतना तन्मय हो जाता है कि उसे पञ्चेन्द्रिय के विषय याद भी नहीं आते। भक्ति के द्वारा अनेक प्रकार के पाप, विघ्न स्वयमेव दूर जो जाते हैं, आचार्य पूज्य पाद स्वामि ने भी भक्ति पूजा की महिमा बतलाते हुए कहा है कि-

जन्म-जन्म कृतं पापं जन्म कोटिमुपार्जितं।
जन्म मृत्यु जरा रोगं हन्यते जिन वन्दनात्॥ 5।।
विघ्नौघःप्रलयं यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूय माने जिनेश्वरे॥ 9।।

(समाधि भक्ति)

अर्थात्- जन्म-जन्म के किए गए पाप, करोड़ों जन्मों से उपार्जित पाप जन्म-मरण, बुढ़ापा और रोग; जिनेन्द्र भगवान की वन्दना (स्तुति, पूजा) से नाश को प्राप्त हो जाते हैं। इसी तरह शाकिनी, भूत और सर्प आदि के द्वारा किए गए विघ्न जिनेश्वर भगवान की स्तुति करने से दूर भाग जाते हैं। और यहाँ तक कि उस भगवत् भक्ति से विष भी निर्विषता को प्राप्त हो जाता है। हमारे आचार्यों ने भक्ति करने वाले जिनधर्मी भक्त को अपने कदमों को सम्हालने हेतु अर्थात् मिथ्या भक्ति या मिथ्यात्व से बचने के लिए बार-बार संकेत भी किया है कि कहीं वह भक्त देव मूढ़ता या वैनयिक मिथ्यात्व में फँसकर और कांक्षावान बनकर अपने सम्यक्त्व वैभव को न खो दे। जैसा कि आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने कहा है कि-

असंजमो न वन्दे ..... ॥26॥ (दर्शन पाहुड)

अर्थात्-असंयमी वन्दनीय नहीं। आगमानुसार सभी प्रकार के (चारों निकाय के) देव और अणुव्रतादिक से रहित मनुष्य आदि असंयमी कहलाते हैं। और भी कहा है कि-

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजदं वंदं।
मण्णइ मिच्छादिट्ठि ण हु मण्णइ सुद्ध सम्मत्ती॥93।।

-(मोक्ष पाहुड)

अर्थात्-परिग्रह (धन, वस्त्र आदिक) की अपेक्षा आशा से सहित लिंग कुगुरु, रागी देव, और असंयमी (अव्रती) को जो वंदनीय मानता है वह मिथ्यादृष्टि है शुद्ध सम्यक्त्वी नहीं, शुद्ध सम्यक्त्वी कुगुरु, रागी देव और असंयमी को वंदनीय नहीं मानता।

जिनालय एक समवसरण का स्मृति चिह्न है। समवसरण में धर्म श्रवण के उद्देश्य से मुनियों, राजाओं, देव, देवियों और तिर्यञ्चों आदि की सभाएं हुआ करती हैं। लेकिन भगवान के समीप केवल चौंसठ चामर ढोरने वाले यक्ष ही होते हैं जिनका स्वरूप आगम में पूज्य पाद आचार्य द्वारा इस प्रकार कहा गया है-

कटक कटिसूत्र कुण्डल केयूर प्रभृति भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल दलाक्षौ परिनिक्षिपतः सलील चामर युग्लम्॥7।।

-(नन्दीश्वर-भक्ति)

अर्थात्-वलय, मेखला, कर्णाभरण और बाहुबंद आदि आभूषणों से भूषित सुन्दर शरीर वाले कमल की कलिका की तरह नेत्र वाले दो यक्ष लीलापूर्वक (भगवान के दोनों ओर) चामर ढोरते रहे हैं।

अगर जिनालयों में भगवान के अलावा राजाओं व तिर्यञ्चादिक गणों की सभाएं नहीं है तो चामरधारी यक्ष पर्याप्त हैं और इनके अलावा अन्य देव-देवियों को बिठाना आवश्यक नहीं है। बिठाना ही हो तो पूरा समवसरण बनाकर सभी बारह सभाओं को बिठाना सबसे उत्तम है एवं समवसरण में देव-देवियाँ अपनी धर्म सभा में भगवान के दर्शन या दिव्य ध्वनि प्राप्त करने हेतु विनीत होकर बैठते हैं न कि आशीर्वाद की मुद्रा में। अतः ज्ञानियों को हजार पाँच सौ वर्ष के रूढ़िवाद की ओर न ध्यान देते हुए चतुर्थ काल के उस समवसरण को आगमानुसार याद करना चाहिए।

कर्म सिद्धान्त से अनभिज्ञ पंचम काल के कुछ लोग अपनी रक्षा के लिए तरह-तरह के देवों की शरण ढूंढते हैं जिन्हें लक्ष्य में रखकर पूज्यपाद स्वामि ने कहा है कि-

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति॥ 16।।

-(समाधि भक्ति)

अर्थात्-तीनों लोकों में जीवों की रक्षा करने वाला वीतराग देव से उत्कृष्ट या दूसरा कोई देव न तो हुआ है और न होगा।

अनादिनिधिन णमोकार महामंत्र में अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और निर्ग्रन्थ साधु इन पाँच को ही नमस्कार किया गया है न कि कोई छठवें को। इसी तरह चत्तारि मंगल पाठ में अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म अर्थात् जिनवाणी यही चार मंगल कहे गए हैं तथा यही चार उत्तम एवं यही चार शरण बतलाए गए हैं। इनके अलावा 'अन्यथा शरणं नास्ति' कहकर आचार्यों ने हमें मिथ्या शरण से बचाया है। जिसे ध्यान में रखकर हम सभी अपनी नमस्कार विनय पूजादि क्रिया को समीचीन बनाएं यही हमारा परम् कर्त्तव्य है।

सम्यग्दर्शन से सहित होकर वीतरागी की की गई भक्ति पूजा नियम से संसार क्षय का कारण होती है। तथा उस सम्यग्दर्शन के माध्यम से ही हमारे ज्ञान और आचरण (चारित्र) समीचीन कहलाते हैं एवं सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र की समष्टि का नाम ही मोक्ष मार्ग है।

गृहस्थ नित्य पूजा भक्ति करता हुआ भी विशेष पर्व जैसे सोलह कारण, दशलक्षण और अष्टाह्निक आदिक में अपने आरंभ, समारम्भ के कार्यों को संकुचित करता हुआ विषयासक्ति को कम कर विशेष धर्म ध्यान में रत होता है, जिस पावन अवसर पर बहु कर्मों की निर्जरा के साथ-साथ तीर्थंकर प्रकृति जैसे पुण्यों की भी प्राप्ति कर लेता है।

पूजा दो प्रकार की होती है एक द्रव्य पूजा और दूसरी भाव पूजा। अनगारी निर्ग्रन्थ मुनि भक्ति स्तुति रूप भाव पूजा करते हैं और गृहस्थ भाव सहित द्रव्य पूजा करते हैं। द्रव्य का अर्थ यहाँ शुद्ध प्रासुक जलादिक द्रव्य समझना चाहिए।

जैसे गृहस्थ पंच पाप या संसार के त्यागी साधुओं की वैयावृत्ति शुद्ध प्रासुक

(त्रस, स्थावर जीवों से रहित) द्रव्यों से करता है उसी तरह उन साधुओं से भी पूज्य श्रेष्ठ उन वीतराग भगवान की वैयावृत्त रूप पूजा भी प्रासुक द्रव्यों से कवलाहारादिक दोषारोपण को दूर करता हुआ करता है, न कि उन वीतरागी प्रभु को जन्म कल्याणक के समय के बालक के समान समझकर सचित्त द्रव्यों से पूजने लग जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी प्रकार की आकांक्षाओं को लेकर भगवान की पूजा अर्चा नहीं करता, उसकी भावना केवल संसार दुःख से छूटकर मोक्ष प्राप्त करने की होती है। इसके अलावा कभी भी वह धन वैभव और पुत्रादिक की प्राप्ति की स्वार्थमय भावना नहीं रखता। क्योंकि वह पुण्य-पाप के फल रूप कर्म सिद्धान्त को समझने वाला होता है।

वीतराग भगवान किसी को कुछ देते नहीं और न लेते हैं, भगवान एक भक्त की कर्म निर्जरा एवं पुण्य संपादन में निमित्त मात्र हैं। भक्त जिस प्रकार की भावना भाता है वह अपने भावों के द्वारा उस प्रकार के (शुभाशुभ) कर्मों को बाँध लेता है। पंच परमेष्ठी के उत्तम वीतराग मय गुणों का गान करने से वह असंख्यात कर्मों की निर्जरा के साथ-साथ अतिशय पुण्य का संपादन करता है जिस कारण मोक्ष जाने के बीच रास्ते में बिना चाहे अनेक प्रकार की फसल के बीच या साथ-साथ घास-फूस उत्पत्ति (प्राप्ति) के समान सांसारिक सुख-सामग्री को प्राप्त करता हुआ वैरागी बन एक दिन मोक्ष सुख का भाजक होता है।

अतः इस जग में विषयों की बहुलता में जो चंचलमना मानव हमेशा विषयों का दास बना हुआ पाप कर्म के संपादन में लगा हुआ है, उस पाप कर्म के आस्रव बंध से बचने हेतु रत्नत्रय या रत्नत्रयधारी वीतरागी की भक्ति अति उत्तम साधन है, जिस भक्ति से मानव का अहंकार भाव नष्ट होकर समीचीन श्रद्धाभाव जाग्रत होता है ऐसी दुःख दरिद्रता और नरकादिक दुर्गतियों से बचाने वाली, मन को निर्मल पवित्र बनाने वाली और भक्ति से मुक्ति दिलाने वाली आराधना-परिचर्या श्रावकों को नित्य प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए तथा सिद्धालय की अक्षय अनन्त सम्पदा को प्राप्त करना चाहिए।

रत्नत्रय की पहचान तथा रत्नत्रय एवं रत्नत्रयधारी की भक्ति में समीचीनता के साथ-साथ उत्साह में अनवरत वृद्धि हो इसलिए रत्नत्रयमय मोक्ष मार्ग की महिमा बतलाने वाले शास्त्रों का स्वाध्याय (पठन-पाठन) जिनालयों, पाठशालाओं और

घरों-घरों में अवश्य होना चाहिए। जो पाप-क्षय, पुण्य-वृद्धि तथा चारित्र की उज्ज्वलता का अनुपम उपाय है।

जिस रत्नत्रय के सामने लौकिक रत्न, जो कि संसार पाप के कारण हैं, फीके पड़ जाते हैं एवं जब अपनी आत्मा रूपी पेटी में सुरक्षित उन सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र रूपी त्रय रत्नों की सच्ची पहचान हो जाती है तभी आत्मा अपने धार्मिक सुख में तल्लीन हो जाती है।

ऐसे रत्नत्रय रूप धर्म की भक्ति से मुक्ति के बारे में यह अल्प बुद्धि से जो कुछ कहा गया वह सभी भव्यों के उत्तम गति का कारण बने।

धर्म का प्राण; दया

सभी धर्मों या संप्रदायों में दया (अहिंसा) का स्थान सर्वोपरि है। जहाँ दया नहीं वहाँ कोई भी धर्म नहीं टिक सकता, क्योंकि दया आधार है और धर्म आधेय, अत: आधार के बिना आधेय नहीं रह सकता। कभी बिना नींव के क्या ईंट-पत्थर का कोई महल बना है? तो कभी नहीं बना। इसी तरह साधन या कारण का जैसे साध्य कार्य के साथ घनिष्ठ संबंध है वैसे ही दया और धर्म का बड़ा संबंध है। शास्त्रों में आचार्यों ने कारण में कार्य का उपचार करते हुए 'अन्नमेव प्राणं' अन्न ही प्राण है; की तरह दया को ही धर्म कह दिया है। जो निःसंदेह सत्यार्थ है।

लोक व्यवहार में दया को अहिंसा, करुणा, परोपकार, अभयदान और वात्सल्य आदि नामों से पुकारा जाता है; जो सभी दया के ही प्रतिरूप हैं। दया धर्म सभी छोटे-बड़े प्राणियों को दु:ख-सुख आदि के क्षेत्र में समान रूप से देखता है। हमारी आँखों से नहीं दिखने वाले जीव या प्राणी भी हमारे जैसा ही सुख और दु:ख का अनुभव करते हैं अत: इन सभी पर करुणा का भाव रखने से दया धर्म का पालन होता है।

इस जगत् में चार तरह की आत्माएं हुआ करती हैं-

1. परमात्मा, 2. धर्मात्मा (पुण्यात्मा), 3. पापात्मा, 4. महापापात्मा (दुरात्मा)।

परमात्मा वह होता है जो दया भाव से उन्नत; पाप पाखण्ड से अति दूर होकर संसारी आत्माओं को मैत्री और परोपकार करने का उपदेश देता है और एक अपेक्षा से अपने शुद्धात्म ध्यान के सुख में तल्लीन रहता है।

धर्मात्मा या पुण्यात्मा वह होता है जो हिंसादिक पापों का त्यागी, पञ्च व्रतों का धारी, सच्चे धर्म मार्ग में दान, भक्ति, शील और उपवास आदिक को करने वाला तथा कदाचित् पाप कार्य हो जाने पर दण्डग्राही, पाप भीरु, सुख-दु:ख के क्षेत्र में सभी को समान रूप से देखने वाला, धर्मियों का सेवक और परोपकारी होता है।

पापात्मा वह होता है जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पञ्च पापों में लीन, अपने पारिवारिक व सहपाठी जनों के अलावा सभी के साथ छल-कपट, धन-अपहरण एवं कुशील आदिक पापों को करने वाला तथा धर्म कार्य से भी सांसारिक वस्तुओं को चाहने वाला व रागी-द्वेषी देवी, देवताओं का उपासक,

अंधश्रद्धालु होता है।

महापापात्मा या दुरात्मा वह होता है जो पञ्च पापों के साथ-साथ धर्म नास्तिक अपने पारिवारिक जनों एवं मित्र गणों को भी ठगने, गुमराह करने वाला, जुआ, चोरी, माँस सेवन, मदिरा पान, शिकार, परस्त्री सेवन, वेश्यागमन ऐसे सप्त व्यसनों में आसक्त रहने वाला, हिंसक व्यापार एवं उद्योग करने वाला, गुरु निंदक, स्वार्थी और धर्म सम्पदा को भी हड़पने वाला होता है।

हम देखते हैं कि कुछ प्राणी जन्म लेते ही अपंग, कुरूप व दरिद्री हुआ करते हैं, जिसके कारण का विचार करते हुए हम यह अनुमान अवश्य लगा सकते हैं कि उनका अतीत अवश्य पापात्मा या दुरात्मा के कर्मों से संबंधित रहा होगा। अन्यथा वे सुडोल, सुन्दर रूप पाकर महलों या स्वर्गों में अवश्य उत्पन्न होते। क्योंकि जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही धान्य काटा जाता है या फल खाने को मिलता है। अतः यह सुनिश्चित है कि हिंसादिक पापों का फल दुःख को ही देने वाला है और दया धर्म का फल सुख को उपजाने वाला है।

देखो! रास्ते में गमन करते हुए जीवन्धर कुमार ने एक मरणासन्न श्वान को सद्भावना पूर्वक णमोकार मंत्र सुनाया था और आत्मिक शान्ति के साथ मरकर वह श्वान (कुत्ता) देव पर्याय को पाकर सुदर्शन यक्ष हुआ था और एक समय उन्हीं जीवन्धर कुमार को जब काष्ठांगार राजा ने ईर्ष्या वश शूली पर चढ़वाया था तब वही उपकृत श्वान का जीव देव पर्याय से वहाँ देव रूप में आकर जीवन्धर कुमार को शूली के ऊपर से ही उठा ले गया था और जीवन्धर कुमार की रक्षा हुई थी। इसी तरह तीर्थंकर पार्श्वनाथ राजकुमार ने लकड़ी के अन्दर जलते हुए नाग-नागिन की रक्षा का भाव रखते हुए पंच नमस्कार मंत्र सुनाया था अतः वे नाग-नागिन णमोकार मंत्र के सुनने रूप पुण्य के प्रभाव से पाताल लोक में धरणेन्द्र-पद्मावती नामक देव-देवी हुए थे और पार्श्वनाथ मुनीश्वर के उपसर्ग के समय उन्हीं देव-देवी ने उपस्थित होकर प्रत्युपकार किया था। इस तरह परोपकार करने वाले का उपकार निश्चित रूप से होता ही है।

अहिंसक व्यक्ति की मुद्रा व आवाज में बड़ी शक्ति निहित होती है, जिसके संदर्भ में दीवान अमरचंद का उदाहरण सुप्रसिद्ध है। एक बार जयपुर नरेश के दीवान श्री अमरचंद जैन ने अपने नरेश (राजा) की भावना सुनकर नरेश से नहीं पकड़ में

आने वाले हिरणों के झुण्ड को अपनी दयामय प्रिय आवाज से कि–'हे हिरणो! तुम कहाँ जाते हो; जब तुम्हारा रक्षक ही भक्षक बन गया है तब तुम्हें शरण कहाँ? लो! मैं तुम्हें अभयदान (जीव रक्षा रूप दान) दिलाकर बचाने आ रहा हूँ, रुक जाओ, रुक जाओ' ऐसा कहकर रोक लिया था और उन पर हाथ फेरकर अभयदान देकर छोड़ दिया था। राजन् को अहिंसक शाकाहारी बनने की प्रेरणा देने वाले दीवान जी से राजन् ने कहा कि हे दीवान! अगर तुमने सिंह को शाकाहारी बना दिया तो मैं भी शाकाहारी बनकर अहिंसा प्रधान जैन धर्म को स्वीकार कर लूंगा। तब ऐसा सुनते ही दीवान जी ने कैसे दया धर्म का माहात्म्य दिखलाया था? जिसे यहां संक्षिप्त में बतलाता हूँ कि एक विशाल पिंजड़े में बंद किये गये तीन–चार दिन के भूखे सिंह को राज्य के भारी जनसमूह एवं राजन् के समक्ष दीवान अमरचंद ने जलेबी का थाल लेकर पिंजड़े में प्रवेश किया था, द्वार पर ही णमोकार मंत्र का उच्चारण कर ऊँचे शब्दों में सिंह को पुकारते हुए कहा कि हे वनराज! लो यह अहिंसा से निर्मित भोजन और अपनी भूख शांत करो; क्योंकि हिंसा से निर्मित भोजन अनन्त काल तक भूख को उत्पन्न करने वाला है। अतः यह अहिंसा से निर्मित भोजन तुम्हें अल्प काल में ही भूख के दुःख से उठाकर शिव गति पहुँचाने वाला है। माँस खाने का संस्कार जन्म से नहीं, संगति से पड़ता है, अन्यथा जन्मते ही प्राणी माता का दुग्ध पान क्यों करता है? सिंह ने अमरचंद के दयापूर्ण मधुर वचन सुन जलेबी के थाल पर छलांग लगाकर जलेबी को खाना शुरु किया और इधर भी जनता ने दीवान अमरचंद एवं जैन धर्म के जयगान गाना शुरु किये। जलेबी के थाल के थाल आते गए और सिंह के पेट में समाते गये। थोड़ी ही देर में सिंह की भूख शमन हुई, सिंह शाकाहारी बना और नरेश दयावान दीवान अमरचंद के चरणों में गिर पड़े। स्वयं जैन धर्म स्वीकार कर सारी जनता को भी जैन धर्म स्वीकार कराकर शाकाहारी अहिंसक बनाया जिस कारण जैन धर्म का माहात्म्य दिग्–दिगन्त तक फैल गया।

धन्य ऐसी दया धर्म की शक्ति जो हिरणों जैसे शक्तिहीन प्राणियों के भय को एवं सिंह जैसे शक्तिशाली प्राणियों के क्रोध को शांत कर देती है। अतः दया धर्म की अनन्त शक्ति को जानकर अपनी आत्मिक कमजोरी को दूर करते हुए मानव को दया धर्म का प्रचार–प्रसार कर दीवान अमरचंद–जैसा जीवन बनाना चाहिए।

स्वाभाविक रूप से जगत के सभी प्राणी शान्ति चाहते हैं और वे सांसारिक

जीवन में नहीं मिलने वाली निराकुलता रूप शान्ति की खोज में उन दयावान महा करुणावान परमात्मा व धर्मात्मा की शरण में आश्रय लेना चाहते हैं और ऐसे दुर्लभ चरण कमलों में बैठकर शान्ति का अनुभव करते हैं। तीर्थंकर के समवसरण में सिंह, गाय और नेवला, सर्प भी बैर-भाव रहित एक ही जगह पर बैठकर शान्तिपूर्वक धर्मामृत का पान करते हैं और इससे विपरीत क्रोधी, कषायी एवं हिंसक प्राणी का शब्द मात्र सुनते ही कुछ प्राणी अशांत हो जाते हैं या भयभीत हो बिना मुख देखे दूर से ही अपना मार्ग बदल लेते हैं अर्थात् दूर के रास्ते से निकल जाते हैं; उस हिंसक व कषायी प्राणी के निकट नहीं जाना चाहते।

धर्म और धर्मियों के सामने एक प्रश्न प्रमुख रूप से उठता है कि आज इस धर्मप्रिय भारत देश में धार्मिक भावनाएं अत्यधिक कमजोर क्यों होती जा रही हैं; इसका प्रमुख कारण क्या है? तो इसका प्रमुख कारण यही समझना चाहिए कि इस देश के अनादि से प्रचलित दयामय विश्व धर्म के सिद्धांतों को लोग विस्मृत करते जा रहे हैं और अन्य हिंसक देशों में प्रचलित मांस भक्षण, हिंसक व्यापार इत्यादिक रूप कुरीतियों को अपनाते जा रहे हैं। जिस भारत देश में दया, अहिंसा की मूर्ति व मैत्री भावना के प्रस्तोता वृषभदेव, भरत, राम, हनुमान और महावीर आदि हुए तथा जिनके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि रूप सिद्धांतों को आदर्श मानने वाले भारतवासियों का भारत आज भी महापुरुषों की जन्मभूमि एवं साधु-संतों के विहार से पावन पवित्रता को प्राप्त है। जिस भारत-भू पर आज भी प्राचीनकालीन कलात्मक मंदिर अपनी धर्म की अनुपम छटा को बिखेरे हुए हैं। लेकिन खेद की बात यह है कि धर्म मार्ग पर चलने वाले अनुयायी अपने धर्म मार्ग में बाधक कुछ ऐसे तत्वों के द्वारा कष्ट का अनुभव कर रहे हैं, जैसे कि जगह-जगह बूचड़खाने खुलना, अण्डे के उत्पादन केंद्र बनना एवं मांस भक्षण के अड्डे बनते जाना, इसी तरह चमड़े व सौन्दर्य-प्रसाधन आदि की वस्तुओं के लिए पशुओं की हिंसा की जाना और यहाँ तक कि विदेशी मुद्रा के लिए मांस को विदेशों को निर्यात किया जाना इत्यादि; जिस वजह से आज हमारा धर्म राष्ट्र हिंसा से घृणित राष्ट्र-जैसा बनता जा रहा है।

कई जगह पशुओं को जीवित अवस्था में शस्त्रों से मारना एवं गरम पानी उन जीवित पशुओं की पीठ पर डालकर उनका चमड़ा निकालना जैसे कुकृत्य आँखों में असीम पीड़ा उत्पन्न करते हैं। आने-जाने के मार्गों व गलियों में मांस, मछली, अण्डे

और शराब की दुकानें तथा चमड़ा निकालकर टांगे गये पशुओं के कलेवर नरकों से भी सहस्त्र गुने दुःखद व अशोभनीय दिखाई देते हैं। यदा-कदा किसी साधु या धर्मात्मा की दृष्टि उस घिनोने मांस या जीव मृत कलेवर पर पड़ जाए तो वे धर्मात्मा साधु पुरुष उस दिन भोजन (धान्य, फल, शाकादिक) को छोड़कर उपवासादि को ग्रहण कर लेते हैं। क्योंकि जीवरक्षण की भावना से उनका हृदय आद्रीभूत होता है। वे हमेशा भावना भाते रहते हैं कि-

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाक्भवेत् ।।

भविष्य की ओर दृष्टिपात करने पर अनुमान से यह भासित होता है कि पश्चिमी देशों के प्रभाव से प्रभावित होकर अथवा रसना इन्द्रिय की लोलुपता वश मांसादिक अभक्ष वस्तु के भक्षण से अपने अहिंसा धर्म के जयघोष करने वाले भारत देश की स्थिति अभी हिंसा के ऐसे ताण्डव नृत्य से इतनी बुरी घृणास्पद है तो आगे आने वाले वर्षों में कितनी निंदक व दयनीय होगी? क्या सारा धार्मिक जीवन ही नष्ट हो जाएगा? अथवा लोग पाप के भार से अनेकों भूकम्पों के प्रकोप, महाव्याधियाँ और दारिद्र पाकर विद्वेष से एक-दूसरे के सुखी जीवन को नष्ट करने में लग जायेंगे? अतः हमें धर्म रक्षा, पशु रक्षा के लिए कटिबद्ध होना चाहिए।

आज भी हमारे देश में कानून है कि सिंह, हाथी, मोर इत्यादि पशु-पक्षी राष्ट्रीय पशु-पक्षी के रूप में स्वीकारे गये हैं और जिनका वध करना अपराध है; इनको मारने वाला दण्ड का भागी होता है। इसी तरह कई प्रदेशों में धर्म स्थानों पर पशु हिंसा के निषेध के कानून बनाए गए हैं। ये सभी कानून धर्म सिद्धांतों या महापुरुषों के संदेशों के आंशिक रूप ही हैं, लेकिन आज स्वार्थ की ओट में इन सिद्धांतों का हेर-फेर किया जा रहा है अर्थात् धन-वैभव के लोभ में कानून भी टाले जा रहे हैं। धर्म निरपेक्ष राज्य की रक्षा हेतु नहीं बल्कि नोटों के लिए वोट दी जा रही है। जिस भारत देश को ब्रिटिश साम्राज्य से बिना गोली-बंदूक के स्वतंत्र कराया गया था उसी भारत देश में आज बूचड़खाने आदि खोले जा रहे हैं। यह बड़े आश्चर्य और दुख की बात नहीं है तो क्या है? यह सब दुःख और जीवन में पतन के कारण हैं।

महापुरुषों ने कहा है कि -

''आत्मनि प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्''

अर्थात्-अपनी आत्मा को जो (मरना, दुःख पाना, कटना, आदि) इष्ट नहीं

वह कार्य दूसरे प्राणियों के साथ भी नहीं करना चाहिए।

मेरे गुरुवर के गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने एक धीबर के उदाहरण से प्राचीन परम्परा रूप दया के माहात्म्य को दिखलाने वाले कथानक का आधार लेकर उस कथानक को विराट रूप देते हुए 'दयोदय' काव्य लिखा जो मूल में संस्कृत में लिखा गया और मंद बुद्धि वालों के लिए हिन्दी में भी लिखा गया है। जिसमें प्राचीनकाल के धीबर की कथा प्रस्तुत की गई है जिसने मुनिराज के सामने पहली मछली के त्याग करने, उसे अभयदान देने का नियम लिया था और बार-बार वही मछली उसके हाथ में आने पर उसे जितनी बार उसने अभय दान दिया उतनी बार अगले जीवन में उसे मरने के अवसर पर अभयदान के फलस्वरूप आत्मरक्षा का फल प्राप्त हुआ। इसलिए हमें विचार करना चाहिए कि जीवन्धर, पार्श्वनाथ, दीवान अमरचंद आदि जैसे परोपकार को करते हुए एक भी जीव की रक्षा करेंगे तो हमें इस भव में एवं अगले भव में कितना श्रेष्ठ फल प्राप्त हो सकता है और हमारा देश कितना उन्नत हो सकता है।

इस भारत देश में जो आज अहिंसा के उपासकों द्वारा पशु संरक्षण केंद्रों (गौ शालाओं) का सैकड़ों की संख्या में निर्माण किया जा रहा है वह बड़ा ही सराहनीय है क्योंकि इन अहिंसा केंद्रों से हिंसा अवश्य दूर होकर अहिंसा दया धर्म की वृद्धि होगी, क्योंकि जिन गाय, बैल, भैंस आदिक पशुओं को कसाईखानों को भेजा जाता है वे अनेक पारिवारिक सामाजिक कार्यों में सहयोगी होते हैं। कई लोगों का कहना है कि बूढ़े पशुओं को कसाईखानों में भेजने में क्या हानि है? तो उन्हें यह सोचना चाहिए कि जैसे जीवन भर उपकार करने वाले अपने माता-पिता को अंतिम काल में बुढ़ापे के समय भी घर में ही रखकर रक्षा की जाती है वैसे ही जीवन भर दूध देने वाले या खेत में काम करने वाले पशुओं को कैसे कसाईखानों में भेजा जा सकता है? अन्यथा पशुओं के समान कभी पैसे आदिक के लोभ में मांस निर्यात हेतु माता-पिता भी एक दिन कसाईखानों में भेजे जाने लगेंगे। अतः बूढ़े अपाहिज माता-पिता को जैसे उदासीन आश्रमों में भेजते हैं वैसे ही बूढ़े अपाहिज पशुओं को पशु संरक्षण केंद्रों (गौ शालाओं) की भी बड़ी आवश्यकता है जिनके माध्यम से देश की हिंसा दूर होकर देश में सुख, शान्ति और आरोग्य की अभिवृद्धि होगी और धर्म के प्राणरूप दया की रक्षा होगी। इस तरह दया धर्म से रत्नत्रय को प्राप्त कर हम धर्मात्मा बनकर परमात्मा के पद को प्राप्त कर सकेंगे।

धर्म की महिमा

आत्मा को महान बनाने का पर्व दशलक्षण है। इस श्रेष्ठ दशलक्षण पर्व में भव्यात्माएं सांसारिक पर पदार्थों एवं विषयों से ममत्व छोड़ अपने आत्म उद्धार में सजग होती हैं।

आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने कहा है कि- ''चारित्रं खलु धम्मो'' चारित्र ही वास्तविक धर्म है। हमारे जैनागम में जो चारित्र रूप उत्तम क्षमादिक दशलक्षण धर्म कहे गए हैं वे संसारी जीवों के कर्म के संवर एवं निर्जरा का परम् साधन हैं। ऐसे दश धर्मों का प्रमुख रूप से या पूर्ण रूप से हमेशा पालन करने वाले निर्ग्रन्थ महा-मुनीश्वर होते हैं तथा गृहस्थ लोग भी साधना रूप से, यह भावना भाते हुए कि- मैं भी कभी आगे मुनि बनकर मोक्ष प्राप्ति हेतु इन धर्मों का पूर्ण रूप से पालन कर सकूँ इस उद्देश्य से दशलक्षण महा-पर्व के समय त्याग, संयम का नियम कर और एक भुक्ति के नियम के साथ दश धर्मों का पालन करते हैं।

दशलक्षण पर्व के समय श्रावकगण अपने आरम्भ, परिग्रह की क्रियाओं को संकुचित कर अपने बहुमूल्य समय को भगवान की गुणाराधना, दान, जप और स्वाध्यायादि पवित्र कार्यों में व्यतीत करते हैं।

श्रेष्ठवान यह दशलक्षण पर्व, अष्टाह्निक पर्व की तरह वर्ष में तीन बार आता है। लेकिन बहुतायत लोग वर्षायोग या चातुर्मास काल के मध्य में आने वाले भाद्रपद मास संबंधी दशलक्षण पर्व को विशेष रूप से मनाते हैं। जिसका मुख्य कारण यह है कि उस समय मौसम की अनुकूलता के साथ-साथ त्याग, संयम की भावना बढ़ाने में सहयोग या प्रोत्साहन देने वाले त्यागी, संयमी, मुनियों के चातुर्मास का लाभ उन्हें प्राप्त होता है।

क्षमा धर्म का विरोधी क्रोध है, मार्दव धर्म का विरोधी मान है, आर्जव धर्म का विरोधी मायाचार है और शौच धर्म का विरोधी लोभ है। अतः क्रोध, मान, माया और लोभ रूप इन चार कषाय भावों को हटाने से आत्मा में उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव और उत्तम शौच ये चार धर्म प्रकट होते हैं।

अपकारी असत्य का त्याग सो उत्तम सत्य धर्म है। जीवों की रक्षा के साथ-

साथ इन्द्रियों और मन पर लगाम लगाना सो उत्तम संयम धर्म है। इच्छाओं का निरोध कर अनशनादिक बाह्य एवं प्रायश्चित्तादिक अंतरंग तपों को तपना उत्तम तप धर्म है। ज्ञान या उपकरणादिक का दान देना सो उत्तम त्याग धर्म है। आत्मा के पास थोड़ा भी बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का न होना सो उत्तम आकिञ्चन्य धर्म है और सम्पूर्ण रूप से कुशील भावना से दूर होकर अठारह हजार प्रकार के शील सहित आत्मा या आत्मब्रह्म में लीन हो जाना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

प्रत्येक क्षमादिक दश धर्मों के साथ जो यहाँ ''उत्तम'' यह विशेषण लगाया गया है उसका तात्पर्य यह है कि इन सभी धर्मों का पालन करते समय, इन धर्मों के द्वारा सांसारिक भोगों की प्राप्ति की आकांक्षा न रखते हुए उत्तम गति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की भावना रखना चाहिए।

ऐसे श्रेष्ठ, महान् चारित्र रूप दशलक्षण धर्मों को प्रत्येक आत्माओं के लिए अपनाना चाहिए। मात्र ज्ञान-ज्ञान की चर्चा करने से सांसारिक दुःखों से छुटकारा या मोक्ष प्राप्त नहीं होता। समीचीन श्रद्धा के साथ ज्ञानपूर्वक आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती हैं जैसे रोग को दूर करने के लिए औषध के मात्र श्रद्धान से, या आचरण (सेवन) से रोग दूर नहीं होता। रोग दूर करने के लिए औषध पर श्रद्धान (विश्वास) के साथ औषधि सेवन के ज्ञानपूर्वक उसको उपयोग में लाने (सेवन) से रोग से मुक्ति होती है।

आत्मा को शुद्ध बनाने के लिए निश्चय धर्म के साथ-साथ समीचीन व्यवहार धर्म का पालन परम सहायक होता है। जिस प्रकार दही से घी बनाते वक्त दही के घड़े में पड़ी मथानी को निश्चय एवं व्यवहार रूप दोनों रस्सियों को क्रमशः बार-बार खेचना पड़ता है तभी उसमें से सार भाग बाहर आता है। उसी तरह मुनिजन जब निश्चय और समीचीन व्यवहार धर्म (षडावश्यकादि) का बार-बार सहारा लेते हैं तभी आत्मा की शुद्धावस्था प्राप्त होती है।

हाँ! यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि क्रिया को छोड़े बिना भी उत्कृष्ट ध्यान की उपलब्धि नहीं होती, लेकिन समीचीन व्रतादिक रूप धार्मिक क्रियाएं उस उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करने में पूर्ण सहायक (निमित्त) हैं। जैसे- नाव को छोड़े बिना नदी के दूसरे तट पर नहीं पहुँचते, लेकिन नदी के दूसरे तट तक पहुँचाने के लिए नाव परम सहायक है क्योंकि उसके बिना नदी का दूसरा तट प्राप्त नहीं होता। अतः

जितनी भी आत्माओं ने मोक्ष के अनंत सुख को पाया है उन सभी ने व्रत, संयम रूपी समीचीन व्यवहार धर्म रूप नाव का सहारा अवश्य लिया है आगे भी त्याग, संयम अपनाकर आत्म लाभ उठाने वाली पुण्यात्माओं के लिए अपूर्व सुख, शान्ति के साथ भव से शीघ्र मुक्ति की प्राप्ति अवश्य होगी।

जिस मंगल भावना को जिन धर्मों से साकार रूप मिलेगा उन्हीं दशलक्षण धर्मों को संक्षेप में आगे वर्णित किया जा रहा है।

1. क्रोध का शमन–क्षमा का मिलन

क्रोध का अभाव या शमन होना क्षमा धर्म कहलाता है।
''क्रोधस्याभावः क्षमा''

मानव या जीव मात्र की क्रोध रूप अवस्था एक विभाव परिणति है जो अपने आपको वास्तविक समता, क्षमा शान्ति रूप स्वभाव से विलग कर देती है। आज का भौतिक युग मानव की आवश्यकताएँ बढ़ाते हुए और नये–नये साधनों के माध्यम से लौकिक सुख को भी प्रदान करता है; लेकिन पुण्य–पाप रूप कर्म सिद्धांत से अनभिज्ञ होने के कारण मानव को अपने पुण्य की क्षीणता आदि के निमित्त से किसी समय कुछ अनुपलब्धियों में जो क्रोध की अग्नि भभक उठती है वह एक दूसरे के हृदय के लिए या पारिवारिक जीवन के लिए अभिशाप बन जाती है। ऐसी परिस्थिति में क्षमा धर्म शीतल जल का काम करता है। कुछ धर्म के चिंतन, वचन क्रोधाग्नि को शमन करने में कारण बन जाते हैं।

क्रोध के मूल कारणों का अभाव किए बिना तात्कालिक शांति मिलना तो सम्भव है लेकिन त्रैकालिक शान्ति के लिए उबले दूध में पानी छिड़कने मात्र से नहीं नीचे से अग्नि निकाल देने पर ही दूध का उबलना बंद हो सकता है तभी वह पूर्ण शान्त, ठंडा हो पाता है नहीं तो छीटे मारने पर क्षणिक समय के उपरान्त पुनः उबलने लगता है। इसी तरह संसारी प्राणी को जो क्रोध उत्पत्ति होती है उसका कारण परिग्रह आदिक का लालच ही है। जिस वजह से आज देश–विदेशों में युद्ध, बैर, तनाव आदिक के प्रसंग उपस्थित हो रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप ही देखो कुछ वर्षों पूर्व घटी वह घटना जो कि नेपाल में एक राज पुत्र द्वारा अपने परिवार की हिंसा, इसी तरह अमेरिका में सात वर्ष में निर्मित इमारत का कुछ मिनटों में ध्वस्तीकरण और ईरान–

ईराक का युद्ध होना इत्यादि।

आज प्रायः प्रत्येक घरेलू कार्यों में छोटी-छोटी बात पर भी झगड़े शुरू हो जाते हैं, कोई वस्तु यहाँ से वहाँ होते ही क्रोध आ जाया करता है, थाली में नमक कम हो जाए तो थाली का चक्र बन जाता है यह सब क्षमा धर्म के विपरीत अवस्था में ही होता है। उन राम को देखो कि जिन्होंने माँ कैकई पर रंचमात्र क्रोध न करते हुए क्षमा भाव धारण कर चौदह वर्ष वनवास सहर्ष स्वीकार किया था जिसका बड़ा आदर्श बना लेकिन रावण ने क्रोध कर राम से युद्ध किया तो वह अपने जीवन से हाथ धो बैठा।

2. मान का गलन - सुकोमल जीवन

मान कषाय के अभाव में जो सुकोमल परिणाममय जीवन होता है उसे मार्दव धर्म कहते हैं।

''मृदोर्भावो मार्दवं''

मृदुतामय परिणामों से मानव सभी ओर से सुखी आदरणीय बनता है। अपना बड़प्पन दिखाना, आत्म-प्रशंसा करना और दूसरों की निंदा करना या मान कषाय के रूप हैं। अपने धन, वैभव, कुल, जाति रूप, बल आदिक का गर्व नहीं करना चाहिए। दूसरों को नीचा दिखाने या किसी को तिरस्कृत करने से आपसी झगड़े तनाव बढ़ने से पारस्परिक वात्सल्य के अभाव में मानव का आन्तरिक शुद्धि के अभाव में नैतिक पतन हो जाता है।

जैसे मिट्टी पानी से मिलने पर जितनी सुकोमल कंकड़-पत्थर रहित शुद्ध बनती है उतना ही उसे (कुंभ आदि का) सुन्दर आकार प्राप्त होता है वैसे ही जब मानी प्राणी धर्म जल से पवित्र कोमल बनता है तब उसे भी सुन्दर गुणमय भगवान जैसा रूप-स्वरूप प्राप्त होता है।

गुणियों को देखने से मान गलता है और छोटों को देखने से मैं बड़ा हूँ ऐसा मान बढ़ता है। अतः गुण वृद्धि हेतु हमें ज्ञानियों का सम्पर्क करना चाहिए। राम मान के अभाव में कुटियों में रहना भी पसंद कर लेते हैं। और मानी रावण का अभिमान देखकर उसका भाई विभीषण उसका साथ छोड़कर राम के चरणों में आता है यही मार्दव धर्म का फल है।

3. माया का अभाव ही आर्जवता का सर्द्धींभाव

जीवन में सरलता होना व मान माया मायाचार कपट का अभाव होना ही आर्जवधर्म है।

''ऋजोर्भावः आर्जवः''

जिस आत्मा के अन्दर आर्जव धर्म होता है वहाँ उस आत्मा के प्रति सभी लोगों का पूर्ण विश्वास जाग्रत होता है। उसे सब लोग आदर्श पुरुष मानते हैं। और जहाँ धोखेबाजी, छल-कपट पलता है वहाँ मनमुटाव, बुराईयाँ पैदा होती हैं।

आर्जव धर्म का अपने अन्तस् से बड़ा सम्बंध होता है जिसे ऊपर से समझना कठिन-सा प्रतीत होता है। कभी माता-पिता, शिक्षक आदि ऊपर से कुछ कटुता का प्रयोग करें तो भी उनकी उद्धार की भावना में आन्तरिक पवित्रता गर्भित होती है।

राम ने बड़ी कठोरता के साथ रावण को शिक्षा दी लेकिन वे पवित्र थे उनके अन्दर कोई छल नहीं था लेकिन रावण ने राम-राम नाम चादर ओढ़कर स्वयं को ही दुःख के गर्त में डाल दिया यह बगुला भक्ति या ध्यान आन्तरिक शुद्धि का कारण नहीं। किसी ने ठीक ही कहा है कि-

तन पर तो है सफेदी मन हो रहा गन्दा।
क्या करेगी जमुना अरु क्या करेगी गंगा॥

इसीलिए आर्जव धर्म का पालन करने हम जो 'मन में होय सो वचन उचरिये वचन होय सो तन से करिये' इस उपदेश को जीवन के हर कार्य में अमल में लाएँ और परम सुखी बनें।

4. लोभ का त्याग है शुचिता का मार्ग

अति लोभ और धर्म व धर्मात्माओं से ग्लानि को छोड़ना शौच धर्म कहलाता है। पवित्रता, शुचिता व निर्लोभता ये शौच धर्म के नामान्तर हैं।

''शुचेर्भावः शौचम्''

अर्थात्-निर्मल भाव शौच धर्म है।

स्वार्थ बुद्धि से धर्म करना, रोगी, गरीबों और तप, ध्यान करने वाले साधुओं से घृणा करना अपनी आत्मा-शुचिता व पवित्रता को नष्ट करता है।

अति-लोभी व्यक्ति धर्म की ओट में भी जो पाप करता है उससे धर्म का उपहास होता है और अन्य लोग धर्म मार्ग से भयभीत होने लग जाते हैं। इसी संदर्भ में धर्मशास्त्रों के वचन है कि-

अन्य क्षेत्रे कृत्तं पापं धर्म क्षेत्रे विनश्यति।
धर्म क्षेत्रे कृत्तं पापं वज्र लेपो भविष्यति॥

अर्थात्-संसार या लौकिक क्षेत्र में किया गया पाप धर्म क्षेत्र अर्थात् सच्चे देव, गुरु आदिक के सामने पश्चात्ताप और प्रायश्चित करने पर आत्मा से दूर हो जाता है। और धर्म क्षेत्र में (धर्म का पैसा, भूमि, मंदिर सम्बंधी वस्तुओं के सम्बंध में) किया गया पाप वज्र लेप के समान कठिन या दृढ़ हो जाता है अर्थात् भवों-भवों तक दुःखों का कारण होता है। निर्लोभता से आत्मा में बड़ी महानता प्राप्त होती है कहा भी है-

शुचिर्भूमि गतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्म परो राजा ब्रह्मचारी सदा शुचि॥

-(कातन्त्र)

भूमि के भीतर गया जल, पतिव्रतवान शीलवान नारी, धर्मनिष्ठ राजा और कामवासना त्यागी ब्रह्मचारी सदा पवित्र होता है।

निर्लोभी राम लंका जीतने के बाद भी उस पर मोह न कर अपने पिता के राज्य में लौट आए और उनकी पवित्र भावना से उन्हें अनायास ही अयोध्या का राज्य प्राप्त हुआ यही शुचिता धर्म का फल है।

5. उत्तम सत्य धर्म है विजय का मार्ग

सज्जनों से हितकारी वचन बोलना सत्य धर्म कहलाता है।

''सते हितं यत् कथ्यते तत् सत्यम्''

सत्य का फल बड़ा मीठा होता है, आपसी व्यवहार में समीचीनता आती है, शत्रु से आत्मविश्वास, अपनापन और वात्सल्य वृद्धिगत होता है, जो व्यक्ति एक बार भी सत्य को छोड़ता है उसे असत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए सैकड़ों बार असत्य का प्रयोग करना पड़ता है, इसी तरह एक बार भी असत्य बोलने के उपरांत हजारों बार सत्य बोलने पर भी उस सत्य को भी असत्य की कोटि में मान लिया जाता है।

सत्य की रक्षा हेतु शास्त्रों में पांच भावनाएं आवश्यक मानी गई हैं, 1. क्रोध

का त्याग, 2. लोभ का त्याग, 3. भय का त्याग, 4. हास्य का त्याग और 5. शास्त्रानुकूल वचन। ऐसा देखा जाता है कि लोग क्रोध के समय झूठ बोल जाते हैं, कोई लोभ के वशीभूत होकर सत्य को छुपा लेते हैं, कभी कष्टों या धन-पदवी आदिक के भय से असत्य मार्ग का समर्थन करने लग जाते हैं, जहां कहीं हास-परिहास में झूठी असत्य बातों का प्रयोग मजाक के रूप में होने लगता है, इसी तरह शास्त्र ज्ञान से अनभिज्ञ लोग अपनी मनमानी बातों का प्रयोग कर लोगों को गुमराह कर देते हैं। ये सब असत्य के रूप हैं, झूठे लेख लिखना, किसी को बदनाम करना आज का व्यसन-सा बनता जा रहा है जिसका फल लोग इस लोक में अनेक व्याधि, धन हानि आदिक रूप से अवश्य पाते हैं और शास्त्र कथित उदाहरण में असत्य से राजा वसु के सिंहासन का जमीन में धस जाना और नरक के दु:ख पाना तथा असत्यवादी श्री वंदक की आंखें फूट जाना, सत्यघोष का राज्य दंड व दुर्गति पाना आदिक ये सत्य घटनाएं हैं, किसी ने ठीक ही कहा है कि-

सच्चाई छुप नहीं सकती झूठे उसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती कागज के फूलों से॥

सती सीता के शील के प्रभाव से अग्निकुंड में जल में कमल खिला, सेठ सुदर्शन को शूली का सिंहासन बना आदि ऐसे सत्य धर्म से हुए अतिशय चमत्कार के महान उदाहरण हैं जो हर एक व्यक्ति को सत्यवादिता का साहस उत्पन्न करते हैं, जैसे कहा ही है- ''सत्यमेव जयते'' राजा दशरथ ने-

''रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाएं पर वचन न जाई।''

वाली बात एवं हरिश्चंद्र ने स्वप्न में कही राज्य दान की बात को पूरा निभाया था और अपना सुंदर नाम लोक में अमर किया था अत: यह बात चरितार्थ हुई कि- ''सत्यं शिवं सुंदरम्'' सत्य ही शिव है अर्थात् मोक्ष का कारण है और आत्मा को सुंदर श्रेष्ठ बनाता है।

6. संयम से आत्मा की सम्हाल

सम्यक् रूप से आत्मा पर नियंत्रण करना संयम कहलाता है।
''सम्यक् यमो वा संयम:''
अथवा इंन्द्रियों को अपने वश में रखने का नाम संयम है।
''इन्द्रिय निरोधो संयम:''

अपने जीवन को व्यवस्थित करने के लिए अपनी मन-वचन-काय की क्रियाओं को संयमित करना आवश्यक है। अगर मन को वश में नहीं किया तो वह बंदर की तरह पापों की ओर भागकर हमारी आध्यात्मिक सम्पदा को नष्ट कर देता है और वचनों को अपने काबू में नहीं रखा तो अनावश्यक वचनों से अपना गौरव समाप्त होकर अपने वचनों का अनादर होने लग जाता है। इसी तरह अपनी काया शरीर को अनावश्यक कार्यों से नहीं सम्हाला तो अपनी गम्भीरता नष्ट होकर शारीरिक एनर्जी खो जाती है और व्यक्ति धार्मिक कार्यों में आलस्य करने लग जाता है।

संसार के हर एक क्षेत्र में संयम पाया जाता है लेकिन वह संयम केवल लौकिक संयम है, पारमार्थिक नहीं। जैसे हम देखें तो गाड़ी चलाने वाला बड़ा संयमित होता है नहीं तो एक्सीडेन्ट होने में देर नहीं। कम्प्यूटर चलाने वाला भी बड़ा सतर्क होता है नहीं तो चिंता का चिता होने में देर नहीं इत्यादि। यही विवेक अगर यदि जीव रक्षा में लगाया जाए तो मोक्ष मार्ग शुरू हो जाए।

संयम के दो भेद होते हैं- एक इन्द्रिय संयम और एक प्राणी संयम। जो अपनी स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियों के विषय कोमल, ठण्डे, गरम आदि स्पर्शों से मीठे, खट्टे, चरपरे आदि रसों से; मनोहर दृश्यों से तथा मधुर संगीत के निमित्त आदि से मन को राग-द्वेष से बचाने रूप पुरुषार्थ है वह इन्द्रिय संयम कहलाता है। और एकेन्द्रिय पेड़-पौधे आदि, द्वीन्द्रिय लट-केचुआ आदि, त्रीन्द्रिय चींटी, खटमल आदि, चतुरेन्द्रिय मक्खी, भ्रमर आदि तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यादि जीवों के घात से विलग होना प्राणी संयम कहलाता है।

आगम में इसी संयम के दूसरी तरह से भेद सकल संयम और देश संयम रूप से भी कहे गए हैं।

गृह त्यागी मुनि जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतों को धारण करते हैं तथा धन-पैसा, गाड़ी-मोटर, व्यापार आदिक कार्यों से बहुत दूर रहते हैं उनके जीवन में सकल संयम होता है। गृह निवासी गृहस्थों द्वारा अहिंसा आदि व्रतों का स्थूल रूप से पालन करते हुए न्याय, नीति से अपनी आजीविका चलाना देशसंयम कहलाता है।

जिस आत्मा के जीवन में संयम होता है वह अपनी शक्ति का प्रयोग ध्यान,

योग और जन कल्याण में अच्छी तरह से कर सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि–

A Man Whose Heart is pure
Has the Strength of Ten

जिस व्यक्ति का हृदय संयमित (शुद्ध पवित्र) है उसके पास दस व्यक्तियों के सदृश शक्ति होती है।

7. तप से आत्म शुद्धि

आत्म-निर्मलता एवं पाप कर्मों के क्षय के लिए जो आत्मा को ध्यानादि की आग में तपाया जाता है उसे तप कहते हैं–

'कर्म क्षयार्थं तप्यत इति तपः' 'इच्छा निरोधो तपः'

तप के साथ इच्छाओं का निरोध करना आवश्यक है। मानव की इच्छाएं ध्यानादिक रूपी तप में बाधक मानी गई हैं, तप बारह प्रकार के होते हैं, उपवास, रसादिक का त्याग आदि छह प्रकार के बहिरंग तप एवं प्रायश्चित्त, विनय, ध्यानादि छह प्रकार के अंतरंग तप, इनमें ध्यान तप सबसे उत्तम माना है। धर्मात्मा का ध्यान रूपी अग्नि में स्वर्ण जैसा शुद्ध बनने के लिए राग, द्वेष, कषायों और पाप रूपी किट्ट कालिमाओं से विलग होकर आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए दुग्ध से घृत तक की यात्रा सदृश अपने जीवन में प्रक्रिया करनी पड़ती है, जैसे दूध को पहिले अग्नि पर तपाया जाता है फिर उसमे जामन डाला जाता है, तब वह दही बनकर भिन्न-भिन्न नजर आता है, इसके बाद उसे दो रस्सियों को मथानी से मथा जाता है, तब उससे नवनीत बाहर आता है, नवनीत को भी तपाने पर वह घृत बन जाता है, यह इसकी परम शुद्ध अवस्था है और घृत फिर कभी लौट कर दुग्ध नहीं बनता। बस इसी तरह आत्मा को पहिले तप की आग में तपाकर शरीर और आत्मा को भिन्न-भिन्न समझने रूप भेद विज्ञान प्राप्तकर निश्चय व्यवहार रूपी रस्सियों से सहित प्रथम दो शुक्ल ध्यान रूपी मथानी से मथकर घातिया कर्मों का क्षय होने से नवनीत जैसी अरहन्त अवस्था को प्राप्त किया जाता है, इस अवस्था में पाप कर्म तो नष्ट हो जाते हैं, परन्तु पुण्य कर्म अभी भी बाकी रह जाते हैं, परम शुद्ध बनने के लिए अंतिम दो शुक्ल ध्यानों की अग्नि में आत्मा को तपाकर अघाती कर्मों को भी नष्ट कर घृत जैसी परम शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर संसारी अवस्था से मुक्ति या मोक्ष को प्राप्त किया जाता है। यह सब ध्यान की

ही महिमा है।

ध्यान का अभ्यास प्रतिदिन तीन बार अर्थात् सूर्योदय के संधि काल में मध्याह्न काल में एवं सूर्यास्त के संधिकाल में किया जाना श्रेष्ठ माना जाता है। इन कालों में परिग्रह से निर्मोही आत्मा पद्मासन, खड्गासन आदि योगों के साथ परमात्मा और तत्वों का; ध्यान में अवलंबन लेकर एकाग्रता के साथ एकांत स्थान में ध्यान करता है, जैसे दूरबीन (लेंस) के माध्यम से सूर्य की सारी किरणों को एकत्रित करके एक कागज पर डालने से कागज जल उठता है वैसे ही जब आत्मा का ध्यान सब ओर से हटा करके अपनी आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब आत्मा से संबंधित कर्म रूपी कागज जलकर नष्ट हो जाते हैं, तभी यह आत्मा मोक्ष प्राप्त कर परम शुद्ध सिद्ध बन जाती है यही ध्यान का फल है, यही मोक्ष हमारी श्रेष्ठ अवस्था है।

८. राग से दुःख त्याग में सुख

सांसारिक वस्तुओं से मुक्त होना या पर पदार्थों से मोह छोड़ना त्याग धर्म कहलाता है।

''परिग्रहस्य चेतनाचेतन लक्षस्य निवृत्तिस्त्याग इति निश्चीयते''

पाप और संसार को बढ़ाने वाली समस्त वस्तुओं को छोड़ने के उपरान्त भी साधु लोग जो अन्य संयमी जनों को ज्ञान व चारित्र रूप व्रतों को प्रदान करते हैं वही उनका त्याग धर्म है।

''संयतस्य योग्यं ज्ञानादि दानं त्यागः''

गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले श्रावकों द्वारा जो धर्मी जनों के बीच आहार, औषध, धर्मोपकरण एवं निवास स्थान रूप चार प्रकार के दान दिये जाते हैं उसे त्याग धर्म कहते हैं।

''संयत प्रयोग्याहारादिदानं त्यागः''

जिन वस्तुओं का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग किया जाता है उसे यम या यावत् जीवन त्याग कहते हैं। और कोई निश्चित समय के लिए त्याग किया जाय वह नियम त्याग कहलाता है।

धर्मात्मा द्वारा जुआ, चोरी, शिकार, मांस, शराब, परस्त्री सेवन और वेश्या गमन रूप सप्त व्यसनों का एवं रात्रि भोजन तथा जमीकंद आदि का आजीवन त्याग

किया जाता है जो व्यक्ति इन वस्तुओं का त्याग नहीं करता उसकी तीर्थ यात्रा जप तप आदि की क्रियाएं व्यर्थ व निरर्थक होती हैं। जैसे महाभारत में कहा ही है कि–

मद्य मांसाशनं रात्रिं भोजनं कंद भक्षणं।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थयात्रा जपस्तपः॥

इस लोक में जितने भी पर पदार्थ अपने संयोग को प्राप्त होते हैं वे सभी एक न एक दिन वियोग को अवश्य प्राप्त होते हैं। और बिना त्यागे वे पदार्थ छूटते हैं तो मानव को अति दुःख का अनुभव होता है लेकिन जब उन्हीं पदार्थों को बुद्धिपूर्वक उत्साह के साथ छोड़ा जाता है तब बड़े आनन्द की अनुभूति होती है और इसी तरह का त्याग मोक्षमार्ग में बड़ा कार्यकारी माना जाता है।

एक और बात है कि त्याग जिसका किया जाता है वह संयोग से प्राप्त पर वस्तुओं का ही किया जाता है। अपनी आत्मा के अलावा जितने भी शरीर, गृह, परिजन आदि दिखते हैं वे सब पर पदार्थ हैं और अपनी आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण स्व पदार्थ हैं जिनका नाश या अभाव नहीं होता बल्कि पर वस्तुओं के त्याग से आत्मा के गुण बड़ी विशुद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं।

जितना त्याग करते हैं उतने ही अधिक सुख एवं सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति संसार अवस्था में होती ही रहती है। धार्मिक कार्यों के निमित्त से धनादिक का त्याग व दान करने से वह धनादिक बढ़ता ही है घटता नहीं यह तो विश्वास और श्रद्धा की बात है।

अगर कुएं से जल नहीं निकाला तो सड़ जाता है, पान को नहीं पलटा जाए तो सड़ जाता है, रोटी को नहीं पलटाया जाए तो जल जाती है और घोड़े को नहीं चलाया जाए तो अड़ जाता है। अतः धन नहीं निकाला तो मरने के बाद भूमि में ही पड़ा रह जाता है।

एक छोटे से बीज से बड़ी छाया युक्त वट वृक्ष बनता है इसी तरह थोड़ा–सा धन या त्याग रूपी दान तीर्थंकर, चक्रवर्ती या इन्द्र विभूति जैसे सुख को फलते हुए मोक्ष के शाश्वत सुख को भी फलता है तीर्थंकर वृषभदेव ने राज्यावस्था के एक छत्र को छोड़ा तो अर्हंत बनकर समवसरण में छत्रत्रय को प्राप्त किया था। राम, हनुमान, महावीर आदि को जो मोक्ष मिला वह संसार के त्याग से ही मिला था। यही त्याग की महिमा है।

9. अकेलापन ही है आकिञ्चन्य

सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना आकिञ्चन्य धर्म है।

''आकिञ्चन्य सकल ग्रन्थ त्यागः''

परम ध्यान की सिद्धि के लिए जिस आत्मा ने जगत के सभी संबंधों को छोड़कर तथा शरीर से भी मोह त्याग कर अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह से मुक्ति प्राप्त की है और जिसका इस जगत में कुछ भी नहीं वह अकिञ्चन है और उसका भाव व कर्म आकिञ्चन्य कहलाता है।

''नास्य किञ्चनास्तीत्यकिञ्चनः तस्य भावः कर्म वा आकिञ्चन्यम्''

पतंग जितनी हल्की होती है वह उतने ही ऊपर जाकर नभ में बड़ी सुशोभित होती है। अगर उसके एक ओर भार थोड़ा ही अधिक हो तो वह गोता खाती हुई नीचे जमीन पर आ गिरती है बस उसी तरह अंतरंग या बहिरंग परिग्रह आत्मा को ऊपर सिद्धालय तक पहुँचने में बाधक होते हैं।

क्षेत्र, वास्तु, धनादिक ये बहिरंग परिग्रह कहलाते हैं एवं मिथ्यात्व व क्रोधादिक कषाय ये अंतरंग परिग्रह कहलाते हैं। सम्पूर्ण शास्त्रों के जानकार होने के उपरान्त भी अगर एक परमाणु मात्र परिग्रह के प्रति राग विद्यमान होता है तो वह व्यक्ति आत्मा में ध्यान नहीं कर सकता जैसे कि कहा भी है–

परमाणुमित्तियं पि हु य रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम धरोवि॥

(समयसार 211)

ध्यान के समय हमें चिन्तन करना चाहिए कि मैं स्वाश्रित हूँ, I am Independent मैं स्वतंत्र हूँ, इस प्रकार जब हम पूर्ण एकाग्र हो जाते हैं तभी आकिञ्चन्य धर्म में सम्पूर्ण परिग्रह मोचन की महिमा प्रकट होती है और यह आत्मा अपने अन्दर बैठी अनंत शक्तियों का उद्घाटन कर अनंतकाल के लिए मोक्ष में जाकर फिर कभी भी घृत से दुग्ध रूप में लौटकर न आने के सदृश नीचे नहीं आती है। वहीं शाश्वत सुख में लवलीन हो जाती है।

10. आत्मरमण ही है ब्रह्मींचर्य

अपनी आत्मब्रह्म में लीन होना श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य कहलाता है।

''ब्रह्मणि आत्मनि चरतीति ब्रह्मचर्य:''

ब्रह्मचर्य का पालन करने से अपनी शारीरिक एवं आत्मिक शक्ति का प्रयोग ध्यान करने में लगाया जाता है। सामान्य व्यक्तियों की शक्ति कुशील में व्यर्थ चली जाती है अत: उन लोगों को ध्यान की सिद्धि होना दुर्लभ है। योगमार्ग पर आने के लिए भोगमार्ग को तिलाञ्जलि देना परमावश्यक माना है। व्रत और चारित्र की प्रसिद्धि बिना ब्रह्मचर्य के नहीं होती।

ब्रह्मचर्य के प्रभाव से सीता के लिए अग्नि कुण्ड में देवों ने जल और कमल की रचना कर कमल पर सीता को बिठाया था। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का धारक मानव देवों से भी पूज्य होता है। कहा भी है कि-

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवावि तस्स णमंसन्ति जस्स धम्मो सया मणो॥

ब्रह्मचर्य के पालन हेतु परस्त्री सेवन का त्याग, वेश्या गमन का त्याग तथा बुरे चित्रों और बुरे गीतों का त्याग इसी तरह तामसिक (मांसाहार, शराब, अण्डा, जमीकन्द आदि) का तथा गरिष्ठ भोजन का त्याग करना चाहिए और हर एक स्त्री को माता व भगिनी (बहिन) के समान देखना चाहिए। इसी तरह स्त्रियाँ भी पुरुषों को पिता भाई जैसा देखें और ब्रह्मचर्य के माध्यम से अपने गृह, कुल एवं गुरुकुल पर चार चाँद लगायें अस्तु।

★ वात्सल्य का पर्व - क्षमावाणी

दशलक्षण पर्व क्षमा धर्म से प्रारंभ होते हैं और इनके समापन पर भी क्षमा वाणी पर्व रूप में उत्सव मनाया जाता है जैसे कि अपने सहधर्मी जनों से क्षमा-भाव पूर्वक मोक्ष-मार्ग में दीक्षा धारण की जाती है और जीवन के अन्तिम समय में क्षमा-भाव पूर्वक सल्लेखना (समाधि) धारण की जाती है। अत: क्षमावाणी एक अन्तस् निर्मल करने की पावन प्रक्रिया है।

साधु लोग प्रतिदिन त्रिकाल प्रतिक्रमण में बोलते हैं कि-

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु, बेरं मज्झं ण केण वि॥

मैं सभी जीवों से क्षमा याचना करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करें, मेरा सभी जीवों से मैत्री भाव है किसी जीव से मेरा कुछ भी बैर-भाव नहीं है।

क्षमावाणी करने से अपने भावों में निर्मलता आती है, मन में हलकापन-सा प्रतीत होता है तथा आपस में वात्सल्य की मकरन्द महक उठती है।

जहाँ कुछ अज्ञानता या प्रमादवश कोई गल्ती या अनर्थ हो जाए तो बड़े विवेक और वात्सल्य के साथ उसके प्रचार-प्रसार पर रुचि न लेते हुए समझौते पूर्वक परस्पर में क्षमा भावधारण करना समुचित है, नहीं तो वर्षों क्या जन्मों-जन्मों तक के लिए यह बैर हमारे दुःख का कारण बन जाता है। क्षमा के अभाव में आज के कोर्ट कचहरी और कल के नरक निगोद कहीं दूर नहीं।

धैर्य और क्षमा का फल बड़ा मीठा होता है जैसे ऋषभ देव के पुत्र भरत के द्वारा बाहुबली पर चक्र चलाए जाने पर बाहुबली की क्षमा एवं एक वर्ष की तपस्या के प्रभाव से भरत को चरणों में आकर क्षमा याचना करनी पड़ी तथा क्षमा के भण्डार बाहुबली मुनीश्वर को शुक्लध्यान के माध्यम से केवलज्ञानरूप भगवानपने की प्राप्ति हुई।

राम ने कैकई माँ को क्षमा किया अतः चौदह वर्ष के वनवास के उपरान्त उन्हें अपने राज्य में राज्य पद की प्राप्ति हुई।

पार्श्वनाथ तीर्थंकर को उपसर्ग के समय कमठ पर क्षमा करते हुए केवलज्ञान के साथ भगवानपने की प्राप्ति हुई। इसीलिए यह बात याद रखें कि क्षमा भाव से हमारे शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और हमारा उपकार कई जन्मों तक नहीं भूलते अतः सोचें कि-

HATE THE SIN, NOT THE SINNER

पाप से घृणा करो पापी से नहीं। क्योंकि पापों को छोड़कर पापी भी पवित्र बन सकता है। हम लोग थोड़ी-सी भी भूल होने पर एक शिष्टाचार सीखें और बोलें Please Excuse me कृपया मुझे क्षमा करें। बस हमारा जीवन मंगमलय होगा। एक कविता क्षमा पर बनाई थी, जिसे गहराई से विचारें-

क्षमा मात्र कहने से प्राणी, नहीं क्षमा वाणी होती।
नहीं रखेंगे बैर कभी भी, यही धर्म की है रीति॥
सारे जग में प्रेम बढ़े नित, नहीं किसी में भेद रहे।
सुखी रहें सब धर्मीजन ये, नहीं किसी को खेद रहे॥

–धर्म भावना शतक

''क्षमा वीरस्य भूषणं'' क्षमा वीरों का आभूषण है यही हमारा परम मित्र है और संसार समुद्र से पार लगाने वाला परम जहाज है। धन्य शुभमस्तु।

दस धर्मों पर विशेष प्रवचन हेतु
आचार्य श्री आर्जवसागर जी रचित
कृति पर्युषण-पीयूष

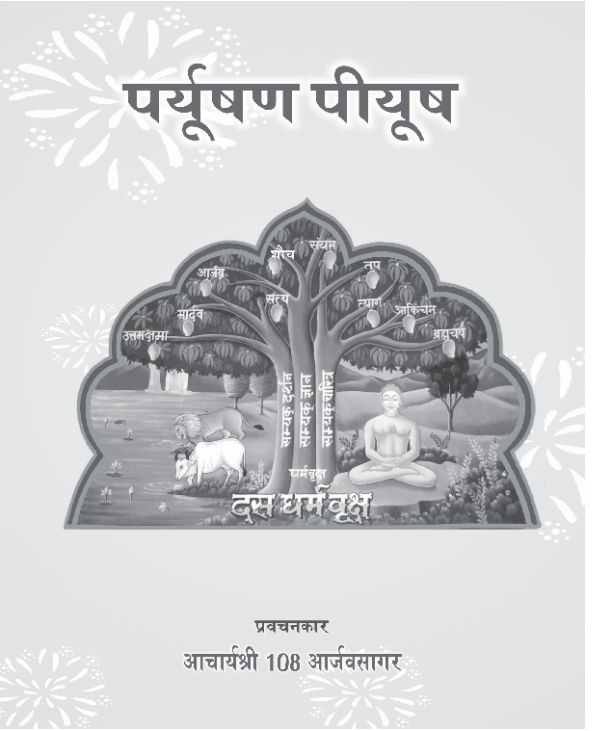

पूजा से पूज्य

हमारा जैनागम कहता है कि- 'वंदे तद्गुणलब्धये' अर्थात् मैं उन महान वीतरागी श्रेष्ठ आत्माओं के गुणों की प्राप्ति के लिए उन्हें नमस्कार करता हूँ। जब यह आत्मा गुणवन्त आत्माओं की भक्ति, पूजा इत्यादिक करती है तब एक दिन ऐसी ही उपर्युक्त श्रेष्ठ आत्माओं के गुणों को प्राप्त कर भक्त से भगवान या पूजा से पूज्य बन जाती है।

प्रत्येक भव्य आत्मा के अन्दर भगवान (परमेष्ठी) की शक्ति है जैसे बीज को योग्य भूमि, जलादिक रूप निमित्त के मिलने पर उसका उपादान फलित होता है; उसी तरह हमें सच्चे धर्म या वीतरागी देव-शास्त्र गुरु की प्राप्ति होने पर और उनकी पुरुषार्थपूर्वक पूजा, भक्ति, दान, सेवादिक करने पर उनके समान सम्यग्दर्शनादिक गुणों की प्राप्ति भी सुलभ होती है।

पूर्वाचार्यों ने कहा है कि जैसे चंदन के वृक्ष पर लिपटे हुए भयंकर सर्प मयूर की आवाज रूपी शब्दों से अपना बंधन छोड़ अपने बिल (बामी) में प्रवेश कर जाते हैं। उसी तरह आत्मा रूपी वृक्ष पर लिपटे कठिन-से-कठिन कर्म रूपी सर्प भी भगवान की भक्तिरूपी गुणानुवाद के शब्दों रूप प्रशस्त राग भावों से निकल कर निर्जरित या क्षय हो जाते हैं।

अतः जो गृहस्थ श्रावक ऐसी आत्मा को परिमल करने वाली वीतराग पूजा को नहीं करता उसके सम्बंध में पद्मनन्दी पंचविंशतिका में कहा गया है कि-

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिक् च गृहाश्रमम्॥ 15।।
प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं, देवता गुरु दर्शनम्।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या, धर्म श्रुतिरुपासकैः॥ 16।।

अर्थात्- जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते हैं, न पूजन और न ही स्तुति करते हैं, उनका जीवन निष्फल है तथा उनका गृहस्थाश्रम में रहना धिक्कार है। श्रावकों को प्रातःकाल में उठ करके भक्ति से जिनेन्द्र देव तथा निर्ग्रन्थ गुरु का दर्शन और उनकी वन्दना करके धर्म श्रवण करना चाहिए।

जिनेन्द्र या वीतराग पूजा अनेक भेदों से सहित कही गई है। जिसमें प्रथम द्रव्य और भाव पूजा के भेद समझना चाहिए। परिग्रह त्यागी निर्ग्रन्थ मुनिजन जो

भगवान की स्तुति, वंदना, भक्ति इत्यादि करते हैं, वह भाव पूजा कहलाती है। इसी तरह परिग्रही गृहस्थ लोगों द्वारा अपने परिग्रह पाप को कम करने एवं कर्म की निर्जरा तथा तीर्थंकर अर्हंत आदिक अवस्था की प्राप्ति कराने वाले अतिशय पुण्यानुबंधी पुण्य प्राप्ति हेतु जो शुद्ध-प्रासुक द्रव्यों सह गुणानुवादरूप पूजा की जाती है वह द्रव्य पूजा कहलाती है।

आगे नित्य पूजा और नैमित्तिक पूजा ऐसे दो भेद भी जिनागम में कहे गए हैं। नित्य पूजा का अर्थ नित्य प्रतिदिन की जानेवाली देव-शास्त्र, गुरु परमेष्ठी या नवदेवताओं की पूजा एवं नैमित्तिक पूजा का अर्थ है विशेष तिथियों या पर्वादिक में की जानेवाली पूजा। नैमित्तिक पूजा के नंदीश्वर जिन पूजा, पंचमेरुजिन पूजा व सिद्धचक्र जिन पूजा आदिक अनेक भेद हैं; जिसे आगे कहेंगे।

उपर्युक्त पूजाओं को करते समय विवेकी गृहस्थ यह ध्यान रखता है कि जैसे महाव्रती-मुनिराज की परिचर्या प्रासुक (अचित्त) द्रव्यों से ही की जाती है, अतः वीतरागी अर्हंत भगवान भी महाव्रती मुनियों से भी श्रेष्ठ माने जाते हैं। अतः उनकी पूजा भी कुएं के छाने गए व प्रासुक किए गए जल एवं प्रासुक अचित्त द्रव्यों से करता है। कभी भी सचित्त पुष्पादिक वस्तु को सचित्त त्यागी महाव्रती भगवान पर नहीं चढ़ाता। क्योंकि अतिचार, अनाचार से की गई पूजा उत्तम फल के देने में समर्थ कैसे हो सकेगी? कभी नहीं!

कई भव्य लोग एकेन्द्रिय पुष्पों के आश्रित रहने वाले बहु त्रसों की हिंसा से बचने के लिए सूखे प्रासुक लवंग रूप पुष्प का उपयोग करते हैं या पीले चावलों में पुष्प की स्थापना कर लेते हैं। इसी तरह दीपक से त्रस हिंसा बचाने हेतु उसके ऊपर कांच की चिमनी का उपयोग करते हैं जो उनके विवेक का प्रतीक है।

कई लोग जो पूर्ण हिंसा के त्यागी महाव्रती न होकर भी द्रव्य पूजा का निषेध करते हैं एवं दीपक चढ़ाने वालों को हिंसक समझते हुए उन्हें बड़ी हेय दृष्टि से देखते हैं, तो उनसे पूछा जाता है कि आप क्या इलेक्ट्रिक-लाइट में जिससे जल गर्म किया जाता है और जिससे टेपरिकार्ड व फैनादि चलते हैं उस लाइट में हिंसा नहीं मानते? तो दीपक से भी अत्यधिक हिंसा उस इलेक्ट्रिक लाइट में है। क्योंकि जहाँ इलेक्ट्रिक तैयार होती है उस जल प्रपात के पानी में जो असंख्यात मछली, मेंढक आदि होते हैं वे सब लाइट बनाने के यंत्र की चलती पंखी से मर जाते हैं। ऐसी हिंसा से उत्पन्न हुई लाइट के उपयोग में भी लाइट के पास असंख्यात त्रस जीव भी उड़ते और जमीन में

पड़ते दिखते हैं और अविवेकियों के पैरों से कुचले जाते हैं। फिर भी लाइट में कुछ भी हिंसा या दोष न मानकर उस लाइट से दीप आदिक जलाना कौन-सी वीतरागता या वैज्ञानिकता है। आज से दो-तीन सौ वर्ष पहले जब इलेक्ट्रिक रूप लाइट नहीं थी तब लोग कैसे दीपादिक का प्रयोग करते होंगे? आज तो जैन लोग भी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित होकर धर्म के क्षेत्र में भी अपने रीति-रिवाज को विस्मृत करते जा रहे हैं, पूजा में जो शुद्ध वस्त्र धोती दुपट्टा रूप इन्द्रों की भूषा थी उसके स्थान पर अब विदेशी सूट, पेन्ट रूप ड्रेस आ रही है। आगे और क्या होगा कि धीरे-धीरे पूजा; नौकरों या और भी थोड़े आगे जाकर रोबट (कम्प्यूटर) से होगी नहीं मालूम?

अतः सन्मार्गी को आलस्य एवं तर्क-कुतर्कों को छोड़ सप्त व्यसन के त्याग के साथ-साथ रात्रि भोजन, बिना छना जल-पान एवं चमड़ा आदिक हिंसक वस्तुओं का त्याग कर जैन धर्म के आचार-विचारों के साथ सच्चा जैनी बन पूजा व दानादिक श्रावकोचित धर्मों के करने की योग्यता प्राप्त करना चाहिए। फिर गृह या व्यापारिक हिंसा से उत्पन्न हुए पापों का क्षय करने के लिए एक उत्तम साधन रूप भाव सहित द्रव्य पूजा का आलंबन लेना अनिवार्य कहा गया है।

हमारे आचार्यों ने श्रावकों के लिए प्रमुख रूप से त्रस जीवों की हिंसा के त्याग का उपदेश दिया है न कि स्थावर (एकेन्द्रिय) की हिंसा का। क्योंकि मुनि बनने पर ही एकेन्द्रिय की हिंसा का त्याग होता है। अगर गृहस्थ एकेन्द्रिय हिंसा से गृह में रहते हुए भी विरत होना चाहे तो असंभवत है वह न तो गृहस्थ रहेगा न मुनि। वह श्रावक अवस्था में अगर अपनी दान पूजादिक क्रियाएं छोड़ेगा तो वह कोई एकान्तवादी या निश्चयाभाषी आदि रूप मिथ्यादृष्टि बन जाएगा।

गृहस्थों द्वारा उत्तम भावों से की गई वीतराग की आराधना, भक्ति कितने उत्तम फल को देती है इसे हम स्वयं आचार्यों की वाणी से जान सकते हैं। एक जगह कहा है कि-

एकापि समर्थेयं, जिन भक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुं।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्ति श्रियं कृतिनः॥ 18।।

समाधि-भक्ति

अर्थात्- एक जिनभक्ति मात्र ही दुर्गति के निवारण में, पुण्य से पूरित करने में समर्थ है तथा वही भक्ति एक दिन मुक्ति लक्ष्मी को भी प्रदान करती है।

उपर्युक्त श्लोक से भक्ति या पूजा से पूज्य बनने का उपदेश मिलता है। इसी

तरह मुनियों के आचार ग्रन्थ में कहा है कि-

अरहंत णमोक्कारं, भावेण य जो करेदी पयदमदी।
सो सव्व दुक्ख मोक्खं, पावदि अचिरेण कालेण॥ 506।।

-मूलाचार

अर्थ-जो प्रयत्नवान भव्य जीव भावपूर्वक अरहन्त को नमस्कार करता है वह अति शीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

कषाय पाहुड सिद्धान्त ग्रन्थ की पहली पुस्तक में कहा है कि-

''अरहंत णमोक्कारो संपहिय बंधादो असंखेज्ज
गुण कम्मक्खयकारओत्ति।''

अर्थ-अरहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है।

धवला ग्रन्थ की छटवीं पुस्तक में भी कहा है कि-

''जिणबिम्ब दंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि
मिच्छत्तादि कम्मकलावस्स खयदंसणादो।''

अर्थ-जिन बिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है।

ऐसे द्वादशांग जिनवाणी के उत्तम वाक्य हमें भाव सहित पंच परमेष्ठियों की भक्ति करना सिखाते हैं। वंदना, स्तुति, नमस्कार, आराधना, उपासना, परिचर्या, पूजा और भक्ति आदिक शब्द सभी एकार्थ समझना चाहिए, क्योंकि इन सभी में वीतराग आत्माओं का गुणानुवाद होता है। भव्यात्माओं का परमेष्ठियों के गुणों से राग, स्नेह आदिक होना स्वाभाविक कार्य या गुण है। जो अज्ञानी लोग ऊपर कहे गए, आचार्यों के वाक्यों को न समझकर या उन पर अश्रद्धा रख अपने आप को बड़ा ज्ञानी समझते हुए कहते हैं कि भगवान परात्मा है उनका क्या ध्यान या पूजा करना मैं ही परम शुद्ध हूँ, ऐसा कहने वाला सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है वह तो आगम का अश्रद्धानी होकर मिथ्यादृष्टि ही कहा जाता है।

वीतराग की पूजा का उपदेश आज के ही मात्र भावलिङ्गी-सम्यक्दृष्टि मुनि ही देते हैं ऐसा नहीं इसी पंचम काल में हुए भावलिङ्गी मुनिश्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि-

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंद पूजोवदेसो य॥

प्रवचनसार अ.3, गा.68

अर्थात्-दर्शन और ज्ञान का उपदेश देना, रत्नत्रय की आराधना करने के इच्छुक मुमुक्षुओं को दीक्षा प्रदान करना तथा उन्हें उनकी आवश्यक क्रियाओं, चर्या आदि के शिक्षण के माध्यम से उनका पोषण करना तथा श्रावकों को भगवान की पूजा आदि का उपदेश देना यह सरागसंयमी सच्चे भावलिङ्गी मुनियों का शुभ कार्य है।

महान आचार्य कुन्द-कुन्द से भी पूर्व; अंगज्ञान आदिक के धारक आचार्यों की पारंपरिक वाणी रूप कषाय पाहुड-जय धवला ग्रन्थ में वर्णित सूत्र में कहा है कि-

''दाणं पूजा सीलमुपवासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो''।

अर्थात्-दान, पूजा, शील और उपवास ये श्रावकों के चार धर्म हैं। ऐसे विषय को आचरण में लाकर सच्चे श्रावक बने; यही पूजा से पूज्य बनने का उपदेश है।

अगर ये दान, पूजा आदि धर्म निरर्थक या जड़ की क्रिया मात्र होते और संसार के ही कारण होते तो द्वादशांग जिनवाणी में इनका वर्णन क्यों किया जाता। अतः निश्चयवादी या निश्चयाभाषी मिथ्यात्वी लोगों के भ्रामक प्रचार से बचकर पंचमकाल के अंत तक होने वाले सच्चे भावलिङ्गी साक्षात् तीन परमेष्ठियों की सम्यक् आगमिक वाणी से अपना वर्तमान और भविष्य उन्नत करने में पं. सदासुखदासजी जैसे अपने समय का सदुपयोग करते हुए विषयों की वासना या सांसारिक कार्यों से विराम लें। अपने मानव जीवन की सार्थकता हेतु आचार्य पद्मनंदी स्वामी कथित उपदेश-

देव पूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिने-दिने॥

वीतराग देव की पूजा, सम्यग्दृष्टि गुरु की उपासना, स्वाध्याय (पूर्वाचार्योंरचित चारों अनुयोगों के ग्रन्थ पठन), रात्रि भोजन, व जमीकंद त्याग एवं अणुव्रत आदिक रूप संयम, उपवास अवमौदर्य रस परित्यागदि रूप व प्रायश्चित विनय वैय्यावृत्त (सेवा) आदि रूप तप और आहार, औषध, उपकरण और आवास रूप चतुर्विध सत्पात्र दान रूप गृहस्थों के नित प्रतिदिन करने योग्य षट् कर्म कहे गए हैं। इनको करने वाला ही सम्यग्दृष्टि श्रावक कहलाता है। इन सबको अपने जीवन में अमल में लाकर जैन कुल धन्य करें।

पूजन से पूज्य की महिमा

वीतरागमय उत्तम गुणों का गान करना जो पूजा कहलाती है; उसे आराधना, उपासना, सद्भक्ति आदि नामों से पुकारा जाता है। पूजक से पूज्य बनने का, पूजा एक उत्तम साधन है। आज तक जितने भी भव्य जीव पूज्य बने, वे एक-न-एक दिन पूजक अवश्य रहे हैं। पूजक या विनीत बने बिना कभी भी किसी को मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती।

जिसने अपने आत्म पुरुषार्थ के बल से इन्द्रिय विषयों की आशाओं को जीत लिया है, ऐसे पंच परमेष्ठी ही पूजा के योग्य पूज्य कहे गए हैं। पंच नमस्कार मंत्र में भी इन्हीं पाँच को ही नमस्कार किया गया है। इसके साथ-साथ अरहंत भगवान से प्राप्त हुई वीतरागमय वाणी-जिनवाणी भी पूज्य कही गई है। जो वर्तमान में शास्त्र रूप है या शास्त्रोपदेश रूप है कोई स्त्री रूप नहीं।

पंच परमेष्ठी में जो अरहंत व सिद्ध हैं वे देव एवं आचार्य, उपाध्याय और सर्व निर्ग्रन्थ साधु गुरु रूप होने से पूज्य कहलाते हैं। चत्तारि शरणं में भी अरहंत, सिद्ध इन देवों को और साधु अर्थात् आचार्य, उपाध्याय व साधु या मुनि इन निर्ग्रन्थभेषी गुरुओं को तथा केवली प्रणीत धर्म अर्थात् केवली भगवान के द्वारा उपदिष्ठ जिनवाणी रूप शास्त्र को लोक में परम मंगल, उत्तम और शरण रूप होने से पूज्य कहा गया है इनकी पूजा रूप दृढ़ श्रद्धा ही सम्यक्त्व है।

सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा को वीतरागी देव शास्त्र और गुरु की पूजा का उद्देश्य दुख्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि मरणं, जिण गुणसंपत्ति होदु मज्झं अर्थात् मेरे दुःख का क्षय हो, कर्म का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय रूप बोधि का लाभ हो मेरा सुगति गमन हो, समाधि मरण हो तथा मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुणों की प्राप्ति हो ऐसा होना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि पूजा के बदले सांसारिक भोगों की आकांक्षा कभी भी नहीं करता (रखता)। क्योंकि सांसारिक भोग बिना चाहे ही धान्य के साथ घास-पूस की तरह स्वतः ही प्राप्त होते रहते हैं। कर्म बंध के कारण स्वरूप जिन भोगों के त्यागे बिना सच्चे अविनश्वर सुख स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति कभी भी नहीं होती, पूजा के बदले सांसारिक उन भोगों की अभिलाषा करना रत्न की जगह खली का टुकड़ा मांगना है

और कर्म-सिद्धान्त को नहीं समझना या कर्म सिद्धान्त को नकारना है। अतः पूजा-भक्ति में हमारा पावन उद्देश्य 'वन्दे तद् गुण लब्धये' होना चाहिए अर्थात् नमस्कार पूजा उनके वीतराग निर्दोष गुणों की प्राप्ति के लिए होना चाहिए।

जिस प्रकार गृह परिग्रह के त्यागी निर्ग्रन्थ मुनिवर आत्मध्यान से बाहर आने पर भगवान के उत्तम गुणों के बखान रूप भाव पूजा, भक्ति किया करते हैं, उसी तरह गृहस्थ अपने परिग्रह से कुछ काल के लिए मोह कम करता हुआ; अपनी शक्ति के अनुसार विवेक के साथ शुद्ध प्रासुक द्रव्यों से वीतरागी की पूजा नित्य नियमानुसार किया करता है। गृहस्थों की पूजा नित्य पूजा और नैमित्तिक पूजा के भेद से दो तरह की कही गई है। जिसे सामान्य रूप से कहा जा चुका है उसे ही यहाँ विशेष रूप से कहते हैं-

1. **नित्य पूजा** :- जिसमें प्रतिदिन वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की प्रासुक जलादिक परिशुद्ध द्रव्यों के साथ गुणानुराग एवं रत्नत्रय रूप गुणवृद्धि हेतु निःस्वार्थ भावनापूर्वक अर्थात् लौकिक आकांक्षाओं के बिना जो उपासना या आराधना की जाती है वह नित्य पूजा कहलाती है।

2. **नैमित्तिक पूजा** :- किसी पर्वादिक विशेष के दिनों में उन वीतरागी देव-शास्त्र और गुरु की पूजा रचाना नैमित्तिक पूजा कहलाती है। लौकिक आकांक्षाओं से रहित होकर सम्यक्त्व पूर्वक की गई ऐसी उत्तम पूजा अनेक विघ्नों की शान्ति, राष्ट्रशान्ति करने वाली एवं पर भव में उत्तम कुलादिक की प्राप्ति एवं परम्परा से मोक्ष की प्राप्तिरूप माहात्म्य को प्रकट करने वाली कही गई है। ऐसी नैमित्तिक पूजा के अन्तर्गत आने वाली कुछ पूजाओं के नाम इस प्रकार हैं जैसे- अष्टाह्निक (नंदीश्वर) पर्व पूजा, षोडशकारण पर्व पूजा, पंचमेरु पूजा, रत्नत्रय पूजा तथा विशेष वैभव के साथ की जाने वाली सिद्धचक्र मण्डल विधान पूजा, इन्द्रध्वज विधान पूजा, सर्वतोभद्र विधान पूजा और कल्पद्रुम मण्डल विधान पूजा इत्यादि।

★ **आष्टाह्निक पर्व पूजा**:- आष्टाह्निक पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ इन मासों की शुक्ल पक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक आठ दिनों तक के लिए वर्ष में तीन बार आता है। जिसमें भव्यात्माएं व्रत, संयम के साथ नन्दीश्वरद्वीप के बावन चैत्यालयों सम्बंधी जिनबिम्बों की उत्तम रीति से पूजा किया करती हैं। देवगति

के देव भी विक्रिया से अपना उत्तम शरीर बनाकर नंदीश्वर द्वीप जाकर नंदीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पूजा रचाया करते हैं।

★ **षोडशकारण पर्व पूजा** :- षोड़शकारण पर्व एक वर्ष में माघ, चैत्र और भाद्रपद इन मासों में पूरे महिने भर के लिए आता है जिसमें भव्य लोग व्रत संयम के साथ तीर्थंकर के समवसरण का ध्यान करते हुए तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारण स्वरूप दर्शन विशुद्धि आदि षोडश कारण भावनाओं की आराधना में तत्पर रहते हैं।

★ **दशलक्षण पर्व पूजा**:- दशलक्षण पर्व वर्ष में माघ, चैत्र और भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी से लेकर चतुर्दशी तक के लिए आता है, जिसमें (या भाद्रपद मास के दशलक्षण पर्व में) प्रायः सभी भव्यात्माएं व्रत नियमों के साथ अपनी शक्ति को न छुपाते हुए उत्तम क्षमादिक दशलक्षण धर्मों की उपासना, भक्ति किया करती हैं।

★ **पंचमेरु पूजा** :- इस ढाईद्वीप के अन्तर्गत जम्बूद्वीप धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप, सम्बंधी पाँच सुमेरु पर्वतों में जो भद्रसाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक ऐसे चार-चार वन कहे गए हैं एवं जिन चारों वनों की चारों दिशाओं संबंधी चार-चार चैत्यालयों की गणना से एक-एक मेरु में सोलह-सोलह चैत्यालय होते हैं, जिनमें सुमनोग्य, वीतरागमय जिनेन्द्र भगवान के अकृत्रिम बिम्ब विराजमान हैं। जिनकी भक्ति-पूजा विद्याधर सामान्य मनुष्य और देव यथा अवसर उत्तम रीति से किया करते हैं। ऐसे पंचमेरु सम्बंधी चैत्यालयों की पूजा करने का प्रचलन प्रायः दशलक्षण पर्व के प्रारंभ के पांच दिनों के समय चला आ रहा है जो बहु पुण्य बंध और पाप कर्म की निर्जरा का उत्तम साधन है। ऐसे महान अवसर पर जब पुण्यात्माएं भगवान की भक्ति में तल्लीन होती हैं तब उनके रोम-रोम खड़े हो जाते हैं और अगर उन्हें उन साक्षात् जिन बिम्बों के दर्शन का लाभ हो तो कितना अलौकिक शान्ति-सुख का आस्वादन होगा; वचनों से कह नहीं सकते।

★ **रत्नत्रय पूजा** :- मुक्ति के साधक स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं। ये महान अमूल्य अलौकिक रत्न हैं। ये संसार समुद्र तरने के लिए अपूर्व नौका सदृश हैं, ये मोक्ष महल पहुंचाने हेतु सीढ़ी के समान हैं। और ये आत्मा की मौलिक निधि-सम्पदा हैं तथा जिनके बिना ज्ञान व चरित्र

समीचीनता को प्राप्त नहीं होते, ऐसे उत्तम रत्नत्रय को वीतरागता का उपासक ही प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन की, अष्टांग सहित सम्यग्ज्ञान की एवं तेरह प्रकार के सम्यक्चरित्र की जो भव्य अतिशय विनय पूर्वक उपासना-पूजा करता है, वह उन रत्नत्रय का धारक हो अत्यल्प काल में मोक्ष का भाजक होता है।

★ **सिद्धचक्र विधान पूजा** :- एक संसारी आत्मा सिद्धात्मा अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी कैसे बनती है। सिद्ध परमेष्ठी बनने तक की मंगल यात्रा का वर्णन जिसमें होता है और सिद्ध पद पाने के लिए आठ दिनों तक उस महान आत्मा के गुणों के गान रूप जिसमें पूजा की जाती है उस वैभव से युक्त पूजा को सिद्धचक्र विधान पूजा कहते हैं।

★ **इन्द्रध्वज विधान पूजा** :- जिनेन्द्र भगवान की जो पूजा सौधर्म आदिक इन्द्रों के द्वारा बड़े वैभव के साथ रचाई जाती है ऐसी महान जिन महिमा को प्रकट करने वाली पूजा इन्द्रध्वज पूजा कहलाती है। इसे मनुष्यगण भी देवों जैसा रूप ले जिनेन्द्र भगवान के वीतराग गुणों का गान करते हुए रचाया करते हैं। यह पूजा लगभग दस या पन्द्रह दिन तक लगातार की जाती है।

★ **सर्वतोभद्र विधान पूजा** :-समवसरण में विराजमान सर्वतः अर्थात् चारों ओर से भद्र अर्थात् मनोज्ञ दिखने वाले ऐसे अरहंत तीर्थंकर की जो महा पूजा की जाती है वह सर्वतोभद्र विधान पूजा कहलाती है यह पूजा लगभग तेरह या पंद्रह दिन तक लगातार रचाई जाती है।

★ **कल्पद्रुम विधान पूजा** :- जिस पूजा को भगवान के साक्षात् समवसरण में किमिच्छक (मुंह मांगा) दान देता हुआ चक्रवर्ती रचाया करता है। जिसमें समवसरण की विभूति सहित तीर्थंकर के वीतरागमय गुणों के गान रूप पूजा की जाती है, न कि समवसरण में स्थित सरागी देवी-देवता राजा या तिर्यञ्चादिक की, वह कल्पद्रुम विधान पूजा कहलाती है। जिस पूजा में तीर्थंकर के अलावा समवसरण में विराजमान सात प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनियों की भी पूजा की जाती है। आज भी लोग उस पूजा की नकल रूप में समवसरण की रचनाकर मण्डल विधान रूप में कल्पद्रुम पूजा किया करते हैं। जो दस से पंद्रह दिन के बीच की जाती है।

वीतराग परम देव के गुण अनन्त हैं जिनके पूजादिक रूप में सम्पूर्ण रूप से

बखान करना समुद्र को भुजाओं से तैरने के समान बड़ा कठिन है परन्तु उनके अनन्त गुणों में बड़ी श्रद्धा रखकर उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलकर हम उन्हें या उनके उत्तम गुणों को अवश्य पा सकते हैं।

वीतराग जिनेन्द्र प्रभु की पूजाओं के नाम अनेक हैं और अनेक ढंग से उनके गुणानुस्मरण आत्माएं किया करती हैं। यहाँ पर तो केवल कुछ ही विशेष पूजाओं के वर्णन का महत्व संक्षिप्त रूप में कहा गया है जिसका विशेष रूप से वर्णन आचार्यों द्वारा उपदिष्ठ जैनागम से जानना चाहिए। यहाँ पूजा के संबंध में यही महान विशेषता जानना चाहिए कि जैसे गृहस्थ दिन-प्रतिदिन वस्त्र में लगे मैल को स्वच्छ-निर्मल जल से धो लेता है उसी प्रकार प्रतिदिन वह अपने कर्मों को वीतरागी उन परमेष्ठी की पूजा, सेवा द्वारा धोता चला जाता है। अतः पाप कर्म को धोने एवं पुण्य अर्जन हेतु गृहस्थों के लिए दान, पूजा एक प्रमुख साधनरूप माने गए हैं।

जब कर्म बंध के तराजू में पाप का पलड़ा भारी हो जाता है, और पुण्य कर्म का पलड़ा ऊपर चला जाता है तब अनेक विघ्नों व कष्टों का सामना आत्मा को करना पड़ता है। उस विकट परिस्थिति में भगवान की पूजा गुणानुस्मरण जैसे कार्यों से पाप कर्म का क्षय एवं पुण्य के पलड़े को भारी कर आत्मा अवश्य एक दिन सुखी समृद्ध हो धार्मिक कार्यों को करने के लिए निश्चिंत व उत्साहित हो जाती है। जो दान, पूजा रूप उत्तम कार्य अस्थिर मन को स्थिर कर देता है, पापी मन को पावन कर देता है, अज्ञानांधकार को दूर कर ज्ञान चक्षु प्रदान कर देता है। और कहाँ तक कहें कि वह पूजनादिक कार्य पूजक को भी पूज्य बना देता है। जैसे पुण्य के योग में धनी के निकट रहने वाला निर्धन भी एक दिन धनी बन जाता है। पारस मणि के संसर्ग से लोहा भी सोना बन जाता है। उसी तरह भगवान की भक्ति या पञ्च परमेष्ठी के समागम से एक संसारी आत्मा भी सिद्ध भगवान सदृश परम शुद्ध-पावन बन जाती है। अनन्त अक्षय सुख में लीन हो जाती है। यही जिन भक्ति व पूजा की महा महिमा है।

जगत हितंकर जैन धर्म

श्रीमत् परम गम्भीर स्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्य नाथस्य शासनं जिन शासनम्॥

अनादिनिधन इस संसार में संसारी आत्मा अनादि काल से सुख-दुःख का वेदन करती हुई बीज वृक्ष की परम्परा के सदृश विधिफल के अनुसार चतुर्गति के भ्रमण में संलग्न है। और इस संसार चक्र से अतीत आत्मा की एक अवस्था है जो है मोक्ष। जैसे कि बीज पहले या वृक्ष पहले इस समाधान से अनिर्णीत वृक्ष, बीज की परम्परा अनादि से हैं लेकिन अन्त सहित है। अगर ऐसे बीज को जलाकर भस्म कर दिया जाए तो उस जले बीज से वृक्ष की उत्पत्ति नहीं होती; अन्त हो जाता है। वैसे ही ध्यान, तप धर्म रूपी अग्नि से कर्म विनष्ट हो जाने पर संसार भ्रमण की या पुनर्जन्म की परम्परा का अन्त हो जाता है। वह आत्मा दुग्ध की अन्तिम अवस्था घृत के समान परम विशुद्ध बन सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लोक शिखर पर स्थित सिद्धशिला पर सिद्ध परमेष्ठी के रूप में अनन्त काल के लिए विराजमान हो जाती है। इस संसार चक्र से निकलकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त होने में धर्म पुरुषार्थ ही परम सहायक माना गया है। अतः पूर्वाचार्यों ने कहा है कि सकल संसारी जीवों को जो इस संसार के दुःख से उठाकर उत्तम सुख में रखने की सामर्थ्य रखता है वह जगत हितंकर जैन धर्म है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्म निवर्हणम्।
संसार दुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे॥ 2।।

– र.क.श्रा.

अर्थ- मैं उस श्रेष्ठ धर्म का कथन करता हूँ जो कर्म (पापादिक) का नाश करने वाला है एवं संसार दुख से जीवों को उठाकर स्वर्ग, मोक्ष के उत्तम सुख में रख देता है।

विश्व धर्म की आधार शिला अहिंसा

संसार के धर्म नाम से कहे जाने वाले जितने भी संप्रदाय हैं उन सभी में अहिंसा की प्रमुखता है, जिस दृष्टि या अपेक्षा से सभी धर्मों में समानता ठहरती है।

अहिंसा को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे-दया, अनुकम्पा,

अभयदान, वात्सल्य, करुणा, रहम, परोपकार, उपग्रह, क्षमा और जीव रक्षण इत्यादि। इन उपर्युक्त शब्दों में बाह्य शाब्दिक दृष्टि से कुछ भेद होते हुए भी सभी का अन्तरंग समान है। सभी का भाव जीवों को कष्ट से बचाकर सुख प्रदान करना है। अहिंसा; धर्म का प्राण है। जैसे–प्राण के बिना प्राणी का जीवन नहीं, नींव के बिना इमारत नहीं, और जड़ के बिना वृक्ष नहीं ठहर सकता वैसे ही अहिंसा, दया के बिना धर्म रूपी महल या वृक्ष नहीं ठहर सकता अतः आचार्यों की, महापुरुषों की उद्घोषपूर्ण वाणी है कि–

'धर्मस्य मूलं दया'
'धम्मो दया विशुद्धो'

दया धर्म का मूल है। धर्म दया से विशुद्ध है। अतएव जहाँ अहिंसा या दया नहीं वहाँ धर्म की शुरूआत ही नहीं, अहिंसा के बिना धर्म का कथन कागज पुष्प के समान धर्म शब्द की नकल मात्र है। अतः निष्कर्ष यही है कि 'अहिंसा परमो धर्मः', अहिंसा ही परम उत्कृष्ट धर्म है।

कथनी करनी एक समान

हमारे पूर्वज महापुरुषों ने जैसा कथन किया है वैसा ही धर्मानुसार आचरण भी किया है। जीवात्मा का कर्त्तव्य क्या है–

'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' (त.सू. 5/21) अर्थात् परस्पर (एक दूसरे) में एक दूसरे का उपकार करना प्राणी मात्र का धर्म है। इसी तरह अहिंसा का धर्म से गहरा सम्बंध बतलाते हुए महाभारत में कहा गया है कि–

मद्य मांसाशनं रात्रौ भोजनं कंद भक्षणं।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थ यात्रा जपस्तपः॥

अर्थात्– जो शराब पीते हैं, मांस खाते हैं, रात्रि भोजन करते हैं, कंदमूल का भक्षण करते हैं, उनकी तीर्थ यात्रा, जप, तप करना सब व्यर्थ है।

रामायण में भी कहा गया है कि–

न मांसं राघवो भुंक्ते, न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं, भक्तमश्नाति केवलं॥

(सुन्दर काण्ड 36/41)

अर्थात्- वे राघव वंशी (राम) कभी मांस सेवन नहीं करते, और न ही मधु (शहद) का सेवन करते हैं। वे तो शुद्ध शाकाहार भोजन करते हुए जंगल में विचरण करते हैं। धन्य ऐसे महापुरुषों का जीवन जो मांस खाना तो दूर रहा घास पर चलने में तथा ऐसे वचनों में भी हिंसा समझते हैं जिनसे किसी आत्मा के मन को कष्ट पहुँचे। वे मुनि मार्ग में ध्यान की प्रसिद्धि हेतु एवं सब तरह के परिग्रह की आशाओं की शान्ति के लिए वस्त्रों का भी त्याग कर देते हैं। इन्हीं महापुरुषों, मुनियों के जीवन को देखकर हमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप उन महान त्याग भावों से उत्तम सीख लेकर अपनी आत्मा को परिशुद्ध बनाना चाहिए। राम, ईश्वर आदि महानात्माओं का नाम लेने वालों के मुख से माँस (अण्डा, मछली आदि) का सेवन या जिस मुख से मांस का सेवन उसी अपवित्र मुख से भगवान के नाम लेने में क्या शोभा है? क्या ऐसा करने से अहिंसक देवता लोग प्रसन्न होंगे? तो इसका उत्तर 'नहीं' ही मिलेगा। इस प्रकार सद्गति का भाजक बनने हेतु अहिंसा धर्म के साथ अपनी कथनी-करनी एक होना ही श्रेयस्कर है।

दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो शाकाहार ही सबसे अधिक शक्तिशाली एवं सद्भावनाओं का उद्भावक है। लेकिन जिन लोगों की मांसाहार के प्रति ऐसी धारणा है कि इसमें शक्ति अधिक पाई जाती है तो उन्हें सोचना चाहिए कि बड़े-बड़े शक्तिशाली हाथी, घोड़ा, गाय आदि का भोजन क्या है? वे केवल शुद्ध शाकाहारी हैं। उन्हें केवल पत्तियों और घास का आहार पर्याप्त होता है; उनका जीवन उसी से चलता है। हाथी जैसे वजन को उठाने में अन्य प्राणी सक्षम नहीं। मशीनों की परीक्षा घोड़े की शक्ति से (हार्स पावर से) ही करते हैं सिंह आदि की शक्ति से नहीं। ऐसे उन हाथी, घोड़े आदिक में ऐसी अद्भुत शक्ति कहाँ से आती है तो मात्र शाकाहार से आती है। केवल पत्ती और घास खाने मात्र से ही जिनका शक्तिपूर्ण जीवन हो सकता है तो क्या मनुष्य के लिए तरह-तरह के फल, सब्जी, धान्य, मेवा आदिक से भरपूर शक्ति नहीं मिल सकती? अवश्य मिल सकती है। लेकिन फिर भी मांसाहार किया जाना केवल अनार्यपने के साथ जिह्वा की लोलुपता या तामसिक वृत्ति का ही परिचायक है। उसके साथ शुद्ध धार्मिक विचार कैसे आ सकते हैं? एवं पवित्र ध्यान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? और अपने जीवन के लिए अपनी आत्मा जैसी सुख-दुःख संवेदना के धारक दूसरे जीवों के जीवन को समाप्त कर क्या प्राणी इह-परलोक में शान्ति-सुख से रह सकते हैं? तो कभी नहीं रह सकते।

इसके अलावा जब मांसाहारी जीवों से मनुष्य की शारीरिक रचना (दाँत, नख, आंत, पूँछ बिना आदि) ही अलग है तब कैसे यह माँसाहार मनुष्य के योग्य हो सकता है? कभी किसी तरह भी नहीं।

अण्डा भी शाकाहार नहीं कहा जा सकता क्योंकि नर, मादा के रज, वीर्य जिसमें हों तथा जिसके अन्दर जीव की (पञ्चेंद्रिय जीव की) उत्पत्ति हो ऐसा अण्डा कैसे शाकाहार हो सकता है किसी तरह भी कदापि नहीं। और भी करुणा की दृष्टि से विचार करें तो एक माँ अपने बच्चे के पैदा होने के पहले से ही भावना भाती है कि बच्चा पैदा होने के बाद हम उसे प्यार से पाले-पोसेंगे लेकिन अण्डे का सेवन कर उसके बाहर आने के पहले ही उसे समाप्त कर दिया जाए तो उस माँ की हालत क्या होगी? दुःख का पार नहीं रहेगा, चाहे वह अण्डे की माँ हो या बच्चे की।

जिन जीवों की, किन्हीं हिंसक या मांस भक्षी व्यक्तियों की चेष्टाओं द्वारा हिंसा की जाती है उनकी या उनकी जननी (माँ) की आहें हिंसक को सुखी कैसे रहने देगी? उस हिंसक का वह महापाप किसी-न-किसी दुर्घटना (एक्सीडेन्ट) आदि या दुर्गति में अंगहीन, लूले, लंगड़े, अंधेपन या दरिद्रपन में महादुःख से ही निकलेगा। इसीलिए तो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह इन पञ्च पापों में हिंसा को प्रथम बड़ा पाप माना है। लेकिन कोई श्रावक विरोधी हिंसा का त्यागी न हो और उसे कोई मारे तो वह उसके बदले में मारने वाले को (स्वद्रव्य या धर्म रक्षा के भाव से) मारे तो बड़ा पाप नहीं माना जैसे दुराचारी रावण का मारा जाना। लेकिन बेकसूर प्राणियों को मारना या उनके माँस का सेवन करना कितनी बड़ी क्रूरता है? क्या इस नादानी से नरक ही निदान न होगा? किसी अनुभवी पूर्वज कवि ने कहा है-

तिल भर मछली खाय के, कोटी गौ दे दान।
काशी करवट ले मरे, तो भी नरक निदान॥

अतः वृषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरों, राम, हनुमान, बुद्ध, अल्ला, ईश्वर, गाँधी जैसे अनेक अहिंसा के उपासकों जैसा अहिंसा धर्म, शाकाहार अपने जीवन में लाकर शान्ति और सद्गति का मार्ग अपनाना ही भला होगा।

निर्दोषी परमात्मा का स्वरूप

प्रत्येक सम्प्रदाय में उस सम्प्रदाय का कोई-न-कोई उपदेशक अवश्य हुआ है और वह जितना निर्दोषी हो वह उतने ही श्रेष्ठ धर्म के कथन करने में सामर्थ्य युक्त

माना गया है। आगम में अठारह दोष गिनाए गए हैं–

छुह तण्ह भीरु रोसो, रागो मोहो चिंता जरारूजा मिच्चू।
सेंद खेद मदोरइ, विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ॥6।।

आ.कुन्दकुन्द–नियमसार

क्षुधा, तृषा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, स्वेद (पसीना), खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग।

उपर्युक्त इन अठारह दोषों से रहित संसार परिभ्रमण से मुक्त अरहंत परमात्मा होते हैं, जो परमात्मा अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्यात्माओं के लिए हिंसादिक पाप कार्यों से भरे इस संसार से मुक्त होने का उपदेश देते हैं और पुरुषार्थी आत्मा ऐसे उपदेश को सुनकर तदनुसार मोक्षमार्ग पर चलकर एक दिन उन निर्दोष अरहंत भगवान जैसी उत्तम अवस्था को प्राप्तकर संसार और शरीर से रहित मोक्ष अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

इस जगत में विश्व हितंकर धर्म का कर्ता सच्चा ईश्वर वही होता है जो भक्त आत्माओं के लिए भी अपने जैसे पद को प्राप्त करा दे। जिस सम्प्रदाय में भक्त तो हमेशा भक्त ही बना रहे और ईश्वर सबका (सृष्टि का) कर्त्ता, धर्त्ता आदि बना रहे यह ईश्वरत्व को नकारने वाली बात ईश्वरत्व के प्रति आस्तिकता की सूचक न होकर नास्तिकता की ही कोटी में आ जाती है।

ईश्वर धन, वैभव पुत्रादिक देने वाला सुख का कर्त्ता है। कभी वही ईश्वर रोग, शोक, दुःख दरिद्रता देने वाला है। ब्रह्मा जगत की सृष्टि करता है। विष्णु जगत का रक्षक है, महेश (रुद्र) सृष्टि का विनाशक है इत्यादि मान्यता यह सब मिथ्या कल्पना है इसी भाव को तेजोविन्दूपनिषद में भी कहा गया है कि–

रक्षको विष्णुरित्यादि, ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम्।
संहारे रुद्र इत्येवं, सर्वं मिथ्येति निश्चिनु॥

ते.वि.उ. 5/51–52

जो कोई देवता, ईश्वर या विष्णु ब्रह्म आदिक किसी का अच्छा या बुरा करता है तो वह रागी–द्वेषी ठहरा। और राग–द्वेष का करना यह ईश्वरत्व का लक्षण नहीं। क्योंकि राग द्वेष सह किसी का अच्छा–बुरा करते हुए सांसारिक कार्यों में उलझने वाला स्वयं आत्मिक सुख शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। फिर दूसरों को

सुखी कैसे करेगा। और यदि कहें कि वही जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही ईश्वर उसे सुख-दुख देता है। तो फिर कर्म बीच में आने से ईश्वर का कुछ काम ही नहीं रहा। यह कार्य तो कर्म सिद्धान्त पर आधारित हो गया। जैसे जो जीव कर्म (पुण्य-पाप) करता है वैसा सुख-दुःख स्वयमेव पाता चला जाता है। जहाँ जैसा बीज बोया जाता है वैसा ही (ऊँचे-नीचे प्रकार का) फल या धान्य वहाँ प्राप्त किया जाता है। अगर स्वयं पुण्य किए बिना दूसरा कोई कुछ देने लग जाए एवं पाप किए बिना कोई कुछ हड़पने लग जाए तो स्वयं के द्वारा पूर्व में किया गया कर्म (पुण्य-पाप) निरर्थक हो जाए। जबकि ऐसा कभी नहीं होता। निज कृत कर्मानुसार ही फल होता है जैसा कि पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट कहा ही है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयंलभते शुभाशुभं।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥ 30।।

-आचार्य अमितगति मुनि विरचित द्वात्रिंशतिका

अतः कर्त्ता धर्त्ता रूप मिथ्या भावों, मान्यताओं को छोड़कर हमें सच्चे मोक्ष सुख की प्राप्ति हेतु वीतराग अर्हन्त के मार्गानुगामी बनकर धर्म, मोक्ष पुरुषार्थ में संलग्न होना चाहिए।

अनेकान्त-मय जैन धर्म

संसार की प्रत्येक वस्तु अनेक गुण धर्मात्मक मानी गई है जिस कारण उसमें अनेकान्त धर्म की सिद्धि होती है। जैसे कि कहा ही है ''अनेके अन्ताः धर्माः यस्मिन् स अनेकान्तः''।

अनेक गुण धर्मों को अपनी अपेक्षानुसार अर्पित-अनर्पित (मुख्य-गौण) करके स्वीकार करना ही स्याद्वाद धर्म कहलाता है। जैसे एक व्यक्ति एक पुत्र की अपेक्षा पिता है तो भाई की अपेक्षा भ्राता भी, पत्नी की अपेक्षा पति भी और पिता की अपेक्षा बेटा भी है इत्यादि। इसी प्रकार एक वस्तु द्रव्यत्व की अपेक्षा शाश्वत है, तो पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत भी है। और अपेक्षा स्वीकारे बिना हर जगह एक व्यक्ति को पिता रूप या बेटा रूप ही मानना या वस्तु को केवल ध्रौव्य रूप या नाशवान ही मानना एकान्त है। जो मिथ्या है। अतः अपेक्षा सहित वस्तु में अनेक धर्मों की स्वीकृति अनेकान्त है। स्याद्वाद का अर्थ है कथञ्चितवाद जिसे अपेक्षावाद या सापेक्षवाद भी कहा जाता है।

उपर्युक्त अनेकान्त स्याद्वाद धर्म अर्पित-अनर्पित की अपेक्षा वस्तु में अनेक धर्मों की सिद्धि करता है। जहाँ बेटा की अपेक्षा पिता पर्याय अर्पित (मुख्य) है वहाँ दूसरी भाई पर्याय अनर्पित (अमुख्य गौण) होती है। इसी तरह आत्मा के ज्ञान गुण की अपेक्षा जहाँ जानने योग्य पर्याय मुख्य होती है वहाँ देखने योग्य कार्य या पर्याय गौण है इत्यादि। एक अवस्था की मुख्यता होने से दूसरी पर्याय है ही नहीं ऐसा नहीं लेकिन दूसरी पर्याय उस समय छुपी हुई होती है।

तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ के 'अर्पितानर्पिते सिद्धेः' इस मार्मिक सूत्र से जैन धर्म की यह अनेकान्त स्याद्वादमय शैली सब तरह के विवादों को दूर कर सच्चे पथ को उद्घाटित कर देती है। यही जैन धर्म की बड़ी विशेषता है। अनेकान्त या स्याद्वाद धर्म का सार यही है कि एकान्त में 'ही' (अकेलापन) है अनेकान्त, स्याद्वाद में 'भी' (सामञ्जस्यपन) है 'भी' का पेट बहुत बड़ा है। जिसमें एक वस्तु के सभी वस्तु धर्म गर्भित या समाहित होते हैं। इसी सन्दर्भ में गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के द्वारा रचित एक पद्य मनन करने योग्य है। जो इस प्रकार है-

'ही' से 'भी' की ओर यदि बढ़ें सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग॥

तीन के आगे छह (36) का आंकड़ा किसी एक अपेक्षा से विरोध का प्रतीक होता है तो छह के आगे तीन (63) का आंकड़ा सहयोग का प्रतीक है, एक दूसरे का पूरक है। 63 रूप अनेकान्त धर्म का आंकड़ा सभी वस्तु धर्मों के सामञ्जस्यपने से सहित होने से विश्व शान्ति का कारण होता है।

विभिन्न धर्मों में जैन धर्म

जैन धर्म में अहिंसा और अनेकान्त की प्रधानता होने के कारण इसकी महानता को बड़ा आदर्श रूप मानते हुए प्रायः सभी सम्प्रदायों ने इस जैन धर्म को तथा उसके उपदेष्टा तीर्थंकरों को बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हुए अपने-अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्रशंसनीय और स्तुत्य माना है। जैसे कि महाभारत में प्रथम तीर्थंकर की स्तुति रूप में लिखा है कि-

पुरनस्तत्रैव सर्वज्ञः सर्वदेव नमस्कृतः।
छत्रत्रयाति संयुक्तः पूज्यमूर्तिरसौवहन्॥1॥

परमात्मानमात्मानं लसत्केवलनिर्मलम्।
निरञ्जनं निराकारं ऋषभं तु महेद् वृषभ॥2॥

अर्थात् वृषभ देव सर्वज्ञ थे सब देवों से नमस्कृत थे, तीन छत्रों में शोभायमान थे, और पूज्य मूर्ति थे। निर्मल केवलज्ञान से सुशोभित थे ऐसे परमात्मा, निरञ्जन, निराकार, श्रेष्ठ वृषभ की पूजा करनी चाहिए।

महापुरुष तीर्थकरों की जन्म भूमि रूप देश का नाम भारत कैसे पड़ा इसके सन्दर्भ में मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि–

अग्नीन्ध्र सूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूतसुतो द्विजः।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः॥69॥
सोऽभिषिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्राब्राज्यमास्थितः।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमशंसयः॥40॥
हिमाव्हं दक्षिण वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मास्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥41॥

अर्थात् अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ जो कि अपने सौ भाईयों से बड़ा था। ऋषभ देव ने अपने बड़े पुत्र भरत का राज्य अभिषेक करके स्वयं प्रब्रज्या (साधुदीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभ देव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

इसी तरह अग्नि पुराण में भी लिखा है कि–

ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
तस्माद् भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्विभवत्॥12॥

अर्थात् मरुदेवी माँ से ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ।

श्रेष्ठ आराध्य और सम्यग्दर्शन

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेततिस्त्रो रात्रीः सुरासुता॥14॥

–यजुर्वेद अ. 19

अर्थात् अतिथि, मास उपवासी, नग्न मुद्रा धारक भगवान महावीर की

उपासना करो जिससे तीन प्रकार के (कुमति, कुश्रुति और कुवधि रूप) अज्ञान अंधकार रूपी रात्रि पैदा न हो। सम्यग्दर्शन का लक्षण आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

श्रद्धानंपरमार्थाना माप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढ़ापोढ़-मष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥4॥

-रत्नकरण्डक श्रावकाचार

अर्थ- परमार्थभूत अर्थात् सच्चे देव-शास्त्र गुरु का तीन मूढ़ताओं से रहित आठ अंगों से सहित और आठ प्रकार के मदों से रहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन कहलाता है। इसी तरह आचार्य कुन्द-कुन्द देव कहते हैं कि-

हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥1॥

-मोक्ष पाहुड

अर्थ- हिंसा रहित धर्म, अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ मुनि एवं प्रवचन (समीचीन शास्त्र) में श्रद्धान करने से (व्यवहार) सम्यग्दर्शन होता है।

मिथ्यात्व का परिहार आवश्यक है

सुगाढ़ मिथ्यात्व को मूढ़ता की कोटि में गिनाते हुए आचार्य कार्तिकेय स्वामी कहते हैं कि-

जई देवो वि य रक्खइ, मंतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाणंपि मुणुस्सं, तो मणुया अक्खया होंति॥25॥
एवं पेच्छन्तो वि हु, गह भूय पिसायजोइणी जक्खं।
सरणं मण्णई मूढ़ो, सुगाढ़ मिच्छत्त भावादो॥27॥

अर्थ- यदि मरते हुए मनुष्य की क्षेत्रपालादिक देव, मंत्र और तन्त्रादिक रक्षा करने में समर्थ होते तो यह मनुष्य अक्षय हो जाता। इस तरह संपूर्ण संसार को शरण रहित देखता हुआ यह मूढ़ प्राणी तीव्र (सुगाढ़) मिथ्यात्व के भाव से ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, चण्डिका तथा यक्षादि की शरण को मानता है।

वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा देव के सदृश यक्ष-यक्षिणी आदिक (भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क रूप भवनत्रिक आदिक के) सरागी देवों की अभिषेक पूजा, आरती,

स्तुति आदिक करने वालों की होने वाली गति के संबंध में आगम ग्रन्थों में कहते हैं कि-

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्याश्च देवताः।
समं पूजा विधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः॥ 240॥

-यशस्ति तिलक चम्पू (अ.8)

अर्थ-तीनों जगत (लोकों) को देखने के लिए नेत्र स्वरूप अरहंत देव को तथा व्यन्तरादिक सरागी देवों को जो पूजा विधान में समान देखता (मानता) है वह बहुत दूर नीचे जाता है (बहुत दूर नीचे क्या है? नरक, निगोद ही है)।

जैन धर्म में जैनियों के लिए मोक्षमार्गी भेष या लिंगों का कथन करते हुए कहा गया है कि-

एगं जिणस्य रूवं बीयं उक्किट्ठ सावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंग दंसणं णत्थि॥18॥

-दर्शन पाहुड

अर्थात् जिनमत में तीन ही लिंग बतलाए गए हैं। प्रथम लिंग जिनेन्द्र भगवान के रूप वाला निर्ग्रन्थ लिंग, द्वितीय उत्कृष्ट श्रावकों (ऐलक-क्षुल्लक) का लिंग और जघन्य स्थान में स्थित आर्यिकाओं एवं क्षुल्लिकाओं का तृतीय लिंग है। इनके अतिरिक्त कोई चौथा लिंग जिनमत या जिनदर्शन में स्वीकार नहीं किया गया है (मठाधिपति के भेष का जिनागम में कथन नहीं)

सम्यग्दृष्टि जीवों को त्रिमूढ़ताओं से बचने के लिए समीचीन शास्त्रों में कहा गया है कि-

भयाशा स्नेह लोभाच्च कुदेवागम लिंगिनाम्।
प्राणामं विनयंचैव न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः॥30॥

अर्थ-निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव भय, आशा, स्नेह ओर लोभ से भी कुदेव (सरागीदेव), कुशास्त्र (सरागियों द्वारा कल्पित शास्त्र), कुगुरु (परिग्रही मिथ्यात्वी गुरु) को नमस्कार और विनय भी न करें।

सच्चा दृढ़ धर्मी तो ऐसा विचार करता है कि- जिस आत्मा ने हिंसादिक पंच पापों को त्याग नहीं किया उसकी पूजा नमस्कार आदि क्रिया करने से जैसे गन्दे जल

में वस्त्र धोए जाने से वस्त्र शुद्ध होने की बजाय अशुद्ध ही होता जाएगा। इसी तरह गंदे दर्पण में मुख देखे जाने से मुख के दाग नहीं दिख सकते और न मुख को साफ-सुथरा बनाया जा सकता है। वैसे ही जिस उपास्य का जीवन राग, द्वेष, पति-पत्नी, काम-वासना की भावना, वस्त्रालंकार और धनादिक के प्रति मोह से मैला-कुचेला हो रहा है उसकी उपासना आदिक से उपासक लोग अपनी आत्मा रूपी कपड़े को या मुख को शुद्ध बनाने की बजाय केवल पाप से ही लेपते चले जाते हैं।

एतदर्थ जगत में समीचीन धर्म मार्ग में दृढ़ होने के लिए और जगत हितंकर जैन धर्म का प्रकाश करने के लिए वीतरागियों निर्ग्रन्थों द्वारा रचित सत्साहित्य का पठन कर हठाग्रह छोड़ तदनुसार आचरण बनाकर आत्माएं अपने बहुमूल्य मानव जीवन को सुख, शान्ति की समृद्धि, अनुभूति सह सफल बनाएं यही मेरी मंगल भावना है।

धर्मियों को देखकर असुहावना न लगना और गुरु के कठोर वचन भी अमृत सम लगना यह महा भव्यता, धर्मज्ञता का लक्षण है।

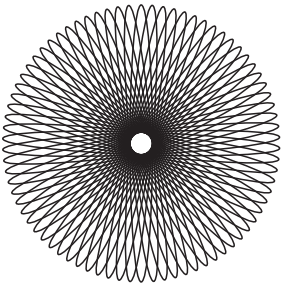

धर्म से सिद्धत्व तक

जिनधर्म का संस्कार शिवसुख के लिए और पाप का संस्कार भव दुःख के लिए होता है। अतः आज की भव्य बाल एवं युवा पीढ़ी के जीवन में धर्म संस्कार की बड़ी आवश्यकता है। इस संसार में प्रत्येक आत्मा कोई-न-कोई अच्छे या बुरे संस्कार से संस्कारित अवश्य है। बचपन अवस्था से जैसे विचार वाले पारिवारिक या सामाजिक लोगों का संपर्क मिलता है वैसा मानव का धार्मिक या अधार्मिक जीवन बनता है। धर्म संस्कार हेतु जहाँ अनेक पुरुषार्थ करने पर भी कार्य की सिद्धि नहीं होती वहाँ पूर्व कृत पाप कर्म की मुख्यता समझी जाती है। पाप कर्म के उदय से आत्मा पर पड़े हुए अधर्म के संस्कार को सद्धर्म के माध्यम से बदला जा सकता है और पुण्य से प्राप्त हुआ धार्मिक संस्कार बुरी संगति से अधार्मिक भी हो सकता है।

इस संसार में जितनी भी आत्माएँ दुःखी अवस्था से सुखी अवस्था को प्राप्त हुई हैं वे सभी अहिंसा परमो धर्म व रत्नत्रय धर्म के संस्कार के माध्यम से ही सुखी अवस्था को प्राप्त हुई हैं। कहा भी गया है कि 'धरतीति धर्मः' जो संसार के दुःख से उठाकर स्वर्ग, मोक्ष, सुख के स्थान में रख दे उसे धर्म कहते हैं। हमारे जैन शास्त्रों में धर्म को अनेक नामों से पुकारा गया है।

धम्मो वत्थु सहावो, खमादिभावो य दस विहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥

-स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा

वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमादिक भाव रूप दस प्रकार का धर्म है रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र) धर्म है तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है।

आगे निश्चय दृष्टि से 'चारित्तं खलु धम्मो' मिथ्यात्व कषाय से रहित मुनियों का समता भाव रूप चारित्र ही धर्म है ऐसा आचार्य कुन्द-कुन्द ने प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा है।

आज का लौकिक, भौतिक विज्ञान; जो कि वीतराग विज्ञान से बिलकुल शून्य है; जितनी उन्नति करता जा रहा है उतनी ही मानव में चारित्र या धर्म संस्कार की कमी देखी जा रही है इसका कारण पञ्चेन्द्रियों के विषयों की असीमित उपलब्धि एवं

धर्म के संस्कार का अभाव ही जानना चाहिए।

पञ्चेन्द्रियों के जितने विषय प्राणी को उपलब्ध होते हैं उतनी ही राग-द्वेष की जनक इच्छाएँ बढ़ती ही चली जाती हैं और राग-द्वेष ही कर्म बंध में प्रमुख कारण है। पाप कर्म के बंध से संसारी आत्माएँ इस संसार में अनेक दुर्गति, निर्धनता और रोगोत्पत्ति इत्यादिक यातनाओं को प्राप्त करती हैं।

साक्षात् तीर्थंकरों के समय जिस धर्म का महान प्रभाव होता है उनके अभाव में भी संख्यातों वर्ष तक उस सद्धर्म का प्रभाव परम्परा रूप से चलता रहता है। और सद्धर्म की ध्वजा फहराती रहती है। इस पंचम काल में भी भगवान महावीर के तीर्थ में इन्द्रभूति गौतम गणधर और उनके पश्चात् केवली, श्रुतकेवली एवं आचार्य कुन्द-कुन्द व स्वामी समन्तभद्र जैसी अनेक आत्माएँ अहिंसा परमोधर्म का अनुपालन करती रहीं और ऐसी ही असंख्यात आत्माओं ने आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की धर्म गंगा में स्वयं अवगाहित होकर उसको हम तक पहुँ चाया है। हमारा परम कर्तव्य होता है कि ऐसी धर्मगंगा में हम भी अवगाहित होकर उसका अलौकिक आनन्द प्राप्त करें और अनुपम शान्ति सुख का अनुभव करें।

मानव जन्म को पाना एक प्रकार के पुण्य कर्म का फल है और जैन धर्म को पाना कई जन्मों के पुण्य का फल है तथा जैन धर्म के नियमानुसार चलकर त्याग, संयम के माध्यम से अपनी आत्मा को विशुद्ध बना लेना बड़े श्रेष्ठ पुण्य एवं पुरुषार्थ का फल माना है।

प्रायः संसारी आत्माएँ जिस गति या पर्याय को प्राप्त होती हैं उसी जगह वैषयिक क्षणिक सुख से प्रभावित होकर उन्हें बड़ी तृष्णा से भोगने में आसक्त हो जाती हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं हो पाता कि ऐसे इन्द्रिय विषय जनित क्षणिक सुख इस आत्मा को अनन्तों बार प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु इन विषयों को भोगने से पुनः उत्पन्न होने वाली इच्छाओं का समापन नहीं हुआ और न ही पूर्ण तृप्ति, शान्ति का अनुभव हुआ है।

बल्कि इन्हें छोड़ने या इनका त्याग करने से ही तृप्ति शान्ति-सुख का अनुभव होता है। अग्निकुण्ड में जितना भी ईंधन डाला जाएगा उतनी ही अग्नि अत्यधिक प्रज्ज्वलित होती चली जाएगी। उसका समापन नहीं होगा। जैसे रावण के लिए मंदोदरी जैसी सुन्दर-सुन्दर सोलह हजार रानियाँ प्राप्त हुई थीं परन्तु फिर भी

सती सीता के प्रति आशा या तृष्णा उत्पन्न हुई और पर वस्तु के मोह से दुर्गति का फल पाया। युग के आदि में बाहुबली, भरत चक्री से विजित होने के बाद भी इन्द्रिय सुख से विरक्त हो दिगम्बर मुद्रा धारण कर आत्मा में लीन हो गए थे तभी उन्हें महाशान्ति का अनुभव हुआ था और एक वर्ष की घोर तपस्या से कैवल्य की उपलब्धि हुई थी। तात्पर्य यह हुआ, रावण सदृश अनेक तरह से इन्द्रिय विषयों की पूर्ति करने पर भी नवीन इच्छाओं की शान्ति नहीं, बल्कि तीर्थंकरों और महामुनीश्वर बाहुबली भगवान, सुकुमाल, गजकुमार एवं जम्बूस्वामी जैसी आत्माओं के द्वारा इन्द्रिय विषयों से आशा, मोह छोड़ देने पर ही इस आत्मा को वास्तविक या आत्मिक सुख-शान्ति का अनुभव हुआ करता है।

धर्म-संस्कार के अभाव में आज की दुनिया केवल विषय-सुखों को, भोग-विलासता को, अवगुणता में स्वात्म प्रशंसा को, पदवी आशा, मिथ्या भेष और ख्याति, लाभ, पूजा में वास्तविक सुख की कल्पना कर रही है यह मृग मरीचिका जैसी स्थिति विषय-भोगी को नियम से दुर्गति के गर्त में पहुँचा देती है।

मानव का इन्द्रिय विषयों में स्वाद लेना एक तलवार की धार पर लगी मीठी वस्तु को जिह्वा से चखने के समान क्षणिक सुख के साथ-साथ पाप बंध और दुर्गति रूप महा कष्ट में अपने को आकण्ठ डुबोना है। अपने अमूल्य जीवन के क्षणों को एवं अल्प जीवन को व्यर्थ गमाना है तथा विषयान्ध व कामान्ध बनकर चार्वाकादि अजैन मतों में कथित-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥

जितना जीना है सुख से जियो ऋण करके भी घी पियो क्योंकि इस शरीर के नष्ट हो जाने पर पुनः आगमन कहाँ? वाले सिद्धान्त को चरितार्थ करना है। इसका मुख्य कारण धार्मिक संस्कार के अभाव के कारण आस्तिकपने का अभाव समझना चाहिए।

इन्द्रिय विषय के सुख के सम्बंध में प्रवचनसार में कहा है कि-

सपरं बाधा सहिदं विच्छिण्णं बंध कारणं विसमं।
जं इन्द्रियेहिं लद्धं, तं सौख्य दुःख मेव तहा॥176॥

जो इन्द्रियों से उत्पन्न सुख है वह पराधीन है, बाधा से सहित, स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाने वाला, पाप कर्म के बंध का कारण और परिवर्तनशील (क्षणभंगुर) रूप होने से दुःख ही है ऐसा जाना चाहिए।

उपर्युक्त धर्म के सम्बंध में कुन्द-कुन्दाचार्य द्वारा कथित धर्म का चिन्तन धर्म से संस्कारित आत्मा में ही आ सकता है जो संस्कार प्रायः बचपन में दिया जाता है। जब बच्चा योग्य गृह में जन्म पाता है तब बच्चे को जन्म देने वाले माता-पिता उस बच्चे के प्राथमिक गुरु हुआ करते हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश की बात है कि एक व्रती महिला अपने जवान बेटे के साथ आकर बोली कि महाराज जी! हमारे बेटे को जुआ खेलने का त्याग करा दीजिएगा।

तब ऐसा सुनते ही मुझे आश्चर्य सा हुआ और मैंने उस माँ से कहा, ''अरे! आप तो व्रती (प्रतिमाधारी) महिला हैं और आपका बेटा जुआ कैसे खेलता है? क्या आपने उसे बचपन में धर्म से संस्कारित नहीं किया?''

इसके उत्तर में वह माँ बोलती है ''महाराज जी, यह मेरी भूल रही किन्तु अभी बहुत समझाती हूँ, लेकिन यह बेटा सुनता ही नहीं है, यह बुरी संगति में पड़ गया है अतः आपके समझाए जाने पर ही समझ सकता है।''

उस समय मैंने उस बेटे से कहा कि, ''देखो! तुम्हारी माँ कितनी धर्मी हैं और ऐसी धर्मी माँ को तुम ऐसे बुरे व्यसनों में आसक्त होकर क्यों कष्ट देते हो। तुम्हें अपने एवं परिवार के जीवन को सुखी बनाने हेतु जुआ खेलने का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जुआ ऐसा बुरा व्यसन है जो सारे परिवार एवं स्वयं के जीवन को नष्ट कर देता है। तथा जुआ मात्र एक व्यसन के साथ मानव थोड़े ही दिनों में सारे व्यसनों में आसक्त हो जाता है।''

ऐसा समझाए जाने के उपरान्त वह बेटा बोलता है, ''महाराज, हमारे इस नगर के थोड़े दूर जो सिद्ध क्षेत्र (मुक्तागिरी) है; वहाँ आज से दस वर्ष पूर्व एक बड़े मुनि संघ का आगमन हुआ था और उस समय मैं छोटी (बाल्या) अवस्था में था। तब हमारी माँ ने उन महाराजों के पास ले जाकर इन बुरे व्यसनों के त्याग का नियम क्यों नहीं दिला दिया था? जिससे कि आज यह समस्या न आ पाती। मेरे माता-पिता द्वारा बचपन में धर्म संस्कार न दिलाए जाने से मैं बुरी संगति में पड़ गया हूँ और अब जुए

का व्यसन इतना गहरा हो गया है कि उसका छूटना बड़ा मुश्किल है।''

इसके बाद मेरे द्वारा ऐसा कहे जाने पर कि तुम्हारी मन शुद्धि नहीं है अतः तुमसे एवं तुम्हारे गृह में आहर दान का कार्य नहीं हो सकता। तब उस बेटे ने पश्चाताप करते हुए आजीवन के लिए जुआ खेलने का त्याग कर दिया।

जिस तरह माता-पिता द्वारा धर्म संस्कार दिए जाने पर सन्तान अगर धर्मी बने तो सन्तान धर्म के माध्यम से जितना पुण्य कमाती है उसका छठवाँ भाग (छह भागों में से एक भाग के बराबर भाग) उसके माता-पिता को प्राप्त होता है। उसी तरह अगर माता-पिता के अधर्म या पाप के संस्कार से अपनी सन्तान अधर्मी, व्यसनी बने तो यहाँ भी पाप का छठवाँ भाग उन्हें मिलेगा ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि अच्छे या बुरे कार्यों की कृत, कारित, अनुमोदन का फल तो शास्त्रों में कहा ही गया है।

अनेकान्तमय शास्त्र ज्ञान से एवं कर्म सिद्धान्त से अनभिज्ञ जन कह सकते हैं कि माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं, वह निमित्त या कोई एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता फिर किसी पर, किसी के द्वारा संस्कार देने की बात ही नहीं होती।

उनका ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो सकता यह सत्य है। लेकिन कारण बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं, साधन बिना साध्य की प्राप्ति नहीं यह सिद्धान्त का अटल नियम है, अतः एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव भी अवश्य दिखला सकता है या सहायक बन सकता है। अगर ऐसा न होता तो-

- एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कुछ भी परिणाम (प्रभाव) न मानने वाले आज सिद्धालय में अवश्य विराजमान होते। परन्तु वे आज यहां पर चतुर्गति संसार में भ्रमण करते देखे जा रहे हैं। और यहाँ संसार में रूके रहने का कारण क्या है? तो आत्मा के स्वभाव से भिन्न पर द्रव्य रूप उन जड़ अचेतन अष्ट कर्मों का संयोग ही यहाँ संसार में रूके रहने का कारण या निमित्त है।
- मयूर की आवाज सुनते ही चन्दन के वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प बन्धन को छोड़कर बिलों का आश्रय क्यों ले लेते हैं?
- अग्नि का संयोग होने पर जल उष्ण क्यों हो जाता है?
- सूर्य उदय होते ही कमल वन क्यों विकसित हो उठता है?
- चन्द्र के पूर्ण खिलने पर समुद्र का जल क्यों उछलने लगता है?

- भोजन के उपलब्ध न होने पर सरागी प्राणी को विशेष आकुलता क्यों होती देखी जाती है?
- किसी परिवार में किसी व्यक्ति की आयु समाप्त होने पर सरागियों की आँखों में आँसू क्यों देखे जाते हैं?
- किसी के द्वारा अनिष्ट वचन कहे जाने पर सरागियों के लिए अप्रसन्नता एवं इष्ट जड़ वचनों से प्रसन्नता क्यों होती है?
- ओजस्वी निर्दोष वक्ता का प्रभाव और ओजस्वहीन या सदोषी वक्ता का प्रभाव लोगों पर अधिक-कम क्यों देखा जाता है?
- आयतनों को छोड़कर अनायतनों के दर्शन का निषेध क्यों किया जाता है?
- पर द्रव्य की क्रिया रूप जिनवाणी की उपासना, स्वाध्याय करने का एवं उपदेश देने का क्या प्रयोजन है?
- भगवान के दर्शन से और णमोकार मंत्र से जप इत्यादिक धार्मिक क्रियाओं से बहु कर्मों का क्षय होता है ऐसा जिनागम में क्यों कहा गया है?

इस प्रकार अनेकान्त की दृष्टि (निश्चय, व्यवहार एवं द्रव्य, पर्याय की अपेक्षा) से विचार करने पर इन सब प्रश्नों का उत्तर यही होता है कि एक दूसरे द्रव्यों की सहायता बिना कार्य-कारण, साध्य-साधन एवं निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध की व्यवस्था नहीं बन सकती, अतः आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने नियमसार ग्रन्थ में कहा है कि-

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अन्तर हेऊ भणिदा, दंसण मोहस्स खय पहुदी॥ 7।।

अर्थात् जिन भगवान, सूत्र (शास्त्र) और ऐसे शास्त्र को जानने वाले निर्ग्रन्थ वीतरागी गुरु ये सम्यग्दर्शन के बाह्य निमित्त हैं। तथा दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना सम्यग्दर्शन के अंतरंग निमित्त कहे गए हैं।

निमित्त को उदासीन और प्रेरक के भेद से दो तरह का जानना चाहिए। जैसे मछली को चलने में तालाब या कुए का जल या रेल को चलने में पटरी उदासीन निमित्त है। उसी तरह गाड़ी के चलाए जाने में गाड़ी का चालक एवं शिष्य के लिए सन्मार्ग के आज्ञा प्रदाता साक्षात् गुरु प्रेरक निमित्त कहलाते हैं।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर से निमित्त की सार्थकता समझ में आ सकती है

कि अष्ट कर्मों से रहित परम शुद्धावस्था को प्राप्त सिद्ध परमेष्ठी इस लोकाकाश से ऊपर क्यों नहीं जा पाते ऐसा प्रश्न पूछे जाने पर इसका उत्तर यही होता है कि लोकाकाश के ऊपर उदासीन निमित्त रूप 'धर्मास्तिकायाभावात्' धर्मास्तिकाय द्रव्य का अभाव होने से वे सिद्ध परमेष्ठी लोकाकाश से ऊपर अलोकाकाश में नहीं जा पाते उनकी गति में रुकावट आ आती है। देखिए निमित्त के अभाव में अनन्त शक्तिशाली आत्मा भी पीछे रह जाती है अन्यथा अनन्त शक्ति से सम्पन्न सिद्ध परमेष्ठी को अलोकाकाश में अवश्य जाना चाहिए था। अतः निमित्त या कारण रूप एक दूसरे द्रव्य की सहायता मिले बिना कार्य नहीं हो सकता ऐसा समझना चाहिए।

धर्म संस्कार के प्रभाव से मुनि बन शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि में अपने सकल कर्मों को भस्मसात् करने वाले निकल परमात्मा का धर्मास्तिकाय रूप साधन या निमित्त से लोक शिखर तक पहुँचकर जिस स्थान पर ठहरना होता है वह सिद्धालय कहलाता है। मध्य लोक संबंधी मनुष्य लोक के 45 लाख योजन से ही सिद्धि को प्राप्त करने वाले वे सिद्धात्मा ऋजु गति से ऊर्ध्वगमन कर 45 लाख योजन वाली सिद्धशिला पर हमेशा के लिए विराजमान हो जाते हैं। वे अनन्त गुणों के भण्डार परम वीतरागी शिव, सत्य रूप होते हैं। वास्तविकता, सहजता या स्वाभाविकता को प्राप्त करना ही सत्य का गहना है।

जो सभी पाप कलंकों व संसार विकल्पों से रहित हो गए हैं जिस कारण उनकी आत्मा स्वच्छ दर्पण या निस्तरंग जल के सदृश हो गई है, वे सत्य रूप हैं और ऐसे सत्य पर श्रद्धा रखने से हम सत्य की पहचान कर लेते हैं एवं हमें अपना रत्नत्रयमय वास्तविक वैभव ज्ञात हो जाता है। उनके गुणों के चिन्तन से व तदनुसार आचरण करने से अपने वास्तविक गुण प्रकट होने लग जाते हैं। हमारे जीवन पर जो अधर्म का संस्कार पड़ गया था वह मेघ पटल हटने से सूर्य उदय होने की भाँति दूर हटकर हमारी आत्मा धर्म से संस्कारित होने लग जाती है। अतः ऐसे ही परम सत्य मय वीतराग परमात्मा के गुणों की उपलब्धि करने हेतु हम अपने आपको रत्नत्रयमय वैभव से सम्पन्न कराते हुए धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ के बल से मुक्तात्मा बन उत्तम शाश्वत सुख में लीन हो जाएं। 'सत्यं शिवं सुन्दरं' सत्य ही शिव है और सुन्दर है जिसमें समान सत्य से शिव और शिखमणि सम सुन्दर बन जाएं।

ज्ञानामृत से आत्मिक तृप्ति

हमारे आचार्यों ने आत्मिक तृप्ति का उपाय ज्ञानामृत पान बतलाया है। बाहरी पञ्चेन्द्रिय के विषयों से हम शरीर एवं इन्द्रियों को तृप्त कर सकते हैं लेकिन आत्मा हमेशा विषय चाह की दाह में आशाओं के ईंधन से जलती रहती है। हमारे जैनाचार्य कहते हैं कि हे आत्मन्! तू विषय की चाह की दाह में जलने से बचना चाहती हो तो भगवान और निर्ग्रन्थों की वाणी में, शास्त्रों के स्वाध्याय में अपने को लीन कर तभी आत्मा से धर्मात्मा, परमात्मा बनाने वाले ज्ञानामृत के पान का फल तुझे मिल सकेगा।

बड़ी विचारणीय और चिंता की बात है कि जिन आचार्यों ने अपनी आत्मा के ध्यान से बाहर आकर हम सबके उपकार हेतु अपनी परंपरा से चले आ रहे आगमिक ज्ञान को ग्रंथों में गूंथित किया, लाखों ग्रंथों की रचना की और जो ग्रंथ आज भी हजारों संख्या में उपलब्ध हैं तथा जीवन भर जिनका स्वाध्याय किया जाए तो भी उनके स्वाध्याय हेतु जीवन अत्यल्प है, फिर भी कुछ लोग जैन होकर कितने अनभिज्ञ एवं अश्रद्धालु हैं कि जीवन भर में दो चार ग्रंथों का भी पठन पूर्ण नहीं कर पाते हैं। अगर उन ग्रंथों में लिखे श्लोकों, गाथाओं और सूत्रों को विषय-वासना छोड़कर एक शक्कर की गोली के सदृश चूसा जाए तो उसका आनन्द एक अपूर्व ही होगा।

इसी तरह जो पुरुषार्थी जिनवाणी रूप सद्गुरुओं के वचनों को बड़े उल्लास व बड़ी विनय के साथ अमृत सदृश पान करता है उसके विषय में आगम ग्रंथों में कहा गया है कि-

तत्प्रति प्रीति चित्तेन येनवर्तामपि श्रुता।
निश्चितं स भवेद् भव्यो भावि निर्वाण भाजनं।।

पद्मनन्दी पंचविंशतिका।

अर्थात् जो प्रीति चित्त के साथ जिनवाणी या धर्मोपदेश को सुनता है वह निश्चित रूप से भव्य है और आगे निर्वाण (मोक्ष) का भागी होगा।

शास्त्र का ज्ञानार्जन करना किसी पुरुषार्थी को सरल हो सकता है लेकिन उस ज्ञानार्जन द्वारा प्रयोजन भूत वस्तु 'मोक्ष' को पाना एक मात्र किसी महापुण्यवान

भव्यात्मा को ही हो सकता है; क्योंकि ज्ञान का लक्षण कहते हुए कहा गया है कि–

जेण रागाविरज्जेज्ज जेण सेये सु रज्जदि।
जेण मेत्तिं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।

–मूलाचार

अर्थात् जिसके द्वारा विषय राग छूट जाए, जिसके द्वारा श्रेयमार्ग रूप मोक्षमार्ग में रुचि जग जाए और जिसके द्वारा मैत्री की प्रभावना जागृत हो वह जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

बहुत अधिक शास्त्रों के पढ़ने से जीवन की शोभा नहीं; बल्कि थोड़ा भी पढ़कर जीवन और चर्या में उतारने से ज्ञानी के जीवन की शोभा होती है। फलों से रहित बहुत ऊँचे वृक्ष की अपेक्षा एक छोटा–सा फलों एवं पुष्पों से लदा वृक्ष अधिक सुशोभित होता है। आचरण से शून्य ज्ञान कागज के पुष्प के समान निस्सार माना गया है। जहाँ सच्चे वीतरागी देव, शास्त्र और गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति है वहाँ भव्यता है और वहाँ ही धार्मिक ज्ञान की समीचीनता सह अष्टांगयुत सम्यग्दर्शन अणुव्रत, महाव्रत आदि के पालन रूप सम्यक्चारित्रपना भी प्रकट होकर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

नियम से वह ज्ञान त्याग, संयम की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि में कारण अवश्य होता है। आगम परम विरागी मुनीश्वरों द्वारा रचित है अतः आत्मा में वैराग्य की उत्पत्ति कराने वाला है। आगम ग्रंथों में कहा है कि –

''योग्योपादान योगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादि स्वादिसंपत्तावात्मनो प्यात्मता मता।।2।।

– इष्टोपदेश

स्वर्णपने की शक्ति रूप उपादान कारण मिलने पर (और अग्नि, धोकनी, स्वर्णकार आदि निमित्त कारण मिलने पर) जैसे स्वर्णपाषाण में स्वर्णपना प्रकट होना माना गया है उसी प्रकार आत्मा को भव्यता आदि उपादान कारण तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इत्यादिक निमित्त कारणों के मिलने से संसारी आत्मा को शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति रूप सिद्धत्व का होना माना गया है। कोई शंकाकार कहता है कि जब सुद्रव्य, सुक्षेत्र आदि के मिलने पर स्वयं परमात्म पद का लाभ होता है तब व्रत,

संयम आदि के आचरण करने से क्या प्रयोजन है? पाप और पुण्य ये दोनों ही कर्म बंध के कारण हैं तब पुण्य रूप व्रत का उपदेश व्यर्थ है? इसके समाधान में आचार्य कहते हैं कि-

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।
छाया तपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ।।

– इष्टोपदेश

किसी कारण आत्मा को मोक्ष पद न मिल सके तो धर्म चर्चा करना, भगवान के पञ्चकल्याणक आदि करने, देखने के सौभाग्य रूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप व्रतों के पालन द्वारा देव पद पाना अच्छा है क्योंकि छाया में तथा धूप में बैठने वाले पुरुषों के समान व्रत और पापों का आचरण करके स्वर्ग में रहने वाले देवों और नरक में जाने वाले नारकियों में बड़ा भारी अन्तर है। अर्थात् वह पापी अशान्ति का कारण रूप नरक प्राप्त करता है और वह व्रती पुण्यात्मा (धर्मात्मा) विश्रान्ति हेतु मुक्ति के अभाव में स्वर्ग प्राप्त कर लेता है। लौकान्तिक अहमिन्द्रादिक भी बन जाता है।

अध्यात्म को चाहने वाला योगी अपनी आत्मा के अलावा अन्य पदार्थों को कोई विशेष महत्व नहीं देता है। अपनी आत्मा के ध्यान के द्वारा कर्म बंध को रोककर कर्म निर्जरा करता रहता है। निश्चय की प्राप्ति होने पर व्यवहार स्वयमेव बाहर रह जाता है और एक समय जीव अन्य और पुद्गल अन्य अर्थात् भिन्न-भिन्न हो जाने पर वह मुक्ति श्री को भज लेता है।

धन्य! ऐसे महान शास्त्र और उनके श्लोक एवं उनकी गाथाएं जो अपने पेट में अनन्त अर्थ को गर्भित किए हुए हैं। उन्हें जितनी बार पढ़ा जाए उतनी बार हमें उसके अन्दर स्थित अर्थ का नया-नया रसास्वाद प्राप्त हो सकता है। अतः एक शास्त्र एक बार की अपेक्षा एक हजार आठ बार पढ़ेंगे तो फिर वह हमारे मन में कम्प्यूटर की मैमोरी अथवा वीडियो फिल्म की रील या पत्थर की लकीर के सदृश बन जाएगा। इन आचार्यों कृत शास्त्रों को एक चाकलेट या गोली की उपमा दी जाए तो बहुत अच्छा होगा क्योंकि चाकलेट या गोली को खाया नहीं जाता बल्कि धीरे-धीरे चूसा जाता है तभी उसके मीठेपन का रसास्वादन आता है। वैसे ही शास्त्रों को जल्दी-जल्दी नहीं;

बल्कि धीरे-धीरे अर्थ में डूबते हुए कई बार पढ़ना चाहिए तभी उसके अर्थ रूपी रस का स्वाद हमें मिल सकता है तथा उसके लिखने वाले आचार्य के हृदय तक हम पहुंच सकते हैं। उनकी भावना या अभिप्राय को समझ सकते हैं। कई लोग कहते हैं कि प्रतिदिन नया-नया पढ़ना चाहिए और ऐसा कहते हुए निर्ग्रन्थों कृत शास्त्रों को एक बार पढ़कर छोड़ देते हैं तो उनका ''आगे पाठ पीछे सपाट'' होता चला जाता है। अतः जैसे नित्यप्रति एक ही तरह के रोटी, चावल इत्यादिक के भोजन में आप रुचि रखते हुए भी उससे ग्लानि नहीं करते उसी तरह प्रतिदिन धर्म संबंधी वीतरागमय भक्ति, पूजा, प्रतिक्रमण, जप, महत्वपूर्ण वैराग्यपरक तत्त्व चर्चाओं और कथाओं इत्यादिक के सुनने एवं पढ़ने में अरुचि नहीं रखना चाहिए अपितु चौबीसों घंटे हमें स्व पर मन को धर्म में लगाते हुए पाप के चिन्तन से बचाते हुए षडावश्यक क्रियाओं और स्वाध्याय में लगाना चाहिए क्योंकि ये सब दैनिक धर्म संबंधी क्रियाएं उनके अर्थ को समझते हुए की जाती हैं तो हमारी आत्मा में अर्जित पाप मैल को धोती हुईं हमें वे पावन पुनीत बनाकर एक दिन भगवान समान बनाकर सिद्धालय में पहुंचा देती हैं। क्योंकि ज्ञान का फल संसार या विषय वासनाओं का अभाव है जैसे कि सर्वार्थसिद्धि में कहा ही गया है कि 'ज्ञानस्य फलं उपेक्षा' ज्ञान का फल उपेक्षा अर्थात् त्याग है। त्याग से ही आत्मा मोक्ष महल पाती है।

आत्मा की निर्मलता ही धर्म है। मात्र क्रियाकाण्ड या आडंबर नहीं।

आत्मिक दोषों का प्रक्षालन

अपनी आत्मा में जाग्रत अथवा अजाग्रत (सुप्त) अवस्था में अर्जित हुए पापों का प्रक्षालन होना आवश्यक है, तभी आत्मिक शुद्धि की प्राप्ति होती है। जैसे शरीर या वस्त्रों को जलादिक से प्रक्षालित कर लिया जाता है वैसे ही आत्मा को प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदिक से विशुद्ध करना चाहिए। ''तस्स मिच्छामि दुक्कडं'' मेरा वह अपराध मिथ्या (दुष्कृत) हो ऐसी भावना करना प्रतिक्रमण है। ऐसे प्रतिक्रमण में दोषों के प्रति किया गया पश्चाताप आगे होने वाले दोषों से भयभीत कराता है, बुरे भावों का परिमार्जन करता है। दोष लगा हो या न लगा हो; आज पंचम काल में सभी व्रतियों, साधुओं को प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। प्रतिक्रमण के कई भेद हैं जैसे रात्रिक, दैवसिक, ईर्यापथ, पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक इत्यादि। इन प्रतिक्रमणों के साथ निरतिचार रूप व्रतों की भावनाएं, आत्मिक निंदा, निर्ग्रन्थ पद की वाञ्छा, प्रायश्चित्त, परमेष्ठियों की भक्ति-स्तुति एवं समाधि की भावना इत्यादिक बातें जुड़ी हुई हैं।

प्रतिक्रमण मात्र में पापों का प्रक्षालन नहीं होता है; पापों के प्रक्षालन हेतु निर्ग्रन्थ वीतरागी सद्गुरुओं से प्रायश्चित्त को ग्रहण करना भी आवश्यक है। प्रायश्चित्त भी कई तरह के हैं जिसमें प्रतिक्रमण के समय निश्चित रूप से ग्रहण किया जाने वाला प्रायश्चित्त सामान्य है, लेकिन प्रतिक्रमण के पश्चात् गुरुभक्ति पूर्वक अज्ञात दोषों का भी प्रायश्चित्त ग्रहण किया जाता है तथा ज्ञात दोषों का प्रायश्चित्त गुरु और आगम परंपरा से जो एक अलग रूप से ग्रहण किया जाता है। वह एक महान तप रूप माना है।

जो व्यक्ति अपने प्रमाद को हटाने का उद्यम नहीं करता है और अपने व्रतों की निर्मलता की ओर दृष्टि नहीं देता हुआ अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार से व्रत भ्रष्ट होकर अपने भव को ही बिगाड़ लेता है। जैसे एक भैंस; बाड़ी वाले खेत के पास से गुजरती हुई फसल को देखकर लालायित होती है, यह उसका अतिक्रम है और बाड़ तोड़कर या लांघकर खेत के अंदर घुस जाती है यह उसका व्यतिक्रम कहलाता है एवं दूसरे के खेत की फसल को खाने लग जाना यह अतिचार कहलाता है तथा तीव्र लालसा या गृद्धता के साथ खाने में लीन हो जाना या मारने पर भी अन्यत्र नहीं जाना यह अनाचार माना गया है। इसी तरह अन्य विषयों में भी जो

अतिक्रमादि किए जाते हैं वे व्यक्ति की आन्तरिक शुद्धि की हीनता या मलिनता को दर्शाते हैं । अतः ऐसी मलिनता से बचने हेतु प्रतिक्रमण या प्रायश्चित्त का आलम्बन लेना अनिवार्य है।

किसी व्यक्ति का कदाचित् किसी कार्यवश कोई व्रत थोड़ा दूषित हो जाए तो उसे पूर्ण रूप से छोड़ नहीं देना चाहिए बल्कि अपने व्रत को पूर्ववत् पालन करते हुए बीच में हुए दोषों का प्रायश्चित्त से उपचार कर अपने मार्ग में पूर्ववत् ही स्थित होते हुए अपनी विशुद्धि को अनवरत् बढ़ाना चाहिए ।

जो व्रतों को पूर्ण भंग कर देता है वह भंगी से भी गया बीता कहलाता है । जैसे किसी एक व्यक्ति ने उदाहरण सुनाया था कि एक झाड़ू लगाने वाली (मेहतरानी) एक बड़े रास्ते को पूरा पानी से धो रही थी तब किसी ने उससे पूछा कि तुम क्या कर रही हो? तो उसने कहा कि यहां से एक अशुद्ध व्यक्ति निकल गया है। फिर उसने पूछा कि तुम्हीं तो सबसे अशुद्ध हो, तुमसे अशुद्ध भी कोई होता है क्या? तो उसने कहा कि हां जो गुरु से व्रत लेकर उसे छोड़ देता है और मार्ग से भ्रष्ट हो जाता है वह हमसे भी ज्यादा अशुद्ध होता है; वही यहाँ से निकल गया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सभी को व्रतों की विधिवत् शुद्धि करते हुए अपने मार्ग में स्थिर रहना चाहिए। आज जो व्रती अपने दोषों के प्रक्षालन हेतु प्रतिक्रमण और गुरुओं से या आगमानुसार प्रायश्चित्त रूप तप को नहीं अपनाता है वह मायाचारी कहलाता हुआ दुर्गति का मार्ग खोजता है ऐसा समझना चाहिए और जो भव्य रात्रिक, दैवासिक आदि प्रतिक्रमणों को करता हुआ गुरु के समक्ष या आगमानुसार प्रायश्चित्त ग्रहण करता है वह मान कषाय को तजकर छोटे बालक के सदृश अपने दोषों की प्रतिक्रमणादिक के द्वारा आलोचना करने से व्रत संयम की वृद्धि करता हुआ उत्तम गति का भाजक होता है ।

प्रतिक्रमण से जितना पाप का भार दूर होकर हल्कापन महसूस होता है उससे हजार गुना प्रायश्चित्त लेने से तथा उससे लाख गुना उसको पूर्ण कर लेने से आत्मा में हल्कापन महसूस होता है। अतः जैसे महा ज्वर मिटाने के लिए चिरायता और गुरवेल का काढ़ा अत्यन्त लाभदायक होता है, उसी तरह प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त जन्म-जन्म के अर्जित पापों, दोषों को नष्ट कर आत्मा को परिशुद्ध निर्मल बना देते हैं जिससे एक दिन वह पवित्र आत्मा मुक्ति पथ के पथिक से परमात्मा बन हमेशा के लिए अपने चिदानंद में रम जाती है।

सादा जीवन उच्च विचार

जीवन की वास्तविक सुन्दरता शरीर की साज–सज्जा और धन वैभव से न होकर चारित्र से होती है। मानव का वेश, भूषा आदिक रूप श्रृंगार मात्र शरीर की शोभा बढ़ाता है, लेकिन सदाचारमय जीवन आत्मा का अलंकार बन आत्मा की शोभा बढ़ाता है ।

महापुरुषों द्वारा कहा भी गया है कि–

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कण्ठस्य भूषणं ।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणं किं प्रयोजनं ॥

अर्थात् अपने हाथ का आभूषण दान है, कण्ठ का आभूषण सत्य है और कानों का आभूषण शास्त्र है फिर अन्य (स्वर्णादिक के) आभूषण से क्या प्रयोजन है अर्थात् कोई प्रयोजन नहीं।

जैसे अहिंसा परमो धर्म को आभूषण समझने वाले वे दीवान अमरचन्द जिन्होंने सिंह को जलेबी खिलाकर शाकाहारी बनाया था और अपने नाम को अमर बनाया था उनका वह अहिंसा सद्गुण रूप आभूषण सद्गति का कारण बना एवं उनका पवित्र जीवन जन–जन का आदर्श बना वैसे ही एक हुए हैं गोपालदास बरैया, जो एक बार सपरिवार रेल से यात्रा कर रहे थे कि अचानक रात्रि में बारह बजे उन्हें ध्यान आया कि मेरे पास बैठे मेरे इस पुत्र की उम्र अभी बारह वर्ष की पूर्ण हो चुकी है और मैंने इसकी आधी टिकट कटवाई थी अब अगर मैं इसी आधी टिकिट के साथ आगे रेल में यात्रा करता हूँ तो रेल को ठगूँगा; इसीलिये मुझे अब आगे वाली स्टेशन पर उतर कर पूरी टिकिट ले लेना चाहिए और वे अगले स्टेशन पर उतरे तथा पुत्र का पूरा टिकिट लेकर ही आगे की निर्विकल्पपूर्वक यात्रा संपूर्ण की। देखो ऐसा होता है धर्मात्माओं का जीवन! ऐसे धर्मात्मा लोग कभी स्वप्न में भी असत्य मार्ग का सेवन नहीं करते।

ऐसे ही थे वे राजा हरिश्चन्द्र जिन्होंने स्वप्न के समय अपना सारा राज्य देवों को दान में दे दिया था और प्रातः होते ही जब वे राज्य छोड़कर जंगल की ओर जाने लगे तब सेवकों ने पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं? तब उन्होंने कहा कि मैंने सारे राज्य

का स्वप्न काल में दान कर दिया है अतः मैं अपने सत्य की रक्षा करने साधु बनने जंगल की ओर जा रहा हूँ। ऐसा सुनते ही राज्य के सभी लोगों ने राजन् को राज्य में ही रहने का बहुत आग्रह किया लेकिन वे अपने त्याग पर अटल रहे तब सभी ने राजन् के सत्य की सराहना करते हुए एवं आश्चर्यचकित होते हुए राजन् के जीवन को धन्य माना। धन्य है ऐसा सत्य, जिसके माहाम्य से देवों ने सती सीता की अग्नि परीक्षा के समय अग्नि कुंड में जल और कमल बनाया था।

जीवन में विश्वसनीयता बनाये रखने के लिए हमें किसी को धोखा नहीं देना चाहिए और न ही किसी की कोई वस्तु को अनुमति के बिना लेना चाहिए एवं न किसी अन्य व्यक्ति को देना या बेचना चाहिए; चाहे वह वस्तु रखी हो, पड़ी हो या भूली भी क्यों न हो; क्योंकि ऐसा कार्य चोरी में गर्भित होता है। एक बार सुना था कि गाँधीजी ने एक दिन ऐसा कहा था कि मैंने अभी तक कोई धार्मिक गुरु नहीं बनाया; और अगर अपना धार्मिक गुरु बनाऊँगा तो उसे ही बनाऊँगा जिसके जीवन में धर्म मात्र मंदिर तक सीमित न हो; बल्कि जो मंदिर को पाठशाला मानकर मंदिर में पढ़ाये गये सबक का जीवन के हर एक कार्य चाहे दुकान हो या व्यवसाय; घर हो या गली; हर जगह पालन करता होगा, एक बार उन्होंने श्रीमद् राजचन्द्र जैन के सम्बन्ध में ऐसा सुना कि उनके हीरे के व्यवसाय में मोल-भाव का सौदा हो जाने पर हीरे के भाव और अधिक बढ़ गये और दुकानदार ने लोभ भावना से कम दामों में माल देने से इन्कार कर दिया; तब श्रीमद् राजचन्द्र जी ने लोभ भाव छोड़ते हुए कोई वाद-विवाद नहीं किया और संतोष को धारण किया एवं कम दामों में अधिकृत हीरे के माल को वापिस लौटा दिया। इस घटना की चर्चा सुगन्धि-सदृश चारों ओर फैल गई जिसे गाँधीजी ने भी सुनकर उन्हें अपना गुरु स्वीकार किया; कि जिसके लौकिक जीवन में भी परमार्थ की साधना का लक्ष्य है वही मेरा धार्मिक गुरु है।

बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर है जहाँ से श्रीधर केवली ने मोक्ष प्राप्त किया था। वहाँ के मूलनायक आदिनाथ 'बड़ेबाबा' जगत प्रसिद्ध हैं। वे जिस मंदिर में विराजमान हैं उस मंदिर का जीर्णोद्धार करने वाला राजा; श्री छत्रसाल राजा था जिसने बड़े बाबा के मंदिर में अपने नामानुसार तीन छत्र भी प्रदान किए थे तथा तलहटी में एक वर्धमान सरोवर भी बनवाया था। उस राजा के ऐसे दान धर्म,

श्रद्धा, भक्ति से स्वयमेव ज्ञात होता है कि वह कितना सादा जीवन उच्च विचार वाला होगा; जिसके जीवन की एक अनोखी घटना है कि ऐसे बहु सुन्दर काया वाले राजा से एक रूपवान महिला प्रभावित होकर बोली कि हे राजन्! आप जितने बहु सुन्दर हैं इतना ही सुन्दर एक पुत्र मुझे प्राप्त हो, अतः आप मेरे भर्त्ता होवें अर्थात् मुझे अपनी पत्नी रूप में स्वीकार कर मेरे पति बनें, राजा बोला कि हे माँ! मैं ही तुम्हारा पुत्र हूँ, अतः आप ऐसा कुविचार छोड़ें। ऐसा सुनते ही वह महिला अति लज्जित और निरुत्तर होती हुई अपने स्थान पर चली गई। धन्य है ऐसे शील या ब्रह्मचर्य की महिमा कि जहाँ कामदेव को भी मुख मोड़कर पलायमान होना पड़ता है तथा धन्य हैं वे आत्माएं जो सेठ सुदर्शन जैसा निर्विकारी बन देवों से भी पूज्य बन जाती हैं।

अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु परिमित परिग्रह व्रत एक अच्छा साधन है; जिसे धारण कर विद्वानों ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी जिनधर्म से अपनी आत्मा की शोभा बढ़ाई है और समाज में आदर्शरूपता को प्राप्त किया है। इसी सन्दर्भ में एक मूर्धन्य विद्वान कपड़े के सामान (पगड़ी) का व्यापार करते थे और साथ में अणुव्रतों के अन्तर्गत परिग्रह का परिमाण रूप व्रत भी अंगीकार कर रखा था। एक बार रात्रि में शयन करते वक्त गृह में चार चोरों का आना हुआ; चोर समझ रहे थे कि सभी लोग निद्रा में डूबे हैं; लेकिन पण्डित जी तो जाग रहे थे। चारों चोरों ने अपना काम किया; कपड़े की चार पोटरियाँ बाँध लीं; दूसरे ने पहले चोर के सिर पर पोटरी रख दी और वह चलता बना, इसी तरह तीसरे ने दूसरे के सिर पर और चौथे ने तीसरे के सिर पर पोटरी रख दी सभी एक-एक कर अपने निश्चित स्थान की ओर चल दिये; लेकिन चौथे के सिर पर पोटरी को रखने वाला कोई नहीं था अतः पण्डित जी ने स्वयं वहाँ आकर अंधेरे में चौथे चोर की मदद कर दी, चारों चोरों के अपने स्थान पर पहुँचने के उपरान्त आपस में पूछे जाने पर कि किसने किसको पोटरी उठाई; तब चौथे चोर को पोटरी उठाने पर प्रश्न खड़ा हो गया। संदेह की स्थिति पैदा हुई और आखिर में यही निर्णय हुआ कि चौथे को पण्डित जी ने पोटरी उठा दी है; अब क्या किया जाए? जो इतने उदार हृदयवाले हैं कि चोरों को अपने ही धन-वैभव की पोटरी उठाकर दे सकते हैं ऐसा उनका वह शुद्ध कमाई का धन हम पचा सकेंगे क्या? बड़ी दुर्गति का कारण होगा वह धन; इसीलिए वापिस दे देना अच्छा है और चारों की सहमति पूर्वक चारों लोग दूसरे दिन ही चारों पोटरियाँ लेकर पण्डित जी की दुकान पर जा पहुँचे और

बोलने लगे हे पण्डित जी! हमारी बड़ी भूल हुई कि आप जैसे पवित्र आत्मा के घर हम लोगों ने चोरी की ऐसी चोरी करना हमने बड़ा अभिशाप या पाप समझा अतः हम सब आपसे क्षमा मांगते हैं और यह धन आपको ही वापस लौटाते हैं।

पण्डितजी बोले कि अरे अज्ञ प्राणियों यह धन जब मेरे गृह से बाहर जा रहा था तभी मैंने यह विचार किया था कि मेरा कुछ परिग्रह का भार उतर रहा है, अतः मैं इस जाने वाले परिग्रह से ममत्व हटाता हुआ इसका त्याग करता हूँ इसके पाप से मुक्त हो गया था और अब उच्छिष्ट के समान इसे पुनः कैसे ग्रहण कर सकता हूँ?

चोरों के बड़े पश्चाताप करने के उपरान्त पण्डित जी कहते हैं कि अगर तुम लोग चोरी करने का त्याग करते हो तो मैं तुम्हारे जीवन की आजीविका (व्यापार) हेतु तुम्हें ही कुछ अधिक धन मिलाकर आनंदपूर्वक देता हूँ और चोरी आदिक पाप व्यसनों को छोड़कर अपना जीवन सदाचारमय बनाओ। चारों चोर; बनारसीदास पण्डितजी से चोरी के त्याग का नियम लेकर पोटरियों को लेकर व्यापार करने चल दिए। धन्य है यह परिग्रह परिमाण की महिमा।

परिग्रह और पदवी की लालसा मानव की आत्मिक शान्ति भंग कर देती है। आत्मिक शान्ति एवं निर्विकल्पतामय जीवन जीने की इच्छा रखनेवाला मानव सुलभरूप से प्राप्त हो रहे अपनी आवश्यकता से अतिरिक्त वैभव को दूर से ही छोड़ देता है। ऐसे एक थे ख्याति प्राप्त विद्वान श्री सदासुखदास जी; जो एक राज्य शासन में राजकीय सेवारत थे। वे राज्य सेवा के अलावा सारा समय धर्मध्यान या देव पूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान रूप षट् कर्मों में लगाया करते थे। एक दिन जब उन्होंने राज्य सेवा का वेतन कुछ अधिक पाया तो उनके मन को न भाया क्योंकि वे परिग्रह के परिमाणी थे अतः उन्होंने पूर्ण वेतन से अतिरिक्त वेतन को वापस लौटा दिया और मुख्याधिकारियों के द्वारा बहुत आग्रह किये जाने पर भी अतिरिक्त पैसा नहीं लिया। यह बात राजा के पास तक पहुँची, राजा ने उन विद्वान को बुलवाया और कहा कि आपकी प्रशंसनीय राज्यसेवा से आपका वेतन बढ़ाया गया है लेकिन आपने स्वीकार क्यों नहीं किया? तब उन विद्वान श्री सदासुखदास जी ने कहा कि मुझे जो वेतन मिलता था वही मेरे जीवन को चलाने, धर्म और गृह व्यवस्था हेतु पर्याप्त था अतः मैंने अधिक वेतन को स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं; मैंने एक परिग्रह के

परिमाणरूप व्रत का बंधन बांध रख्खा है जो तोड़ना उचित नहीं समझता। तदुपरान्त राजा कहते हैं कि बहुतायत लोग शिकायत करते हैं कि मेरा वेतन क्यों नहीं बढ़ाया गया, मैं इतना योग्य कार्य करता हूँ इत्यादि परन्तु आप जैसे निर्लोभी व्यक्ति मुझे अन्यत्र देखने के लिए नहीं मिलते; अच्छा! बतलाइए कि आपको राज्य से क्या दिया जाए; अपने मन की इच्छा प्रकट कीजिए।

पण्डितजी कहते हैं कि हे राजन् मुझे धन के स्थान पर मेरी राज्य सेवा का समय आधा कर दिया जाय जिस कारण मैं अपना बहुमूल्य समय जिनवाणी की सेवा और धर्मध्यान में लगा सकूँ। ऐसा सुनते ही राजा की अनुमति मिली, ऐसा ही होगा आप निश्चिंत रहें, अपनी धर्म की सेवा को अवश्य आगे बढ़ाएँ और पण्डितजी ने अतिरिक्त समय पाकर रत्नकरण्डक श्रावकाचार की टीका, समाधि मरण जैसे अनेक शास्त्रों की रचनाकर अपने बहुमूल्य समय का सदुपयोग किया। जिस व्यक्ति का जीवन निर्लोभता से पवित्र होता है उसे नगर में तो ठीक जंगल में भी कौन सहायी नहीं बनता अर्थात् जहां भी जाए उसकी रक्षा होती है तथा सामान्य लोगों की तो बात ही अलग बड़े-बड़े राजा और देव लोग भी उसके मित्र बन जाते हैं।

सुना जाता है कि ऐसे उन पं. सदासुखजी ने जब जीवन के अन्त में सल्लेखना (समाधिमरण) की साधना प्रारम्भ की तब उन्हें यह भान हो गया था कि मेरी मृत्यु इतने दिन बाद, इस दिन इतने बजे हो जाएगी और वैसा ही हुआ था, उन्होंने देशव्रतपूर्वक समता के साथ आहार जल का त्यागकर समाधिमरण को प्राप्त कर उत्तम गति को प्राप्त किया था। यही सादा जीवन उच्च विचार का माहात्म्य है।

आशीर्वाद तो दिल से
दिया जाता है, न कि पिच्छी से।

घड़े की शिक्षा

मानव को शिक्षित करने में प्रकृति भी एक सहायक साधन है। हम भले ही यह सोचते हों कि प्रभु ही हमें मुक्ति का या परोपकार का मार्ग बताते हैं लेकिन ज्ञानियों के साथ-साथ उन वृक्ष, पर्वत, नदियों, पशु, पक्षियों और यहाँ तक कि मिट्टी जैसे पदार्थों से भी हमें धर्म का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कुछ पाठ सीखने को मिलता है।

इस सन्दर्भ में आचार्यश्री ने कहा कि- एक उदाहरण के द्वारा मिट्टी एवं घड़े से मिलने वाली मोक्षमार्ग में उपयोगी शिक्षा को समझेंगे जिस रूपक के मध्य में हमें गुरुवर आचार्यश्री विद्यासागरजी द्वारा रचित 'मूकमाटी' कृति के कुछ संदर्भ भी स्मरण में आयेंगे एवं गुरु शिष्य का सम्बन्ध सद्गुरुओं का उपकार तथा संसार से मोक्ष की यात्रा का मंगलमय प्रसंग उपस्थित होगा।

एक बार की बात है, ग्रीष्म काल का समय था, एक सेठ को प्यास सताती है वह सोचता है कि अब मुझे घड़े की आवश्यकता है जिसके माध्यम से गर्म पानी को ठण्डा बनाया जाता है और स्वयं ही घड़ा लाने हेतु कुम्भकार के गृह की ओर चल देता है। कुम्भकार के गृह पहुँचते ही कुम्भकार सेठ को देखते ही उठकर प्रणाम करता है और कहता है आइए सेठ जी! सेवा का अवसर दीजिए।

सेठ जी – घट खरीदने आया हूँ।

कुम्भकार – हाँ लीजिए! ये घट आपके ही हैं; और सेठ जी आपको इतना कष्ट उठाने की क्या जरूरत थी किसी नौकर को ही भेज देते?

सेठ जी – हाँ भेज तो सकता था; लेकिन अपने मन की वस्तु पाने के लिए प्रत्यक्ष जाना उचित समझा।

सेठ जी ने एक घड़े को अपने हाथों में ऊपर ले लिया और उसे अपनी तर्जनी अँगुली से ज्यों ही बजाया तो उस घट से मधुर सप्त स्वर निकल पड़े सा रे ग म प द नी जिसका अर्थ सेठ जी को ऐसा भाषित हुआ कि जैसे आचार्यश्री (विद्यासागरजी) ने अपनी 'मूक माटी' कृति में लिखा है कि सारे 'गम' आत्मा के पद अर्थात् स्थान नहीं हैं; ऐसे उस कुम्भ (घड़े) के उपदेश से सेठजी बड़े प्रभावित हुए और वे उस कुम्भ से

एक प्रश्न करते हैं कि –

हे कुम्भ! तुम्हारे पास ऐसी अद्भुत शक्ति कहाँ से आई कि जिस कारण तुम अपने शत्रु जैसे पानी को जो मिट्टी को गलाकर उसका रूप-स्वरूप ही बिगाड़कर रख देता है; और विभाव से युक्त वह गर्म पानी जिसको तुम धारण कर ठण्डा बनाते हो तथा सारे संसार को यह उपदेश देते हो कि सारे संसार के 'गम' अर्थात् दुःख आत्मा के पद अर्थात् स्थान नहीं हैं अतः दुःख को समता से सहकर गुरुओं के चरणों में जाकर मोक्षमार्ग में ढलकर आत्मा से परमात्मा बनो?

तब कुम्भ कहता है कि हे सेठ जी! मैं बहुत लम्बी यात्रा पूर्ण करके आया हूँ। अगर तुम सुनना चाहते हो तो सुनाता हूँ।

सेठ जी कहते हैं कि अवश्य सुनाओ जिससे कि मेरा जीवन कुछ नया मोड़ लेकर मुक्ति पथ की यात्रा कर सके और तुम्हारे जैसी सहनशीलता धारण कर सके।

कुम्भ कहता है कि सेठ जी एक समय वह था जब मेरा कोई मूल्य नहीं था; मैं मिट्टी रूप में नीचे पड़ा रहता था, मेरे ऊपर से लोग मुझे पैरों से कुचलते हुए निकलते थे, मेरे ऊपर मल-मूत्र का क्षेपण करते थे और क्या बताऊँकि एक बार ऐसा विकट समय आया कि कोई व्यक्ति (कुम्भकार) एक कुदाली लेकर आया और मेरे ऊपर जब कुदाली चलाई तो मेरा रोम-रोम काँप उठा, लेकिन मालूम नहीं था मुझे कि यह सौभाग्य का ही विषय था कि उसने दोनों हाथों से मुझे एक बर्तन में रखा और सिर पर धारण कर अपने घर ले चला, मेरे आनन्द का पार नहीं रहा, घर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई और घर पहुँचते ही मुझे जमीन पर पटक दिया, मेरे प्राण-से निकल गए और मेरे अस्तित्व को बिखेर देने वाले पानी को मेरे ऊपर डाल दिया, रात भर में मेरे शरीर का बंधन ढीला हो गया, सुबह होते ही मुझे पैरों से कुचल-कुचलकर तरल बनाया, मेरे अन्दर से कंकड़, पत्थर बाहर निकाल कर फेंके और बड़े वात्सल्य से मेरा लोंदा बनाकर मुझे चाक के बीच रखा, मानलो कि मुझे एक आसन पर ही बिठाया हो; लेकिन ज्यों ही एक डण्डा उठाया तो मेरा भय के कारण पूरा शरीर कांप उठा; लेकिन वह डण्डा; मारने के लिए नहीं उठाया था ऐसा मैंने उस डण्डे से चाक घुमाये जाने पर जाना। चाक पर घूमते-घूमते मुझे चक्कर-सा आने लगा, कुम्भकार ने फिर अपने कोमल-कोमल हाथों से मुझे छू कर एक नया आकार दिया, गोल-मटोल बनाया,

अन्दर जल धारण हेतु घट का आकार दिया, फिर छाँव में सुखाया और कुछ कमी दिखते ही अन्दर हाथ पसार के बाहर से चोटें लगाई अर्थात् ठोक-पीटकर मुझे सुन्दर बनाया फिर अच्छी धूप में सुखाकर अन्त में अबे की अग्नि में मेरी अन्तिम परीक्षा ली। वह अग्नि मेरे कण-कण में प्रवेश कर गई और मेरे अनावश्यक तत्वों को जलाकर पूर्ण शुद्ध बनाकर मुझे जल धारण के योग्य एवं गर्म व विभाव अवस्था में परिणत जल को शीतल स्वभाव में लाने के योग्य बनाया। यह सब कुम्भकार का ही उपकार है मिट्टी रूप उपादान मेरा होते हुए भी कुदाली आदिक अनेक साधनों से युक्त वह कुम्भकार हमारे रूप-स्वरूप को बनाने में प्रेरक निमित्त रहा है क्योंकि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के बिना कार्य की सिद्धि असम्भव है। इस प्रकार कुम्भ ने सेठ जी के कहे जाने पर अपनी मिट्टी से लेकर घड़े तक की यात्रा कह सुनाई।

सेठजी बोले कि हे कुम्भ! तुम्हारी यह मिट्टी से कुम्भ तक की यात्रा बड़ी श्रेष्ठ यात्रा है, लगता है कि इसमें पूरी मोक्ष की शिक्षा भरी है।

कुम्भ बोला हाँ सेठ जी! मेरी इस मिट्टी से कुम्भ रूप यात्रामय जीवन से मोक्षमार्ग की मंगलमय शुभ यात्रा का उपदेश अवश्य मिलता है, लगता है आप इसे भी सुनना चाहते हैं तो सुनिए मैं सुनाता हूँ.....

बिना किसी मूल्य के मिट्टी का नीचे पड़ा रहना; शिष्य का असंयमी अवस्था में रहने का संकेत है। कुम्भकार से मिट्टी का डरना यह शिष्य की अज्ञान अवस्था का द्योतक है। मिट्टी को उठाकर सिर पर रख लेना गुरु धर्मोपदेश के द्वारा भव्य शिष्यों को धर्म के मार्ग में प्रेरित और स्थिर करते हैं यह बतलाता है। मिट्टी में जल का मिश्रण करना शिष्य गणों से त्याग या नियम, संकल्पों से सम्बन्ध कराना सिखलाता है। मिट्टी में से कंकड़, पत्थरों को निकालकर फेंक देना शिष्य गणों को अवगुणों से दूर कर निर्दोष बनाने का उद्यम है। मिट्टी को चाक पर चढ़ाना (रखना) शिष्यों को मोक्षमार्ग पर स्थिर करने हेतु उन्हें एक योग्य अवस्था को प्राप्त कराना है। कुम्भकार द्वारा चाक पर स्थित मिट्टी को कोमल हाथों से सम्हालकर आकार देना गुरुओं के द्वारा शिष्यों को दीक्षा देकर योग्य साधक साधु बनाया जाना है। कच्चे कुम्भ को छाया में सुखाया जाना बतलाता है कि गुरु शिष्य को दीक्षा देकर बाह्य तप में तपाकर शिष्य के राग या पापकर्म रूपी जल को सुखाते हैं। घड़े को अन्दर हाथ लगाकर ऊपर से चोट मारकर

सुडौल सुन्दर बनाना यह बतलाता है कि गुरु अपने शिष्य के प्रति अन्तस् में उन्नति की भावना रखते हुए शिष्य से कोई सदोष कार्य होने पर उसे डाटते हुए प्रायश्चित्त देते हैं और उसे शुद्ध बनाते हैं। कुम्भ को धूप में सुखाया जाना हमें यह उपदेश देता है कि प्रायश्चित्त से लेकर ध्यान तक तपों में तपे बिना आत्मा केवलज्ञान से परिपूर्ण नहीं बन सकती। और अन्त में कुम्भ को अग्नि के अबे में तपाया व जलाया जाना यह बतलाता है कि आत्मा के कर्म जले बिना यह आत्मा जन्म-मरण की परम्परा से छूटकर मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकती। जिस आत्मा ने अपने कर्मों को जलाकर मुक्तावस्था को प्राप्त कर लिया तो समझो वह पवित्रात्मा आकुलता-व्याकुलता रूप विभाव अवस्था को प्राप्त आत्माओं को स्वभाव में लाने योग्य बन जाती है अर्थात् ऐसी शुद्ध आत्मा की शरण को प्राप्त होकर संसारी आत्माएँ स्वयमेव स्वभाव की ओर आने लग जाती हैं। इस प्रकार कुम्भ ने कहा कि हे सेठजी! यही मिट्टी से घड़े तक की यात्रा में मोक्षमार्ग की मंगलमय यात्रा की शिक्षा मिलती है जो आत्मा को मोक्ष पहुँचाकर अजर-अमर बना देती है।

सेठ जी ने कहा, धन्य है तुम्हारी साधना, धन्य है तुम्हारा जीवन, जिसने मेरे जीवन में बड़ा परिवर्तन लाया। बड़े आनन्द के साथ सेठ जी ने घड़े को उठाया और सिर पर रखकर अपने घर ले चला और घर पर पहुँचते ही विभाव में परिणत गर्म पानी को घट में भरते ही उस घट ने गर्म जल को तुरन्त ठण्डा बनाना प्रारम्भ किया, थोड़ी ही देर में ठण्डे पानी को पीकर सेठ ने बड़ी तृप्ति का अनुभव किया और सारे 'गम' जो आत्मा के स्थान नहीं है, उन्हें भूल गया। आगे हम इस घड़े को मंगल कलश बनाकर प्रभु की पूजा करेंगे और साधुओं का प्रतिग्रहण करेंगे इन अरमानों में खो गया। ये अरमान एक दिन कुम्भ की यात्रा-सम मोक्ष मार्ग की यात्रा कराकर हमें परमार्थ की साधना कराएंगे ऐसे चिन्तन में लीन हो गया।

ऐसे घड़े और मिट्टी का रूपक गहराई से समझने के लिए परम श्रद्धेय गुरुवर आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज द्वारा विरचित अनेकान्त से ओत-प्रोत ''मूक-माटी'' महाकाव्य कृति भव्य जनों द्वारा अवश्य पठनीय है।

उपर्युक्त दृष्टान्त तो मिट्टी का हुआ, लेकिन मिट्टी और कुम्भ मात्र नहीं, वे वृक्ष भी हमें सिखलाते हैं कि किसी के पत्थर मारे जाने पर भी फल देकर किसी का

निःस्वार्थ उपकार करना नहीं भूलना चाहिए।

वे पर्वत भी बतलाते हैं कि पानी गिरते ही वे जन उपकार हेतु जलधारा नीचे बहा देते हैं क्योंकि अनावश्यक संग्रह वृत्ति जीवन को दूषित बना देती है।

वे नदियाँ कहती हैं कि कोई कितने भी गंदे पदार्थों का सम्पर्क कराए तो भी हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि उसे शुद्ध बनाकर निर्मल जल उपलब्ध कराकर हम सभी को सुखी करें।

वह गाय कहती है कि स्वावलम्बी बन जंगल से कुछ खा-पीकर रक्षक के घर आकर बिना कुछ लिए मीठा-मीठा दूध देना हमारा कर्त्तव्य है। वे तोता, कोयल जैसे पक्षी भी रात्रि में न खाने, न बोलने से हमें खाने-पीने और बोलने पर संयम रखना सिखलाते हैं। इस प्रकार, लोक में रहने वाले नन्हें-नन्हें प्राणियों से भी एवं प्रकृति प्रदत्त जीवन से भी बहुमूल्य शिक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सदाचारमय अवश्य बना सकते हैं।

आत्म परिचय

मुक्ति की प्राप्ति हेतु प्रत्येक आत्मा को दिन-प्रतिदिन अपने परिचय के बारे में अवश्य चिंतन करना चाहिए। जिस आत्मा को अपना (अपनी आत्मा का) वास्तविक परिचय याद नहीं वह बाहरी देश, ग्राम, गृह और शरीरादिक के परिचय को जानकर भी मूढ़ात्मा की कोटी में आता है, क्योंकि उसने पुद्गल और आत्मा के भेद को नहीं पहचाना है। अतः अनादिकाल से इस जीव का संसार में ही भ्रमित होकर भ्रमण हो रहा है। अपने इस भव भ्रमण को दूर करना चाहते हैं तो आगम के इस श्लोक का नित्य चिंतन करना चाहिए; जिससे अपने परिचय के ज्ञान के साथ-साथ अपना कुमार्ग में भटकना छूटकर सच्चा मार्ग मोक्षमार्ग प्राप्त हो जाए; अपने आत्म परिचय के सम्बन्ध में कहा गया है कि -

कोहं कीदृग्गुणः क्वत्यः किम् प्राप्यः किम् निमित्तकः।
इत्यूहः प्रत्यहं नो चे दन्य स्थाने मतिर्भवेत्॥

-छत्र चूड़ामणि

अर्थात् मैं कौन हूँ? मुझमें कैसे गुण हैं? मैं कहाँ से आया हूँ? क्या प्राप्त करने योग्य है और मैं किस निमित्त से हूँ? (अर्थात् वह किस निमित्त से प्राप्त होगा?) यदि इस प्रकार का विचार प्रतिदिन नहीं होवे तो मनुष्यों की बुद्धि विपरीत स्थान में प्रवृत्त हो जाती है।

इन सभी उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर हम अपनी आत्मा से पूछें और अगर हमारा मन धर्मनीर से (गुरुपदेश व शास्त्र स्वाध्याय से) पवित्र निर्मल होगा तो समीचीन उत्तर हमें अवश्य मिलेगा। वह (आत्मा) अवश्य उत्तर देगी कि मैं एक आत्मा (जीव) हूँ। मैं ज्ञान, दर्शन गुण वाला हूँ। मैं चतुर्गति संसार में भटकता आ रहा हूँ। मैं जन्म, मरण, भूख, प्यास आदि के दुःखों से दूर उस मोक्ष अवस्था की प्राप्ति के लिए आया हूँ। उस मोक्ष की प्राप्ति सच्चे वीतरागी देव, शास्त्र और गुरु की साक्षी में रत्नत्रय के लाभ से मुझे शीघ्र प्राप्त हो इस निमित्त से मैं यहाँ इस अवस्था को प्राप्त हूँ। ऐसा उत्तर मिलते ही विचार आता है कि इस संसार में अरहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिनवाणी का समागम बड़ी दुर्लभता से विशेष पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होता है।

एक संसारी जीवात्मा स्वयं कृत पापोदय के कारण निगोद रूप एकेन्द्रिय जीव की अवस्था में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरणों के दुःखों को प्राप्त करता

है, और कुछ काल के बाद कुछ कर्म हल्का होने पर कभी कोई जीव भूमि, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (पेड़-पौधे), इत्यादि रूप में एकेन्द्रिय अवस्था को ग्रहण करता है। तदुपरांत दुर्लभ रूप त्रस पर्याप्त में लट, शंख आदि द्वीन्द्रिय; चींटी, बिच्छू आदि त्रीन्द्रिय; भ्रमर, पतंगा आदि चतुरेन्द्रिय; छिपकली, विषमिरा आदि असंज्ञी पंचेन्द्रिय एवं सर्प, सिंह, हाथी, आदि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय को प्राप्त करता है। तदुपरांत कुछ पुण्योदय से आत्मा को दुर्लभतम मनुष्य पर्याय का लाभ होता है जिसमें भी पुरुष पर्याय का पाना उससे भी दुर्लभ होता है, इसके बाद जहां समीचीन (सम्यग्दृष्टि) आगम अनुसार तपस्या करने वाले साधु तथा श्रावक धर्मात्मा रहते हैं ऐसे उत्तम देश की प्राप्ति और भी दुर्लभ है। तथा सत्संगति पाकर सम्यग्दर्शन अपनाना विशेष दुर्लभ है। सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रतों को धारण करना उससे भी दुर्लभ है। इसके आगे मोक्ष के योग्य उत्तम काल चतुर्थकाल का मिलना उससे भी दुर्लभ है और चतुर्थकाल में भी केवली भगवान का समागम और भी दुर्लभ है एवं मुनिपद के साथ समवशरण दर्शन विशेष दुर्लभ है तथा स्वयं केवली बन जाना उससे बड़ा दुर्लभ है। उसी तरह लोक कल्याण कारक तीर्थंकर पद पाना महादुर्लभ है। फिर अन्त में अष्ट कर्म का नाश कर मुक्ति (मोक्ष) पद के पाने और सिद्धालय में बस जाने रूप अवसर महा-महा दुर्लभ है।

आज भी पंचमकाल में जो लोग सम्यग्दर्शन को प्राप्त करते हैं वे स्वर्गलोक में वैमानिक देवों की पर्याय को प्राप्त करते हैं अथवा जो भव्य सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रतों को धारण करते हैं वे अतिशय वैभवशाली ऋद्धिधारी देव होते हैं।

सम्यग्दृष्टि देवों की यह एक विशेष भक्ति होती हैं कि वे स्वर्ग में उत्पन्न होते ही अपने भव-प्रत्यय अवधिज्ञान के माध्यम से अपने पूर्व-भव के धर्म अनुष्ठान, देव, शास्त्र, गुरु, धर्म स्थान और साधर्मीजनों को स्मृत कर लेते हैं। कैसे? ऐसा पूछो तो; एक सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग में विचार करता है कि मैं अमुक क्षेत्र, अमुक देश, अमुक नगर में निवास करता था मुझे ऐसे वीतराग जिनालय का दर्शन हुआ था जहां मुझे अमुक गुरुदेव ने सच्चा मोक्षमार्ग दर्शाया था। जिस कारण मुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और व्रतादिक का लाभ हुआ था जिसके फलस्वरूप मुझे यह स्वर्गादिक वैभव प्राप्त हुआ है। अब मैं मोक्ष जाने के पहले-पहले तक किसी भी अवस्था में धर्म को विस्मृत नहीं करूंगा, विषय भोगों में अतिलिप्त नहीं होऊंगा, कर्मक्षय एवं पुण्यार्जन के कार्य,

वीतरागियों की पूजा-सेवा करता रहूँगा। मुझे जिन गुरुओं से रत्नत्रय का लाभ हुआ था ऐसे उन गुरुओं के प्रत्युपकार एवं वैयावृत्त करने को उत्कण्ठित होता है। अपने सहधर्मियों के समागम, पूर्व जन्म में की हुई समवशरण की भावना से समवशरण के जिनदर्शन की सहधर्मियों से वात्सल्यपूर्वक भावना प्रकट करता है। वह सम्यग्दृष्टि देव जो अनेक सेवक देवों द्वारा तरह-तरह के रत्न, महलादिक वैभव, यह सब आपके हैं! ये सब आपके हैं! ऐसा कहे जाने पर भी तथा लाखों-करोड़ों अति सुन्दर -सुन्दर अप्सराओं (देवियों) के स्वागत सत्कार के सुख को पाते हुए भी उन्हें उपेक्षित कर सपरिवार रत्नादिक से सुसज्जित मंगल पूजा द्रव्यों को लेकर मध्यलोक में स्थित साक्षात् भगवान के समवशरण की ओर गमन कर देता है। और वहाँ जाकर वे सब साक्षात् प्रभु का दर्शन, पूजन करके अपने नेत्रों को सफल बनाते हैं। भगवान के अनेक पञ्चकल्याणकों को मनाकर अतिशय पुण्य का लाभ प्राप्त करते हैं। वैभव में अधिक रचते-पचते नहीं हैं एवं सदा मनुष्य भव की और व्रती बनने की भावना भाते रहते हैं।

सम्यग्दृष्टि भव्यात्माएँ सागरों की आयु सुखपूर्वक भोगकर मनुष्य भव को प्राप्त करते हैं मनुष्य भव में संयम एवं सल्लेखना आदि धर्मानुष्ठानों को करते हुए उत्कृष्ट से दो-तीन भवों या जघन्य से सात-आठ भवों के भीतर ही शिवगति (मोक्ष) को प्राप्त कर लेते हैं।

इसी तरह जो भव्यात्माएँ मुनि बन साधु चर्या का निर्दोष पालन करते हुए बारह भावनाओं (अनुप्रेक्षाओं) के चिन्तन में सदा लीन बने रहते हैं वे आज पञ्चम काल में भी पञ्चम स्वर्ग के ब्रह्म ऋषि या देव ऋषि रूप एक भवअवतारी लौकान्तिक पद धारण कर द्वादशांग के ज्ञानी बन अपूर्व सुख को प्राप्त करते हैं। वहाँ वे इन्द्रिय विषय भोगों से उदासीन, सदा धवल वस्त्रों के साथ ब्रह्मचर्य जैसे रूप में रहते हैं। तीर्थंकरों के जीवन में मात्र अभिनिष्क्रमण (दीक्षा कल्याणक) के समय नीचे आकर उन तीर्थंकरों के वैराग्य की सराहना कर ऊपर स्वर्ग में चले जाते हैं। वहाँ वे आठ सागरोपम आयु ज्ञान-चर्चा में बिताकर मनुष्य-भव पाकर मुनि बन उसी भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

आयुबंध विचार

सद्गति के अभिलाषी और दुर्गति से भयभीत भव्यात्मा को नित्य ही अपने परिणाम निर्मल रखना चाहिए क्योंकि आयुकर्म का बंध किस समय हो जाए मालूम

नहीं । आयुकर्म का बंध जीवन में एक ही बार होता है और हमारी आयु कितनी है यह भी हम नहीं जानते हैं। आगमानुसार कर्म भूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों को आयुबंध आयुकर्म के त्रिभाग में होता है अर्थात् आयुकर्म के तीन भागों में से दो भाग बीत जाने पर तीसरे भाग के प्रथम अन्तर्मुहूर्त में वे मनुष्य एवं तिर्यंञ्च; आयुबंध के योग्य होते हैं। इस प्रकार इस जीव को आयु के आठ त्रिभागों में आयु बंध के आठ अवसर प्राप्त होते हैं। अगर प्रथम त्रिभाग में आयुबंध नहीं हो पाता तो शेष रहे त्रिभाग के तीन भागों में से दो भाग बीत जाने पर प्रथम अन्तर्मुहूर्त में आयुबंध के योग्य होता है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर भागों में आयुबंध की योग्यता समझना चाहिए। अगर इन आठों ही त्रिभागों में आयुबंध नहीं हुआ तो मरण के अन्तर्मुहूर्त पहले नियम से यह जीव आयुबंध कर ही लेता है जैसा कि कहा भी गया है:-

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स।
णरतिरिया सव्वाउं तिभाग सेसम्मि उक्कस्स ॥639॥
भोगभुमा देवाउं छम्मासवसिट्ठगे य बंधंति।
इगविगला णरतिरियं ते उदुगा सत्तगातिरियं ॥640॥

(गोम्मटसार कर्मकाण्ड)

अर्थ - देव, नारकी भुज्यमान आयु के उत्कृष्ट रूप से छह मास अवशेष रहने पर अथवा छह मास के उत्तरोत्तर विभाग का त्रिभाग शेष रहने पर; परभविक मनुष्यायु या तिर्यंचायु को बांधते हैं अर्थात् उस काल में परभविक आयु के बंध योग्य होते हैं। भोगभूमियां भी इसी प्रकार भुज्यमान आयु के छह माह शेष रहने पर अथवा छः माह के उत्तरोत्तर त्रिभाग शेष रहने पर परभविक देवायु के बंध योग्य होते हैं। कर्म भूमि के मनुष्य या तिर्यंच भुज्यमान आयु का त्रिभाग अथवा उत्तरोत्तर त्रिभाग शेष रहने पर परभविक चारों आयु के बंध योग्य होते हैं। एक बार आयु का बंध हो जाने पर वह बदलता नहीं अर्थात् बंधी आयु का संक्रमण संभव नहीं लेकिन घटना-बढ़ना अर्थात् अपकर्षण-उत्कर्षण संभव है जैसे राजा श्रेणिक ने मिथ्यात्व कर्म के उदय में यशोधर मुनि पर उपसर्ग करते समय आयुबंध के काल के उपस्थित होने पर नरक संबंधी सप्तम पृथ्वी की 33 सागर वर्ष की आयु को बांध लिया था लेकिन फिर जैन धर्म की अटूट श्रद्धा होने पर धर्म के विशेष प्रभाव से वह आयुबंध पहले नरक का होकर 84 हजार वर्ष मात्र का रह गया लेकिन मनुष्य, देव गति आदि रूप में नहीं बदल सका।

अतः हमें अपने परिणाम हमेशा धर्ममय शुभ विशुद्ध रखने की आवश्यकता है। कर्म भूमिज सभी तिर्यंच मनुष्यों की आयु समान नहीं होती और उनके आयु कर्म का त्रिभाग कब उपस्थित होता है मालूम नहीं हो पाता। अतः जो धर्मी अपना अधिक-से-अधिक समय व्रत, संयम रूप धर्मध्यान में बिताया करते हैं वे आयुबंध के समय उत्तम गति वैमानिक देवगति को बांध लेते हैं और जो धर्म के क्षेत्र में अजाग्रत रहते हैं वे दुर्गति (नरक, तिर्यंच, कुदेवादिक) को बांध लेते हैं। जैसे फोटो खींचते समय रेडी-रेडी कहने पर तो टिप-टाप होकर तैयार रहते हैं लेकिन बटन दबाते समय गर्दन नीचे कर लेते हैं या आंख मीच लेते हैं तो फिर क्या? जब फोटो सामने आती है तब ऐसा क्यों? वैसा क्यों? जवाब-सवाल पूछने लग जाते हैं; बस उसी तरह कभी-कभी लोगों का जब बुरे भावों से अशुभ आयु का बंध हो जाता है तब दुर्गति प्राप्त कर उसे वहाँ भोगने लग जाते हैं।

षट् लेश्यायें

प्राणी के परिणाम अनेक तरह के हुआ करते हैं जो तरह-तरह के निमित्त और अपने पुरुषार्थ के माध्यम से बदलते रहते हैं। इन्हें आगमिक दृष्टि से छः लेश्या रूप में विभाजित किया गया है -

(1) कृष्ण लेश्या रूप परिणाम अर्थात् महा बुरे भाव।
(2) नील लेश्या रूप परिणाम अर्थात् बुरे भाव।
(3) कापोत लेश्या रूप परिणाम अर्थात् स्वल्प बुरे भाव।
(4) पीत लेश्या रूप परिणाम अर्थात् कुछ अच्छे भाव।
(5) पद्म लेश्या रूप परिणाम अर्थात् उत्तम भाव।
(6) शुक्ल लेश्या रूप परिणाम अर्थात् उत्तमोत्तम भाव।

लेश्या की परिभाषा लिखते हुए आचार्यों ने कहा है कि "**कषाय अनुरंजित परिणामः लेश्या**" अर्थात् कषाय से रंगे हुए परिणामों का नाम लेश्या है। जितनी-जितनी आत्मा की कषाय मन्द या हीन होती चली जाती है उतनी-उतनी आत्मा की कृष्ण लेश्या आदिक से शुक्ल लेश्या की ओर उन्नति होती चली जाती है जिसे एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं :- एक गाव में 6व्यक्ति हैं और उसी गांव में एक आम का पेड़ है। आम के फल की प्राप्ति हेतु एक व्यक्ति आम के वृक्ष को मूल से काट रहा है जिसे कृष्ण लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए। उसी तरह दूसरा व्यक्ति आम के

वृक्ष की कच्चे-पक्के आमों से भरी बड़ी डाली को काट रहा है जिसे नील लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए एवं तीसरा व्यक्ति कच्चे पक्के आमों की छोटी डाली को काट रहा है जिसे कापोत लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए और चौथा व्यक्ति डाली को नहीं काट कर कच्चे, पके आमों के गुच्छे को तोड़ रहा है जिसे पीत लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए। पांचवाँ व्यक्ति कच्चे आमों को छोड़कर मात्र पके आमों को तोड़ रहा है जिसे पद्म लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए। छठवां व्यक्ति पककर गिरे हुए आमों को मात्र पेड़ के नीचे से ही बीन रहा है जिसे शुक्ल लेश्या का उदाहरण समझना चाहिए। पहले व्यक्ति को पेड़ के नष्ट होने से उसकी हिंसा होने तथा आगे के लोगों को फल के लाभ से वंचित होने की चिंता नहीं लेकिन आगे दूसरे आदि व्यक्ति को पेड़ और लोगों के लाभ की चिंता बढ़ती गई तथा छठवें व्यक्ति ने आम के पेड़ को तथा उससे प्राप्त आम के फलों से लाभ उठाने वाले व्यक्तियों को कुछ भी कष्ट दिए बिना ही अपना कार्य पूरा किया। यही उन्नत भावों का परिणाम है। इस प्रकार यह जीव जैसे परिणाम करता है वैसे ही कर्म बंध में बंध जाता है।

बारह दृष्टियाँ

इस जगत का स्वरूप कैसा है उसका वैसा ही (राग-द्वेष नहीं करते हुए) चिंतन करने से हमारा मन पाप में नहीं जाता और हम कर्म बंध से बच जाते हैं। इस जगत को हम 12 दृष्टियों से देख सकते हैं जो दृष्टियां आपस में एक दूसरे की पूरक हैं। इनका दूसरा नाम अनुप्रेक्षा या भावना भी है। पहली दृष्टि से देखने पर यह संसार पर्याय की अपेक्षा से क्षणभंगुर अनित्य है इसमें कोई भी वस्तुएँ शाश्वत नहीं। दूसरी दृष्टि से देखने पर इस संसार में कोई भी शरण नहीं आयु पूर्ण होने पर मृत्यु से कोई भी बचाने (रक्षा करने) वाला नहीं अतः यह संसार अशरण है। तीसरी दृष्टि से देखने पर यह जीव हमेशा अपने-अपने कर्मोदय से मनुष्य, देव, तिर्यंच और नरक रूप चतुर्गति में दुःखों का अनुभव करता हुआ संचरण करता रहता है अतः ऐसे गति भ्रमण का नाम ही संसार है। चौथी दृष्टि से देखने पर यह जीव संसार में कर्मों से रहित होकर अकेला ही भ्रमण करता है अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही सुख-दुःख को भोगता है। ऐसे चिन्तन का नाम एकत्व भावना है। पांचवी दृष्टि से जीवात्मा और उसके साथ लगा हुआ शरीर दूध और पानी के समान लक्षण की अपेक्षा भिन्न-भिन्न स्वभाव वाला है फिर स्पष्ट रूप से दूर जो धन, गृह, परिजन आदिक हैं वे

जीवात्मा के कैसे हो सकते हैं? उन्हें अपना मानना मिथ्या है। जैसे मिलाकर रखे हुए दूध पानी को हंस पक्षी भिन्न-भिन्न कर देता है अर्थात् दूध-दूध को तो पी लेता है और जल छोड़ देता है। उसी तरह योगी लोग ध्यान के माध्यम से शरीर से आत्मा भिन्न-भिन्न कर लेते हैं। ऐसा चिन्तन करना अन्यत्व अनुप्रेक्षा है। छठवीं दृष्टि से देखने पर संसारी जीव का शरीर अशुचिता का गृह है इसमें रक्त, मांस, पीप, मल, मूत्रादिक भरे हुए हैं। इस शरीर से नव मल द्वार बहते रहते हैं अतः ऐसे शरीर में मोह-राग कर्म बंध का कारण है ऐसा चिन्तवन अशुचित्व भावना है। सातवीं दृष्टि से देखने पर यह संसारी जीव हमेशा शुभाशुभ कर्मों का आस्रव कर रहा है जैसे छिद्र सहित नाव पानी से भर जाती है बस उसी तरह यह जीव मिथ्यात्व, अविरति आदि के द्वारा कर्मों को संजोता रहता है। आठवीं दृष्टि से देखने पर यह जीव अपने पुरुषार्थ के बल से मिथ्यात्व अविरति आदि को छोड़कर सम्यक्त्व व संयम आदि के बल से कर्मों के द्वार को बंदकर संवर अवस्था को प्राप्त करता है। नौवीं दृष्टि से देखने पर यह जीव तपादिक अनुष्ठान के द्वारा पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा कर अग्नि से तपाये गए स्वर्ण पाषाण की तरह शुद्ध अवस्था में पहुँच जाता है। दसवीं दृष्टि से देखने पर जीव और पुद्गल जिसमें परिणमन करते हैं ऐसा लोक जो अनादिनिधन शाश्वत है वह ना किसी से बनाया गया और ना मिटाया जाता है और ना ही किसी से रक्षित या धारण ही किया गया है। ग्यारहवीं दृष्टि से विचारने पर इस लोक में तीन रत्न बड़ी दुर्लभता से प्राप्त होते हैं जो सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं ये रत्नत्रय मोक्ष के प्रदाता हैं यह बोधि दुर्लभ भावना है। बारहवीं दृष्टि से चिन्तन करने पर इस लोक में शान्ति और सुख का परम साधन धर्म है जो धर्म, अहिंसा, दया और क्षमादिक रूप है। इन बारह दृष्टियों या अनुप्रेक्षाओं से क्रमशः हम अपनी आत्मा की ओर आ जाते हैं क्योंकि अहिंसा, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि ये सब आत्मा के गुण हैं। जब हम संसार से मोह छोड़कर अपनी आत्मा रूपी दर्पण में झाँकते हैं तब हमें अपनी गुण सम्पदा का भान होता है। कभी-कभी या प्राथमिक दशा में पर वस्तु हमें अपने आत्मिक गुणों के वैभव को या सच्ची अवस्था को प्राप्त कराने में साधक हो जाती है जैसे कोई व्यक्ति एक छाता लेकर बाजार गया और एक दुकान पर छाता भूलकर आ गया लेकिन रास्ते में जब पानी के छींटे गिरने लगे और दूसरे के हाथ में छाता देखा तो उसे अपना छाता याद आ गया। उसी तरह हम अपने आत्म गुण वैभव को भूलकर जगत के जड़ वैभव में

अटक-भटक गए हैं लेकिन जब हम अरहन्त या पंच परमेष्ठी के दर्शन करते हैं तब हमें अपनी गुण रूपी धर्म सम्पदा याद आ जाती है और हम पश्चाताप कर लौकिकता से मुख मोड़ धर्म में लग जाते हैं।

वीतराग भगवान की मुद्रा एक ऐसा दर्पण है जिसमें सब प्रकार की क्षुधा, पिपासा, राग, द्वेष, काम अलंकार आदिक 18दोषों से रहित एक शुद्ध परमानंद रूप ध्यान का स्वरूप झलकता है। जिस निष्कलंक (बेदाग) वीतराग दर्पण में अपना मुख देखने से संसारी आत्माओं को मुख पर लगी कालिमा के समान अपने कृत पापों का दर्शन होने लग जाता है तथा संसारी आत्मा अपनी पाप कालिमा को धोने हेतु धार्मिक अनुष्ठानों के करने में तत्पर हो जाती है। उसे अपने पापमय जीवन पर पश्चाताप होने लगता है और अपनी वास्तविक गुण धर्म सम्पदा पर श्रद्धा पैदा हो जाती है तब सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूप मोक्षमार्ग पर कदम रखते ही उस आत्मा का ''संसार वारिधिरयं चुलुक प्रमाणं'' संसार समुद्र चुल्लू मात्र शेष रह जाता है। यह वीतरागता की महिमा है।

आज इस संसार में काले धब्बे से सहित दर्पण या तरंगायित जल के समान अनेक सरागी कामवासना, अलङ्कार आडम्बर से सहित कुदेव एवं कुगुरुओं का दर्शन भी सुलभ है लेकिन जिसमें हमें अपने मुख का दर्शन नहीं हो सकता। बेदाग दर्पण या निस्तरंग जल ही हमें अपना मुख दिखा सकता है। उसी तरह पाप, काम वासनाओं अलङ्कार आडम्बर आदि से रहित वीतराग परमेष्ठी रूप दर्पण ही हमें परम पावन निर्मल बना सकता है। धन्य है ऐसे वीतरागी आत्मा की स्मृति कि जिसके दर्शन से हमें अपना पता (आत्म वैभव) स्वयमेव याद आ जाता है। किसी ने कहा भी है कि:-

नाम लेता हूँ तुम्हारा, तुम याद आते हो।
मैं वह खोई हुई चीज हूँ, जिसका पता तुम हो॥

अत: हम परम वीतरागियों, निर्ग्रन्थों की भक्ति कर अपना पता प्राप्त कर मोक्षमार्ग को अपनाकर उन्हीं पंच परमेष्ठी के ध्यान द्वारा उत्तम गति रूप पंचम गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करें।

जैन शासन का हृदय

- ★ दैव और पुरुषार्थ
- ★ नियत और अनियत
- ★ निमित्त और उपादान
- ★ अनेकान्त को पहचानो
- ★ अनादि विश्व और वर्तमान दृष्टि
- ★ भव-मुक्ति का उपाय
- ★ युग के आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभनाथ
- ★ तीर्थंकर भगवान महावीर और उनका दिव्य संदेश
- ★ भावना भव नासिनी

दैव और पुरुषार्थ

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।।
सर्व मंगल मांगल्यम्, सर्व कल्याण कारकम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयतु शासनम् ।।

इस संसार में प्रत्येक मानव सुख चाहता है और दुःख से भयभीत होता है परन्तु दुःख के कारणों को नहीं छोड़ता और सुख के कारणों की प्राप्ति से दूर रहता है और डरता भी है। हमारे आचार्य कहते हैं कि ''कुछ त्याग करने के बाद ही हम कोई नई वस्तु पाते हैं, कुछ पाना है तो कुछ खोना पड़ता ही है।'' भव्य लोग अपने जीवन में पापों को गलाने के लिए पुण्य सम्पादन के लिए और सद्गति पाने के लिए पूजा पाठ आदि अनुष्ठान रचाते हैँ। हम पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठान के माध्यम से अपना जीवन मंगलमय बनायें, अपने अनन्त जन्मों के अर्जित पापों का क्षय हो और हम लोग उन प्रभु जैसे बनकर उन जैसे सुखी बन जायें यही भावना अपने अन्तस् में होना चाहिए।

आचार्य कहते हैं- इस जगत में हम देखते हैं कि जो हमें कई प्रकार के फल मिलते हैं उनमें दैव और पुरुषार्थ की व्यवस्था है; दैव को हम आगे विस्तार से समझ सकते हैं और पुरुषार्थ को आप जानते ही हैं कि जो मेहनत करके लगन के साथ उत्साह पूर्वक कोई कार्य सम्पन्न किया जाता है उसमें पुरुषार्थ की मुख्यता रहती है। और अनायास ही जो कुछ हो जाया करता है या बहुत कुछ करने पर भी नहीं होता चाहे अच्छा हो या बुरा उसे दैव कहते हैं उसे ही कर्म या भाग्य भी कहा जा सकता है। ''आचार्य समन्तभद्र स्वामी'' कहते हैं कि-

अबुद्धि पूर्वापेक्षाया, निष्ठा निष्ठं स्वदेवताः।
बुद्धि पूर्वाप्यापेक्षा, निष्ठा निष्ठस्य पौरुषं॥

'आप्तमीमांसा' में ऐसा कहा है कि पूर्व में ऐसा कुछ विचार न करने पर भी जब कभी अकस्मात् अनिष्ट या इष्ट रूप घटना घटती है तब उसमें दैव की प्रधानता रहती है और तब पुरुषार्थ को गौण समझा जाता है जैसे कि- अकस्मात् भूमि को खोदने पर धन की प्राप्ति अथवा अकस्मात् यात्रा करते हुए दुर्घटना या अकस्मात् मरण इसके

उदाहरण हैं। उसी प्रकार पूर्वापर विचार करते हुए जो इष्ट अनिष्ट फल प्राप्त होता है उसमें पुरुषार्थ की प्रधानता रहती है और दैव की गौणता समझना चाहिए जैसे कि- व्यापार आदि से धन प्राप्त करना या विष भक्षण आदि के द्वारा मरण को प्राप्त होना। इस प्रकार हम दैव और पुरुषार्थ दो चीजें समझ रहे हैं यहाँ हम देखते हैं इस जगत में कई कार्यों में लोग बहुत पुरुषार्थ करते हैं और पुरुषार्थ करते-करते भी वह कार्य नहीं हो पाता तो क्या समझना चाहिए कि कर्म बहुत बलवान है, वो जैसा चाहेगा वैसा करायेगा भी दिखायेगा भी। हमारा पुरुषार्थ उसमें कुछ नहीं कर सकता अर्थात् जैसा निकाचित कर्म होगा वह वैसा ही फल चखायेगा।

एक बेटा जो कि बहुत गरीब परिवार का था। कारण ये था कि जो पूर्व में नगर सेठ कहलाते थे लेकिन पूर्वकृत किसी अशुभ कर्म की वजह से उनको व्यापार में अत्याधिक घाटा हुआ। इसकी वजह से वे दिवालिया हो गये, आभरण चले गये, वस्तुयें चली गईं, धीरे-धीरे घर चला गया और बाहर जाना पड़ा। अन्त में बाहर जाने के बाद जब कुछ भी पास नहीं रहा, कोई सहारा नहीं दिखा तो कर्म क्या-क्या नहीं करवाता देखो? एक ही बात शेष रही थी लेकिन उस कर्म ने ये भी करा दिया देखो कि भिक्षा से ही जीवन चलाने लगा, भीख मांग कर खाने लगे। भीख कभी-कभी मिल जाय कभी नहीं भी। धीरे-धीरे पिता का भी मरण हो गया। (एक बेटे का भी मरण हो गया।) पत्नी अकेली ही बेटे को पालती है और बेटे से बोलती है जाओ कुछ तो काम करो। अब तुम 8-10 वर्ष के हो गये हो; तो बेटा चला गया किसी धनी के यहाँ-वहाँ खेत में काम करता है। देखने में अच्छा लगता है; तो लगता है कि अच्छा कुल वाला है। सेठ एक दिन सबको कुछ मजूरी दे रहा था तो देते वक्त देखा कि ये बालक कौन है? वस्त्र भी पुराने हैं, फटे हैं, वह देखता है ये बालक कौन हो सकता है, पूछा हे बेटा! रुको, इधर आओ, मैं जो कुछ पूछता हूँ उत्तर देओ। तुम्हें जो कुछ दिया है वह तो बहुत कम है और भी इच्छा होती है कि तुम्हें और भी कुछ दे दें। परिचय दो, बेटे ने अपना परिचय दिया कि मैं उनके बेटा हूँ, उनका ये नाम था, अरे वे तो नगर सेठ थे। गरीबी कैसे आ गई? गाँव छोड़ के रहते हो; वो हमारे मित्र थे, हम तुम्हें कुछ और देंगे। सबके जाने के बाद करुणा आई और उसे एक हाथ पर सोने की मुहरें दी, ज्यों ही सोने की मोहरें दी वे अंगार बन गईं और हाथ जल गये। अरे! इसका कर्म कितना प्रबल है? ऐसा सोचते हैं क्या कहें बच्चा छोटा है, चलो पोटली भर के चने ले लो। चने दे दिये और वह चलता गया, वस्त्र फटा था, रास्ते भर चने गिरते चले गये। माँ के पास पहुँचा। माँ ने सोचा; चलो, सुबह से बेटा गया था अब आया है, कुछ लाया होगा। हम इतने

बड़े घर के थे काम पर भी नहीं जा सकते बाहर। ऐसा सोचती है। बेटे को दरवाजा खोलती है, बेटा! क्या लाये? और देखती है, एक-डेढ़ मुट्ठी चने हैं बस; इतना ही दिया दिन भर की मेहनत के बाद? नहीं माँ, दिया तो बहुत था अशर्फियाँ दी थीं मगर अंगार बन गयीं फिर क्या दिया? एक पोटली भर चने दिये थे लेकिन वस्त्र फटा हुआ था इसलिए सब गिर गये मात्र इतने ही बचे। बेटा! क्या कहें तुम्हारा भाग्य? जबसे तुम आये, तुमने जन्म लिया तबसे कितने अपशकुन हुये, घर चला गया, सम्पत्ति चली गई और तेरे पिता भी चले गये और अभी तक तेरा कर्म तुझे नहीं छोड़ रहा है। एक पोटली चने भी एक डेढ़ मुट्ठी बचे। कर्म किसी को नहीं छोड़ता। माँ तो पुरुषार्थ कर रही है मगर उसे दैव नहीं छोड़ रहा है दैव मतलब कर्म उसे नहीं छोड़ रहा है। भाग्य भी कैसा? कैसा कर्म था? कि ऐसा फल चखाया। घर में आते ही पूरा घर बरबाद हो गया। सब दर-दर भटकने लगे और सब कुछ मिलने के बाद भी वह हाथ में नहीं आ रहा था। कर्म बहुत बलवान होता है। हम लोग कई बार ऐसे कर्म बांध लेते हैं अपने भावों से, तीव्र कषायों के साथ, उनका फल भी बहुत कड़वा होता है तो विचार करना है कभी पुरुषार्थ का फल हमें मिलता है तो कभी-कभी दैव हमें तरह-तरह के फल चखा देता है। हम वहाँ भी थोड़ा देखें कि वे राम जब इतना पुरुषार्थ करके सीता के लिए सुविधाएँ जुटाते हैं और लक्ष्मण भी अपनी रेखा खींच कर चले गये जंगल में राम को ढूढ़ने; कितना तीव्र कर्म का उदय था कि उनका पुरुषार्थ भी फेल हो गया, सीता का हरण हो गया। और हर ले गया रावण। कैसा तीव्र कर्म था सीता का, कि वह रेखा भी क्या करती। रेखा तो बाहर से अन्दर आने वालों के लिए खीचीं गई थी, अन्दर से बाहर आने वाले के लिए नहीं। ऐसा तीव्र कर्म था, कहा था अन्दर से बाहर मत आना और सीता का बाहर आना हुआ और आते ही हरण हो गया। फिर राम ने पुरुषार्थ किया और फल भी पाया कि सीता को लाने के लिए पुल बनाया फिर युद्ध किया और सीता को वापिस लाये यह पुरुषार्थ का फल पाया। ऐसे ही बैठे रहते तो कैसे काम-चलता। दैव गौण हो गया पुरुषार्थ मुख्य हो गया। पहले पुरुषार्थ गौण हो गया था दैव मुख्य हो गया था। अब देख लो सीता को लेकर अपने नगर तो चले लेकिन अपवाद होगा अपवाद के कुछ निमित्त बनेंगे। इसलिए क्या करना; लोग कहेंगे कि पर घर में गई नारी को एक राजा ने घर में रख लिया।

राम ने यह विचार किया कि जनता क्या सोचेगी? गलत परम्परा चलेगी? इसलिए सीता को दण्डकारण्य में छोड़ दिया। उन्होंने पुरुषार्थ किया लेकिन अब पुनः दैव मुख्य हो गया। सीता का कर्म इतना प्रबल था। एक सेनापति को बोला जाओ

सीता को जंगल में छोड़ कर आना है। स्वामी! आप क्या कर रहे हैं? इतने सुकोमल-नाजुक शरीर वाली महलों में रहने वाल सीता माता; जिन्हें जंगल में छोड़ कर आना है, हे स्वामिन्! हम छोड़ कर तो आयेंगे लेकिन जंगल के दुःख को वे कैसे सहेंगी? महलों में रहने वाली रानी को जंगल में छोड़ेंगे तो ऐसा बड़ा पाप, स्वामिन्! ऐसा अक्षम्य अपराध मुझसे नहीं हो सकता। राम ने कहा यह मेरा आदेश है। सीता को मैं घर में नहीं रखूंगा। सीता का कर्म बड़ा प्रबल था। दण्डकारण्य में छुड़वाने के लिए बोला गया था तो वह सेनापति गया तो मगर रोते-रोते गया। और छोड़कर पैरों में पड़कर बोला, माता मुझे क्षमा कर दो। तब सीता माता ने एक ही बात कही- ''राम को कह देना कि जैसे तुमने मुझे छोड़ दिया वैसे तुम धर्म को मत छोड़ देना''। मुझे छोड़ दिया तो छोड़ दिया धर्म मत छोड़ देना ऐसी बात कही। सेनापति बहुत रोया। इतने शील धर्म का पालन करने वाली सीता; फिर भी राम ने जंगल में छोड़ दिया। राम का कोई दोष नहीं है वे राम तो राजा हैं। राजा कभी भी अपने जीवन में अपवाद को पसंद नहीं करते। इसलिए उन्होंने सीता को जंगल में छुड़वा दिया। ये संदेश कैसे पहुँचाये वहाँ तक, संदेश पहुँचाने के लिए महल तक जाना पड़ेगा; नहीं तो मैं ऐसे पाप का क्षय करने लिए जंगल में यहीं रह जाता। अब तो ऐस पाप को निकालने के लिए एक ही मार्ग होगा ''जिन दीक्षा''। तभी मेरा यह पाप निकल सकता है और उसने निश्चित कर लिया मैं तो जिनदीक्षा लूंगा। स्वामी! मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया आज तक हमारा आपसे व्यवहार था आज के बाद मेरा आपसे कोई व्यवहार नहीं है। क्षमा मांगते हुए पश्चाताप करता है। मैं व्यवहार नहीं करूँगा मैं निश्चय में जा रहा हूँ। कैसा है ये व्यवहार? कैसा है ये संसार? इस संसार में सुख दुःख कैसे लगे हैं? ऐसे सुख दुःख को समाप्त करना है। मैं शाश्वत सुख को प्राप्त करूँगा। ऐसी निर्दोष अबला को, सीता को, मैंने जंगल में छोड़ा। किस जन्म का उसका कर्म था? उसका भी पूर्व जन्म का कर्म था। आप जानते हैं क्या कर्म था? एक बहिन और एक भाई जो कि दोनों मुनि और आर्यिका थे; इनका एक जगह रहना गलत है कैसे ये शीलवंत हो सकते हैं। ऐसी शंका की, संदेह किया। बुरी बात का संदेह कर लेना। उसका अपवाद करना, निन्दा कर देना सरल नहीं, शील के अपवाद के कारण ऐसा हुआ कि उसने कितने वर्षों तक आँसू बहाये। उस पाप के फल को हटाने का कोई पुरुषार्थ भी वहाँ कुछ नहीं कर सकता था लेकिन सन्देशा दिया राम को सीता माता ने जो कहा था कि धर्म को मत छोड़ देना। राम ने कहा- धर्म रक्षा के लिए ही सब कुछ कर रहा हूँ। और वह राम को देखते-देखते चला जाता है उनकी तरफ पीठ नहीं करता है चला जाता है और दीक्षा

लेता है मुनि बनकर तपस्या करने लग जाता है। मैंने अनंत जन्मों से पाप किया है वो अलग और इस जनम में निर्दोष आत्मा को जंगल में छोड़ा है न जाने वे कितने कष्टों को सहेंगी। प्रभु की आज्ञा से छोड़ा था उस सेनापति ने और मुनि दीक्षा भी धारण कर ली। ऐसे उस सेनापति का नाम था कृतान्तवक्र। अपने जीवन में हमें कैसी भावनायें भानी हैं। हम अपने जीवन में कैसे कठोर कर्मों को बांधते हैं कि फिर पुरुषार्थ भी कुछ नहीं चल सकता। आप संसार के बन्धन में हैं इसलिए अधिक कुछ नहीं कहेंगे लेकिन कर्म सिद्धान्त को समझो इतना जरूर कहना पड़ेगा। जब हम बहुत पुरुषार्थ करने के बाद भी सफल न हो तो उसे दैव कहेंगे। पुरुषार्थ तो फिर भी करना चाहिए। कर्म बहुत कठोर होते हैं मगर पुरुषार्थ नहीं छोड़ना चाहिए। उस आत्मा ने कैसा कठोर कर्म बांधा था कि स्वर्ण की मुहरें भी अंगार बन गई। इतना सब मिलने के बाद भी भिखारी का भिखारी ही बन कर रह गया। चने भी सब गिर गये। माँ धिक्कारने लगी कि तेरे आने से सब ऐसा हो रहा है तूने कोई पुण्य ही नहीं किया। तू अकृत पुण्य है अर्थात् कोई पुण्य नहीं किया। ऐसा पूर्व कर्म क्या था तो बतायें आपको कि उसने पूर्व भव में मंदिर का धन खाया था, निर्माल्य खाया था। मंदिर के कुएँ के पानी को पीने की बात नहीं कर रहा हूँ। मंदिर का दान समय पर नहीं देना, मंदिर का दान द्रव्य अपने क्षेत्र में लेकर उपयोग करना ये सब निर्माल्य है इस निर्माल्य सेवन के पाप कर्म से उसको इतना कष्ट मिला। इसलिए हमको न्याय नीति पूर्वक उत्साह व लगन के साथ धर्म पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। ज्ञानी लोग कहते हैं कि–

दीप निष्ठा का जले तो आंधियाँ बाधक न होंगीं।
आदमी में अगर लगन हो तो मजबूरियाँ बाधक न होंगीं॥
हारते हैं वे जिन्हें अपने पर विश्वास नहीं है।
चल पड़े सही पथ पर पथिक तो, दुनिया बाधक न होगी॥

संवेग और वैराग्य के लिये जगत और शरीर के स्वभाव का चिंतन करना चाहिए।

नियत और अनियत

नमः श्रीवर्धमानाय, निर्धूतकलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां, यद्विद्या दर्पणायते ।।

संसार में रहने वाली आत्मायें किसी न किसी पुरुषार्थ में संलग्न हैं। किसी का पुरुषार्थ धर्म कमाने में है तो कोई अपने को मोक्षमार्ग पर चलाने में पुरुषार्थ करता है। कोई अपने लिए तरह-तरह के वैभव सम्पत्तियाँ आदि के निमित्त अपने कदम संसार की ओर बढ़ा रहा है। ऐसा हम सभी जगह देख रहे हैं। हमें ऐसे लोग बहुत कम मिलते हैं जो संसार से भयभीत होकर के मोक्षपथ की ओर अपने कदम बढ़ाते हैं। इस संसार में ऐसे बहुत कम जीव होते हैं जो अपने पुरुषार्थ से अपने कर्मों का क्षय, क्षयोपशम, उपशम करके मोक्षमार्ग को प्राप्त करते हैं। ऐसी वे आत्मायें भव्य आत्मायें हैं, और बहुत-सी जो आत्मायें अभी मोक्षमार्ग में नहीं आई हैं उनमें भी कई भव्य आत्मायें हैं। अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी हो गये और अभी भी ऐसे अनन्तान्त भव्य जीव हैं जो पुरुषार्थ के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करेंगे। पुरुषार्थ के साथ कर्म कुछ नहीं करता ऐसा नहीं है। कर्म हर जगह जुड़ा हुआ है। दैव का सहारा हर जगह है। कर्म के माध्यम से ही हमारा पुरुषार्थ सम्पूर्णता को प्राप्त करता है। चाहे पुरुषार्थ से काम हुआ हो चाहे और भी किसी काल लब्धि से, सब कर्म की देन है। जिसके माध्यम से कार्य सम्पन्न होता है। कभी तो बिना यत्न किये कोई कार्य सम्पन्न हो जाता है सो हम बोलते हैं दैव कर्म प्रमुख है।

कर्म पुरुषार्थ के बल से हम अपने कर्म को प्रबल करते हैं। जो कर्म हमारा पतला है उसे हम गाढ़ा करते हैं। पुरुषार्थ के बल से जल्दी उदय में लाते हैं। इसमें पुरुषार्थ की प्रमुखता होती है लेकिन सभी आज तक पुरुषार्थ से ही हुआ है ऐसा नहीं है। कर्म तो उसके साथ लगा हुआ है। जो व्यक्ति केवल कर्म पर ही छोड़ देते हैं सब कुछ, कि कर्म जब जैसा होगा वैसा तब हो जायेगा, जो जिस काल में होना होगा वैसा ही वह उस तरह से घट जायेगा सो वह बिना पुरुषार्थ के निकम्मे बैठे रहते हैं। कर्म को आप देखते बैठेंगे आपको क्या मालूम कि वह कब उदय में आता है तो उसमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं है, मोक्ष का प्रयोजन तो बिलकुल सिद्ध नहीं है। क्या कर्म की उदीरणा भी तो होती है। मोक्ष के प्रयोजन के लिए तो हमें अकाल में कर्म क्षय करना

होगा तभी मुक्ति रूप प्रयोजन सिद्ध होगा इसमें पुरुषार्थ बहुत जरूरी है। आम पेड़ पर पकता है; ठीक है; मगर पेड़ से एक माह पहले तोड़ लिया और पाल में पका लिया तो यह पुरुषार्थ है। कर्म स्वयं समय से उदय में आयेंगे और उसके साथ नये कर्म भी बंधते चले जायेंगे। आप कोई पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो उदीरणा द्वारा कर्म समय के पहले उदय में नहीं आयेगा तो मोक्ष पाने में कितना काल लगेगा? वे कर्म कब उदय में आयेंगे, कब फल देंगे? ऐसा तो हमारा ये संसार बढ़ता ही चला जायेगा। ऐसे कर्मों को उदय में लाकर पहले ही उदीरणा कराना और क्षय करना अविपाक निर्जरा है।

जब पुरुषार्थ के पहले ही कुछ कार्य होता है तो कर्म की प्रबलता मानी जाती है जैसे बिना कुछ किये धन आदिक मिलता चला जाता है। एक आत्मा जिसके घर में बहुत गरीबी थी और वह एक बार ज्यों ही अपने जीवन में अचानक ही एक वस्तु की प्राप्ति करती है और उसे लगता है कर्म कितना प्रबल है। सब सोचते हैं घर में कितनी गरीबी है इसका कोई उपाय निकल आये। एक व्यक्ति अचानक ही जा रहा था, सोचा इसके हाथ में कुछ वस्तु है, चलो अपन खरीदें पूछा, भैया! कितने में आयेगी? ले ली, लकड़ी थी। लकड़ी में देखा, लकड़ी के अन्दर रत्न निकले। वो रत्न कैसे मिले? सोचने लगा, राजा के पास से आई हो लगता है पुरानी वस्तु होगी। रत्न मिल गये कितना लाभ हो गया अचानक ही, घर वालों का काम हो जायेगा इसे उन्हें दे दें और भाग्य की बात है परिवार वाले सुख में रहेंगे। बिना मांगे परिवार वालों को दे दिया और वह चल दिया। यात्रा के लिए, आगे जाकर के देखा एक व्यक्ति खेत में काम कर रहा है। उसको सहारा देकर के भैया तुम भोजन कर लो, मैं तुम्हारा काम कर दूँगा। और काम करने लगा और खेत में ही एक कोने में घड़ा निकल आया उसमें रत्न मिले। बहुत आनंद हुआ कि ये रत्न कहाँ से आये? यह तो किसी विशेष पुण्य उदय से मिला है। कोई सेठ थे उन्होंने कभी भविष्य के लिए गाड़ रखी थी? सो मिल गई और आगे जाकर राजदरबार में बहुत अच्छी वीणा थी, सुन्दर वीणा थी, और राजा के मन में आया कि जो सुन्दर ढंग से वीणा बजायेगा उसे यह राज्य मिलेगा, साथ मेरी कन्या भी दी जायेगी। वीणा मुझे चाहिए, विचार किया बड़े सुन्दर ढंग से वीणा बजाई, तो वीणा भी मिल गई और कन्या भी मिल गई, और उसे राज्य का कार्यभार भी सौंप दिया।

आपको यह समझना था कि दैव, जिसको भाग्य बोलते हैं, जब प्रमुख होता है तो बिना पुरुषार्थ के सब कुछ मिलता चला जाता और देखो ये राज्य अनायास ही उसे

मिल गया वह सोचता है कि यह हमारा कितना तीव्र पुण्य है चलो यहीं पर अपने परिवार वालों को भी बुला लो और बुलाकर सबको सुख समृद्ध कर दिया।

आप जानते हैंकि यह धन्यकुमार की कथा है। यह दैव की प्रमुखता का उदाहरण है। जिनकी वजह से सारा परिवार धन्य हो गया और राजा भी उनको पाकर के अति धन्य हो गया ऐसी आत्मा से सबक लें कि पूर्व जन्मों में किये गये कर्मों का फल हम लोग इस जन्म में पाते हैं। और अनायास ही हमें मिल जाता है तो ऐसा दैव कहा जाता है और हम दैव को देखते बैठे कुछ कर्त्तव्य न करें तो फिर उसे निकम्मा बोला जाता है। अतः सबका सार यही है कि पुरुषार्थ हीन कभी नहीं बनना चाहिए। पुरुषार्थ को हमेशा याद रखना चाहिए क्योंकि हम जानते ही हैं कि इस जगत में जो-जो द्रव्य हैं उन सभी का ज्ञान हमारे केवली भगवान को है। वे जानते हैं उनके सभी पर्यायों को और गुणों को लेकिन इस बात का ध्यान रहे कि जो पर्यायें अभी घटित नहीं हुई हैं। जो पर्यायें भविष्य सम्बन्धी पर्यायें हैं उनके बारे में हम यह कह सकते हैं कि वे अनियत भी होती हैं नियत भी होती हैं। इसलिए ऐसा चिंतन करें कि जो नियत पर्यायें हैं उनमें कोई परिवर्तन होना शक्य नहीं है; लेकिन अनियत में पुरुषार्थ के द्वारा परिवर्तन संभव है।

कह दिया था कि इतने वर्ष के बाद द्वारिका भस्म हो जाएगी। ये नेमिनाथ भगवान की दिव्य ध्वनि में आ गया। तो नियत पर्याय में कुछ ऐसा ही होता है, कुछ पर्यायों के ऐसे प्रभाव होते हैं या उनके माध्यम से ऐसा घटित होता है इस माध्यम से ही उन आत्माओं को निकाचित उस कर्म का फल मिलने वाला है। उसमें पुरुषार्थ कुछ नही कर सकता। लेकिन सभी पर्यायें नियत ही होती हैं ऐसा नहीं है कुछ पर्यायें अनयित भी होती हैं लेकिन पहले नियत के बारे में कह दूँ कि वहाँ लोगों ने सोचा कि क्या ऐसा हो सकता है कि उन सब लोगों का ऐसा कर्म हो? या जिनका कर्म होगा वे वहाँ पर रहेंगे और वैसा घट जायेगा। जब लोगों ने सोचा कि 12 वर्ष हो गये हैं अब क्या होगा। लेकिन जो होना था वो हुआ, जिनके साथ होना था वह अवश्य ही हुआ।

अनियत जो पर्यायें होती हैं उनमें पुरुषार्थ भी अपना काम करता है। आप यह जानते हैं कि जब आदि प्रभु तेरासी लाख पूर्व वर्ष होने के बाद भी वैरागी नहीं हुये तब वह सौधर्म इन्द्र चिन्तातुर हो गया, कि हमारे प्रभु को अभी तक वैराग्य क्यों नही हो रहा है? इस चिंता से वह आतुर है। बहुत सारी जनता का कल्याण होना है वह कैसे

होगा। हमें कुछ तो उपाय करना चाहिए। इसलिए वह एक ऐसी नृत्यकारिणी को सामने लाता है जिसकी आयु अल्प थी, बहुत कम थी और जब वह राज्य सभा में नृत्य कर रही थी तो नृत्य-नृत्य करते-करते ही उसकी आयु समाप्त हो गई और वह नीचे गिर गई। बस यह दृश्य देखते ही आदिप्रभु के मन में वैराग्य का चिंतन प्रारम्भ हो जाता है। एक निमित्त सामने आया था तो काम हो गया। इसलिए उसने सोचा था कि एक निमित्त सामने ले जाकर देखें इसमें कुछ होता है कि नहीं, नहीं तो दूसरी बात सोचेंगे। उस निमित्त ने अपना असर किया और जग की असारता के बारे में चिंतन प्रारम्भ हो गया, सबका ऐसा ही मरण होना है वैराग्य हो गया मैं क्या कर रहा हूँ, क्या करना था, किसलिए आया था? चिंतन प्रारम्भ हुआ और वैरागी बनकर के निकल गये जंगल की ओर। आप जानते हैं कि आदिनाथ प्रभु का दीक्षा कल्याणक हुआ और बाद में तपस्या में लीन हो गये। ये क्या है? पुरुषार्थ। कुछ बातें अनियत भी होती हैं। उनके बारे में पुरुषार्थ करना चाहिए। अगर इन्द्र ऐसा पुरुषार्थ न करता, तो फिर क्या होता चिन्ता का विषय हो जाता।

एक जगह और देख लो, छयासठ दिन तक दिव्य ध्वनि नहीं खिरी केवलज्ञान होने के बाद; चिन्ता हो गई। भव्य जीवों का क्या होगा। समवशरण की रचना हो गई और दिव्यध्वनि नहीं खिरती। अगर खिरना निश्चित होता और कब खिरेगी ऐसा निश्चित होता तो इन्द्र को यह पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं होती; कि वह वहाँ जाये जहाँ वह गौतम गोत्र वाला इन्द्रभूति गौतम, ज्ञानमद का पोषक 500 शिष्यों के साथ बैठा है। कहता है- कौन है मुझ सम ज्ञानी। मुझे सर्व वेद-शास्त्रों का ज्ञान है, मुझे शास्त्रार्थ में कौन परास्त कर सकता है? कोई नहीं, ऐसा मद को धारण करके बैठा था। इन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में वहाँ उसके सामने जाकर प्रश्न किये कि सप्त तत्त्व कौन-से हैं? षट् द्रव्य क्या हैं? नौ पदार्थ किनको बोलते हैं? पंचास्तिकाय क्या हैं? जब उस गौतम ने सुना तो उसे लगा पहली बार सुन रहा हूँ ऐसे शब्द; सोच विचार करने लगा उत्तर नहीं दे पाया और उलटा इन्द्र को पूछा कि ऐसा जानने वाला कोई है क्या पृथ्वी पर? बोले हाँ। कौन है? महावीर! महावीर कौन है? चलो दिखाता हूँ। और रास्ते चल दिया। जाते-जाते मार्ग में मन्द-मन्द सुगंधित वायु बह रही है, चारों ओर वृष्टि हो रही है, दुन्दुभी वाद्य बज रहे हैं सर्व ऋतुओं फल-फूल युगपत् आ गये थे। यह सब देखकर के मालूम पड़ गया कि कोई महान आत्मा है पास में; आते ही ज्यों समवशरण में प्रवेश

किया तो महान वीतराग प्रभु के दर्शन हो गये। सामने देखा तो विशाल मानस्तम्भ दिखा जिसमें वीतराग भगवान की प्रतिमाएँ देखते ही उसका मान चूर-चूर हो गया। मिथ्यात्त्व के टुकड़े-टुकड़े हो गये। साष्टांग नमस्कार किया। समवसरण में जाने के लिए सम्यग्दर्शन रूपी टिकट मिल गयी। क्योंकि समवशरण में अन्दर की ओर जो प्रवेश मिला वह बिना सम्यग्दर्शन के नहीं हो सकता था। मानस्तम्भ देखने के बाद भी अगर सम्यग्दर्शन प्राप्त न हो तो फिर तो मुश्किल है। ध्यान रखना पुरुषार्थ की जरूरत है। समवशरण में प्रवेश किया। अन्दर जाकर प्रभु का दर्शन किया। तीन प्रदक्षिणायें दीं नमस्कार किया। नमस्कार करते ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। ये ही सच्चे भगवान, सच्चे गुण हैं दूसरा और नहीं इस जगत में कोई। आत्मा का कल्याण करने वाला यही सच्चा धर्म है। मुझे तुरन्त इसकी शरण में जाना चाहिए। दीक्षा लेने का भाव हुआ और दीक्षा भी ले ली। और मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञान के धारी हो गये। यह दिन गुरु पूर्णिमा और दूसरे दिन से दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हो जाती है जो वीर शासन जयन्ती नाम से मनाई जाने लग जाती है। जैसे सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहर पाता है, वैसे ही प्रभु की वाणी को झेलने के लिए पात्र चाहिए था। पात्र के बिना दिव्य ध्वनि नहीं खिरी और अब दिव्यध्वनि खिरी गणधर परमेष्ठी ने सबको अर्थ बतलाया उन्होंने दिव्यध्वनि को झेलकर ग्रन्थ की रचना की। इसप्रकार वे इन्द्रभूति गौतम प्रधान गणधर बन गये। इस प्रकार यहाँ पुरुषार्थ की मुख्यता देखो।

ऐसा पुरुषार्थ किया इन्द्र ने, तब काम हो पाया, नहीं तो और कितने दिन निकल सकते थे इसलिए कई लोग विचार करके बैठे रहते हैं कि जिस काल में जो होना होगा वैसा होगा। काल लब्धि आयेगी तब होगा। ऐसे शब्द जो कहते हैँ उन्हें इतना चिंतन करते रहना चाहिए कि कुछ पर्यायें अनियत भी होती हैं। उनके अनियत पर्यायों को हम लोग कभी भी नहीं जान सकते कि किस रूप में घटने वाली हैं आगे। केवली भगवान एक-एक पदार्थ को युगपत जानते हैं यही तो अनेकान्त है। तो हमें ये विचार करना चाहिए कि कुछ पर्यायें जो अनियत हैं उनके बारे में हमें भी ऐसा विचार करना है जो जब जैसा होना है सो होगा।

''जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे!'' ऐसा कोई जो बोलते हैं तो ये पक्तियाँ किसी विद्वान के द्वारा बनाई गई हैं। आर्ष परम्परा के कोई निर्ग्रन्थ आचार्य द्वारा नहीं। नियत पर्यायों की अपेक्षा भले ही घटित हो जाये लेकिन अनियत की

अपेक्षा से घटित नहीं होती है। ध्यान रखना इसमें कुछ सुधार की भी आवश्यकता है। आप लोग इस विषय को कुछ गहराई से और समझें मैं एक और उदाहरण रख रहा हूँ जिससे सरल रीति से आप समझ जायेंगे।

भगवान महावीर का समवशरण लगा हुआ है और दिव्यध्वनि सुनने के लिए कई भव्य आत्मायें जाती हैं और एक श्रावक श्रेष्ठी भी जा रहे थे। उन्होंने जाते समय जंगल के रास्ते में एक मुनिराज को देखा वे शिला पर बैठे थे चूंकि आसन तो हमारे जिन भगवान जैसा ही था। जिन आसन में विराजमान हाथ पर हाथ रखे बैठे हुए थे फिर भी मुख मुद्रा म्लान थी, विकृत मुद्रा थी। जैसी नहीं होनी चाहिए वैसी थी। उस मुद्रा को देख करके उनके मन में पीड़ा हुई। क्या बात है मुनि महाराज की ऐसी मुद्रा नहीं होना चाहिए। कुछ तो भी जरूर घट रहा है जो इनके कष्ट का कारण है अथवा कोई न कोई विशेष बात होना चाहिए। बिना किसी कारण के ऐसी मुद्रा नहीं हो सकती इसलिए उन्होंने समवशरण में पहुँचते ही गणधर परमेष्ठी से प्रश्न किया कि हे प्रभु! हमने समवशरण में आते समय रास्ते में एक मुनि महाराज को देखा उनकी मुद्रा विकृत थी जो कि वैसी नहीं होनी चाहिए। प्रभु क्या कारण है? बता दीजिए। आप लोग अनियत के विषय पर समझ रहे हैं, उन्होंने कहा- वे मुनि महाराज नरक में भी जा सकते हैं और वे ही मुनि महाराज केवलज्ञान की प्राप्ति भी कर सकते। श्रावक श्रेष्ठी ने कहा- प्रभु कैसे? प्रभु गणधर परमेष्ठी ने बताया- क्योंकि वे तो अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी थे ही उन्होंने कहा कि वे मुनिराज आहार चर्या को गये थे वहाँ चर्चा चल रही थी कि देखो ये महाराज अपने एक छोटे से बेटे को राज्य देकर के मुनि बन गये और मंत्री (शत्रु)लोगों ने उस बेटे को बांधकर कारागृह में डाल दिया और राज्य को बांटने की तैयारी चल रही है और सब मंत्री उस राज वैभव को अपना-अपना बना लेंगे। यह सुनते मुनिराज ने सोचा कि मेरे कारण सब जीवों को इतना कष्ट, अब आहार कैसे करें? आ गये सीधे-सीधे आकर के उपवास लेकर के बैठ गये। मन को बहुत सम्हाल रहे थे ऐसा विचार न आये लेकिन किसी-किसी का कर्म उदय ऐसा रहता है। सबको नहीं रहता देखो आप सोचें बीच में ही उदाहरण याद आ रहे हैं कि पांच पाण्डव में से तीन को कोई विकल्प नहीं आया, मेरे भाई का नहीं; अन्य मुनि महाराज का कि क्या हो रहा होगा? दो को मात्र चिंतन आया मेरे बाजू वाले मुनिराजों का क्या हो रहा होगा? दूसरे का विकल्प आया प्रशस्त राग हो गया तो मोक्ष नहीं पहुँच

पाये। बल्कि साधिक (कुछ अधिक) तैंतीस सागरोपम तक मोक्ष नहीं मिलेगा। लटक गये उतने काल के लिए उसके बाद आयेंगे, मनुष्य बन मुनि बनेंगे फिर मोक्ष जायेंगे। पर की चिन्ता की; चाहे मुनिराज की चिन्ता की तो भी लटक गये। पर की चिन्ता नहीं करना चाहिए। अहं आत्मा में लीन होना चाहिए। सोहं भी नहीं चलेगा। पहले उदासोहं, फिर दासोहं, फिर सोहं फिर अहं रूप एक में लीन होना कि बस मैं एक ही हूँ। मेरा दूसरा कोई नहीं, आत्मा एक ही है मेरा बस। जैसे समयसार में कहा है कि-

अहमिक्को खलु सुद्धो, दसंण णाणमइयो सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणु मित्तंपि॥

मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ और ज्ञान दर्शन मय सदा अरूपी हूँ, अन्य परमाणु मात्र भी मेरा कुछ भी नहीं है। ऐसा तीनों ने चिंतन कर लिया तो उन्हें मोक्ष हो गया। अपनी आत्मा को छोड़कर किसी का भी चिंतन नहीं आना चाहिए। कोई विकल्प नहीं आना चाहिए। जैसा कि कहा ही है:-

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट हैं, पर हैं परिजन लोय॥

तो वहाँ पर ऐसे विचार करने से 33 सागरोपम तक रुकना हो गया। वैसे ही वहाँ उन विकृत मुद्रा वाले मुनिराज का चिंतन चल रहा था कि मेरे द्वारा छोड़े गये परिवार कुटुम्बियों को कष्ट हो रहा है। मंत्रियों ने ऐसा क्यों किया? ऐसा धोखा क्यों दिया? ऐसा छल क्यों किया? मन में ऐसा विकल्प चल रहा था लगता है कि परिग्रहानन्दी नाम के रौद्रध्यान में लीन हो गये थे वे महाराज तत्त्वार्थ सूत्र में कहा ही है कि-

''बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'' बहुत आरम्भ व परिग्रह नरकायु का कारण है। गणधर परमेष्ठी ने भी यही कहा कि श्रावक श्रेष्ठी सुनो! कि तुम्हें उन्हें सम्बोधन करना होगा; तब राजा श्रेणिक ने कहा कि मैं मुनिराज को श्रावक होकर समझाऊँ? हाँ; तुमने नहीं समझाया तो नरक निश्चित है। और अगर सम्बोधन दिया तो वे केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे। बन्धुओं! ये है अनियत पर्याय का उदाहरण। इसी तरह दूसरे उदाहरण भी हैं कि मानो बेटा दौड़ करके जा रहा है रेल की पटरी के पास, अगर सब कुछ नियत है तो आप न रोकते; फिर क्यों रोकती है माँ कि बचाओ-बचाओ, पकड़ो-पकड़ो नहीं तो चला जायेगा, मर जायेगा। क्योंकि कुछ पर्यायें अनियत भी

होती हैं। यह आपकी क्रिया से अवश्य मालूम पड़ रहा है। लेकिन कुछ लोग बोलने में तो एकान्त मिथ्यादृष्टि बन गये हैं। सब को नियत बना दिया, सब नियत है तो आप पुरुषार्थ मत करो। पुरुषार्थ का तो निषेध करते हैं फिर भी पुरुषार्थ करते हैं। कोई बच्चा बीमार हो जाता है तो चलो डॉक्टर के पास चलते हैं अगर नियत हो तो पड़ा रहने दो। तो नहीं; पुरुषार्थ करना पड़ेगा, नहीं किया तो प्राण निकल सकते हैं अतः दयावान भागते हैं डॉक्टर के पास। जो धर्मात्मा होते हैं वे इस बात को समझते हैं कि कुछ पर्यायें अनियत भी होती हैं, यह मानकर पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।

एक व्यक्ति ज्योतिष शास्त्री था। हर एक बात में ज्योतिष देखता था। गाँव वाले भी कहते थे कि कोई भी काम हो बस पंडित को दिखाओ, पंडितजी जो कहेंगे हम वही करेंगे। एक दिन क्या हुआ एक बच्चा नदी में गिर गया जब तक पण्डित ने ज्योतिष देखा कि बचेगा कि नहीं तब तक बच्चा मर गया। देखो इस समय पुरुषार्थ करना जरूरी था फिर ऐसे मौके पर जो नियत को देखता है उसकी नियत ही खराब है समझो। यहाँ तो पुरुषार्थ की मुख्यता है। आचार्य कहते हैं किसी काल में भले कोई कार्य नियत है तो भी आपको उसमें पुरुषार्थ की जरूरत है जो पुरुषार्थ को नकारता है वह निकम्मा है और मिथ्यादृष्टि है। उसे तो अपने पुरुषार्थ में संलग्न रहना चाहिए। हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठता है कि जब जो होना होगा सो हो जायेगा। जिस काल में नहीं; वह नियत होगा तो वैसा हो जायेगा भले; लेकिन मुझे पुरुषार्थ करना है। मैं क्या केवलज्ञानी हूँ? प्रत्यक्ष ज्ञानी हूँ जो मैंने जान लिया कि ये नियत है। अगर नहीं हैं हम ऐसे ज्ञानी तो पहले पुरुषार्थ करें और पुरुषार्थ करने के बाद भी काम न हो तो समझो कि यह नियत है। इस कार्य में दैव कर्म की मुख्यता है। लेकिन दैव की प्रबलता न होने पर हम कभी-कभी कर्मों की उदीरणा को बचा लेते हैं। कभी कर्मों को उदय में लाते हैं कभी संक्रमण भी कर देते हैं। ये अवस्थायें भी होती हैं, नहीं होती तो फिर दस करणों की व्यवस्था क्यों बनाई। दसकरण बताये गये हैं जिनमें निधत्ति, निकाचित करण भी होते हैं जिनमें कर्म सरलता से क्षय को प्राप्त नहीं होते हैं। कुछ कर्मों में तो उत्कर्षण, अपकर्षण अवस्था हो जाती है। क्षय को प्राप्त भी हो जाते हैं। उदीरणा भी होती है- उदीरणा के लिए ''अकाल विपाको उदीरणा'' ऐसा शब्द आता है शास्त्रों में। अकाल में कर्म का फल चखना, चखाना सो उदीरणा है मान लीजिए कि कोई कफ का रोगी है। डॉक्टर ने कह दिया कि उसे दही नहीं खाना है फिर भी वह दही खाये तो ये अकाल में असाता कर्म की उदीरणा करवाना है। सर्दी खांसी का रोग

अकाल में आ जायेगा। इसी तरह माना कि किसी को किसी वस्तु से सर्दी हो जाती है या ज्यादा केले खाने से सर्दी हो जाती है उसे मना किया फिर भी केले खा रहा है मानो कि वह असाता कर्म की उदरणा कर रहा है। फिर उस समय दुःखी होने से तो और कर्म बंधेगा। असाता वेदनीय का क्षय करना है तो धूप में बैठ जाओ, धूप को सहो, गर्मी को सहो और ठंडी सहो। मुनिराज यही तो करते हैं; 32 अन्तरायों का नियम स्वयं ने लिया है। बाल आ गया, कंकड़ आ गया हो समता पूर्वक अन्तराय कर देते हैं; क्योंकि कर्मों को खपाना है जल्दी-जल्दी। उदीरणा करा करके कर्मों को निकाल देते हैं। नहीं तो कब उदय में आयेंगे। ऐसे कर्मों की स्थितियाँ बहुत तरह की है कर्म सिद्धान्त बहुत बड़ा है। आप अनेकान्त धर्मी बनो। 'अनेके अन्तः धर्मः यस्मिन सः अनेकान्तः' अर्थात् जिसमें अनेक गुण धर्म या अवस्थाएँ होती हैं वह अनेकान्त कहलाता है। नियत की भी कुछ पर्यायें हैं। अनियत की भी कुछ पर्यायें हैं। हमें तो पुरुषार्थ की जरूरत है। पुरुषार्थ हमेशा करना है। चाहे वह बाद में नियत भी क्यों न हो।

आपको पुरुषार्थहीन कभी नहीं बनना। नहीं तो आप सम्यग्दृष्टि कभी नहीं कहलायेंगे। हम कैसे जान सकते हैं कि ये पर्याय नियत ही है ? पुरुषार्थ जरूर करना चाहिए। अनेकान्त वास्तविक धर्म है। उसको अपने जीवन में लायें। कई लोग एकान्तवादी बन रहे हैं, मिथ्याभावी बन रहे हैं। जैसे लहर चलती है तो अंग अकड़ जाते हैं कभी लू लग जाती है तो फिर क्या हो जाता? हाथ पैर लड़खड़ाने लग जाते हैं। ऐसे ही ये एकान्त की लहर या लू है इससे बचें।

वहाँ विकृत मुद्रा वाले मुनिराज के निकट ज्यों ही राजा श्रेणिक गये और कहा हे मुनिराज! आप धन्य हो, महान हो, आपने कितना त्याग किया है। घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, शरीर से भी मोह छोड़ दिया, आपने तो सब कुछ छोड़ दिया। परम वीतरागी आपको तो कुछ विकल्प ही नहीं है। अपने परिवार का क्या हो रहा है? कुटुम्ब का क्या हो रहा है? सब अपने अपने कर्मों का फल भोगते हैं। पिता, पत्नि, बेटा ये सब संयोग सम्बन्ध हैं। इनका एक दिन वियोग तो निश्चित ही है, हम किसी का क्या कर सकते हैं? आपका इतना महान पुण्य कर्म था कि आप इस पद पर आये हैं। इस महान पद को तो तीन लोक के जीव भी नमस्कार करते हैं। ऐसा पंच परमेष्ठी पद आपने प्राप्त किया है, हे प्रभु! घर की चिन्ता क्या; आपको तो अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं है धन्य-धन्य-धन्य और इतना कहते ही तुरन्त मुनिराज के अन्दर चिंतन आने लगा

कि अरे! मैं तो मुनि हूँ और मैं क्या चिन्ता कर रहा हूँ अरे! परिवार की चिन्ता; नहीं, नहीं। जहाँ देह अपनी नहीं वहाँ अपना और क्या?

तुरन्त ऐसा चिन्तन कर आत्मा ध्यान में लीन हो गये। जैसा कि समयसार में आचार्य कुन्द कुन्द कहते हैं–

एगो मे सासादो आदा, णाण दसंण लक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संयोग लक्खणा॥

इतना विचारते ही उनके अन्दर इतनी एकाग्रता आ गई कि अन्तर्मुहुर्त्त मात्र में उन्हें केवलज्ञान हो गया। वे केवली बन गये, गंधकुटी की रचना हो गई। उन मुनि महाराज का नाम था ''धर्मरुचि महाराज''। पढ़ो पुराणों में सब कुछ लिखा है।

अगर राजा श्रेणिक ने प्रश्न न पूछा होता और आ करके समझाया न होता और वे ऐसा सोचते रहते तो नरक आयु का बंध हो जाता। ज्यों ही राजा श्रेणिक ने संबोधा तो वे आत्म चिंतन में लीन हो गये, केवलज्ञानी बन गये। देखो स्तुति के रूप में सम्बोधन दिया। कैसे स्थितिकरण किया जाता है, सम्बोधन किया जाता है? इस बात को आज के लोग समझते नहीं हैं। वाणी में मधुरता होनी चाहिए। हर समय कुछ पुरुषार्थ करें। कोई रोगी हो तो दवा करना कोई डूबता हो तो तुरंत बचायें न कि ज्योतिष देखने जायें। नहीं तो हो जायेगा काम तमाम। नियतवाद के एकान्त को पकड़कर मिथ्यादृष्टि मत बनो। सम्यक्त्व धर्म की रक्षा के लिए हर समय पुरुषार्थी बनकर आत्महित का कार्य करो।

अन्त में लोक प्रचलित चार पंक्तियाँ–

चारों ओर कषायों का प्रभाव गहरा है।
सपनों के तट पर यह मानव ठहरा है॥
जीवन के रहस्य को कैसे समझे मानव।
मानव के जीवन पर पुण्य व पाप का पहरा है॥

निमित्त और उपादान

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम् ।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानाम्, वंदे तद्गुण लब्धये ।।

कर्मों के बंधन को तोड़ने के लिए व्रत, नियम के बंधन की आवश्यकता होती है। मैं आपको कोई और बन्धन से क्या बांधू क्योंकि वैसे ही आप पूजा विधान के बन्धन में बंधकर बैठे हैं। मुनिराजों का तो नियम संयम का बन्धन कर्म बन्धन छुड़ाने के लिए है भव-बन्धन बांधने के लिए नहीं। एक तरह से तो जो धर्मात्मा बन्धन बांधते हैं वह व्रतों का बन्धन संसार के बन्धन से दूर होने के लिए बांधना पड़ता है। एक बन्धन तोड़ने के लिए दूसरा बंधन स्वीकार किया जाता है। चातुर्मास का बन्धन भी एक संयम का बन्धन है जो जीव रक्षा के लिए है। इसलिए आपको भी हम धर्म के बन्धन में बांधते हैं। जिस वजह से आप घर के बन्धन से छूटे रहते हैं। जब तक आप यहाँ मोक्षमार्गी के पास हैं तब तक संसार के बन्धन से छूटे रहते हैं। जब यहाँ से बाहर चले जाओगे तो फिर भव बन्धन से बन्धने लग जाओगे। इसलिए कोशिश करता हूँ कि आपका मन यहाँ लगा रहे। ज्यादा से ज्यादा समय धर्म में लगाएँ लेकिन आकुलता नहीं होनी चाहिए। जो स्वेच्छा से बड़ी प्रसन्नता के साथ यहाँ पर समय देते हैं उन्हें तो प्रथम क्वालिटी का पुण्य मिलता है कर्मों की निर्जरा भी होती है और जो लोग आकुलता के साथ समय देते हैं उन लोगों का क्या कहना थोड़ा-बहुत घटिया क्वालिटी का पुण्य मिल जाता है इसलिए हम चाहते हैं कि आपको उत्कृष्ट रूप से बहुत अच्छी क्वालिटी का पुण्य मिले।

आज हमें सहायक तत्त्व के बारे में चिंतन करना है। हम लोगों ने अभी दैव और पुरुषार्थ के बारे में सुना, नियत-अनियत के बारे में सुना। आज सोचता हूं कि कुछ निमित्त और उपादान की चर्चा की जाये। इसके लिए गुरु महाराज के द्वारा लिखी हुई जो मूकमाटी कृति है उसमें उनके आशीर्वाद के रूप में जो शब्द हैं जिनमें उन्होंने अपने गद्य के शब्दों में निमित्त उपादान के विषय में जो लिखा है उसे आज हम लगभग गुरु महाराज के ही शब्दों में कुछ सुनेंगे। उसके पहले भूमि में कुछ कहता हूँ कि निमित्त और उपादान क्या वस्तु है। साधन के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होगी। मार्ग

के बिना मंजिल की प्राप्ति नहीं होगी और कारण के बिना कार्य भी नहीं होता।

इसलिए बन्धुओं निमित्त के बिना उपादान की जागृति कभी नहीं होती; और यहाँ तक कह सकते हैं कि उपादान भी तो एक अन्तरंग निमित्त है। अन्तरंग शक्ति का नाम ही तो उपादान है। ऐसा गुरुओं का कहना है। ऐसे उपादान को जागृत करने के लिए कई बार पुरुषार्थ करते हैं। निमित्तों को जुटाते हैं। निमित्त के माध्यम से हमारा उपादान सशक्त बनता है। कभी तो उपादान बहुत बलवान होता है जिसकी वजह से हमें निमित्त सहज रूप से मिल जाते हैं। सबसे पहले तो हम यह कहना चाहते हैं कि आत्मा जो द्रव्य अपेक्षा से या शुद्ध नय से शुद्ध है वही आत्मा व्यवहार नय से संसार की अपेक्षा अशुद्ध भी है। नय विवक्षा अवश्य लगाना चाहिए। एक समय आत्मा की शुद्ध अवस्था प्रगट हो सकती है जो कि शक्ति रूप से बीज के अन्दर वृक्ष की तरह छुपी हुई है। जैसे घी को प्राप्त करने के लिए दुग्ध को गर्म करके उसे जमा करके और मथ करके उससे नवनीत पाते हैं; फिर उसको गर्म करके घृत की प्राप्ति होती है। उसी तरह इस आत्मा को परमात्मा बनाना है तो जैसे कि उस दूध के लिए हमें कई निमित्तों की आवश्यकता पड़ी अग्नि, खटाई, मथनी और फिर पुनः अग्नि इतने सारे निमित्तों से घृत तैयार हुआ उसी प्रकार अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए निमित्तों की आवश्यकता पड़ती है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में कहते हैं कि-

योग्योपादान योगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादि स्वादि सम्पत्तावात्मनोप्यात्मतामता॥ 2॥

योग्य उपादान के योग से श्रेष्ठ द्रव्यादिक के मिलने पर एक पाषाण के पास भी स्वर्णपना प्रगट होना माना गया है। इसी तरह से इस आत्मा के अन्दर शुद्धत्व की शक्ति छुपी हुई है। वह कैसे प्रगट होगी उसके लिए श्रेष्ठ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की उपलब्धि होने के बाद वह शक्ति बाहर आयेगी जैसे स्वर्ण पाषाण से स्वर्ण निकल सकता है। अन्ध पाषाण से स्वर्ण नहीं निकल सकता। स्वर्ण पाषाण से ही स्वर्ण निकल सकता है। एक पाषाण में स्वर्ण होता है लेकिन दिखता नहीं; उसमें कुछ क्रिया करने के बाद स्वर्ण बाहर आता है। योग्यता है उसके पास इसलिए बाहर आता है। जिस अंध पाषाण के पास योग्यता नहीं है उसके भीतर से स्वर्ण बाहर नहीं आता। होता जरूर है उसमें जैसे जो मोर पंख होते हैं उनमें स्वर्ण माना गया है लेकिन वह स्वर्ण बाहर नहीं आता है। ऐसे ही एक अन्ध पाषाण है उसका भी स्वर्ण बाहर नहीं निकलता

लेकिन जो स्वर्ण पाषाण है उससे स्वर्ण बाहर जरूर आता है लेकिन योग्य प्रक्रिया करने के उपरान्त। देखो कि जो स्वर्णकार है वह स्वर्ण पाषाण को उसके सुयोग्य क्षेत्र व काल में उसे गर्म करता है इसके बाद कोई वस्तुओं के योग सह जो औजार होते हैं उनका भी उपयोग करता है। अपने हाथों को, मन को, बुद्धि को लगाता है कितनी सारी बातें उस चीज को आवश्यक हो जाती हैं। जब कहीं वह स्वर्ण बाहर आता है। इसी तरह इस आत्मा के अन्दर वह शक्ति विद्यमान है जो सिद्धत्त्व शक्ति रूप से जैसे कि बीज के अन्दर वृक्ष बनने की शक्ति है। बीज शक्ति रखता है, अगर उसे वैसे निमित्त मिलें तो वह फलीभूत हो, खाद्य मिले, पानी मिले, योग्य भूमि मिले, सुरक्षा हो, तो बढ़ता चला जायेगा और एक दिन वृक्ष का रूप ले लेगा। उससे आप फल पायेंगे। वर्तमान में उस शक्ति को हम नहीं देख सकते केवल शक्ति रूप से ही श्रद्धाकर समझ सकते हैं, द्रव्य रूप से जान सकते हैं और वह पर्याय जब प्रगट होगी तभी हम उसे देख सकेंगे। इसी तरह जगत में कई भव्य जीव हैं कई अभव्य भी जीव हैं। भव्यों के अन्दर वह शक्ति विद्यमान है और भी प्रगट हो सकती है लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिलने से। अभव्यों के पास वह शक्ति नहीं है। एक और होता है वह है दूरानुदूर भव्य जिसकी शक्ति प्रगट नहीं हो पाती इसीलिए भव्य तो है लेकिन दूरानुदूर भव्य। विचार तो करो कि भव्य को कुछ ऐसे निमित्त मिलते हैं कि जिससे आत्मा की वह आंतरिक शक्ति प्रगट हो जाती है इसीलिए अपनी आत्मा को शरीर रूपी द्रव्य वज्रवृषभनाराचसंहनन चाहिए। ऐसे उत्कृष्ट संहनन रूप द्रव्य के साथ फिर क्षेत्र में कर्मभूमि चाहिए और काल में चौथा काल हो और भाव में महाव्रत होना चाहिए। क्योंकि मुनि बने बिना कभी कर्मों का क्षय नहीं हो सकता है। परिग्रह का सम्पूर्ण रूप से त्याग किये बिना ध्यान नहीं हो सकता और उत्तम ध्यान के बिना सम्पूर्ण कर्म नहीं कट सकते। तो यह सब निमित्त हैं। इन निमित्तों के मिलने पर ही हमारी आत्मा परमात्मा बनती है।

हम वर्तमान में ही वह कल्पना करने लग जाये कि मैं तो शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, निरंजन हूँ तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि वह पर्याय अभी प्रगट नहीं हुई है। अभी अशुद्ध पर्याय है। वर्तमान में सिद्धों सम में शुद्ध पर्याय का अनुभव नहीं हो सकता। तो यह बात हमेशा याद रखना है कि बिना निमित्त के कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। कभी तो प्रेरक निमित्त मिलते हैं, कभी उदासीन निमित्त मिलते हैं, निमित्त होते अवश्य

हैं। उपादान के साथ निमित्त की बड़ी आवश्यकता है तो निमित्त क्या है? आप बोलें कि महाराज आये; महाराज ने पूजा का उपदेश दिया, पंडितजी ने विधान करवाया तब इतने लोग यहाँ पर आये बहुत लोग तो ऐसे हैं जिनके गृह से यहाँ कोई न कोई सदस्य इस पूजा में शामिल अवश्य है। कुछ लोग ऐसे भी होंगे जिनकी कोई न कोई समस्या होगी। अथवा उस प्रकार की भक्ति भावना नहीं बनी होगी। अथवा महाराज हैं, पंडितजी हैं तब भी उनकी भावना में, उपादान में, इतना पुण्य नहीं होगा, तो वे प्रवचन तो सुनते हैं या किसी न किसी धार्मिक कार्य में संलग्न अवश्य हैं, उपादान रहे तो महाराज का उपदेश कार्य कर जाता है। उपादान में ही शक्ति नहीं हो तो फिर कई प्रकार की समस्यायें रहती हैं इसलिए कभी किसी को बाध्य भी नहीं किया जा सकता। प्रेरणा दे सकते हैं। क्योंकि बाध्य करने के बाद भी काम नहीं हो पायेगा तो फिर क्या कहेंगे? तो फिर वहाँ कर्म बलवान व दैव की मुख्यता है न, दैव मतलब कर्म; जो मुख्य है। अभी तो आप सीख गये न जान लिया आपने। बहुत पुरुषार्थ करने के बाद भी काम नहीं हो पाये तो पुरुषार्थ को छोड़ना नहीं, अन्तिम समय तक पुरुषार्थ करते रहना। दैव मुख्य है ऐसा नहीं; पुरुषार्थ करते रहने से अनियत में दैव गौण हो जाता है और शेष कार्य पूर्ण हो जाते हैं। इसलिए तो पुरुषार्थ हमेशा जारी रखना चाहिए। तो हम ये समझ रहे हैं कि एक वस्तु में जो शक्ति होती है उसका उद्घाटन कभी ऐसे निमित्तों को मिलने से होता है। कभी भी निमित्त इतना अच्छा मिले कि उपादान की शक्ति थोड़ी कमजोर पड़ रही हो तो उसे भी वह बलवान बना दे। तो हम लोग सुन रहे थे कि हमें ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मिल जाये कि हमारी आत्मा मुक्त हो जाये इसलिए जो हमने अभी पूज्यपाद आचार्य का श्लोक पढ़ा इसी इष्टोपदेश के मंगलाचरण में उन्होंने कहा है कि–

यस्य स्वयं स्वाभावाप्ति-रभावे कृत्स्न कर्मणः।
तस्मै संज्ञान रूपाय, नमोस्तु परमात्मने ॥1॥

यहाँ उपादान और निमित्त की अच्छी बात कही है इसे आप सुन लीजिए। 'यस्य स्वयं स्वभावाप्ति रभावे कृत्स्न कर्मणः' सम्पूर्ण कर्मों के नाश होने के बाद यस्य स्वयं स्वभावाप्ति अर्थात् जिस आत्मा ने स्वयं अपने पुरुषार्थ के द्वारा अपनी आत्मा की प्राप्ति कर ली है, इससे क्या सिद्ध हो रहा है? आपको कितना समझ में आ रहा है? यह हम जानना चाहते हैं, जिसने स्वभाव की प्राप्ति की, अभावे कृत्स्न कर्मणाः–

कर्मों के अभाव होने के बाद और कृत्स्न शब्द आया है अर्थात सम्पूर्ण कर्मों का अभाव; पूरे के पूरे कर्मों के नाश होने के बाद, अष्ट कर्मों के नाश होने के बाद, अपने स्वभाव की प्राप्ति कर ली है। कर्मों का पूर्ण रूप से अभाव आपके हुआ है क्या? यह आचार्यों की वाणी है कि सम्पूर्ण कर्मों के नाश होने के बाद ही स्वभाव की प्राप्ति होगी फिर आप कैसे कह सकते हैं कि मैं पूर्ण रूप से शुद्ध हूँ बुद्ध हूँ, निरंजन हूँ और सिद्ध परमेष्ठी के समान हूँ। अगर कहें तो गलत है, क्योंकि वहाँ कहा जा रहा है कि सम्पूर्ण कर्मों के अभाव होने के बाद ही स्वभाव की प्राप्ति होती है तभी शुद्धात्मा का अनुभव होता है। अपने सच्चे स्वभाव की प्राप्ति कर्मों के अभाव के बिना नहीं होगी और कर्मों का अभाव ध्यान करने के बिना नहीं होगा और ध्यान सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके मुनि बने बिना नहीं होगा। किसी को हुआ है क्या? क्या मुनि बने बिना बड़े-बड़े तीर्थंकर भी केवलज्ञानी हो गये? उनको बिना मुनि बने केवलज्ञान हो जाता होता तो वे घर परिवार क्यों छोड़ते, वहीं गृह से मोक्ष हो जाता और तिल तुषमात्र परिग्रह भी नहीं छोड़ना पड़ता। तिल तुषमात्र परिग्रह भी रहे तो मोक्ष नहीं होता क्योंकि वह परिग्रह ध्यान में बाधक कहा जाता है। उसके लिए साधक निमित्तों की भी आवश्यकता है। जिसके अभाव से पंचमकाल में आपको मोक्ष नहीं हो रहा है। आप भव्य हैं और आपने अणुव्रत भी ले लिये क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र किसके पास आते हैं? तो भव्य के पास ही आते हैं। अभव्य के पास नहीं आते हैं। भव्य को अभी मोक्ष नहीं हो रहा क्योंकि योग्य निमित्तों का अभाव है। उपादान में भी शक्ति कम है उपादान भी उतना दृढ़ नहीं है। अब आप दृढ़ बना लो। ऐसा इस जन्म में आप पुण्य कमाओ अथवा कर्मों का क्षय करो कि कर्मों का क्षयोपशम हो जाये इसके माध्यम से हमको ऐसा स्थान मिले जहाँ चतुर्थ काल हो और उत्कृष्ट संहनन आदि सारी चीजें मिलें। अभी तो सम्यग्दर्शन अपना लिया है, ध्यान रखें मनुष्य से मनुष्य मिथ्या दृष्टि बनता है सम्यग्दृष्टि तो ऊपर जाता है अथवा पूर्व बद्धायुष्क हो तो चतुर्गतियों में जा सकता है। लेकिन नरक जाय तो पहली पृथ्वी से नीचे नहीं, मनुष्य व तिर्यंच हो तो भोग भूमि का और देवों में जाये तो वैमानिक (स्वर्गों) का; इससे अन्य नहीं। 160 विदेहों में भोग भूमि नहीं। कोई कहे कि पंचमकाल का कोई व्यक्ति सम्यक्त्व के साथ विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर तीर्थंकर बन सकता है क्या? तो आगम कहता है कि यह कहना मिथ्या है क्योंकि कर्मभूमि सम्बन्धी मनुष्य से मनुष्य

मिथ्यात्व के साथ बनते हैं और तीर्थंकर तो पूर्व जन्म से ही सम्यक्त्व व अवधिज्ञान को लेकर आते हैं अतः वे स्वर्ग या अधोलोक की तीसरी पृथ्वी तक से आकर जन्म लेते हैं अन्य से नहीं। जब हमारे लिए ऐसा सुद्रव्यादि का योग मिलेगा तभी सर्व कर्मों का क्षय कर सकेंगे। हमें उन निमित्तों का अभाव है। कर्मभूमि तो मिल गई। वज्रवृषभनाराच संहनन आदि उत्कृष्ट संहनन नहीं मिले इसलिए निमित्तों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे केवली जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करने के बाद स्वभाव की प्राप्ति कर ली है उन तस्मै संज्ञान-उन सम्यग्ज्ञान रूप परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं। तो ध्यान रखना तो पुरुषार्थ के माध्यम से ही सिद्धि होती है उसके बिना नहीं होती। इसी के बीच में ये भूमिका बनाने के बाद हम आचार्य के चिन्तन को थोड़ा समझें। गुरु महाराज कहते हैं कि किसी भी कार्य का कर्ता कौन है और करण कौन है। इस विषय का जब तक भेद नहीं खुलता तब तक ही यह संसारी जीव मोही अपने से भिन्न अनुकूल पदार्थों के सम्पादन संरक्षण में और प्रतिकूलताओं के परिहार में दिन-रात तत्पर रहता है। कोई भी कार्य होता है तो उसमें कार्य करने वाला कौन है और कार्य किन-किन कारणों से होता है, किन निमित्तों से होता है, कार्य कहो या निमित्त कहो ये सब एकार्थ वाचक हैं। जब तक कारण का भेद खुलता नहीं तब तक ये संसारी प्राणी संसार में ही उलझा रहता है। चेतन सम्बन्धी कार्य हो या अचेतन सम्बन्धी; बिना किसी कारण ही उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं। बहुत सरल शब्दों में कहा है। और ये भी अकाट्य नियम है। कार्य वैसा होता है जैसा कारण मिले अर्थात् कारण जैसा होता है वैसा कार्य होता है। जैसे बीज बोते हैं वैसे फल प्राप्त होते हैं, विपरीत नहीं। आपने बोया तो है आम, फल पाओ जाम- जामफल (अमरूद) मिले; अरे! आम की जगह जाम मिले तो ऐसा कैसा हो सकता है। नहीं हो सकता। जैसा कारण है वैसा कार्य। आम बोया तो आम ही पाओगे। वैसे कारण दो हैं- देखो एक उपादान और एक निमित्त, गुरु महाराज कहते हैं कि उपादान को अंतरंग कारण और निमित्त को बाह्य कारण कह सकते हैं। उपादान कारण वह है जो कार्य के रूप में ढल जाता है और उसके ढलने में जो सहयोगी होता है वह है निमित्त। जैसे- उपादान मिट्टी है, मिट्टी के अन्दर घड़े बनने की जो शक्ति है वह उपादान कारण है। वो शक्ति स्वयं घड़े रूप में परिवर्तित होगी। जैसे माटी का लौंदा कुम्भकार के संयोग से घट में बदलता है। उसका निमित्त क्या है- कुम्भकार। बोलते हैं- उपरिम उदाहरण सूक्ष्मदृष्टि से देखने

पर इसमें केवल उपादान की ही नहीं अपितु निमित्त की भी अपनी मौलिकतायें सामने आती हैं। मात्र मिट्टी अपने आप घड़ा बन जाएगी तो ऐसा नहीं यहाँ पर निमित्त कारण के रूप कुम्भकार के सिवा और भी कई निमित्त हैं जैसे आलोक (सूर्यप्रकाश)। अंधेरे में काम हो जायेगा तो नहीं। प्रकाश तो चाहिए और चक्र जिस पर घुमाया जाता है लौंदा उसे एक लकड़ी का दण्डा चाहिए। ऐसे बहुत सारे निमित्त आवश्यक होते हैं तभी मिट्टी से घड़ा बनता है। इन निमित्त कारणों में कुछ हैं उदासीन व कुछ प्रेरक। चाक जिस पर घूमता है ऐसी कील उदासीन है। कुम्भकार स्वयं तो प्रेरक निमित्त है। ऐसी स्थिति में अनास्था रखने वालों से मानो मेरे आचार्यश्री कह रहे हैं कि बतायें मूल में ही भूल हो रही है उसे सुधारने हेतु मैं प्रश्न कर रहा हूँ उत्तर आप देते चले जाना है, क्या आलोक के अभाव में कुम्भकार कुम्भ का निरवहन कर सकता है? क्या चक्र के बिना माटी का लौंदा कुम्भ के रूप में ढल सकता है? क्या बिना दण्ड के चक्र का भ्रमण सम्भव है? क्या कील का आधार लिए बिना चक्र का भ्रमण सम्भव है? क्या, सबके आधारभूत धरती के अभाव में वह सब कुछ घट सकता है? कुम्भकार का उपयोग कुम्भकार हुये बिना करों में कुम्भ का आकार आ सकता है? समझो इस बात को, क्या बिना इच्छा के ही कुम्भकार कुम्भाकार दे सकता है? तो नहीं, पहले बुद्धि में आकर आता है बाद में करों में आता है। क्या बिना इच्छा भी कुम्भकार अपने उपयोग को कुम्भाकार दे सकता? नहीं दे सकता। क्या कुम्भ बनाने की इच्छा निरपेक्ष, निरुद्देश्य होती है, नहीं। और साथ में ये भी समझो कि क्या कील और आलोक के समान कुम्भकार भी उदासीन है? नहीं। कुम्भकार तो प्रेरक निमित्त है और ये आलोक कहो या कील कहो ये उदासीन निमित्त हैं तो इन सब चीजों को समझें। कितने भी प्रश्न किये हों तो इन सब प्रश्नों का समाधान 'नहीं' शब्द के बिना कुछ भी नहीं है। हम हमेशा इस प्रकार चिन्तन करें कि निमित्त और उपादान ऐसी दो शक्तियाँ हैं जो वस्तु के निर्माण में अथवा वस्तु की जो कोई अवस्था प्राप्त होती है उसमें ये निमित्त होती हैं अगर एक भी शक्ति का अभाव हो तो आंतरिक शक्ति प्रगट नहीं होती। ये सब उसमें सहयोगी हैं। इसलिए मैंने कहा था– कारण के बिना कार्य की प्राप्ति नहीं होती, साधन के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होती और मार्ग के बिना मंजिल भी नहीं मिलती।

निमित्त के बारे में बहुत कुछ कह सकते हैं। मुक्ति और मोक्ष में क्या अन्तर है?

तुम्बड़ी मिट्टी से लिपटी होने पर पानी में डूब जाती है। ज्यों ही मिट्टी गल जाती

है तो तुम्बड़ी ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार वैसे ही यह आत्मा बन्धन के छेद होने पर मुक्त हो जाती है इसी अवस्था का नाम मोक्ष है। मोक्ष यहीं पर है। कर्मों से छूटने का नाम मोक्ष है, मोक्ष के बाद आत्मा ऊपर जाती है। जैसे अग्नि शिखा कहाँ जाती है? तो ऊपर की ओर। बस वैसे ही मुक्त आत्मा।

वैसे तो एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। कुछ कर ही नहीं सकता। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व वाला द्रव्य है। आप सहयोगी निमित्त कुछ नहीं मानते। फिर कैसे घटेगा? निमित्त वस्तु नहीं है तो फिर आप सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि है बताओ? वो आत्मा जा रही है, जाते-जाते 14 राजू ऊपर पहुँच गई वह आत्मा। इसके ऊपर क्यो नहीं गई? सिद्ध शिला से तो ऊपर गई है यह ठीक है लेकिन और ऊपर जाना चाहिए, कौन बाधक बन गया? किसका सहारा छूट गया? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता ऐसा बोलते हैं लोग। उनका द्रव्य अलग है, धर्मास्तिकाय अलग है। सिद्धों को तो ऊपर ही जाते रहना चाहिए फिर कौन रोक रहा है, किसने सहारा नहीं दिया। किसके सहारे की आवश्यकता पड़ गई। अनंत शक्ति से सम्पन्न हैं वे फिर भी ऊपर नहीं जा पा रहे हैं। धर्मास्तिकाय द्रव्य का अभाव है फिर भी उनके पास तो अनंत शक्ति है। दूसरा द्रव्य क्या कर सकता है? इसका मतलब है कि वह उदासीन द्रव्य उन्हें भी चाहिए। धर्मास्तिकाय द्रव्य के बिना ऊपर नहीं जा सकते। धर्मास्तिकाय चलाता नहीं, धक्का नहीं देता। रेल स्वयं चलती है पटरी तो चाहिए। मछली स्वयं तैरती है जल तो चाहिए। ऐसे ही धर्मास्तिकाय द्रव्य के हुए बिना सिद्ध परमेष्ठी अनंत शक्ति से सम्पन्न भी लोकाकाश के ऊपर नहीं जा पाये। इसका मतलब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का सहयोगी बनता है। और जो नहीं मानता ऐसा; वह सम्यग्दृष्टि है कि मिथ्यादृष्टि? वह पक्का मिथ्यादृष्टि है। इसलिए ध्यान रखोः निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होता है, साध्य रूप कार्य में हेतु प्रत्यय या निमित्त को मानना पड़ेगा। ये बात तो कुन्द-कुन्द ने भी मानी है। तुम कहाँ से आये कुन्दकुन्द के साथ छल करते हो? धोखा करते हो उन्होंने तो कहा '**चुक्केज्जछलं न घेत्तव्यं**' मैं चूक जाँऊ तो तुम छल को ग्रहण मत करना ऐसा साफ-साफ कहा है लेकिन वे तो नहीं चूके हम ही चूक रहे हैं जैसा कि पञ्चास्तिकाय परमागम ग्रन्थ में कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा है कि-

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेतु भणिदा, दंसण मोहस्स खय पहुदि॥

क्या बोलते हैं देखो; निमित्त की चर्चा वे ही कर रहे हैं सम्यग्दर्शन के लिए निमित्त भूत बहिरंग और अन्तरंग निमित्त क्या हैं? सम्यग्दर्शन के लिए जिनेन्द्र भगवान, शास्त्र और उसको जानने वाले गुरु ये बहिरंग निमित्त हैं और अन्तरंग निमित्त दर्शन मोहनीय का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना ये सम्यग्दर्शन के लिए अन्तरंग निमित्त हैं। जिसे कभी-कभी उपादान शक्ति कह दिया जाता है। अगर वह प्रबल होता है तो देव, शास्त्र, गुरु मिल जाते हैं। कई बार सहज ही मूर्ति के दर्शन। अचानक गुरु का आगमन हो जाये या भाग्य से कोई शास्त्र दे दे और कई बार उपादान कमजोर हो तो कई निमित्त जुटाने पड़ते हैं जैसे दूर दर्शन करने जाना पड़ता है गुरु को बुलाना पड़ता है और शास्त्रजी को कहीं से लेकर आना पड़ता है।

कभी-कभी बहिरंग निमित्त के माध्यम से अन्तरंग निमित्त भी बहुत बलवान बनता है। आप अपने निमित्त को बलवान बना रहे हैं पंचमकाल में आपको सब कुछ नहीं मिला श्रेष्ठ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। तो भी आप ऐसे ही संसार में बैठे रहें फिर सब कुछ मिल जायेगा क्या? आप पूजा करके, दान करें अगले भव में जाकर देव बनेंगे। चतुर्थकाल में सम्यग्दृष्टि रूप से जन्मेंगे। चौथे काल में उत्कृष्ठ संहनन पाकर के कर्मों का नाश करके मोक्ष चले जायेंगे। आप निमित्त को प्राप्त करें। उपादान को बलवान बनायें। जैसे कहा ही है कि-

तपा हो जो आग में, वही स्वर्ण चोखा है।
वक्त जो पहिचाने, वही नर अनोखा॥
समय रहते कुछ, करलो हे मानव।
वरना हर साँसों में धोखा है॥

अधिक परिग्रह का संचय चिंताओं और अधोगति का कारण है।

अनेकान्त को पहचानो

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।
देवावितस्स पणमंति जस्सधम्मे सया मणो ॥

''अन्य क्षेत्रे कृतं पापं, धर्म क्षेत्रे विनश्यति,
धर्म क्षेत्रे कृतं पापं, वज्र लेपो भविष्यति॥''

अन्य क्षेत्रों में किया गया पाप धर्म क्षेत्र में आकर के नाश को प्राप्त होता है और धर्म क्षेत्र में किया गया पाप, उस पाप को धोने का कौन-सा स्थान है? धर्म ही एक पवित्र स्थान था उसी जगह हमने पाप कर लिया तो उस धर्म क्षेत्र को ही गंदा कर दिया समझो, जिस गंगा में नहाने गये थे वह गंगा ही मैली हो गई तो हमारा मैल कौन धोयेगा? ध्यान रखो ''धर्म क्षेत्रे कृतं पापं व्रज लेपो भविष्यति' अर्थात् धर्म क्षेत्र में किया गया पाप व्रज लेप के समान हो जाता है। जैसे वज्र लेप हो जाय तो बहुत काल तक छूटना मुश्किल है इसी तरह कर्म का उदय बड़ा कटुक फल देता है जैसे कि श्रीपाल को देखो कि कितनी पीड़ा कितनी वेदना होती थी और असहनीय वेदना के कारण जीवन कितना कष्टमय था। दूसरा उदाहरण शमश्रुनीत का था जिसका सारा घर बर्बाद हो गया था और बच्चे भी इधर-उधर भटक रहे थे। कहीं कुष्टरोग से इतनी पीड़ा, तो कहीं खाना मुश्किल और कहीं मांगना। ऐसी मुश्किलों से गुजरने वालों के उदाहरण हमने सुनाये थे और एक था अकृत पुण्य का उदाहरण जिस अकृतपुण्य के जन्म होते ही सारा घर बर्बाद हो गया। पिताजी का मरण हो गया और जहाँ जाता वहाँ पर ही कष्ट मिलता और जो कुछ हाथ में आता वह सभी चला जाता स्वर्ण की मोहरें भी अग्नि का अंगार बन गयी, तो अपने जीवन सबक लेना चाहिए। मान बढ़ाई के लिए ख्याति पूजा के लिए लोग दान में नाम लिखवा लेते हैं। बोलियाँ ले लेते हैं, फिर पचास चक्कर लगवाते हैं अपने घर के; फिर उतना ही उन बोलियों का पैसा जो उन्होंने बोलियाँ बोली हैं उनका ब्याज स्वयं भोग लेते हैं। आप विचार करो कि कैसी नियत है लोगों की कि इतना पैसा किसी अन्य को दिया जाये तो उतना ही ब्याज आ जायेगा कुछ बीते दिनों में जितने दिनों में वे पैसा देते हैं उतने दिनों में स्वयं ने उसका ब्याज भोग लिया। अब क्या रहा एक (परसेन्ट)% भी पुण्य नहीं मिलेगा और दुर्गति मिलेगी इसलिए कभी भी किसी तरह से हमें ऐसे कार्य नहीं करना चाहिए। धर्म का

पैसा अगर अन्याय पूर्वक संसार में भोगा जाता है तो वह निर्माल्य कहा जाता है। अन्याय से उपार्जित जो धन है वह भी ज्यादा दिन तक नहीं टिकता सकता। एक अच्छा नीति श्लोक है-

अन्यायोपार्जितं वित्तं, दस वर्षे हि तिष्ठति।
प्राप्तेत्वैकादशे वर्षे, समूलं तद्विनश्यति॥

बोलते हैं कि अन्याय से उपार्जित जो धन है वह ज्यादा से ज्यादा दस वर्ष तक अपने पास रह सकता है, ज्यादा से ज्यादा रहे तो बेईमानी का पैसा कहो या अन्याय का पैसा कहो वह दस वर्ष से ऊपर नहीं ठहरता। अगर दस वर्ष से ऊपर ग्यारहवें वर्ष तक रहा तो वह मूल धन को ही नाश कर देता है। ऐसा पैसा अपना मूल ही लेकर चला जाता है मतलब सभी बर्बाद कर देता है। जिस जीवन से पैसा आपने कमाया वह जीवन ही चला जाता है। मुझे एक उदाहरण याद आ गया यह देखकर स्थिति; वही आपको बात कह दें; फिर कि जो कल विषय था उसका समापन भी अथवा यूँ कहो उपसंहार। संक्षेप में उपसंहार करते हुए कल निमित्त के बारे में जो चर्चा की थी, उसमें हम देखते हैं कि लोग विपरीत मार्ग में जा रहे हैं भले ही वह पूछे या न पूछे लेकिन उसका अन्तस बोलता है उनके अन्दर भव्यत्व भी हो सकता है इसी कारण समझो उनका कुछ पुण्य भी हमसे बुलवाता है। उस विपरीत सोच वाली आत्मा की चपेट में कितनी आत्मायें आ रही हैं नहीं मालूम? कब तक भटकते रहेंगे ये जीव? विपरीत मार्ग पर चलते हुए जीवों को देखकर बड़ी करुणा भी आती है कि इन्हें सन्मार्ग अवश्य मिले।

बोलते हैं कि धार्मिक क्रियाओं या रत्नत्रयात्मक धर्म के लोप होने पर और सच्चे आगम सम्मत सिद्धान्त का विप्लव होने पर पूछो अथवा न पूछो, पर जहाँ पर अर्थ का अनर्थ देखा जा रहा है कि सच्चे सिद्धान्त को उड़ाया जा रहा है, या दबाया जा रहा है उस स्थान पर बिना पूछे भी उस सच्चे स्वरूप का; मतलब आगम के सच्चे स्वरूप का कथन करने के लिए अवश्य बोलना चाहिए जैसे कि ज्ञानार्णव शास्त्र में कहा है-

धर्म नाशे क्रियाध्वंसे, सुसिद्धांत विप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं, तत्स्वरूपं प्रकाशने॥

यहाँ पर हम जो बात कहने जा रहे हैं वह अनेकान्त से सम्बन्धित है। क्योंकि लोगों की शंकाये नहीं निकली तो अर्थ का अनर्थ लोग ले लेते हैं। ऐसा सुनने में भी

आया कि ऐसा भी कह दिया कि वस्तु में तो कुछ है ही नहीं वस्तु तो परम शुद्ध है। और बाकी सब बाहर की चीजें हैं लेकिन हम कहना चाहते हैं कि आप जिन-धर्म को मानते हैं कि नहीं? पहले तो यह बात बताओ! जिन धर्म तो अनेकान्तमय है कैसा अनेकान्तमय धर्म है, अनेकान्त की परिभाषा क्या होती है? यह पूछो तो-

'अनेके अन्तः धर्मः यस्मिन सः अनेकान्तः'

जिसमें अनेक अन्त अर्थात् धर्म पाये जाते हैं उसका नाम अनेकान्त है अनेक धर्म युक्त वस्तु जो है अनन्त धर्मात्मक है। धर्म का अर्थ क्या है? गुण है। अनन्त धर्म या गुण जिसमें पाये जाते हैं उस वस्तु के पास कुछ नहीं है ऐसा नहीं है; वस्तु जब अनन्त धर्मात्मक है और आप जितना भी कुछ देख रहे हैं अभी तो यहाँ पुद्गल द्रव्य ही देखने में आ रहा है अनुभव में आप ज्ञान, दर्शन गुण के धारी हैं उसका अनुभव आपको होता होगा वह जीव द्रव्य है बाकी द्रव्य तो दिखते नहीं हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल हमें दिखते नहीं हैं जीव दिखता नहीं है अनुभव में आता है। पुद्गल दिखता है हमें उस पुद्गल की अनेक पर्यायें दिखती हैं और जीव उसकी चपेट में है, अनादिकाल से कर्मों के आधीन है यह आत्मा, इसलिए इसकी भी तरह-तरह की अवस्थायें होती रहती हैं जो हमें जानना आवश्यक है कि ये अवस्थायें किस वजह से हो रही हैं द्रव्य में भी बहुत शक्तियाँ हैं और वे शक्तियाँ अपना-अपना काम करती रहती हैं। हम पहले उस निमित्त के बारे में क्या कहना चाहते हैं जो मेरा चिन्तन था, कल मैंने कहा था कि एक चिन्तन जो लेखनी से लिखा गया वह यह कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव दिखाता है। अगर ऐसा न होता तो आप संसार में क्यों होते आप मोक्ष प्राप्त करके सिद्धालय में होते। आप सिद्धालय में क्यों नहीं हैं? इसका कारण क्या है? हमारे साथ लगा हुआ अनादिकाल से कार्मण शरीर, अष्टकर्मों का समुदाय। ''अनादि सम्बन्धे च''। वे कर्म क्या हैं चेतन हैं कि जड़ हैं कि क्या हैं? आप चिन्तन करो, सुन रहे हैं कि नहीं? क्या है? कर्म जड़ है। अचेतन है, चेतन नहीं है और हमारा स्वभाव तो हमारा चेतन गुण रूप है वे मुख्य गुण ज्ञान, दर्शन दो हैं, शरीर व कर्म अचेतन और क्या है पुद्गल रूप है। पुद्गल और आत्मा का कैसा सम्बन्ध है? एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है। अनादिकाल से कर्म हमारे साथ हैं, क्या कर्म हमारे बन गये? हमारे हो गये? और आत्मा कर्ममय हो गई? या कर्म आत्मामय हो गये? नहीं; दूध पानी के समान मिले हैं। इतना समझ सकते हैं उनमें संश्लेष सम्बन्ध है। जैसे दूध का

स्वभाव अलग है, पानी का स्वभाव अलग है वैसे ही आत्मा और कर्म है। फिर भी उसका प्रभाव पड़ा है। कर्म से प्रभावित होकर आत्मा चतुर्गति में भ्रमण कर रही है। उसकी विभाव अवस्था हम देख रहे हैं। तो एक पुद्गल ने आत्मा पर अपना प्रभाव डाला या नहीं डाला? यह बताओ मुझे! नहीं डाला होता तो फिर आपको सिद्धों के समान अनुभव होना चाहिए। कोई बताये मुझे कि सिद्धों के समान अनुभव हो रहा है क्या? आपको इस सांसारिक सुखों, दुःखों आदि का अनुभव नहीं हो रहा है क्या? ऐसा कोई है कि जिसको संसार में सुख दुःख का अनुभव नहीं हो रहा हो। सुख-दुःख होते हैं इसका मतलब यह है कि आत्मा कर्मों से प्रभावित हुई है। कर्मों ने अपना प्रभाव आत्मा पर डाला है यह मानना पड़ेगा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में कुछ न कुछ कार्य हेतु निमित्त बन जाता है। इसलिए आपको निमित्त का उपकार मानना पड़ेगा। अनेकान्तमय शास्त्र से जो कोई अनभिज्ञ लोग हैं वे लोग कर्म सिद्धान्त को नहीं जानने से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को सहायक बनना अथवा माता-पिता अपने बच्चों को जो संस्कार देते हैं उसको बोलते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकता तो उनका ऐसा कहना बिलकुल ठीक नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो सकता यह बात ठीक है लेकिन कारण के बगैर कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। साधना के बिना साध्य की उत्पत्ति नहीं होती; यह सिद्धान्त का अटल नियम है। इसलिए एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता, सहायक बनता है यही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहा जाता है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर प्रभाव नहीं डालता तो या अभी किसी द्रव्य की वजह से हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं हो रहा होता तो हम सिद्धालय में बैठे होते; संसार में यहाँ नहीं होते। कर्म ने हमारे ऊपर प्रभाव डाला है और कर्म के माध्यम से चतुर्गति भ्रमण चल रहा है और चलता रहेगा; जब तक कि कर्म नाश नहीं हो जाते। आप यह बात समझ लेते तो आत्म स्वभाव से भिन्न पर द्रव्य रूप उन जड़ अचेतन अष्टकर्मों को नष्ट करने का पुरुषार्थ जरूर करते जो इस संसार में रोके रहने के कारण या निमित्त हैं। आप देखिये निमित्त का प्रभाव कि मयूर की आवाज सुनते ही चंदन के वृक्ष पर लिपटे हुए काले सर्प अपने बन्धन छोड़ करके, अपने बिलों में प्रवेश क्यों कर जाते हैं। जबकि मयूर अलग है, और मयूर के शब्द भी अलग; और वह दूरस्थ चंदन का वृक्ष कहाँ जिस पर सर्प लिपटे हुए हैं; और सुदूर से ही मयूर की आवाज ने उन पर प्रभाव

डाला है। इसी तरह आप देखते ही हैं अग्नि के संयोग होने से जल उष्ण क्यों हो जाता है? देखिये अग्नि ने जल पर अपना प्रभाव डाला न; अर्थात् एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य को प्रभावित किया। जल उष्ण हो गया भले ही उष्णता उसकी विभाव अवस्था है लेकिन प्रभावित हुआ वह जल। सूर्य के उदय होते ही कमल बन क्यों खिल जाता है? जब तक सूर्य का उदय नहीं है कमल खिलते नहीं हैं। सूर्य उदय होते ही कमल खिलते हैं इसका मतलब क्या है कि पर द्रव्य का प्रभाव कमलों पर भी पड़ गया, पड़ा कि नहीं? समझ में आया; कि निमित्त कितना प्रभाव डालता है और चन्द्रमा के खिलने पर समुद्र का जल क्यों उछलने लग जाता है। पूर्णिमा के दिन; आप बोलते हैं ना कि ज्वार भाटा आता है। तो जल क्यों उछलता है? यह भी तो दूसरे द्रव्य का प्रभाव है ना! समय पर या मन के अनुरूप भोजन के उपलब्ध न होने पर सरागी लोगों को विशेष आकुलता होती है। अभी पूजा, विधान में अगर 2 बजे तक भोजन ना मिले तो आकुलता होती है यह आकुलता कैसे हुई? पर द्रव्य के निमित्त से हुई ना! किसी परिवार में किसी व्यक्ति की आयु समाप्त होने पर सरागियों की आँखों में आँसू क्यों देखे जाते हैं? बोलिये ना! किसी की मृत्यु हो जाये तो संसारी लोग रोते हैं; क्यों रोते हैं? उनका मोह का सम्बन्ध है, मोह जुड़ा हुआ है अतः असाता वेदनीय की उदीरणा होने लगी है। अतः इस तरह एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव डाल रहे हैं। किसी के लिए अनिष्ट वचन कहे जाने पर सरागियों के लिए प्रसन्नता भी क्यों होती है? यहाँ भी एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डाला ना? हाँ! ओजस्वी निर्दोषी वक्ता का प्रभाव श्रेष्ठ व बहुत ही प्रभावना करने वाला हो जाता है, सबके लिए आनन्ददायक होता है और ओजस्वी हीन सदोषी वक्ता का प्रभाव लोगों पर अधिक क्यों नहीं देखा जाता यह भी पर द्रव्य का प्रभाव समझना चाहिए। अतः पर द्रव्य कुछ नहीं करता तो ऐसा क्यों कहते हैं कि अनायतनों के दर्शन नहीं करना चाहिए। अनायतन अर्थात् कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र के दर्शन नहीं करना चाहिए क्योंकि मिथ्यात्व आ जायेगा। जब तक एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कुछ नहीं कर सकता तो रोकने की क्या आवश्यकता है? आप बताईये। इसका मतलब है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता है इस बात को नकारा नहीं जा सकता। अगर पर द्रव्य के प्रभाव रूप निमित्त को नहीं मानते तो पर द्रव्य रूप भगवान व गुरु के पास क्यों जाते हैं? जब तक एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कुछ नहीं करता तो अकेले ही रहो किसी के पास मत जाओ। अन्य द्रव्य कुछ करता है इसलिए तो जाते

हो। अन्यथा भगवान के दर्शन व णमोकार मंत्र के जाप इत्यादिक धार्मिक नियमों क्रियाओं से बहुत कर्मों का क्षय होता है ऐसा सिद्धान्त रूप जिनागम में क्यों कहा गया है कि:-

''जिन बिम्ब दंसणेण णिधत्ति णिकाचिदस्स कम्मकलावस्स खय दंसणादो''।

ऐसा धवला पुस्तक में कहा गया है कि जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से निधत्ति, निकाचित जैसे कर्म कलापों का क्षय देखा जाता है। ऐसा क्यों कहा गया है? इसका मतलब यह है पर द्रव्य एक दूसरे द्रव्य पर प्रभाव डालता है। इसलिए निमित्त को नकारा नहीं जा सकता। यह बात याद रखो इसलिए अनेकान्त दृष्टि को हमारे जीवन में लाना है और वस्तु अनेक धर्मात्मक है यह भी विचार करना है। कल नियमसार की गाथा कही थी कि सम्यग्दर्शन के लिए निमित्त क्या है-

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेदु भणिदा दंसण मोहस्स खय पहुदि॥ 53॥

सम्यग्दर्शन के बहिरंग निमित्त देव, शास्त्र, गुरु और अन्तरंग निमित्त कर्मों का क्षय, क्षयोपशम, उपशम है। इसलिए निमित्त की चर्चा कुन्दकुन्द आचार्य ने भी की है। अभी भी उस चर्चा को उड़ा नहीं सकते छोड़ेंगे तो एकान्त हो जायेगा। आपने बोला कि वस्तु में कुछ नहीं होता तो वस्तु किसका नाम है? वस्तु को द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का लक्षण क्या है? ''**सत्-द्रव्य-लक्षणं**'' सत् किसे बोलते हैं? सत् किसका नाम है?- ''**उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्।**'' जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों अवस्था पाई जाती हैं उसका नाम है सत्। पहले नम्बर तो यह समझो कि- ''**गुण पर्ययवद् द्रव्यम्**'' अर्थात् गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है। द्रव्य के पास क्या है? गुण और पर्याय। जो गुणों में बदलाहट होती है उसी का नाम पर्याय है। गुणों की अवस्थायें जो बदलती हैं उसी के लिए ''**तद्भावः परिणामः**'' कहा है अर्थात् गुणों की अवस्थायें सदा बदलती रहती हैं। कभी संसारी के सद्गुण दुर्गुण बन जाते हैं, ज्ञान अज्ञान बन जाता है या मिथ्या ज्ञान बन जाता यह व्यवहार अवस्था है। यह गुणों की व्यवहारिक अवस्था है। आप मिथ्या ज्ञानी से सम्यग्ज्ञानी बन गया। यह पर्याय बदल गई। मिथ्याभासी से सम्यग्दर्शी बन गया यहाँ पर्याय बदली कि नहीं? और जैसे गृहस्थ पर्याय से मोक्षमार्ग की पर्याय बदलती है। आप गृहस्थ से मुनि बने पर्याय बदली कि

नहीं। गुणों में जो बदलाहट आती है उसी का नाम पर्याय है। ''**गुण पर्ययवद् द्रव्यम्**'', '**सत् द्रव्य लक्षणम्**', **उत्पाद व्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**।'' इन सूत्रों का चिन्तन करें तो हम पूर्ण रूप से अच्छे से वस्तु के स्वरूप को समझ सकते हैं। उत्पाद व्यय चलता रहता है। गुणों में जो बदलाहट होती है नई पर्याय उत्पन्न होती है वह उत्पाद हुआ, पूर्व पर्याय चली गई वह व्यय हुआ। यह चलता रहता है। सिद्धों में भी अर्थ पर्याय रूप परिवर्तन चलता रहता है वहाँ भी चेतन गुण है। गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। वहाँ पर सूक्ष्म परिणमन है आन्तरिक परिणमन है। आचार्यश्री ने एक उदाहरण दिया था एक बॉटल का, एक बॉटल में गोली डाल दी, अन्दर पानी है, उस बॉटल को हिलाने से गोली ऊपर नीचे जाती है यह स्थूल परिणमन हो गया। यह स्थूल बदलाहट हो गई। दूसरी भी गोली आपको दिखती होगी लेकिन वह मुख के पास घूमती है। ढक्कन के बाहर नहीं आती, अन्दर की वस्तु को एक साथ बाहर नहीं आने देती। इस प्रकार से वो गोली वहीं-वहीं घूमती है। यह वहीं घूमने योग्य जो उदाहरण है ऐसी होती है अर्थपर्याय। और पूर्व वाली है व्यंजन पर्याय। ऊपर नीचे-ऊपर नीचे, चारों गतियों में हमारा घूमना हो रहा है यह व्यंजन पर्याय है और सिद्धों का आन्तरिक परिणमन हो रहा है सो वह है अर्थ पर्याय जिससे तो ज्ञान में सारे पदार्थ झलक रहे हैं। तो वही है ज्ञानगुण का सूक्ष्म परिणमन। ज्ञान ज्ञेयों की ओर परिणमन कर रहा है इसे अर्थ पर्याय हम समझ सकते हैं। द्रव्यों में कुछ नहीं होता ऐसा नहीं; द्रव्यों में उत्पाद-व्यय तो होता ही रहता है। वस्तु में यह सब चीजें हैं। वस्तु में अनन्त धर्म माने गये हैं। अगर इसको नहीं मानेंगे तो मिथ्यात्त्व हो जायेगा इस बात का भी हमें ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वयं पंचास्तिकाय ग्रन्थ में कहते हैं कि जो भी द्रव्य है वह द्रव्य किससे युक्त होता है तो वह गुण व पर्यायों से युक्त है। कहते हैं कि-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जयाणत्थि।
दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति॥ 12॥

पंचास्तिकाय में यह भी कहते हैं कि पर्याय के बिना या पर्याय से रहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्य से रहित पर्याय नहीं होती '**दोण्णं अणण्ण भूदं**'- ये दोनों अभेद रूप हैं। द्रव्य और पर्याय को अभेद स्वरूप कहते हैं क्योंकि द्रव्य से अलग नहीं होती पर्याय। पर्याय और द्रव्य का अटूट सम्बन्ध है। द्रव्य में कुछ नहीं है; वस्तुओं में कुछ नहीं है ऐसा नहीं हो सकता, द्रव्य से न विलग पर्याय है ना गुण। गुणों की जो हालत है

उसी का नाम पर्याय है। ये दोनों द्रव्य से अलग नहीं रह सकते कि द्रव्य कहीं अलग चला जाये और पर्याय कहीं अलग। लक्षण की अपेक्षा द्रव्य अलग है गुण अलग हैं और पर्याय अलग। उसी द्रव्य में जो गुण पाये जाते हैं उन गुणों की बदलने की जो अवस्था विशेष है वही पर्याय है इस प्रकार से हमें समझना चाहिए। एक बर्तन में जैसे दूध रखा है, दूध अलग है, बर्तन अलग है। ऐसा गुण-गुणी में नहीं है आत्मा में या कोई भी द्रव्य में उसमें जो गुण हैं वे पूरे-पूरे उसी के ही गुण हैं, नहीं तो फिर गुण अलग हों, पर्याय अलग हो तो द्रव्य किसका नाम है? आगम तो कहता है कि- '**गुण पर्ययवद् द्रव्यं**'।

गुण पर्याय वाला द्रव्य है। इसके साथ में जैसी पर्याय होगी उस समय द्रव्य भी वैसा ही रहेगा या जैसा द्रव्य होगा वैसी उसकी पर्याय ही निकलेगी। यह बात अच्छे ढंग से समझ में आना चाहिए इसमें बहुत बड़ी भूल करते हैं लोग। ऐसी लहर चल रही है हवा चल रही है मानो जो मैंने कहा उसको भूल जाते हैं लोग। इसलिए हवा से बचो। कई लोग कहते हैं कि संसार में रहकर के भी मैं सिद्धत्व का अनुभव कर रहा हूँ जैसे सिद्ध परमेष्ठी शुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं। वैसा ही मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। देखो यह भी सम्भव है क्या? आप बताओ! द्रव्य जैसा होगा, उसकी पर्याय वैसी निकलेगी, जैसी पर्याय निकल रही है मतलब वैसा द्रव्य है। इस बात को लोग समझ नहीं पा रहे हैं। अनेकान्त की दृष्टि को देखा जाय तो वस्तु में अनन्त धर्म हैं और उनका हम अलग-अलग ढंग से कथन कर सकते हैं। आप सप्तभंग जानते हैं कभी सुना होगा आपने, और सुन भी लेना कभी; आज तो इतना ही कहता हूँ 'स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति' 'अस्ति' का मतलब- 'है', 'नास्ति' मतलब- 'नहीं' है। लेकिन स्याद् लगाया है स्याद् का अर्थ क्या होता है? स्याद् मतलब 'कथंचित्'; कथंचित् मतलब क्या होता है? किसी एक अपेक्षा से; जैसे इस काल में इस अपेक्षा से इस द्रव्य में यह गुण मुख्य गुण है। और यह गुण गौण है या कोई एक अवस्था मुख्य कहो, यह है या यह नहीं है (किसी अपेक्षा से) जैसे कि आत्मा ज्ञान गुण की अपेक्षा जानती है। आत्मा दर्शन गुण की अपेक्षा देखती है। आत्मा स्याद् ज्ञायति, आत्मा स्याद् दर्शयति। आत्मा कथंचित् देखती है अर्थात् आत्मा एक अपेक्षा से देखती है। वो अपेक्षा क्या है? आत्मा ज्ञान की अपेक्षा जानती है, आत्मा दर्शन की अपेक्षा देखती है। अभी अनेकान्त की बात कही थी। अब आत्मा जानती ही है; यह

क्या हो गया? एकान्त हो गया। अपेक्षा लगायी थी तो दूसरा धर्म भी सिद्ध हो रहा था। लेकिन आपने अभी ''ही'' लगा दिया; आत्मा जानती ही है तो गलत हो गया इसका मतलब आत्मा देखती नहीं है। ऐसा मत कहो, ऐसा कहने से एकान्त हो जाता है। आत्मा जानती भी है ऐसा बोला जा सकता है, आत्मा देखती भी है। 'भी' लगाओ तो आत्मा जानती है लेकिन किसी अपेक्षा से देखती भी है। 'भी' लगाया तो अच्छा है। जैसे किसी ने कहा कि- यह ही पूजा विधान कर रहा है तो सुनते ही दूसरे को गुस्सा आ जाता है। क्या मैं नहीं कर रहा हूँ? आप भी कर रहे हैं। ऐसा कहते ही आप के ऊपर स्नेह झलकता है। आप भी में अनेकान्त है। 'ही' में एकान्त है और 'भी' में अनेकान्त है। देखो! सम्यक् एकान्त रूप भी कथन होता है जैसे- आत्मा ज्ञान-गुण की अपेक्षा जानती ही है। यह सम्यक् एकान्त हो गया। अर्थात् अपेक्षा लगाकर 'ही' लगाया तो अनेकान्त चलेगा। लेकिन हमें ध्यान रखना है कि कहाँ 'भी' लगाना है और कहाँ 'ही' बस अपेक्षा लगा कर ही 'ही' लगाओगे तो सम्यक् एकान्त होगा अन्यथा मिथ्या एकान्त हो जायेगा। हमेशा हमको अनेकान्त वाद से चलना है। जैन धर्म हमें सिखाता है कि अनेकान्तवाद हमें वस्तु के हरेक पहलू का ज्ञान करा देता है और वस्तु को जानने का सही उपाय है 'अनेकान्त'। और वस्तु में जो अनन्त धर्म होते हैं उन अनन्त धर्मों को जानने के लिए हमें अपेक्षा दृष्टि से कथन करना पड़ता है तब हम जान सकते हैं जैसे कि- राम पिता हैं, भ्राता भी हैं, जमाता भी हैं, पति भी हैं, और पुत्र भी हैं। किस-किस की अपेक्षा से? तो राम-लवकुश की अपेक्षा से पिता हैं, राम लक्ष्मण की अपेक्षा तो भ्राता हैं, राम सीता की अपेक्षा पति हैं, राम जनक की अपेक्षा जमाता हैं, और राम दशरथ की अपेक्षा पुत्र भी हैं। इस प्रकार राम के पास इतनी सारी अवस्थाएं हैं। राम के पास इतने सारे गुण हैं। लेकिन वे गुण अपेक्षा से हैं। राम पिता ही हैं, राम पुत्र ही हैं, ऐसा कह दो तो नहीं ; 'भी' कहना सीखो। राम पिता भी हैं, राम पुत्र भी हैं। राम पति भी हैं, राम जमाता भी हैं। ऐसा 'भी' लगाओ, बिना अपेक्षा 'ही' मत लगाओ। ही लगाओ तो अपेक्षा लगाकर लगाओ। जैसे राम लवकुश की अपेक्षा पिता ही हैं और किस अपेक्षा से, तो वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से क्योंकि कभी किसी दूसरे जन्म में भाई भी रहे होंगे। और वर्तमान में वर्तमान भव की अपेक्षा लगानी पड़ेगी। इस तरह अपेक्षा लगाकर 'ही' लगायें तो सम्यक् एकान्त है और नहीं तो जिस कथन में अपेक्षा लगाये बिना 'ही' लगा दिया तो एकान्त मिथ्यात्व की कोटि में चला जावेगा।

यह वस्तु को समझने का उपाय है। समझ में आ रहा है कि नहीं? शायद कुछ कठिन हो गया हो? कठिन नहीं हो इसलिये आपको सरलता से समझने लायक राम का उदाहरण दिया। तो वस्तु तत्त्व समझने के लिए हम आप ऐसी अपेक्षायें लगायें जिसमें कि एकान्त से बच जायें। अब कई लोग बोलते हैं कि- आत्मा तो शुद्ध, अखण्ड, चैतन्य पिण्ड है, मैं सिद्ध अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ जैसे सिद्ध परमेष्ठी वैसे मैं अनुभव कर रहा हूँ। इसमें नय व्यवस्था छूट गयी। आत्मा द्रव्य अपेक्षा से शुद्ध है, लेकिन उस द्रव्य में और भी अवस्थाएँ हैं आपने अपेक्षा लगाये बिना बोल दिया कि आत्मा शुद्ध है। यहाँ एकान्त हो गया। आप देखो- द्रव्य संग्रह में...

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥ 2॥

यह बोला है नेमिचन्द्र आचार्य ने कि जीव उपयोगमयी है, जीव अमूर्तिक है, कर्त्ता है, भोक्ता है, और कितनी ही अवस्थाओं में वह स्वदेह परिमाण अपने देह प्रमाण है और संसार में भी है और वह शुद्ध भी है तथा ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला है। ये सब अवस्थाएँ एक जीव में हैं, लेकिन अपेक्षा लगा कर कथन करो कोई भी अवस्था इसमें गलत नहीं है। आत्मा भोक्ता भी है, कर्त्ता भी है, सब कुछ है वह सिद्ध भी है, वहाँ दूसरी मुक्त अवस्था में तो अपने ही भावों में लीन है, दूसरा कुछ नहीं करता है। संसार अवस्था में अलग अपेक्षा लगेगी, मुक्त अवस्था के लिये अलग अपेक्षा लगेगी। सिद्ध किस अवस्था में है? तो कर्मों से मुक्त अवस्था में सिद्ध है और कर्मों से सहित अवस्था में वह संसारी है। अब यह अपेक्षा नहीं लगाओगे तो एकान्त हो जायेगा। और कई लोग बोलते हैं कि आत्मा तो परम शुद्ध है ऐसा कहने वाले आत्मा के गुणों को तो मानते होंगे? फिर उन गुणों की पर्यायों को नहीं मानते क्या? उन गुणों की अवस्थाओं में यह संसारी अवस्था भी है? यह आत्मा कर्मों से सहित जब तक है तब तक सांसारिक अवस्था में हैं लेकिन द्रव्य की ओर दृष्टि रख कर कहो तो या द्रव्य की अपेक्षा कहो तो शुद्ध है लेकिन उसमें हमें पर्यायों की भी अपेक्षा लगानी पड़ेगी, क्योंकि गुण और पर्याय द्रव्य से अलग नहीं है। अगर ऐसा नहीं मानेंगे तो आप की दृष्टि में गुण और पर्याय कुछ चीज ही नहीं है ऐसा मानना पड़ेगा। वस्तु में गुण, पर्याय को नहीं माना तो आपने द्रव्य को ही नकार दिया। फिर द्रव्य का ही अस्तित्व समाप्त हो गया और एकान्त में भटक गये आप। यह सर्वज्ञ की यह वाणी है कि गुण और

पर्यायों को भी मानना पड़ेगा जो द्रव्य में सदा हुआ करती है जैसा जो द्रव्य होगा वैसी उसकी पर्याय निकलेगी। अभी आपका द्रव्य अशुद्ध है। किस अपेक्षा से? तो संसार अवस्था में कर्मों से संयुक्त है इसलिए हमारा आत्म द्रव्य अशुद्ध है उसे सिद्ध परमेष्ठी के समान अनुभूति कैसे हो जायेगी? उसकी पर्याय शुद्ध कैसे निकलेगी? संसार अवस्था छोड़ कर जब आप कर्मों से रहित हो जायेंगे तो शुद्ध पयार्य निकलेगी, और उसी प्रकार का अनुभव भी आपको होगा। इसी तरह से पंचास्तिकाय में कहा है कुन्दकुन्द आचार्य ने कि–

दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो, दव्व गुणाणं हवदि तम्हा॥ 19॥

द्रव्य के बिना गुण (वस्तुओं के जानने देखने आदि रूप लक्षण वाले) नहीं और गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता इस कारण गुण और द्रव्य का जुदापन नहीं है। ऐसा समझना चाहिए कि वे एक दूसरे से मिलकर रहते हैं यह हमने वस्तु स्वरूप को समझा है। इस प्रकार हम लोग इस पर्याय गुण और द्रव्य की चर्चा जो सुन रहे हैं द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों में सत्ता भेद या प्रदेश भेद नहीं है इसलिए पर्याय; गुण व द्रव्य से तन्मय होती है इसलिए यदि पर्याय अशुद्ध है तो उस पर्याय का अधिकरण भूत द्रव्य या गुण भी अशुद्ध होगा। वस्तुतः उस द्रव्य के गुणों का परिणमन ही तो पर्याय है ऐसा कहा गया है। प्रवचनसार में आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि–

परिणमदि जेण दव्वं, कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो, आदा धम्मो मुणेदव्वो॥ 1-8॥

जिस समय जिस स्वभाव से द्रव्य परिणमन करता है, उस समय उसी स्वभावमय द्रव्य हो जाता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है इसलिए धर्म से परिणत आत्मा को धर्म समझना चाहिए।

इस प्रकार हम लोगों ने यहाँ पर द्रव्य और पर्याय के बारे में समझा है और हम लोग इसी तरह से अनेकान्त की सिद्धि करते जायेंगे तो द्रव्य को गुण व पर्याय से सम्पन्न मानेंगे तभी हम इस अनेकान्त धर्म को पा सकते हैं।

अगर पानी अग्नि के सम्पर्क से गर्म हो गया तो गरम उसकी विभाव पर्याय है और वह पानी उस अग्नि से प्रभावित हुआ है इसलिये ये उसमें उष्णपना हमें दिख रहा है। वैसे तो शीतलपना इसका स्वभाव है। इसी प्रकार हमारे अन्दर जो व्यवहार

परिणतियाँ दिख रही हैं वे कर्म से प्रभावित हैं।

गुरु महाराज ने एक बात कही थी जैसे किसी ने बहुत अच्छे ढंग से खीर खाई और अच्छे उसमें बादाम, पिस्ता वगैरह मेवे भी डाले गये थे केशर और शक्कर तो आप लोग मिला ही लेते हैं और नहीं तो फिर किशमिश या मुनक्का मिला लेते हैं और खीर खाकर के वह डुबकी लगाता है; किसमें? छाछ के टेंक में। तो छाछ के टेंक में डुबकी लगाये तो डकार किसकी आयेगी? छाछ की या खीर की? मीठी-मीठी जैसी डकार आयेगी और मान लीजिए मठा पीकर के दूध के टैंक में डूबता है तो कैसी डकार आएगी? खट्टी आएगी। तो भैया! लोग रहते तो हैं विषय भोगों में कषायों में लीन और चिन्तन भी इन्हीं विषयों का करें, सब कुछ कषाय आदि रूप भी उसी प्रकार के भाव करते रहें और सोचे कि हमें शुद्धात्मा का अनुभव हो जाये, तो हो जायेगा क्या? अरे! मन्दिर में बैठे रहो या कहीं भी समवशरण में भी क्यों ना चले जाओ तो भी तुम्हारे अन्दर जो भरा है वह ही ख्याल में आता रहा तो बाहर में भी वैसी ही परिग्रह की लालसा विषय विषयासक्ति व राग-द्वेष रूप परिणति बनी रहेगी। और अगर मानो जिसने अन्दर से विषय कषायों का त्याग कर दिया है, व्रत, नियम, संयम को अंगीकार किया है ऐसे कोई योगी, अगर तुम्हारे घर में आहार के लिए आ जायें तो जहाँ जिस गृह में पंच पाप हो रहे हैं वहाँ भी उनको अपना शुद्ध द्रव्य या कहना चाहिए विषय कषायों से रहित वह अवस्था ही उनके अनुभव में आयेगी। उनको तुम्हारा विषय कषायों का स्वाद नहीं आयेगा तो ध्यान रखो जहाँ पर हम जैसे हैं जिस पर्याय से युक्त हैं वैसा ही अनुभव होगा। बिना उसके हम नहीं रह सकते। कहने का अर्थ है कि - वर्तमान पर्याय को हमें देखना चाहिए और उससे प्रभावित होती है आत्मा और उस पर निमित्त का प्रभाव जरूर पड़ता है। केवल आत्मा को शुद्ध ही कहकर एकान्त को न पकड़ें। अनेकान्त को हम समझे जानें और अपने जीवन को महान बनाने की कोशिश करें। निमित्त का प्रभाव भी जरूर पड़ता है और इस संसार में आप प्रभावित होते हैं कर्मों से। अगर ऐसा न होता तो वह पानी की बूंद सर्प के मुख में जाकर के विष क्यों बनती है? उसका प्रभाव पड़ता है कि नहीं, वही पानी की बूंद जाकर के गन्ने के वृक्ष पर जाकर मीठा रस बन जाता है। और वही पानी की बूंद स्वाती नक्षत्र में सीप पर पड़ने से मोती भी क्यों बन जाती है? ये सब निमित्त का ही प्रभाव है। देखो अनेकान्त समझने के लिए एक और उदाहरण है। एक बार एक नगर में एक हाथी आया। हाथी

को देखने के लिए प्रायः सब लोग गये। और वहाँ पर चार अंधे भी आये। और आकर के वे विचार करते हैं कि हम भी हाथी को देखें लेकिन अंधा कैसे देख सकता है। सबने हाथी को अपना-अपना हाथ लगाया तो एक ने हाथी की पीठ पर हाथ लगाया और बोला अरे-रे! आज जाना कि हाथी ऐसा होता है हाथी तो दीवार जैसा होता है। दूसरे ने क्या किया? हाथी का पैर छुआ और बोला अरे-रे! हाथी तो खम्भे जैसा होता है। और तीसरे ने क्या किया? हाथी की पूँछ को पकड़ा हाथी के बाल बहुत कड़क होते हैं, झाड़ू के समान, तो बोला कि अरे-रे! आज हमने जाना कि हाथी तो झाड़ू के समान होता है। चलो अब चौथे नम्बर का साथी हाथी के कान को पकड़ता है और बोलता है अरे-रे! हाथी तो सूपा जैसा होता है मुझे आज मालूम पड़ा। अब चारों के चार एक जगह जाकर बैठ गये, भाग्य योग से एक जगह बैठकर चर्चा करने लगे। आज तो हाथी देख लिया हमने ऐसा बोले। एक बोला कि मैंने तो छूकर के देखा है कि हाथी तो दीवार जैसा है। दूसरे ने बोला कि अरे- क्या बोल रहा है हाथी तो खम्भे जैसा है मैंने स्वयं देखा है। नहीं नहीं ऐसा तीसरा बोला कि हाथी तो झाड़ू जैसा है। चौथा बोला तुम सब चुप बैठो मैंने सही सही देखा है हाथी तो सूपे जैसा होता है। अब चारों में आपस में खूब विवाद हुआ और खींचा तानी हुई और उसके बाद फिर इतना झगड़ा बढ़ गया कि मरने मारने को भी तैयार हो गये। ये मामला बहुत उलझ गया। इतने में ही एक व्यक्ति वहाँ से निकले वे बहुत बड़े ज्ञानी थे तो उन्होंने कहा सुनो तुम लोग क्यों झगड़ रहे हो? तुम सभी की बातें सत्य हैं देखो मैं इसका निर्णय करता हूँ। हाँ भाई सब बैठ जाओ और जैसा देखा हो वैसा ही बोलो हमारे लिए। फिर सभी ने अपनी-अपनी बात कही, फिर ज्ञानी बोले कि तुम सबकी बात सत्य है लेकिन ध्यान रखो एक ही हाथी में यह सभी अवस्थाएँ विद्यमान हैं, तुम सब उन अवस्थाओं को अलग-अलग समझकर बोल रहे हो लेकिन तुम लोगों ने जो देखा उन सभी को मिलाकर एक हाथी है। हाथी पीठ की अपेक्षा दीवार जैसे है, हाथी पैर की अपेक्षा खम्भे जैसा है, हाथी पूँछ की अपेक्षा झाड़ू जैसा है और हाथी कान की अपेक्षा सूपे जैसा है। ये सारी बातें एक हाथी में है। तुम्हारी आँखे नहीं हैं इसलिए तुम अवस्थाओं को युगपत् सभी देख नहीं सकते हो, तुमने हाथों से देखा, इसलिए ऐसा लग रहा है। इसलिए तुम ऐसा बोल रहे हो। यह सारी अवस्थायें एक ही हाथी में हैं और तुमने जो-जो देखा वह सत्य है। और अपेक्षा लगाओ तो एक-एक वस्तु जैसा हाथी कहना भी सत्य है, अपेक्षा लगाये बिना

हाथी ऐसा ही है ऐसा कहना तो एकान्त होता है और एकान्त में झगड़ा होता है। जैसे बोलो कि आत्मा-शुद्ध ही है तो झगड़ा होगा क्योंकि तुमने आत्मा की संसार अवस्था को स्वीकार नहीं किया। तुमने आत्मा की अशुद्ध पर्याय अवस्था को स्वीकार नहीं किया तो तुमने द्रव्य को भी नकार दिया। वस्तु में कुछ होता ही नहीं है ऐसा कहना पड़ेगा। यदि उसमें गुण और पर्याय बदलती रहती है तो उत्पाद व्यय को मानना पड़ेगा आपको। संसार भी तो एक पर्याय है, यह व्यवहार व व्यंजन पर्याय रूप है अन्यथा अनेकान्त धर्म को कैसे माना जाय। अगर एकान्ती हो गये तो एकान्त भी एक मिथ्यात्व कहलाता है। इसलिए एकान्त-वाद छोड़ो। संसारी अवस्था में आत्मा अशुद्ध भी है ऐसा बोलो, भोक्ता भी है, कर्त्ता भी है, सब कुछ है आत्मा। और मुक्त अपेक्षा से शुद्ध है। इसलिए सब अपेक्षायें हैं अपने-अपने स्थान पर हैं, उसके माध्यम से द्रव्य की सिद्धि होती है। एक द्रव्य में, वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं। ये सब धर्म हैं उसके सब धर्म उसमें होते हैं। ज्ञान, दर्शन आदि अनेक धर्म होते हैं, और इन सब में वस्तु की सिद्धि होती है। इसलिए 'भी' को हमेशा ध्यान रखो 'ही' से दूर रहो। 'ही' लगाना हो तो सम्यक् एकान्त में लगाना, अपेक्षा लगा कर लगाना और इसके बिना लगाया तो आप एकान्त में भटक जाएंगे, मिथ्यादृष्टि हो जायेंगे। इसलिए हम लोग हमेशा अनेकान्त से चलें और एक आपके लिए गाथा कहूँ-

जई जिणमयं पवज्जइ, ता मा ववहार णिच्छए मुयइ।
एएण विणा धिज्जइ, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

इस गाथा में क्या बताया यदि स्याद्वाद रूपी ध्वजा से सहित अनेकान्त मय धर्म का रथ प्रवर्तन करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक को भी नहीं छोड़ो। व्यवहार भी हमें जानना है, निश्चय भी हमें जानना है। ये जानने के उपाय हैं ये वस्तु में नहीं है लेकिन जानने के उपाय हैं। इन उपायों से वस्तु का ज्ञान कर सकते हैं और इनको हमने नहीं जाना और नहीं लिया इनका सहारा तो वस्तु के स्वरूप को हम नहीं जान सकते हैं। और वस्तु की शुद्ध अवस्था ही निश्चय है और वस्तु की जो और भी अवस्थाएं हम देखते हैं कर्मों से सहित अवस्थाएँ हैं तो व्यवहार नय से उनको जानते हैं। तो इस प्रकार से हम लोग वस्तु को समझने के लिए नयों का आलम्बन लेकर और 'ही' से 'भी' की और बढ़ें, आचार्यश्री विद्यासागरजी का पद्य है-

ही से भी की ओर यदि, बढ़ें सभी हम लोग।
छः के आगे तीन हो, विश्व शान्ति का योग॥

मतलब कि 'ही' से 'भी' की ओर अगर यदि हम बढ़े तो वहाँ पर क्या होता है अनेकान्त का योग हो जाता है। अनेकान्त धर्म का पालन हो जाता है। इसलिए हम लोग छः के आगे तीन; ये क्या है? मेल का आकड़ा है। हाँ! और एक दूसरे के पूरक भी हैं यही अनेकान्त धर्म है। हमारे लिए वस्तु के सभी धर्म जो उसमें बैठे हैं उन अनन्त धर्मों की सिद्धि ये 63 के अंक कर देते हैं। इसलिए हमें 36 का आकड़ा नहीं रखना। 36 का अर्थ उल्टा होता है। 36 के आकड़े में अंक एक दूसरे से विपरीत होते हैं जबकि 63 का आकड़ा एक दूसरे का पूरक होता है। हमारे लिए अनेकान्त धर्म के उपदेश से विश्व में शान्ति का योग हो जाता है और इसके सामने सब झगड़े समाप्त हो जाते हैं। बस इतना हमने जो बोला यदि गुरु पर श्रद्धा हो तो तुरन्त लोग सच्चे श्रद्धालु बन करके अनेकान्त को समझ सकते हैं। और श्रद्धा नहीं है तो ऐसे ही संसार में भटकते रहेंगे गुरु बोलते-बोलते चले जायेंगे फिर भी नहीं सम्हल पायेंगे और अपने एकान्त मिथ्यात्व रूप हठाग्रह मार्ग को नहीं छोड़ेंगे तो फिर वे इस संसार से तिरने वाले नहीं हैं। इसलिए इस अनेकान्त धर्म को सच्ची श्रद्धा से समझ करके और उसे जीवन में पालन करते हुए मोक्ष की ओर कदम बढ़ायें, इसी में आत्मा का उद्धार होगा। कहा भी है कि-

आचरण शैतान को इंसान बना देता है।
माली वीरान को गुलिस्थान बना देता है।
और कहाँ तक कहें कि-
मोक्षमार्ग की सीढ़ी पर चढ़ने से-
त्याग इंसान को भगवान बना देता है॥

गुरु का उपदेश सुनकर जो घोड़े को पानी दिखा लाओ कहने पर मात्र पानी दिखाकर लाने के समान अधूरा कार्य करता है वह शिष्य नहीं बल्कि जो पिलाकर लाने के समान थोड़ा कहने पर भी पूर्ण कार्य करता है वह आज्ञा का सही अर्थ समझकर शिष्य कहलाता है।

अनादि विश्व और वर्तमान दृष्टि

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः ।।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्यमूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय ।।

समूचे विश्व पर वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाय तो 'षट्काल व्यवस्था एवं काल परिवर्तन और उसके निमित्त' बड़े ही महत्वपूर्ण विषय हैं और आज की जनता के लिए सराहनीय और अनुकरणीय भी हैं।

छह काल कैसे होते हैं, उनमें क्या-क्या व्यवस्थाएँ होती हैं? कर्म भूमि व भोग भूमि में होने वाले षट्काल परिवर्तन और साथ-साथ में उनके धार्मिक जीवन, उनके व्रत-आचरण और वहाँ से होने वाली गति-अगति इत्यादि के बारे में सब सुनेंगे। कैसे प्रलय होता है? फिर कैसे रचना होती है? इन सब बातों का विवरण आएगा हम कहाँ बैठे है? सारा वर्ल्ड कहाँ है? जिसको आज हम विश्व बोलते हैं और उसका विस्तार कितना है? लोग तो कूप मंडूक जैसे बनके बैठे हैं एक कुए में जैसे मेंढक होता है और बोलता है कि यही कुआ ही पूरा संसार है। लेकिन कितना बड़ा है संसार? जब कुए से बाहर आए तब जाने। ऐसे ही समूचे विश्व के सम्बंध में हम सुनेंगे। ''भूरामल'' शास्त्री जी जैसे महान ऐसे चोटी के विद्वान हो चुके हैं और जो कि 'वीरोदय' जैसे काव्य लिखने वाले महान ज्ञानी थे जिस काव्य में मिथ्या मतों का खंडन किया गया है। जब ''बनारस'' में किसी ब्राह्मण विद्वान ने बोला कि आपके जैन दर्शन में क्या साहित्य है? कुछ भी नहीं है संस्कृत में साहित्य! तब उन्होंने 'वीरोदय काव्य' नामक चित्रालंकार काव्य बनाया था और मुनि दीक्षा अंगीकार करके (आचार्य विद्यासागरजी के गुरुवर) आचार्य ज्ञानसागरजी बने थे। जिनके काव्य को पढ़कर विद्वान दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। जब बड़े-बड़े विद्वानों के पास वह काव्य पहुँचा। तो उन्होंने कहा मुझे पढ़ना मुश्किल हो रहा है, इसका अर्थ मैं कैसे करूँ आप ही करेंगे इसका अर्थ, ऐसा पन्नालाल साहित्याचार जी जैसे बड़े-बड़े विद्वानों ने बोल दिया था। हम साहित्याचार्य हो करके भी इसके गूढ़ अर्थों को नहीं निकाल सकते; आप ही निकाल सकते हैं या आपके चरणों में बैठकर ही हम इसका अर्थ कर सकते हैं। तब उन्होंने

स्वयं ही उस काव्य का अर्थ किया था। ऐसी ही आगमिक परम्परा के प्रभाव से जो यहाँ संगोष्ठी हो रही है। इसका एक ही उद्देश्य है कि आज जो कई विद्यालयों में तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थसिद्धि के तीसरे, चौथे अध्याय को छोड़ दिया जाता है; क्या उनका जिनधर्म पर विश्वास नहीं है? लेकिन बच्चों के लिए जो आज स्कूल में पढ़ाया जाता है उसमें विज्ञान कुछ कहता है और हमारा यह जैन दर्शन कुछ; लेकिन हम ये नहीं सोच पाते हैं और न लोगों को बता पाते हैं कि विज्ञान भी कितना हमारे जैन दर्शन की ओर आया है ? और कितने सारे तथ्यों को उसने स्वीकार किया है। हमारे जैन दर्शन के बिना विज्ञान का नाम नहीं चल सकता। जर्मनी की लायब्रेरी में जो नाम है ''गंधहस्ती महाभाष्य'' का; वह गंधहस्ती महाभाष्य तत्त्वार्थ सूत्र की टीका रूप है, 18000 श्लोक प्रमाण में है, ऐसा शास्त्र समन्तभद्र आचार्य के द्वारा आज से 2000 वर्ष पहले बनाया गया था। कितना विशाल वर्णन होगा उसमें, तीसरे-चौथे अध्याय का, सारे भोग भूमि, कर्म भूमि, सारे ज्योतिष्क विमानों का कितना विस्तृत विवेचन होगा। आज उसका नाम है केवल लायब्रेरी में, ग्रंथ नहीं दिखाते वे हमारे लिए। वह ग्रन्थ वहाँ होना अवश्य चाहिए। आज वहाँ संस्कृत पढ़ते हैं लोग और संस्कृत सीखते भी हैं। जर्मनी में हमारे देश से गये साहित्य को वे सुरक्षित रखे हुए हैं और उस पर रिसर्च करते हैं और उसमें से वैज्ञानिक लोग नई-नई खोजों पर पहुँचते हैं। ये अणु-परमाणु नाम कहाँ से आए। ये जैन दर्शन के ही नाम है। परमाणु किसको बोलते हैं, हमारे यहाँ आया है कि जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता वह परमाणु है लेकिन आज के वैज्ञानिकों का परमाणु तो किसी यंत्र से दिखता है जो कि जैन दर्शन से चर्म चक्षु का विषय नहीं है। परमाणु का जैन दर्शनानुसार जो दूसरा भाग नहीं हो सकता उसे आज के वैज्ञानिकों न्युट्रान, प्रोट्रान ऐसे भेद भी करके बतला दिये जिस वजह से वह जैन दर्शनानुसार परमाणु न रहकर स्कन्ध ही ठहरा।

आज सूर्य, चाँद के सम्बंध में जैन दर्शन क्या कहता है? विज्ञान क्या कहता है? यह बहुत ही अच्छा विषय रहा। सबको इतना रुचिकर लगा कि एकटक होकर सब लोग देख और सुन रहे हैं। हम जानते हैं कि इस सम्बंध में तत्त्वार्थसूत्र के अलावा सर्वार्थसिद्धि में और राजवार्तिक आदि ग्रन्थों में भी बहुत विस्तृत रूप से लिखा है। हमारा एक तरफ से तो दुर्भाग्य है कि वह गंधहस्ति महाभाष्य जो कि तत्त्वार्थसूत्र पर टीका के रूप में अठारह हजार श्लोक प्रमाण में लिखा गया था। जिसका नाम जर्मनी

की लायब्रेरी में है। हमको उसका दर्शन नहीं। नहीं तो हम कितना विशाल ज्ञान प्राप्त कर सकते थे; सब शंकाएँ उसमें दूर हो जाती। कोई बात नहीं है; आज भी हमें जिनदर्शन पर श्रद्धा या आस्था कराने वाले गुरु लोग विद्यमान हैं। हमारे पुण्य से आस्था अपने आप होती है। तरह-तरह के उदाहरण, तर्क या अनुमानों से हम उनकी सिद्धि कर लेते हैं। कभी-कभी या दशलक्षण में वाचन करते हैं, अर्थ बताते हैं तत्त्वार्थसूत्र का, तो कभी भी हमें शंकाएँ नहीं रहती। शंका इस रूप से कि हमारा जैन दर्शन आज विज्ञान की बात से बहुत पीछे तो नहीं है? या यह सत्य है, या असत्य है? ऐसा कभी मेरे मन में नहीं आता। बल्कि अच्छी तरह से सिद्ध करके बताता हूँ, जिस वजह से कि सामने वाले व्यक्ति निःशंक होकर मौन हो जाते हैं। यह भगवान की ही महिमा व कृपा समझना चाहिए या जिनकथित शास्त्र का प्रभाव। हमारे सूत्रों ग्रंथों में भी तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्र हैं या षट्खंडागम के सूत्र हैं। इन सूत्रों में भी अनेक अर्थ भरे हुए हैं। हम जितनी भी बार पढ़ते हैं आचार्य श्री कहते हैं, प्रति वर्ष नयी-नयी बातें, नये-नये चिंतन आते हैं। वास्तव में वह सूत्र कैसा होता है? उसकी परिभाषा ये है कि "**अणंत अत्थ गब्भिद्दिदादो सुत्तो**" अनन्त अर्थ जिसके गर्भ में स्थित होता है वह सूत्र है। यह आगम वाक्य है। 'गागर में सागर' के समान सूत्र होता है। जैसे कि एक छोटे से झरने से निकलती है पानी की धारा और फिर विशाल एक नर्मदा जैसी नदी के रूप में परिवर्तित हो जाती है। वैसे ही इन सूत्रों से अनन्त अर्थ निकलता है हम जितना अर्थ निकालते जायँ उतना निकलता जाता है और आज वही हमने देखा और सुना।

सूर्य, चाँद के बारे में कहा जाता है कि ज्योतिष्क विमान यहाँ से 790 योजन से शुरु होकर 110 योजन के भीतर हैं। सुमेरू पर्वत से वे 1121 योजन दूर होकर के परिक्रमा लगाते हुए हमेशा गतिमान रहते हैं। हमारी इस चर्चा का मुख्य मन्तव्य ये रहा है कि आज कई जगह हमारे जैन दर्शन से अनभिज्ञ लोग हमारे जैन ज्योतिष्क के विषय पर विश्वास नहीं करते हैं और कई विद्यालयों में जैसे पण्डितजी ने यहाँ कहा कि तीसरे चौथे अध्याय को उपेक्षित किया जाता है। इतने अच्छे से सूत्रों का अर्थ नहीं बता पाते हैं। इसलिए उसको गौण कर देते हैं। अपने जिनदर्शन को इस तरह से गौण करना ठीक नहीं है अगर तर्क, अनुमान से उसकी सिद्धि हो सकती है तो क्यों न हो उसको अच्छे ढंग से सिद्ध करके बतलायें। अपने सामने एक युवा विद्वान ने चन्द्रमा पर पहुँच इस रहस्य को बताते हुये बिल्कुल यह बता दिया कि चन्द्रमा पर हम कतई नहीं

पहुँचे हैं और ये सब चन्द्रमा पर पहुँच का विषय झूठा है और विज्ञान के कई चित्रों से भी आपको सिद्ध करके बता दिया गया। इसका मतलब यह है कि यह सत्य है और आगम से प्रमाणिक है कि सूर्य पहले है और चन्द्रमा उसके ऊपर है सूर्य की गर्मी इतनी ज्यादा मानते हैं कि अगर वहाँ यह विमान जायेगा तो निश्चित रूप से जल जायेगा अतः वहाँ पहुँच ही नहीं सकते। वहाँ चन्द्रमा आदि पर ऐसा प्रकाश भी नहीं रह सकता जो आप यहाँ पर देख रहे हैं कि उनकी परछायीं पड़ सके। जैन दर्शन से तो बिल्कुल गलत ही है वह परछायीं पड़ने वाली बात। क्योंकि वह एक देव का विमान है और देव लोग उसकी रक्षा किया करते हैं। उसके अन्दर यहाँ के लोगों का प्रवेश पाना असंभव है। वहाँ ऐसी धूल या ऐसी मिट्टी नहीं मिल सकती और न ही वहाँ इस प्रकार की जैसी वायु ही है। वहाँ पर श्वास भी लेते हैं, उनकी श्वास के लिए वायु वहाँ पर है किन्तु हम ये कह सकते हैं कि वहाँ पर यहाँ जैसी मिट्टी, वायु वगैरह नहीं है। वे यहाँ से जाने वाले आज के लोग कहीं और जाकर उतरे हैं; लगता है कि कहीं किसी पर्वत पर गये हों। बड़े-बड़े पर्वत हैं इस भूमि पर जहाँ सामान्य मनुष्यों का जाना अशक्य है। उसको हम विजयार्ध पर्वत बोलते हैं जो 25 योजन ऊँचा है इस भूमि से 10 योजन ऊपर उस पर्वत पर कुछ चमकीले स्थल भी हैं जहाँ पहुँच कर ज्योतिष लोक जैसा भ्रम हो सकता है। विजयार्ध की गुफा जिसे कि चक्रवर्ती खोलता है। उस गुफा को खोलते समय उसको अपने रत्न का प्रयोग करना पड़ता है तब उसमें से छः महीने तक आग निकलती है और उसे वहाँ थोड़े दूर ही ठहरना पड़ता है अपनी सेना के साथ। आप देखिये; पाँच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाला चक्रवर्ती उस पर्वत को नहीं लाँघ पाया; तो हम कैसे जा सकते उस पर। म्लेच्छखण्ड भी नहीं पहुँच पाते हैं तो चन्द्रमा पर पहुँचने की बात तो अलग ही है। चक्रवर्ती इतनी शक्ति रखने वाला, रत्नों का स्वामी होकर के विशेष शक्ति रखने वाला होकर के वह विजयार्ध पर्वत के ऊपर भी नहीं जा पाया, लाँघ नहीं पाया उसको। तो आज का विमान कहाँ गया होगा हम सोचें। हो सकता है वे किसी ऐसे ही बड़े पर्वत पर पहुँचे हों बीच में। लेकिन चन्द्रमा पर जाना बड़ी दुर्लभ बात है। वह देवों का विमान है जहाँ रक्षक देव भी नियुक्त रहते हैं। वहाँ वे वैज्ञानिक कदापि नहीं पहुँच सकते।

इसी तरह जो लोग कहते हैं कि पृथ्वी घूमती है और ये ज्योतिष्क स्थिर हैं। लगता तो ऐसा ही है जब दूर से हम किसी चीज को देखते हैं जैसे कि आप ट्रेन में

चलते हैं तो आपको ऐसा लगता है कि रेल तो रुकी हुई है और भूमि घूम रही है। लगता है न कि भूमि घूम रही है? हो सकता है कि इतने ऊपर से देखते समय ऐसा ही लगता हो उल्टा ही देखने में आता हो कि हम किसी विशेष स्थान पर हैं और यह भूमि घूम रही है। चन्द्र पर से देखने का अनुमान बिल्कुल असभंव ही है। क्योंकि वे देवों के विमान हैं और रत्नों से जड़ित हैं और मणियों से बने हुए हैं ऐसे चन्द्रमा आदि पर जाना बिल्कुल ही असंभव है। आगे एक बात और कहना चाहता हूँ कि एक शंका आपके मन में हो सकती है उस शंका का समाधान मैं अभी दे दूँ, आप सुनते रहते हैं तीर्थंकर का अभिषेक सुमेरु पर्वत पर होता है, मेरु पर्वत पर होता है। इस भूमि से निन्यान्वे हजार योजन ऊपर जाकर सुमेरु पर्वत पर एक पाण्डुक वन है जिसकी ईशान आदि चारों विदिशाओं में पाण्डुक शिला, पाण्डुकंबला शिला, रक्तकंबला शिला और रक्ताशिला नामक चार अर्धचन्द्राकार शिलाएँ हैं। इन शिलाओं पर क्रमशः भरत, अपरविदेह, ऐरावत और पूर्वविदेह के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है। हमारे भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का अभिषेक ईशान दिशा की पाण्डुक शिला पर होता है। यह विषय तो हमने समझ लिया, लेकिन हमें बताइए कि ज्योतिष्क विमान ऊधर्वलोक में हैं कि मध्यलोक में हैं? किसी-किसी के मन में ऐसी भी शंका हो सकती है। इसी बात को आगे बतला रहा हूँ कि सुमेरु पर्वत एक लाख चालीस योजन का है। एक हजार योजन की तो उसकी जड़ है, इस भूमि से 99,040 योजन ऊँचा या ऊपर है। ये सूर्य, चाँद यहाँ से 790 योजन से शुरू हो जाते हैं और 900 योजन के अन्दर-अन्दर ही हैं ऐसा समझ लीजिए। एक हजार योजन भी पूरा नहीं हो पाया। एक हजार योजन की जड़ है जिसकी ऐसा 99,040 योजन उँचा सुमेरु पर्वत है। वहाँ तक मध्यलोक चलता है। तो फिर सूर्य चांद ऊर्ध्वलोक में कैसे हो सकते हैं इतना ज्ञान भी हमें रखना है। बड़े-बड़े लोग इसको भूल जाते हैं। ऊपर दिखते हैं इसलिए ऊर्ध्वलोक में है ऐसा कहते हैं लेकिन, ऊपर जहाँ तक मेरु है या स्वर्ग के पहले तक ये सारा मध्यलोक है। अच्छा बतलाइए कि तीर्थंकर का अभिषेक ऊर्ध्वलोक में होता है या मध्यलोक में। मध्यलोक में न? सूर्य-चाँद से भी बहुत ऊपर होता है भूमि से 99,000 हजार योजन ऊपर जाकर अभिषेक होता है, फिर भी मध्यलोक में होता है। अच्छा चलो बात तो सिद्ध हो गयी। मेरु पर्वत की जो चालीस योजन की चूलिका है उसके बाद एक बाल का मात्र अन्तर है कि उसके ऊपर स्वर्ग का ऋजु विमान है। नील मणि से बने हुआ ऋजु विमान से ही

सौधर्म, ईशान स्वर्गो का प्रारंभ हो जाता है ऐसा समझना चाहिए। नीलमणि से बना होने के कारण आकाश हमको नीला-नीला दिखता है। समझ रहे हैं क्या? और सुनिये! बात यहाँ पर ऐसी है कि; शंका तो आपको नहीं है, तो भी मैं शंका उत्पन्न करा रहा हूँ और समाधान भी दे रहा हूँ। शंका उसे ही होती है जिसे आगम का कुछ ज्ञान हो, पूर्ण ज्ञानी को शंका कदापि नहीं होती। अतः कभी तो भी आपके मन में एक शंका हुई होगी कि आज हम देखते हैं कि थोड़े दूर ऊपर जाने के बाद वायु नहीं मिलती। जिस प्रकार की वायु जो हमें चाहिए, ऑक्सीजन वायु नहीं मिलती। कुछ दूर जाने के बाद वायु का प्रेशर भी नहीं रहता, जिससे कि हम वहाँ स्थित रह सकें, उसके ऊपर तो एकदम उड़ने लग जायेंगे। फिर तीर्थंकर इतने ऊपर कैसे जाते होंगे? यह शंका दिमाग में उत्पन्न करो पहले। उत्पन्न हो गई न? अब समाधान लो। समाधान ये है कि पहले 500-500 धनुष की काया होती थी। तो वृक्ष भी कितने ऊँचे होते होंगे। दूसरा भी आप सोचेंगे कि ऐसा सीधा ऊपर की ओर जाते होंगे तो ऐसा भी नहीं है। इस उत्तर दिशा तरफ सुमेरु पर्वत है। तो ऐसे तिरछे जाते होंगे धीरे-धीरे उनको ले जाते होंगे। जब ऐरावत हाथी पर बैठ होते हैं तो ऐसे तिरछे ही ले जाते होंगे। यहाँ से आगे यहाँ से ऊँचे पर्वत वगैरह मिलते चले जाते होंगे। पर्वत है, भोग भूमियाँ हैं, धीरे-धीरे वहाँ से ऊपर की ओर हुए जाते होंगे। वहाँ उनको वायु का प्रेशर मिलता रहता होगा। फिर धीरे-धीरे सुमेरु पर्वत के पास वायु का प्रेशर और ऊपर तक है। क्योंकि वह एक लाख 40 योजन का है और वहाँ उसमें वन हैं, जंगल हैं सब है। इसलिए कोई बाधा नहीं आती है। बाधा होना संभव नहीं है। समाधान हो गया न! बस अब। अब दूसरी बात यह है कि लोगों के मन में ऐसी भी शंका हो सकती है कि बड़े-बड़े तालाबों में बड़े-बड़े कमल हैं, वे भी एक-एक योजन आदि के हैं उन पर महल भी बने हुये हैं। कुछ लोग तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ते समय समझ नहीं पाते, इसी वजह से उसका वर्णन छोड़ देते हैं। उन तालाबों में जो कमल बने हुए हैं उनमें से पहला कमल एक योजन का है, आगे दुगने-दुगने विस्तार वाले होते गये हैं, उनमें भी महल बने हुए हैं। उनमें देवियाँ निवास करती हैं और कमल पृथ्वीकायिक है। जैसे कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक होते हैं वैसे ही ये कमल भी पृथ्वीकायिक हैं। आप लोग सोचेंगे कि पृथ्वीकाय का कमल किसने बनाया? उन तालाबों की रचना किसने की? ये मिटते नहीं हैं क्या? ये सब प्रश्न आप करते होंगे, किन्तु आप लोगों से मैं एक प्रश्न करता हूँ कि अकृत्रिम जिनालयों में

500-500 धनुष ऊँची प्रतिमाएँ भी होती हैं। उनको किसने बनाया? और सूर्य, चाँद आदि को किसने बनाया उनको इतना गोल किसने बनाया? इसका उत्तर दे दो पहले। आप उत्तर देते हैं तो फिर उसके बाद मैं इसका रहस्य बताऊँगा। अच्छा सुनो! सूर्य, चाँद को किसी ने तो बनाया होगा, तो उसने उजाले में बनाया होगा कि अंधेरे में? अरे! अंधेरे में बना सकता है क्या कोई? अगर उजाले में बनाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि कोई सूर्य पहले भी था। तो उसको किसने बनाया था? और बनाने वालों को किसने बनाया था? उसको अंधेरे में बनाया कि उजाले में बनाया था? इन प्रश्नों का जवाब नहीं मिल सकता। ये अनादि अनिधन व्यवस्था है। किसी ने नहीं बनायी यह अकृत्रिम व्यवस्था। कृत्रिम या ये सब बनाने की चीजें नहीं हैं। जैसे सूर्य, चाँद को किसी ने नहीं बनाया वे अनादि काल से हैं। न मिटते हैं और न बनते हैं। स्वयमेव व्यवस्थित हैं। यह आगम से भी घटित नहीं होता। हम प्रश्न करते जायेंगे आप उत्तर नहीं दे पायेंगे। '**आगमोऽतर्क गोचरा**' इसका मतलब ये है कि अकृत्रिम व्यवस्था आगमिक है और आगम में कोई तर्क नहीं चलता। ये अनादिकाल से हैं और ऐसे ही हैं और ऐसे ही रहनेवाले हैं। उनको कोई मिटा नहीं सकता और न कभी मिटेंगे, यह अखण्ड व्यवस्था है। जैसे सूर्य, चाँद को कोई मिटा नहीं सकता वैसे ही इन तालाब कमलादिकों को भी कोई बना और मिटा नहीं सकता।

इसके बाद में उपपाद जन्म के बारे में भी शंका हो जाती है। उपपाद जन्म और वैक्रयिक शरीर कैसे बन जाता है। एक अन्तर्मुहूर्त में वे जवान के समान कैसे खड़े हो जाते हैं। तत्त्वार्थसूत्र पढ़ाते समय जब लोगों से पूछते हैं तो जवाब नहीं मिलता। कैसे अन्तर्मुहूर्त में शरीर बन गया और जवान के समान खड़े हो गये? क्या, इसका उत्तर आप दे पायेंगे। नहीं तो मैं समाधान रूप में एक उत्तर दे रहा हूँ कि एक बार चिंतन आया था मेरे अन्दर कि इस जगत में एक ऐसी शक्ति निर्मित होती है जो शक्ति एक क्षण में उत्पन्न होकर किसी मकान आदिक को भी गिरा देती है, और जमीन में गढ्डा तक कर देती है, उसका नाम है वज्र। उस वज्रपात को गाज भी बोलते हैं। देखो! एक जगह अन्तर्मुहूर्त में मात्र बादल और ऐसी कुछ गैसेस मिलकर ऐसी शक्ति उत्पन्न हो गयी कि उसने मकान को गिरा दिया है, जमीन पर गढ्ढा भी कर दिया। जब एक क्षण में या एक अन्तर्मुहूर्त में इतनी बड़ी शक्ति उत्पन्न हो सकती है तो क्या एक अन्तर्मुहूर्त में देवों का शरीर नहीं बन सकता है? अर्थात् अवश्य बन सकता है। समझ में आया?

परमाणु स्कन्धादि को इकट्ठा करके इतना बड़ा ठोस स्कन्ध बन सकता है तो ऐसे ही वैक्रियिक शरीर के योग्य परमाणु मिलकर वैक्रियिक शरीर क्यों नहीं बन सकता? अवश्य बन सकता है। तैजस और आहारक शरीर और यहाँ वहाँ के पुद्गलों को इकट्ठा कर बनने वाले सम्मूर्छन शरीर भी ऐसे ही रचित हो जाते हैं। अविश्वास नहीं ला सकते आप। नहीं तो बताओ वह गाज कैसे बन गई? वैसे ही वह शरीर बन गया, बस यही उदाहरण है जो फिट हो जाता है फिर कोई शंका वाली बात नहीं रहती उपपाद जन्म के विषय में।

अब हम आगे चलते हैं पाँच स्थावरों के बारे में भी चिंतन करते हैं। कई लोग सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर हैं और इनमें जीव कैसे माने? वनस्पति को तो जीव मानते ही हैं चलो, वायु भी मान लें क्योंकि उसकी विक्रिया होती है और यहाँ-वहाँ जाती भी है। जल भी उसी तरह मान लें जल भी जीव है। लेकिन पृथ्वी को जीव कैसे मान लिया? तो उसका उत्तर यह है कि वह पृथ्वी बढ़ती है, चट्टानें बढ़ती हैं, ठोस भी बन जाती है। परतदार चट्टान, आग्नेय चट्टान आदि का विषय पुस्तकों में पढ़ते ही थे। चलो तो पृथ्वी को भी जीव मान लिया गया। अब अग्नि में जीव कैसे मानना? अग्नि तो जला देती है। जीवों को भी समाप्त कर देती है। अग्नि में जीव कैसे मानेंगे? बस; इसकी सिद्धि में कुछ लोग मौन रह जाते हैं। लेकिन मैं इसकी सिद्धि आपके सामने बतलाता हूँ कि किसी भी जीव का श्वास के बिना जीवन नहीं रहता। वैसे तो प्राण दस होते हैं परन्तु एक जीव में कम से कम चार प्राण होते हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव के पास एक स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। अब देख लीजिए कम से कम चार प्राण के बिना कोई जीव नहीं रहता। आप बोलेंगे कि अग्नि के पास कहाँ श्वासोच्छ्वास है? तो मैं बताऊँ आपको; देख लीजिए एक प्रयोग है जैसे एक कुआँ है या सुरंग है जिसकी बहुत गहराई है। उसमें एक लालटेन छोड़ते हैं, एक रस्सी आदि के सहारे उसे छोड़ा जाता है। जब तक या जहाँ तक वह जलती रहेगी वहाँ तक वायु है। उसके नीचे वायु नहीं और वहाँ हमें जाना अशक्य है। ये सामान्य प्रयोग है जिसे लोग नीचे उतरने के लिए करते हैं। जहाँ तक वह दीपक जलता रहेगा वहाँ तक वायु है ऐसा अनुमान कर लेते हैं। इसका मतलब क्या हुआ कि अग्नि को भी प्राण-वायु (ऑक्सीजन) की आवश्यकता थी। अग्नि वहीं पर रह सकती है जहाँ पर वायु है। क्योंकि अग्नि को

श्वास लेने के लिए वायु चाहिए। वायु नहीं तो दीपक बुझ जायेगा। सिद्ध हो गया न; कि अग्नि जीव है। अगर जीव नहीं होता तो क्यों बुझती। अर्थात् श्वास के लिए वायु चाहिए। सिद्धि हो गयी न एक साधारण-से उदाहरण से। आगम को विधिवत् सिद्ध करने से सिद्धि हो जाती है। अतः अपने आगम को अच्छे ढंग से सिद्ध करने में प्रयत्न किया करें। अपना पुण्य ही है जो हमें ऐसे तर्कों को अपने चिन्तन में लाता है फिर कहीं पर भी शंका नहीं रह पाती है। बस; इसी के लिए यह जैनागम पर संगोष्ठी हुई है।

अब यहाँ म्लेच्छ खण्ड के सम्बंध में विचार करते हुये कहा जा रहा है कि उसे जघन्य भोगभूमि नहीं मान सकते हैं क्योंकि म्लेच्छ खण्ड में चतुर्थ काल के समान ही उत्सेध वगैरह पाया जाता है। चतुर्थकाल के शुरु के अन्त तक के समान परिवर्तन होता रहता है। वहाँ षट्कर्म व्यवस्था नहीं है, जैसे कि यहाँ असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या होती है वैसी व्यवस्था वहाँ नहीं है। इसलिए हम उसको आर्यखण्ड भी नहीं मानते हैं। कर्मभूमि होते हुये भी हमारे आर्यखण्ड जैसे कर्म वहाँ नहीं हैं। क्योंकि ज्यादा हिंसा आदि में प्रयुक्त रहते हैं वे लोग। लेकिन एक विशेष बात यह कहनी है मुझे कि वहाँ के जो मनुष्य हैं वे आर्यखण्ड में आकर के शिक्षित, प्रशिक्षित होकर व्रत, संयम भी धारण कर सकते हैं। जब जयधवला की वाचना चल रही थी (पपोराजी में) तब गुरुवर के मुख से सुना था कि चक्रवर्ती बत्तीस हजार रानियों को वहाँ से लाता है। बत्तीस हजार आर्यखण्ड सम्बंधी, बत्तीस हजार विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में रहने वाले विद्याधरों सम्बंधी और बत्तीस हजार म्लेच्छ खण्ड सम्बंधी, ऐसी छयानवें हजार रानियाँ होती हैं चक्रवर्ती की। उनको जैन धर्म के संस्कार देने के बाद विवाह रचाता है अन्यथा नहीं। अब उनके रहने की बात, अलग है कौन-से महल में रहती होगी इसकी शंका न करें। क्योंकि शंका होने के बाद समाधान नहीं मिले तो लोगों को अश्रद्धा हो जाती है। इसलिए समाधान दे रहा हूँ कि वे रानियाँ यहीं एक जगह ही आती होंगी ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन आप लोग फिर सोचेंगे कि एक जगह नहीं रहेंगी तो क्या मतलब रहा रानी बनने से? चक्रवर्ती कैसे जायेगा, रोज-रोज उनके पास? किन्तु यह ध्यान रखना कि चक्रवर्ती के पास एक विशेषता रहती है कि वह विक्रिया शक्ति वाला होता है। वह छयानवे हजार रूप बना लेता है और प्रत्येक रानी के पास जाकर उन्हें संतुष्ठ करता है मूल रूप तो पट्टरानी के पास रहता है। इसलिए इनमें शंका करने की बात नहीं, आपको अश्रद्धा न हो इसलिए मैंने

कहा है और जब छयानवे हजार रूप बना लेता है; सबके पास पहुँच जाता है तब सबको लगता है कि मेरे सामने ही चक्रवर्ती खड़ा है। म्लेच्छ खण्ड के जो मनुष्य हैं वे यहाँ आकर के जैन बनकर संयम भी धारण कर सकते हैं और संयम धारण करते ही उनकी विशुद्धि यहाँ के संयमियों से भी ज्यादा होती है भले ही दूसरे समय में विशुद्धि यहाँ के मनुष्यों से भी कम हो जाती है। यह प्रकरण भी गुरुवर के मुख से ही सुना था। अच्छा! एक बात और कहूँ कि जो विजयार्ध की श्रेणियाँ हैं उन श्रेणियों से आज भी मोक्ष हो रहा है। क्योंकि वहाँ आर्यखण्ड है, भरतक्षेत्र है। विजयार्ध पर्वत या उनकी श्रेणियों में चतुर्थ काल जैसा वातावरण है, आज भी वहाँ मुनि बन रहे हैं। कई विद्याधर तो विदेह क्षेत्र जाकर दीक्षा लेकर फिर विद्याओं का प्रयोग न करते हुये क्योंकि विद्यायें परिग्रह है; चारण ऋद्धि प्राप्त करके वहाँ से विजयार्ध पर्वत आते होंगे और लोगों को दीक्षा देते होंगे, कारण कि वहाँ पर उत्तम संहनन भी होने से आज भी मोक्ष जाने में कोई बाधा नहीं। वहाँ विद्यायें प्राप्त होती हैं। यहाँ पर तो जब रावण, हनुमान, जैसे विद्याधर रहते थे और यहाँ से हनुमान आदि मोक्ष भी गये लेकिन आज यहाँ पर आयु वगैरह कम हो गयी और पुण्य भी कम हो गया, इसलिए वे यहाँ पर नहीं आते। साक्षात् रूप से नहीं आते पर कभी-कभी निकलते होंगे जैसे उड़नतस्तरी के बारे में कहा था मैंने कि- उड़नतस्तरी क्या है? कोई देव का विमान है या विद्याधर का विमान हो सकता है। ऐसे तो कई विज्ञानियों ने खोज की है। उड़नतस्तरी को देखा है जो कोई विमान सदृश है, बहुत तेज भागता है वह। उन्होंने उसके पीछे अपनी शक्तियों को छोड़ा लेकिन नहीं पकड़ पाये उसको। पकड़ने में अपनी शक्तियाँ नष्ठ हो गयी। क्या चीज है वह? एक बार और चर्चा हुयी थी विज्ञान में विशेष रूचि रखने वालों से, तो उन्होंने कहा था कि विज्ञानी लोगों ने उत्तर दिया है कि वह विशेष विमान है, विशेष शक्तियाँ हैं उनके पास, विशेष जगह पर रहते हैं वे, हम वहाँ पर अभी तक नहीं पहुँच सके। उसको खोजने में कई वर्ष लग जायेंगे। अभी तक समर्थ नहीं हैं उसको समझने में। इसका मतलब वे कौन होंगे? मैं समझता हूँ कि स्वर्ग के विमान तो आते नहीं है पंचम काल में, हो सकता है कि वह भवनत्रिक के देवों के विमान हों अथवा किन्हीं विद्याधरों के विमान हो सकते हैं क्योंकि उनके पास विशेष शक्तियाँ भी हैं। अभी वे पंचमकाल में दिखते नहीं है। और अतिनिकट जाने पर आपके विमान को नष्ट भी कर सकती हैं उनकी शक्तियाँ। इसलिए लगता है कि विज्ञानी बहुत पीछे हैं अभी। इन सब

चीजों के बारे में अनभिज्ञता है उन्हें, अतः हमारे विद्याधरों एवं देवों के विमानों को वे नहीं जान पा रहे हैं, न उनकी पूर्ण खोज कर पा रहे हैं। पहले वैज्ञानिक लोग एक सूर्य, एक चाँद मानते थे फिर दो सूर्य, दो चाँद मानने लगेंगे और धीरे-धीरे वे हमारी ओर आते ही जा रहे हैं। पहले वे जिसको परमाणु कहते थे अब उस परमाणु के भी भेद कर दिये हैं फिर पहले वाला तो परमाणु स्कन्ध ठहरा न! पहले कह रहे थे कि एक बूँद पानी में 36,450 जीव होते हैं फिर आज इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप आ गया है उससे बता दिया है कि एक बूँद पानी में लगभग पाँच लाख (5,00,000) जीव हैं। इसका मतलब अभी का निर्णय, वास्तविक निर्णय नहीं है आगे और भी सूक्ष्मता पर पहुँचेंगे किन्तु हमारे जैनदर्शन में तो कहा है कि एक बूँद पानी में असंख्यात जीव होते हैं। और परमाणु वह है जो आँखों से नहीं दिख सकता; चाक्षुष नहीं है वह।

वैसे तो हम परमाणु के विषय में पढ़ सकते हैं, ज्ञान भी कर सकते हैं लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान से ही देख सकते हैं उसे। अवधिज्ञान से भी जाना जा सकता है, ऐसा मेरा एक चिंतन है। कौन सम्यग्दृष्टि? कौन मिथ्यादृष्टि? इसको कौन-सा ज्ञान जान सका है? केवलज्ञान तो जानता ही है चलो, मनः पर्याय ज्ञान भी जान जाये। मन सम्बंधी सब कुछ जान जाये। लेकिन मेरा एक चिंतन ऐसा है जिसे सुनिये कि परमाणु को अवधिज्ञान भी जान सकता है क्योंकि परमाणु रूपी है और वह परमाणु भी स्कन्ध बन जाता है जैसे कुछ परमाणु कर्म रूप स्कन्ध बन जाते हैं तब यह व्यक्ति सम्यगदृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है इस आत्मा में कौन-सी वर्गणाओं का बन्ध हुआ है इसका निर्णय कर सम्यक्त्व, मिथ्यात्व रूप कर्मों का ज्ञान कर लेना यह अवधिज्ञान का विषय हो जाता है। अवधिज्ञान भी विभिन्न प्रकार का होता है, ऐसे देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। सभी प्रकार के अवधिज्ञान उसे जानते हैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ। लेकिन कोई अवधिज्ञानी अवश्य जान सकते हैं यह उस ज्ञान की विशेषता है। ऐसी चर्चाओं के माध्यम से ऐसे ही अच्छे-अच्छे नवनीत के समान विषय खुलते हैं। अतः मेरी भावना यह है कि ऐसी संगोष्ठियों के जो विषय हैं वे पूरे भारत में एक नये दिशा बोध को दे सकें और जिससे आज के अनभिज्ञ लोग इन विषयों से भोग भूमि, कर्म भूमि क्या है? ज्योतिष मण्डल आदि क्या है? इसे जान सकें। नवग्रह सरागी देवी, देवता हैं उनके आदर के लिए ज्योतिष का विषय नहीं रखा गया है। लेकिन वहाँ की व्यवस्था क्या है? जो कि आज का विज्ञान सीमित ही जानता है और उसकी सूक्ष्मता को तो

जानता नहीं, परंतु इस विषय पर चिन्तनकर वे लोग सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकें। ऐसा सैद्धांतिक नवनीत सारे भारत को और विश्व को मिलना चाहिए। इसलिए यहाँ की समाज ने एक संकल्प किया है कि इन संदर्भों की हम एक पुस्तक बनायेंगे। अच्छा है बहुत ही अच्छा है जिससे समूचे भारत में जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हो यही मेरी भी भावना है:-

विश्वास से ही मिलता है, जीवन को सहारा।
विश्वास पर ही तो टिकता है, ये परलोक सारा॥
देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धान अगर सच्चा है तो-
सच्चे पथ से ही मिलता है भवसिन्धु का किनारा॥

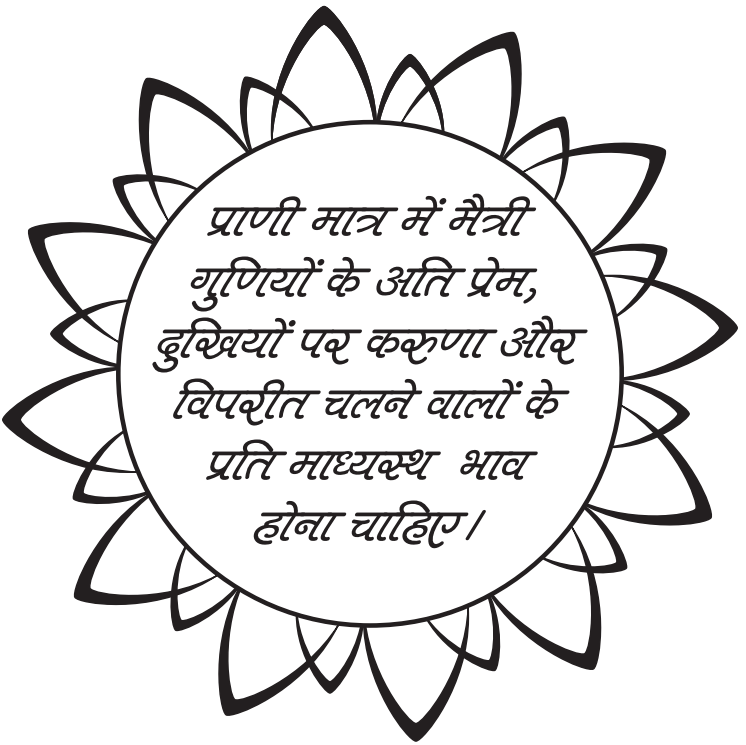

भव–मुक्ति का उपाय

जिसने रागद्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥

लोक सम्बंधी एक विशेष चिन्तवन को सभी जिनधर्मी पढ़ते हैं और सभी सम्प्रदाय के लिए भी अनुकरणीय और इष्ट होता है। इस जगत में हरेक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है; जैसे कि एक बीज के अन्दर वृक्ष बनने की शक्ति होती है। हरेक आत्मा परमात्मा बन सकती है लेकिन वह भव्य होना चाहिए। जैसे कि स्वर्ण पाषाण जमीन से निकलता है और उससे स्वर्ण निकलता है लेकिन एक और ऐसा भी पाषाण होता है जिसको हम अन्धपाषाण बोलते हैं उससे स्वर्ण कदापि नहीं निकलता है। उसके अन्दर उपादान इतना सशक्त नहीं होता कि अपने अन्दर से वह शक्ति व्यक्त कर सके। कहते हैं कि मयूर के पंख में स्वर्ण होता है लेकिन उसको कोई बाहर नहीं निकाल सकता और किसी भी प्रक्रिया से वह बाहर नहीं निकाला जा सकता। ऐसे कुछ दूरानदूर भव्यजीव इस जगत में हैं वे भले ही मोक्ष पाने की शक्ति रखते हों लेकिन कभी उसका व्यक्तिकरण नहीं होता। कहीं शक्ति हो तो भी व्यक्तिकरण के लिए वैसे निमित्त चाहिए और वैसे निमित्त मिलने पर भी अगर उपादान सशक्त नहीं है तो वहाँ कार्य नहीं हो पाता।

जहाँ उपादान सशक्त होता है तो कई बार अपने आप भी निमित्त मिलने लग जाते हैं। हम इस जगत में हरेक आत्मा को परमात्मा की शक्ति से देख सकते हैं। लेकिन शक्ति से ही देख सकते हैं वहाँ व्यक्ति वर्तमान में हुई नहीं। हम बीज में वृक्ष की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन वर्तमान में बीज को हम वृक्ष नहीं बोल सकते। हम कह सकते हैं कि शक्ति की अपेक्षा से उसमें वृक्ष और फल सब कुछ छुपे हुये हैं। दुग्ध में घी की भी शक्ति है। वह शक्ति कब बाहर आती है? जब उसके साथ वैसे निमित्त मिलते हैं और उस प्रकार की प्रक्रिया की जाती है तब घी रूप में उसकी व्यक्ति होती है तब एक अलग ही स्वाद मिलता है। योग्यता आवश्यक होती है प्रत्येक कार्य के लिए। जैसे कि आप बीज को भूमि में डालोगे तो भूमि कितनी साफ सुथरी होना चाहिए?

कंकड़ पत्थर से रहित होना चाहिए, मृदु होना चाहिए और उसमें पानी डालोगे, खाद डालोगे और रक्षा करोगे तो फिर वह बीज अंकुरित होगा और धीरे-धीरे वह वृक्ष रूप लेकर के हमें फल भी देगा। इसी तरह से जैसे कि घी को भी पाने के लिए दूध को तपाना पड़ता है और नवनीत को भी तपाना पड़ता है तब वहाँ घी बनता है। घी की शक्ति युक्त दूध को पीकर मात्र घी का स्वाद नहीं ले सकते। ऐसे ही वर्तमान में हम इस आत्मा में परमात्मा की शक्ति तो बोल सकते हैं परंतु व्यक्तिकरण नहीं हैं अतः उसका स्वादादि लेकर अनुभव हम नहीं कर सकते।

यह बात भी हमें अच्छी तरह से समझना चाहिए कि अभी हम इस संसार में रहते हैं तो इस संसार में इन जीवों की स्थिति क्या है? जैसे जीव दो प्रकार के हैं संसारी और मुक्त। हम लोग संसारी जीव हैं। चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चारों गतियों में अनादि काल से भ्रमण चल रहा है। चौरासी लाख प्रकार के योनि स्थान जीवों के जन्म लेने का स्थान है इनमें जीव जन्म-मरण कर रहे हैं अनादिकाल से। **'संसरतीति संसारः'** संसरतीति मतलब चतुर्गति भ्रमण; जिसका अर्थ संसार होता है। हम संसार से पार हो सकते हैं कैसे हो सकते हैं? बताइए कि बीज से वृक्ष बनता है या वृक्ष से बीज? बीज पहले है कि वृक्ष पहले है? आप बोलेंगे बीज पहले है तो बीज कहाँ से आया? वृक्ष कहां से आया? कौन पहले आया? कौन बाद में आया? कोई नहीं बता सकता। ऐसे ही अनादिकाल से यह आत्मा इस संसार में है, कर्मों से सहित है, कभी मुक्त थी बाद में संसारी बन गयी ऐसा नहीं है। अनादिकाल से कर्मों का संयोग लगा हुआ है। एक बात निश्चित है कि इस भव्य आत्मा को परमात्मा पद मिल सकता है जैसे हमें बीज से वृक्ष नहीं चाहिए तो क्या करना पड़ेगा? अगर बीज को जला दोगे तो वृक्ष नहीं बनेगा। ऐसे ही इस संसार में उत्पत्ति का कारण है कर्म। हमारी आत्मा में जो अष्ट कर्मों का बन्ध है उसे कार्मण शरीर बोलते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन अष्ट कर्मों के बन्ध से आत्मा अनादिकाल से इस संसार में भ्रमण कर रही है। कर्मों का बन्ध होता है। कर्मों से गति होती है। गति में शरीर मिलता है। शरीर में इन्द्रियाँ मिलती हैं। इन्द्रियों को विषय भोग मिलते हैं। विषय भोग में रागद्वेष होता है। राग-द्वेष से कर्म बंध होता है और कर्मों से पुनः गति आदि ऐसे यह चक्र अनादि काल से चल रहा है। इससे निकलने का क्या उपाय है ? ये हमें सोचना

चाहिए। कर्म रूप बीज को जिसने जला दिया तो वह इस संसार में जन्म, मरण नहीं करता। इस लोक में संसारी आत्माओं में वे भी आते हैं जो जीवन मुक्त हैं हमारे केवली भगवान आठ कर्मों में से चार घातियाँ कर्मों का नाश करके वे केवली भगवान बन जाते, प्रत्यक्ष ज्ञानी बन जाते हैं और समवसरण या गंधकुटी की रचना होती है। उनका इस जीवन में नियम से मोक्ष होगा। अब वे इस संसार में जन्म नहीं लेंगे इसलिए उनको जीवन मुक्त कहा जाता है और जो आठों कर्म से दूर हो जाते हैं वे कर्म मुक्त कहलाते हैं वे सिद्ध परमेष्ठी बन सिद्धालय में जाकर विराजमान हो जाते हैं फिर इस संसार में नहीं आते हैं। जैसे एक बार दूध से घी बनने के बाद क्या कभी वह घी दूध बनता है? नहीं बनता। वैसे ही एक बार आत्मा मोक्ष जाने के बाद पुनः इस संसार में अवतरित नहीं होती। जब तक ये आत्मा चार गतियों में कभी नरक, कभी देव, कभी मनुष्य, कभी तिर्यञ्च ऐसी गतियों में घूमती रहती है तब तक संसार चलता रहता है और जब इन चारों गतियों से निकल जाती है तो फिर पुनः इस संसार में नहीं आती।

संसार निवारण हेतु स्वस्तिक का विवेचन बड़ा मार्मिक है। एक जगह बहुत अच्छा विवेचन देखा था स्वस्तिक का। जैसे हमने बनाया तो उसमें खड़ा डण्डा जन्म का प्रतीक है। आड़ा डण्डा मरण का प्रतीक है। चारों तरफ चार डण्डे चार गतियों के प्रतीक हैं। जन्म, मरण चलता है और चारों गतियों में भ्रमण चलता रहता है। उसमें चार शून्य रखे हुये हैं उनमें तीन, चौबीस, पाँच और चार ऐसे अंक खिलते हैं ये किसके प्रतीक हैं? रत्नत्रय का पालन करना, चौबीस तीर्थंकरों को मानना, पाँच परमेष्ठियों पर श्रद्धा करना और चारण ऋद्धिधारी मुनियों का ध्यान करना। ऐसा धर्म का जो हमारे भगवान ने उपदेश दिया है उसके अनुसार चलकर जन्म, मरण के चक्कर से दूर होकर यह आत्मा कहाँ जाती है? अब आप ने जो स्वस्तिक बनाया है उसमें चारों कोणों में थोड़ी तिरछी रेखाएँ भी बनायी हुयीं हैं। जिसका अर्थ यह होता है कि जब यह आत्मा धर्म का पालन करती है तब इस संसार से निकल जाती है और मोक्ष को प्राप्त हो जाती है। अच्छा लगा न! कितना अच्छा चिंतन किया है स्वस्तिक के सम्बंध में। धन्य-धन्य वे भव्यात्म लोग जो इस संसार में रहते हुये भी ध्यान आदि के द्वारा कर्मों का क्षय कर देते हैं और आत्मा भव से मुक्त हो जाती है। कर्मों से मोक्ष पाने के लिए सबसे प्रमुख ध्यान है और वह ध्यान कैसे होता है? तो जब तक हमारा परवस्तु से सम्बंध रहता है तब तक एकाग्रता नहीं आती जैसे कि एक छोटी-सी वस्तु

लंगोट है वह फट गयी तो सुई चाहिए, सुई को धागा चाहिए, सुई, धागा रखने के लिए डब्बी चाहिए, डब्बी के लिए पेटी चाहिए पेटी रखने के लिए घर चाहिए और घर में लगाने के लिए ताला चाहिए। ताले टूटे तो केस डालेंगे। फिर केस में लड़ने के लिए पैसे चाहिए और पैसे के लिए दुकान चाहिए सब कुछ चाहिए। इसलिए छोटे से परिग्रह से भी बहुत बड़ा परिग्रह आ जाता है और चिंताओं पर चिंतायें बढ़ती जाती हैं। चिंतायें बहुत रहती हैं। प्रवचन चलते हुए भी बार-बार बाहर भागना पड़ता है आपको; क्योंकि मोबाइल से सम्बंध जोड़ रखा है और अगर मोबाइल में सिम न हो या नेटवर्क से सम्बंध जुड़ा न हो तो क्या घंटी आयेगी? नहीं आयेगी, घंटी नहीं बजेगी तो आपको यहाँ-वहाँ दौड़ना नहीं पड़ेगा, लाल स्विच दबा दिया आपने तो बन्द हो गयी घंटी, अब कोई सम्बंध नहीं। सम्बंध रखते हैं तो हमें आकुलता होती है। मन वहाँ भाग जाता है। सभा में बैठे हुये भी तुम्हारा मन दुकान तरफ चला गया। दुकान से फोन आ गया, घर से फोन आ गया तो तुम्हारा मन भटक जाता है। हमारे भगवान ने क्या किया था? मुनि बनकर सब सम्बंध तोड़ दिया था जब सम्बंध तोड़ दिया तो मन एकाग्र हुआ। अपनी आत्मा में ही तल्लीन हो गये और कर्मों का क्षय हो गया। एक और बात आप सोचेंगें कि क्या ऐसे ही कर्मों क्षय हो गया? देखो एक छोटा-सा उदाहरण है-

सूर्य की किरणें सब जगह पड़ रही हैं और बहुत तेज गर्मी का समय है समझो; लेकिन वे किरणें एक पेपर को भी नहीं जला पा रही हैं पेपर धूप में पड़े रहते हैं जलते नहीं और उन ही किरणों को एक लेन्स के द्वारा इकट्ठा करके एक प्वाइन्ट पर छोड़ते हैं तो पेपर जल उठता है। यहाँ पर छोटे-से उदाहरण से पूरा रहस्य खुल गया, मतलब कि हमारी ध्यान रूपी किरणें अगर विश्व के समस्त विषयों की ओर फैल रही हैं और बाहरी जगत से सम्बंध जुड़ा है तो हम आत्मा में एकाग्र नहीं हो पाते। जैसे लेन्स के द्वारा सारी किरणों को एक प्वाइन्ट पर छोड़ा गया वैसे ही हम अगर सभी ओर से ध्यान को हटा करके उसे एक जगह केन्द्रित करके अपनी आत्मा पर छोड़ेंगे तो कर्म रूपी पेपर जल उठेगा और आठों कर्म नष्ट होकर के आत्मा मुक्त हो जायेगी, परमात्मा बन जायेगी। बस! उसी साधना के लिए मुनि बनना पड़ता है। अब हम दूसरी तरफ से विचार करेंगे कि मुनियों ने कपड़ा क्यों छोड़ा? कपड़ा रहेगा तो चिंतायें रहेंगी; धोने की, पानी की, सुखाने की, प्रेस करने की, और सम्हालने की भी चिंता रहेगी इसलिए तो साधु उस परिग्रह को छोड़ देते हैं। घर, मकान भी छोड़ देते हैं और प्राकृतिक सहज

जीवन जीते हैं क्योंकि ऐसा ही तो जन्म हुआ है, कोई कपड़ा तो पहनकर आया नहीं और वे एक यथाजात बालक के समान रहते हैं। उनके अन्दर कोई विकार नहीं होता क्योंकि निर्ग्रन्थ भेष विकार से रहित होता है। उनका जीवन निर्मल जीवन माना जाता है। और इससे वे कर्मों का क्षय करते हैं, पंच पाप नहीं हो पाते हैं। हिंसा से दूर हो गये, कृषि व्यापार आदि सब परिग्रहों से दूर हो गये तो हिंसा नहीं। न स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाते हैं, और न किसी को भोजन बनाने के लिए बोलते हैं। वे तो आहार चर्या के निमित्त कोई नियम लेकर के निकलते हैं, विधि मिल गयी तो आहार हो जाता है। उन श्रावकों ने अगर नवधा पूर्वक कहा कि आहार जल शुद्ध है तो आहार लेते हैं नहीं तो वापिस आ जाते हैं। आपने मुझे यह नहीं दिया वह नहीं दिया, ऐसा नहीं दिया, वैसा नहीं दिया ऐसा कुछ नहीं बोलते हैं। शास्त्र पढ़ना हो तो वह उन्हें मंदिर में मिल जाता है। पिच्छिका और कमण्डल बदलना हो तो आप लोग दे ही देते हैं, उन्हें और क्या चाहिए बस सभी स्त्रियाँ तो उनके लिए माता के समान या बहिन के समान हो गयीं। जिसके लिए लोग झूठ बोलते हैं और चोरी करते हैं उस परिग्रह को तो पहले ही छोड़ दिया। मात्र उपकरण हैं साथ में। पिच्छिका है, कमण्डल और शास्त्र हैं और आँखें कमजोर हो तो चश्मा है। वह भी शास्त्र पढ़ने या समिति पूर्वक चलने के लिए है इसलिए उपकरण में आ जायेगा। 'उपकारं करोतीति उपकरणं'। जो उपकार करता है वह उपकरण है। इसका मतलब यह नहीं है कि धन, पैसा भी रख लें। उसके लिए तो अनेक चिंतायें भी बढ़ जाती हैं। इसी तरह हिंसा के भी कोई साधन नहीं रखते हैं कि मोबाईल रख लें, मोबाइल में भी हिंसा है क्योंकि लाइट (अग्नि) का सम्बंध है अग्नि को भी जीव माना है। उसके अन्दर आपको लाइट चार्ज करनी पड़ती है। सेल है या बैट्री यह जो चीज है इसमें भी सूक्ष्मता से हिंसा है। उसके लिए कितना धन वैभव का झमेला होता है। उस मोबाइल में सिम डालना पड़ती है और क्या-क्या करना पड़ता है क्यों भैया? क्या कहते हैं उसको? हाँ बेलेन्स डालना पड़ता है। आप पैसे रखते हैं अतः बेलेन्स डालते रहते हैं लेकिन साधु किससे याचना करेंगे। फिर परिग्रह आ जाय और वही पैसे वाली बात भी आ जायेगी। इसलिए मोबाइल नहीं रखते। साधु के पास मोटर नहीं, गाड़ी नहीं, कुछ संसार वस्तु नहीं होती क्योंकि उससे हिंसा होती है। जब कभी गाड़ी जायेगी तो जीव जन्तुओं के ऊपर से चढ़ती जायेगी और अगर हम पैदल चलेंगे तो देखकर चलेंगे चार हाथ भूमि देखकर चलेंगे। गाड़ी चलेगी तो रफ्तार से चलेगी

वह किसको देखकर चलेगी? इसलिए गाड़ी मोटर भी अपने साथ में नहीं रखते। इस प्रकार का जीवन होता है उनका और एक जगह के बन्धन में भी नहीं रहते वे। कारण कि एक जगह रहने लगेंगे तो मोह हो जायेगा। राग, द्वेष होने लगेंगे। इसलिए हमेशा विहार करते रहते हैं। बोलते हैं कि साधुओं के पैर चलते हैं और मन अपने धर्म में स्थिर रहता है, लेकिन श्रावकों के क्या होता है? पैर स्थिर रहते हैं और मन चंचल होता है। वे एक घर में बंधे रहते हैं, लेकिन मन सब जगह घूमता है। लेकिन साधुओं के पैर चलते हैं, समूचे भारत में वे विहार करते रहते हैं लेकिन मन अपनी आत्मा में स्थिर रहता है जहाँ पर भी जाय, वहाँ पर भी है धर्म ध्यान करते हैं बस। अपने आप से मतलब है, अपने आवश्यकों से मतलब है। यही उनका जीवन है। यह तो संक्षेप से उपदेश हुआ, लेकिन अब जो यहाँ शंकायें उठायी गई हैं उसका भी समाधान करना आवश्यक है। भोग भूमि में जितने भी जीव हैं वे सब देव गति को प्राप्त होते हैं। ये विशेषता बहुत अच्छी विशेषता है। लेकिन वे देवगति को ही क्यों प्राप्त करते हैं? इस पर थोड़ा सा चिंतन करें। तत्त्वार्थ सूत्र के छठे अध्याय के उन्नीसवे सूत्र में कहा है कि **'निःशीलव्रतत्त्वं च सर्वेषाम्'** अर्थात् व्रत और शील से रहितपना देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक इन चारों आयु का कारण है। यहाँ एक शंका जन्म लेती है कि व्रत और शील से रहितपना देवायु के आस्रव का कारण कैसे हो सकता है? तो इसका समाधान इस प्रकार है कि भोग भूमि में कोई व्रत-शील नहीं होता तो भी वे शान्त परिणामी होते हुये देव अवस्था को ही प्राप्त होते हैं यह आगम में नियम है अतः भोगभूमि की अपेक्षा से व्रत, शील से रहितपना देवायु का कारण माना है।

भोगभूमि के सम्बंध में किसी भव्य को ऐसा भी प्रश्न उठ सकता है कि भोग भूमि के जीव देवगति के अलावा अन्य गतियों में क्यों नहीं जाते? इस प्रश्न का समाधान यह है कि उन्हें पूर्व संचित विशिष्ठ पुण्य का फल ऐसा ही मिलता है। इसके अलावा जिस परिग्रह के पीछे कर्मभूमि का व्यक्ति हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और मूर्छा करता ऐसा परिग्रह उन भोगभूमि के जीवों के लिए दस तरह के कल्पवृक्षों से सुलभ, सहज रूप से समयानुसार प्राप्त हो जाता है जिस कारण दुःखदायी निम्न गतियों को प्राप्त कराने वाले पापों को करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

आज यहाँ पर कर्म-भूमियाँ, भोग-भूमियाँ, षट्काल परिवर्तन के सम्बंध में कुछ दिनों से जो विषय चल रहे हैं उसका नवनीत रूप में हमने जाना है कि कितनी

कर्म भूमियाँ होती हैं, कितनी भोग भूमियाँ होती हैं, उनमें रहने वाले जीव किस प्रकार के होते हैं और वहाँ के किस प्रकार के दुःख, किस प्रकार के सुख, किस प्रकार के कर्म और किस प्रकार की वहाँ की व्यवस्थाएँ हैं वहाँ की। आयु आदिक के परिवर्तन होने, न होने के सम्बंध में, धर्म-कर्म की जो अवस्था-व्यवस्थाएं हैं, साथ-साथ में ज्योतिष्क मण्डल व्यवस्था जो कि इस भूमि से 790 योजन से शुरू होकर के 110 योजन के भीतर है। वे ज्योतिष्क ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर से ही सुमेरू पर्वत की प्रतिक्षणा देते हैं। यह प्रदक्षिणा देने का जो कार्य है वह इस ढाई द्वीप के अन्दर ही है। '**बहिरवस्थिताः**' बोला है तत्त्वार्थ सूत्र में अर्थात् ढाई द्वीप से बाहर में सारे के सारे ज्योतिष्क मण्डल अवस्थित हैं। बहुत हैं बहुत बड़ी संख्या में हैं। हम एक चिंतन करते हैं इनका ढाई द्वीप के अन्दर ही भ्रमण क्यों है; इससे बाहर क्यों नहीं? जिससे हमें मालूम पड़ता है कि हमारा कितना विशेष पुण्य है, विशेष पुण्यशाली ही इस ढाई द्वीप में जन्म लेते हैं और जो मनुष्य बनते हैं वे तो और भी बड़े पुण्यशाली हैं देखो जहाँ हम सबके लिए अपने धार्मिक कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिए निमित्त बनते हैं ये ज्योतिष्क विमान। इसलिए तो तत्त्वार्थ सूत्र में एक सूत्र हैं 'तत्कृतः काल विभागः' अर्थात् उन ज्योतिष्क विमानों के द्वारा काल का विभाग किया गया है। आप जो घड़ी, घण्टा, प्रहर बोलते हैं और इसके साथ में दिन, रात, पक्ष, अयन, वर्ष इत्यादि बोलते हैं ये सब इन सूर्य, चाँद आदि के द्वारा किये गये काल विभाग हैं। ये व्यवहार काल हैं। इस काल के द्वारा हम धर्म, कर्म की व्यवस्था में सजग होते हैं। सूर्य का उदय होता है वह हमें कर्त्तव्यशीलता सिखाता है। वह अपनी अनवरत गति से गतिमान है। हम भी गतिमान रहते हैं जीवन भर अपने कर्त्तव्य में। हमेशा सजग रहते हैं कि सुबह से उठना सिखा रहा है सूर्य, उठिये सूर्य उदय हुआ अपने कर्त्तव्यों में लग जाइये। आज का जमाना बदल रहा है। लोग सुबह उठने में आलस्य करते हैं आठ, नौ बजे तक उठते हैं और रात में बारह, एक बजे तक जगते रहते हैं। हम उनसे कहते हैं भैय्या! निशाचर जैसे कार्य करना अच्छा नहीं है; कारण कि हम जो वास्तविक प्रकाश है उसमें तो सोते हैं और जो वास्तविक प्रकाश नहीं है उसमें जगते रहते हैं। लाईट में कितनी हिंसा है, उसे बनाते समय भी हिंसा है। जब लाईट बनती है पानी से तब आप देखे तो वहाँ पंखी घूमती है कितने मेंढक, कितनी मछलियाँ मर जाती हैं ऐसे ही जलकायिक जीव भी मरते हैं, इस तरह से लाईट तैयार होती है और जब लाईट जलाते हैं तब भी कितने

जीव आते हैं, पैरों के नीचे दब कर मर जाते हैं। पहले के जमाने में तो लाईट नहीं थी। अभी कुछ शताब्दियों से ही लाईट प्रचलन में आयी है। पहले क्या करते थे लोग? पहले तो रत्नों के प्रकाश में रहते थे। चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि और भी कई प्रकार के साधन थे। आप जानते हैं कोहीनूर नाम का हीरा था। कितना प्रकाशित रहता था। आज नहीं है वह हमारे देश में। कहीं चला गया, कहते हैं कि इंग्लैण्ड चला गया। ऐसे रत्नों से लोगों को प्रकाश मिलता था। और ऐसा रत्न किसके पास रहता था बड़े-बड़े सम्पन्न लोगों के पास रहता था। बाकी लोगों के पास तो नहीं था तो वे क्या करते होंगे? दीपक से काम चलाते होंगे और वे लोग दिन में ही सब काम कर लेते थे मतलब रात्रि होने के पहले ही सब काम करके रात्रि होने के बाद विश्राम करना ही प्रमुख रहता था। थोड़ा बहुत धर्म ध्यान करके सामायिक, ध्यान, स्तोत्रों का पाठ, जाप वगैरह करके 9, 10 बजे आराम करते थे और सुबह 4 बजे उठ जाते थे। 6 घण्टे की निद्रा पर्याप्त है। विज्ञान के अनुसार भी 6 घंटे की निद्रा पर्याप्त है 6 घण्टे से ज्यादा कोई आवश्यक नहीं है; नहीं तो अपना आवश्यक समय ही चला जाता है। बच्चों के लिए ज्यादा से ज्यादा 8 घंटे, आपके लिए 6 घण्टे निद्रा बहुत होती है। आप दस बजे सो जायेंगे तो नियम से 4 बजे नींद खुल जायेगी, आप जबरदस्ती ओढ़कर फिर सो जोओगे तो यह प्रमाद है। काम-धाम नहीं तो सोओगे ही; लेकिन नींद जब खुल जाती है तो ध्यानादि कर सकते हैं इस प्रकार का सिस्टम बनना चाहिए। आजकल तो बहुत देर तक जगते हैं और बहुत देर तक सोते हैं। ट्यूबलाईट में जागते हैं और सनलाईट में सोते हैं। अपने सिस्टम को हमने बिगाड़ लिया है। सूर्य, चाँद हमें दिनचर्या सिखाते हैं। हमारे उपकार के लिए निकलते हैं। पाँच मेरू द्वीपों में सूर्य, चाँद की प्रदक्षिणा से दिन-रात का विभाग होता है। हम लोग इसमें संयम पालन करते हैं। सूर्य किरणें अपना प्रभाव डालती हैं जिस वजह से कुछ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। रात्रि में भोजन करने वालों को बहुत चिंतनीय विषय है कितना साइन्टिफिक है हमारा जैन धर्म, इसे हम जाने अतः आज के लोगों को एवं विज्ञान पढ़ने वालों के लिए ऐसे प्रवचनों की नितांत आवश्यकता है जिस मार्ग से उनको शीघ्र हम मोड़ सकते हैं धर्म की ओर।

बड़े-बड़े लोग शास्त्र-ज्ञान के अभाव में ये भोग भूमियाँ, कर्म भूमियाँ क्या हैं नहीं जानते। इनका वर्णन भी आज के लोगों के बीच में लुप्त जैसा हो गया। कहो तो

हंसी आती है लोगों को; अभी इस आगम संगोष्ठी में लोगों को बहुत कुछ नया विषय मिला। बहुत आस्था के साथ कर्म भूमि, भोग भूमि का वर्णन आप सभी ने सुना, षट्काल परिवर्तन सुना, ज्योतिष्क विमान के सम्बंध में सुना और उनके द्वारा काल का विभाग होता है ये भी हमने समझा। इसके साथ में हमें यह भी कहना है कि यह ज्योतिष्क मण्डल मध्यलोक में ही है, ये नीचे दिखते जरूर नहीं हैं लेकिन मध्य लोक में जो 1 लाख 40 योजन का जो सुमेरु पर्वत है वहाँ तक मध्यलोक चलता है और ये ज्योतिष्क विमान तो ऊर्ध्वलोक में न होकर इस मध्यलोक में ही है और ये जो देव विमान हैं सो ज्योतिष्क कहलाते हुये भवनत्रिक में आते हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क इन तीनों को भवनत्रिक कहते हैं। इनमें मिथ्यात्व के साथ जन्म लेते हैं देव लोग, कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता है। हाँ, जन्म लेने के बाद सम्यग्दृष्टि बन सकते हैं वे। लेकिन सभी बन जायें ऐसा नियम नहीं है। वहाँ पर अनेक अकृत्रिम जिनालय भी हैं। अधोलोक में भी ऐसे जिनालय हैं और यहाँ मध्यलोक जैसे ही वे अकृत्रिम जिनालय हैं। जिनालायों में सब जगह जो जिन प्रतिमायें हैं उनकी पूजा देवगण किया करते हैं। जो मिथ्यादृष्टि देव हैं वे कुल देवता समझकर पूजा करते हैं और सम्यग्दृष्टि देव हैं वे बहुत भक्ति भाव से निःकांक्षित भावना से पूजा करते हैं इस प्रकार का अन्तर है।

आचार्य भगवन् ने समझाते हुए कहा कि आज जो ग्रहों के बारे में हमने बहुत कुछ सुना है कि विज्ञान क्या कहता है, और जैन धर्म में या जैन दर्शन में क्या है, कहाँ कौन-से ग्रह हैं, कितनी दूरी पर है, कौन घूमता है, और वहाँ स्थिर रहता है? ये सब बातें हमने जान ली हैं। आज विशेष विषय दिया गया था नवग्रह के बारे में। चिंतन करें कि जिनका विषय था उन्होंने यह कहा कि 'भय का भूत' है आज वास्तव में यही हुआ है आज के मानव को। भय का भूत हो गया है लोगों को। लोगों को भूत-सा लग गया है क्योंकि नवग्रह के चक्कर में वे जाते हैं, हाथ दिखवाते हैं, अनेक प्रकार के रत्न, मालायें पहनाते रहते हैं। मुझे समझ में नहीं आता, हमारे यहाँ जो कर्म सिद्धान्त है हम उसको क्यों भूल गये हैं। नवग्रह से भी बड़े-बड़े देव हैं ऊपर; जिनका प्रभाव सबसे ज्यादा है। कहा गया है कि उनके पास शापानुग्रह शक्ति सबसे ज्यादा पायी जाती है। आप पढ़ते ही हैं तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में आया है कि ऊपर-ऊपर के देवों में क्या-क्या विशेषताएँ हैं? ऊपर-ऊपर उनकी प्रभाव शक्ति, शरीर में कान्ति, आभरणों की कान्ति,

अवधिज्ञान का विषय इत्यादि ज्यादा-ज्यादा हैं। ऊपर ज्यादा-ज्यादा है तो भी उनको महत्व न देकर इन नवग्रहों को महत्व ज्यादा क्यों दे रहे हैं यहाँ के लोग? वे नवग्रह सुमेरु पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं और अपना सौभाग्य समझते हैं क्योंकि वहाँ पर जिनालय हैं, उनमें 500-500 धनुष की ऊँची जिन प्रतिमायें हैं उनकी परिक्रमा लगाकर देवगण अपना सौभाग्य समझते हैं। लेकिन मूढ़ लोग उन देवों की परिक्रमा लगाते हैं। अरे! अनादि काल से यह आत्मा मिथ्यात्व भी करती रही है तो तीर्थंकर कथित सम्यक्त्व भी अनादि काल से चल रहा है। अतः सम्यक्त्ची बनें, लोगों को जिसका अभी तक ज्ञान नहीं था इसलिए उससे दूर रहे अब तक। लेकिन अभी सुधर सकते हैं। क्योंकि कुछ लोग ऐसे हैं जिनके अन्दर वह अज्ञानता अभी भी है। वे देव तो मेरु के चक्कर लगा रहे हैं या भगवान की परिक्रमा दे रहे हैं और कुछ लोग उनकी परिक्रमा लगा रहे हैं। इसके बारे में मुझे एक प्रश्न करना है कि नवग्रह को सबने जाना कितने सारे ग्रह हैं कितने नक्षत्र हैं यहाँ पर सब कुछ बताया था आज दिगम्बर जैन धर्म में एक अज्ञान और आ गया है कि जगह-जगह नवग्रह विधान होने लगे हैं यह नवग्रह विधान क्या किसी आचार्य ने लिखा है? लगता है किसी पंडित का लिखा है या दक्षिण के कोई भट्टारकों की परम्परा बीच में आयी है तो उन्हीं के निर्देशन में कुछ लिखे गये विधान हो सकते हैं। विधान का अर्थ पूजा होती है। मतलब यह नवग्रह की पूजा हो गई और उनमें तीर्थंकरों को निश्चित किया गया है, नौ तीर्थंकर निश्चित कर दिये हैं कोई बोलते हैं चौबीस, आज कई जगह जहाँ नवग्रह मंदिर बनाये वहाँ की बात कह रहा हूँ कि हमने देखा नवग्रह मंदिर बनाये उसमें नौ ही तीर्थंकर रखे। एक-एक ग्रह पर एक-एक तीर्थंकर निश्चित कर दिये। इस पर एक प्रश्न है मेरा जिसका जवाब आप सबको देना है कि चौबीस तीर्थंकरों में कोई भी तीर्थंकर ऐसे नहीं है जिनमें से किसी में शक्ति ज्यादा हो और किसी में कम हो लेकिन नवग्रहों में नौ ही तीर्थंकरों को क्यों लिया, बाकी को क्यों छोड़ दिया? नव ही तीर्थंकरों की कल्पना उनके विमानों में करना गलत बात है। नौ तीर्थंकरों को ले लिया और बाकी को छोड़ दिया तो जब यह वर्तमान चौबीसी हुई ही नहीं थी तब कौन से तीर्थंकर थे वहाँ? तो यह अनादि काल की व्यवस्था नहीं रही। यह तो इसी काल की कल्पना है। तमिलनाडु में मैंने देखा, मैं सात वर्ष वहाँ पर रहा था, जहाँ जिनमंदिरों के अलावा मात्र एक जगह ही नवग्रह मंदिर था। नवग्रह की मूर्तियाँ थी उसके ऊपर एक-एक करके नौ तीर्थंकर भगवानों की

आकृतियाँ बनी थी। इसके बाद धीरे-धीरे हिन्दुओं जैसा प्रचलन हुआ और कई गाँव में कई जगह जहाँ मेरा विहार नहीं होता था या जहाँ मैं नहीं गया था वहाँ पर भट्टारकों के मार्गदर्शन में नवग्रह मंदिर बनाये गये नया प्रचलन चल पड़ा है। जिसका मैंने खण्डन भी किया था और कहा था कि नवग्रह की जगह आप नवदेवता रखो। एक जगह तो नवदेवता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी करवाई थी। समाज वालों को भी बहुत भक्ति थी इसलिए वहाँ पर नवग्रह के जगह पर नवदेवता बिम्ब रखा गया। वीतराग नवदेवता रखेंगे तो हम भी परिक्रमा लगायेंगे अन्यथा हम वहाँ जायेंगे भी नहीं और आप लोगों को महा मिथ्यात्व का दोष लगेगा ऐसा समझाया था। अभी उत्तर भारत में जो नया प्रचलन चल रहा है उसकी क्या आवश्यकता है? आप चौबीसी बना सकते हैं, नवदेवता मंदिर बना सकते हैं जिसमें पंच परमेष्ठी और जिन धर्म, जिन श्रुत, जिन चैत्य और जिन चैत्यालय इस प्रकार नवदेवता की पूजा कर सकते हैं। अन्यथा सरागता में क्या रखा है? कुछ भी नहीं।

किसी-किसी जगह हम देखते हैं कि समवशरण की रचना में बड़ी कमी रहती है जैसे शिखरजी में एक समवशरण बना है जो बहुत पहले से बना हुआ है, गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी जब आये थे तब भी था। हमने कुछ गल्तियाँ देखीं जो आगम से बड़ी भूल मानी जायेगी। वह क्या है ? कि बारह सभाओं की चार सभाओं में ही देवियाँ बैठती हैं लेकिन उन्होंने क्या किया है कि भगवान के नीचे जो कटनी रहती है उसमें देवियाँ बिठायी हैं, यक्ष, यक्षणी बिठा रखी हैं बल्कि वे तो जब भगवान की दिव्यध्वनी सुनती हैं तो भगवान के तरफ मुख करके बैठती हैं और सभाओं में बैठती हैं। यक्ष देव चँवर ढोरते हैं चँवर ढोरने वाले यक्ष दिखते नहीं हैं केवल चँवर मात्र दृष्टिगोचर होते हैं ऐसा आगम है और कोई देव धर्मचक्र लेकर भी खड़े रहते हैं। लेकिन कटनी में सभा के लोगों की तरफ मुख करके कोई देव, देवता नहीं रहते हैं सम्मेद शिखर के समवशरण को देखकर के हम ऐसा सबक न लें कि हमें भी ऐसा ही समवसरण का रूप बनाना चाहिए। इसलिए आज यह कहना जरूर था और साथ में ये नवग्रह मंदिर बनना भी आगमिक नहीं है, और नवग्रह विधान भी आगमिक नहीं लगता। आप नवदेवता विधान करिए या शान्ति विधान करिए। शान्ति विधान इतना श्रेष्ठ है कि इसमें सम्पूर्ण तीन लोक के देवताओं को, चारों निकाय के देवों को बुलाते हैं कि आप भी आइये और हमारे साथ पूजा रचाइये। ऐसे वर्णन सहित बहुत अच्छा

विधान है। उस नवग्रह विधान की जगह पर आप यह शान्ति विधान करेंगे तो सारे देव आप से खुश हो जायेंगे। नहीं तो नवग्रह मात्र ही आयेंगे और कौन आयेंगे? सौधर्म इन्द्र वगैरह देव आपसे नाराज भी हो सकते हैं। वे कहेंगे कि मैं भवनत्रिक से ऊपर बैठा हूँ उनका दादा या राजा जैसा कहिये और तुम लोग मुझे याद नहीं करते और तुम तो हमारे नौकर-चाकर जैसों को याद करते हो, मैं ही तो उनको कहता हूँ कि पानी वर्षा करो, हवा बहाओ और चाँवर ढोरो, यह करो, वह करो, और वे मेरे अनुसार कार्य करते रहते हैं ऐसे नौकर-चाकर सदृश देवों को तुम मनुष्य लोग याद करते हो। और मेरे जैसे सौधर्म इन्द्रादि को क्यों छोड़ दिया है। हमने तो तीर्थंकरों के पंच कल्याणक किये, जीवन भर सेवा की फिर भी मुझे क्यों छोड़ दिया और मेरे नौकर-चाकरों को याद करके पूजा में लगे हो ऐसी योग्यता का विचार न करना भी मित्थ्यात्व है। यह बिल्कुल गलत है। अतः आज सम्यग्दर्शन को धारण कर उसके प्रचार प्रसार की भी बड़ी आवश्यकता है। अंत में लोक प्रचलित मार्मिक पंक्तियों को अवश्य याद रखें कि-

मिथ्यात्व से अनुराग करके सत्य पाना चाहते हैं।
विपरीत मार्ग पर चलकर निरन्तर लक्ष्य पाना चाहते हैं॥
देखो विरोधाभाष कितना है उनके जीवन में कि-
नीम के वे बीज बोकर आम पाना चाहते हैं॥

जो गुरु पर अटूट श्रद्धा रख
उनकी हर बात उदाहरक रूप से
मानेंगे तो गुरु उनकी स्वप्न में
भी परवाह करेंगे।

युग के आदि ब्रह्मा भगवान ऋषभनाथ

श्रीमत्परम-गम्भीर, स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम्।
जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनम्॥

जिनागम में 'तीर्थं करोतीति तीर्थंकरः' यह एक सुन्दर परिभाषित तीर्थंकर का व्युत्पत्ति अर्थ हमें तीर्थंकर पद के महात्म्य को दर्शाता है। संसार समुद्र से तारक तीर्थ रूप महान उपकारी तत्त्वमय मोक्षमार्ग को बतलाने वाले इस वर्तमान चौबीसी के प्रथम जिनशासन रूप तीर्थ के कर्त्ता थे वृषभनाथ अपरनाम आदिनाथ भगवान, जिन से ही इस हुण्डाअवसर्पिणी के चतुर्थकाल के पूर्व व तृतीय काल के अन्त में प्रथम रूप से जिनशासन का उद्भव हुआ।

अनादिनिधन इस संसार में संसारी आत्मा अनादिकाल से सुख दुःख का वेदन करती हुई बीज वृक्ष की परम्परा के सादृश्य विधि फल के अनुसार चतुर्गति के भ्रमण में संलग्न है और इस संसार चक्र से अतीत आत्मा की एक अवस्था है जो है मोक्ष। जैसे कि बीज पहले या वृक्ष पहले इस समाधान से अनिर्णीत वृक्ष, बीज की परम्परा अनादि से है लेकिन अन्त सहित है। अगर ऐसे बीज को जलाकर भस्म कर दिया जाये तो उस जले बीज से वृक्ष की उत्पत्ति नहीं, इसी तरह ध्याग्नि से कर्म बीज के दग्ध हो जाने या अन्त हो जाने पर संसार भ्रमण की या पुनर्जन्म की परम्परा का अन्त हो जाता है। वह आत्मा दुग्ध की अन्तिम अवस्था घृत के समान परम विशुद्ध बन सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लोक शिखर पर स्थित सिद्ध शिला पर सिद्ध परमेष्ठी के रूप में अनन्त काल के लिए विराजमान हो जाती है। इस प्रकार भव चक्र से निकलकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त होने में धर्म पुरुषार्थ ही परम सहायक माना गया है।

यह जगत अनादि समय से चला आ रहा है। समय के परिवर्तन से इस जगत में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हुआ करते हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में तथा जीवों की अवस्था में उलट-फेर हमारे सामने नित्य प्रति हुआ करते हैं। जगत के महान परिवर्तनों के अनुसार जीवों को कभी सुखमय वातावरण मिलता है और कभी सुख-दुःखमय, कभी दुःखमय, कभी महादुःखमय परिस्थति में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जैसे न सदा रात्रि रहती है और न सदा दिन रहता है, दिन-रात्रि का चक्र चलता रहता है। इसी तरह जगत के परिवर्तन से जगत निवासी संसारी जीवों को भी बदलती

हुई सुख-दुःख मय परिस्थिति में निर्वाह करना पड़ता है।

असंख्य वर्ष पहले यहाँ महान सुखमय परिस्थिति थी, यहाँ सर्वत्र कल्पवृक्ष होते थे जिनके प्रकाश से सदा दिन का सा प्रकाश बना रहता था, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, रहन-सहन आदि के पदार्थ उन कल्पवृक्षों से अनायास मिल जाया करते थे। किसी भी मनुष्य या पशु-पक्षी को अपने जीवन-निर्वाह के लिये कुछ न करना पड़ता था। उस सुखमय समय को भोगयुग कहते हैं।

किन्तु समय ने पलटा खाया अतः वह भोगयुग समाप्त हो गया जीवन-निर्वाह की सामग्री देने वाले कल्पवृक्ष स्वयं धीरे-धीरे नष्ट-भ्रष्ट होते गये। जैसे कि शीतऋतु के आगमन पर वर्षा काल के बादल विलीन हो जाते हैं। उस समय जनता के सामने अनेक प्रकार की कठिन समस्याएं क्रम से आने लगीं। उन विकट समस्याओं को सुलझाने के लिए उस समय क्रम से 14 युग प्रधान नेताओं का अवतार हुआ। जिनका नाम मनु या कुलकर प्रसिद्ध हुआ। उनके नाम ये हैं-

1. प्रतिश्रुति, 2. सन्मति, 3. क्षेमंकर, 4 क्षेमन्धर, 5 सीमंकर, 6. सीमन्धर, 7 विमलवाहन, 8 चक्षुष्मान, 9. यशस्वान, 10. अभिचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. मरुदेव, 13. प्रसेनजित और 14. नाभिराय।

ये मनु कुलकर जनसाधारण की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान थे तथा जनता के परम हितैषी थे। इनके समय मनुष्यों को जो उलझनें आईं उन उल्झनों को इन मनुओं ने अपने विशेष ज्ञानबल से सुलझाया।

अन्तिम मनु नाभिराय की गुणवती पत्नी मरूदेवी थी। मरूदेवी के गर्भ में अषाढ़ कृष्णा द्वितीय तिथि पर एक महान भाग्यशाली महान तेजस्वी पुत्र आया। उसके पुण्य प्रभाव से नाभिराय के घर स्वर्ग से देवों द्वारा रत्न-वर्षा होती रही। इस कारण जन्म से पहले उस गर्भस्थ शिशु का नाम जनता में हिरण्य गर्भ (सुवर्ण गर्भ वाला) प्रसिद्ध हुआ। चैत्र कृष्णा नवमी के दिन जब उस प्रभावशाली पुत्र का जन्म हुआ तब भी देवों ने आकर महान उत्सव किया। उसके दाहिने पैर में बैल का चिन्ह था, इस कारण उनका नाम ऋषभनाथ या वृषभनाथ रखा गया।

ऋषभनाथ जन्म से ही महान अवधिज्ञानी थे, महान सुन्दर, महान बलवान और महान दयालु तथा पराक्रमी थे।

युवा हो जाने पर ऋषभनाथ का विवाह नन्दा तथा सुनन्दा नामक दो परम सुन्दरी

गुणमयी कन्याओं से हुआ। नन्दा के गर्भ से भरत आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक एक पुत्री हुई और सुनन्दा के उदर से बाहुबली नामक महा बलवान एक पुत्र एवं सुन्दरी नामक एक पुत्री का जन्म हुआ। उस समय जन साधारण को कल्पवृक्षों के न रहने से भोजन वस्त्र आदि जीवन-सामग्री मिलना दुर्लभ हो गया, अतः जनता भूख, सर्दी, गर्मी आदि से बहुत व्याकुल हुई। अपनी कष्ट कथा सुनाने के लिये मनुष्य नाभिराय के पास आये। नाभिराय ने अपने महान ज्ञानी सुपुत्र ऋषभनाथ की ओर संकेत किया। तब भगवान ऋषभनाथ ने अपने ज्ञानबल से लोगों को कृषि करके अन्न उत्पन्न करने की और अन्न से भोजन बनाने की विधि सिखलाई। रूई उपजा कर उससे वस्त्र बनाने के उपाय बतलाये। धातुओं तथा मिट्टी से बर्तन बनाने की प्रक्रिया समझाई। इसके सिवाय मनुष्यों को अस्त्र-शस्त्र चलाना, अनेक प्रकार की शिल्प कला बतलाई, व्यापार करने के उपाय बतलाये इत्यादि शिक्षाएं जनता को देकर उनके कष्ट कठिनाइयां दूर की। भगवान ऋषभनाथ ने अपने बड़े पुत्र भरत को नाट्य कला सिखलाई बाहुबली को मल्लयुद्ध में निपुण कर दिया। अन्य पुत्रों को राजनीति, युद्ध नीति आदि कलाओं की शिक्षा दी।

एक दिन भगवान आदिनाथ निश्चिन्त प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे तब उनकी दोनों पुत्रियां आकर उनकी गोद में बैठ गईं। ब्राह्मी बाएं घुटने पर बैठी और सुन्दरी दाहिने घुटने पर बैठी। दोनों पुत्रियों ने मीठी भाषा में कहा कि पिता जी, आपने सबको अनेक विद्याएं सिखलाई हैं, हमें भी कोई अक्षय विद्या दीजिए। भगवान आदिनाथ ने मुस्कराते हुए अपनी पुत्रियों के सिर पर प्रेम से हाथ फेरते हुए कहा कि अच्छा बेटी तुम अपना दाहिना हाथ खोल कर निकालो तुमको मैं अक्षय विद्या सिखाता हूँ। तब ब्राह्मी ने अपना दाहिना हाथ भगवान के सामने कर दिया। भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से उनकी हथेली पर अ, इ आदि 16 स्वर और क, ख आदि 33 व्यंजन एवं 4 योगवाह अक्षर लिखकर उसको अक्षर-विद्या या लिपि विद्या सिखलाई। उस पुत्री के नाम से ही उस आद्य लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि जगत में प्रसिद्ध हुआ। सुन्दरी भगवान के दाहिने घुटने पर बैठी थी अतः उसकी हथेली पर भगवान ने अपने बाएं हाथ के अंगूठे से 1, 2, 3 आदि अंक लिख कर इकाई, दहाई, सैकड़ा आदि की अंक-पद्धति तथा संकलन जोड़, विकलन बाकी, गुणा, भाग आदि गणित सिखाया। बायां हाथ होने के कारण उन अंकों के लिखने का क्रम अक्षरों से उलटा दाहिनी ओर

से इकाई, दहाई आदि के रूप में प्रारम्भ होकर बायीं ओर लिखने की परिपाटी रूप बतलाया गया। अतः तभी से अंकों के लिखने की पद्धति अक्षरों की अपेक्षा उलटी चल पड़ी।

इस तरह भगवान आदिनाथ ने जगत में कर्मयुग, कृषि, शिल्प, विद्या, व्यापार आदि परिश्रम करके जीवन-निर्वाह करने के उपाय की सृष्टि-निर्माण या रचना की। इस कारण उनके नाम आदि-ब्रह्मा, प्रजापति, आदि-विधाता, आदिनाथ, आदीश्वर आदि जगत में विख्यात हुए।

बहुत समय तक भगवान आदिनाथ ने न्यायनीति से राज्य शासन किया। उनके राज्य में किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट नहीं था।

एक दिन वे राजसभा में बैठे थे। उस समय नीलांजना नामक अप्सरा सभा में नृत्य कर रही थी। नृत्य करते हुए ही उसकी आयु पूर्ण हो गई और तत्काल उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना को देखकर भगवान आदिनाथ की विचारधारा बाहरी संसार से हटकर अन्तरंग की ओर आकर्षित हुई।

भगवान ने विचार किया कि यह आत्मा शरीराधीन होकर अपना अमूल्य समय शरीर की सेवा में, इन्द्रियों की इच्छाओं को तृप्त करने में, विषय भोगों के भोगने में व्यतीत कर देता है। यह अपने कल्याण के लिये कुछ नहीं कर पाता। अचानक इसको मृत्यु का अतिथि बनना पड़ता है। मैंने अब तक का अपना दीर्घ जीवन सांसारिक कार्यों में बिताया अपने ज्ञान और शक्ति का उपयोग मैंने अपने लिए कुछ भी न किया, इस तरह तो मैं जन्म-मरण के चक्कर से भी न छूट पाऊंगा। अतः नीलांजना ने जैसे अपने जीवन में अपने हित के लिये कुछ न किया और अचानक उसकी मृत्यु हो गई, ऐसी घटना मेरे लिए भी हो सकती है। अतः अब मुझे गृहस्थाश्रम की कीचड़ से बाहर निकलकर आत्म-साधना करनी चाहिये।

ऐसा चिंतन करके भगवान ऋषभनाथ ने अपने बड़े पुत्र भरत को राज सिंहासन पर बिठाकर अपना समस्त राज्यभार तथा गृहस्थाश्रम का भार सौंप दिया।

अपने अन्य पुत्रों को थोड़ा-थोड़ा राज्य देकर स्वयं सब कुछ त्याग कर एकान्त शान्त वन में रवाना हो गये, वहाँ पर उन्होंने चैत्र कृष्णा नवमी को अपने शरीर के सभी वस्त्र आभूषण उतार दिये और नग्न होकर छह माह का योग लेकर आत्म साधना में बैठ गये। छह महिने तक एक आसन में बैठे रहे। छह मास निराहार रहकर ऐसी

कठोर तपस्या करने के पश्चात् जब वे उठे, तो भोजन के लिये निकटवर्ती नगरी गांवों में घूमें किन्तु उस समय वे स्त्री-पुरुष यह नहीं जानते थे कि साधु को भोजन किस तरह कराना चाहिए। भगवान अपने मुख से कुछ बोलते नहीं थे। अतः उन्हें छह मास तक भोजन भी न मिल पाया। इस तरह एक वर्ष निराहार रहकर उन्होंने तपस्या की। एक वर्ष के बाद हस्तिनापुर में राजा श्रेयांस के यहाँ उन्हें विधि से आहार मिला। उस समय आपने केवल तीन चुल्लु गन्ने का रस पीकर पारणा की। तदनन्तर स्त्री-पुरुषों को साधु के भोजन कराने की विधि मालूम हो गई।

भगवान मौन रहकर वन, पर्वत, शमशान भूमि, नदी तट, गुफा आदि एकान्त शान्त स्थानों में विहार करके तपस्या करते रहे। इस तरह एक हजार वर्ष तक कठोर आत्म-साधना करने के बाद उन्होंने आत्म शत्रुओं काम, क्रोध, मद, मोह, ईर्ष्या, राग-द्वेष, अज्ञान आदि दुर्भावों पर विजय प्राप्त की। तब वे फाल्गुन कृष्णा एकादशी को पूर्ण शुद्ध बुद्ध वीतराग सर्व ज्ञाता-दृष्टा अर्हन्त बन गये। आत्म-शुत्रओं पर विजय पाने के कारण उनका नाम '**जिन**' जीतने वाला विश्व विख्यात हुआ। उसी समय उनका मौन-भंग हुआ। उन्होंने सबसे प्रथम जो धर्म का प्रचार किया उस धर्म का नाम उनके प्रसिद्ध नाम '**जिन**' के अनुसार जैन धर्म '**जिनस्य अयं धर्मः जैनधर्मः**' जग प्रसिद्ध हुआ।

उनके धर्म उपदेश से सर्व साधारण को लाभ पहुँचाने के लिए देवों द्वारा एक गोल सुन्दर विशाल 12 योजन का सभा मण्डप बनाया गया। उसमें 12 कक्ष बनाये, उन कक्षाओं में देव-देवियों, मनुष्य-स्त्रियाँ, साधु-साध्वियाँ तथा पशु-पक्षी आदि सभी जीव बैठकर भगवान का उपदेश सुनते थे।

उस समवशरण (सभा मण्डप) के बीच में तीन कटनी की वेदी होती थी। उसके ऊपर सिंहासन था, सिंहासन के बीच स्वर्णिम कमल का फूल बना था, उस कमल पर उससे 4 अंगुल ऊपर अधर पर भगवान विराजमान होते थे।

भगवान का मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर होता था किन्तु दैव चमत्कार से उनका मुख चारों दिशाओं में दिखाई देता था। इस कारण जन साधारण उन्हें कमलासन पर विराजमान चतुर्मुखी आदि ब्रह्मा भी कहते थे। भगवान ने आचारंग आदि 12 अंगों का तथा प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग इन चार वेदों का उपदेश दिया उनके उपदेश का क्रमवार विवेचन या व्याख्या करने वाले पहले

गणधर या गणेश उनके ही दीक्षित साधु पुत्र वृषभसेन हुये। वृषभसेन के बाद 63 गणधर और भी हुए। प्रथम आर्यिका ब्राह्मी थीं।

इस तरह भगवान ऋषभनाथ ने अपनी कैवल्य अर्हन्त अवस्था में बहुत लम्बे समय तक जैन धर्म का तथा मोक्षमार्ग का प्रचार किया। धर्म प्रचार के लिए उन्होंने सर्व देशों में विहार किया। इनके शरीर की ऊँचाई 500 धनुष थी। सम्पूर्ण आयु 84 लाख पूर्व वर्ष की थी। जगत में धर्म प्रचार करके वे फिर पूर्ण आत्म-साधना के लिए कैलाश पर्वत पर जा विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने अपनीआत्म-ब्रह्म में लीन होकर शुक्ल ध्यान के द्वारा अवशिष्ट कर्म शत्रुओं का क्षय किया। उस समय आपका नाम कैलाशपति प्रसिद्ध हुआ। माघ कृष्णा चौदस के दिन कैलाश पर्वत पर योग समाधि से आपने शेष कर्मों का क्षय करके पूर्ण मुक्ति प्राप्त की। अनन्तकाल के लिये अजर, अमर, नित्य, निरंजन, सच्चिदानन्द ब्रह्मा, परम परमात्मा बन गये। संसार के आवागमन से सदा के लिये छूट गये।

युग के आदि में ऋषभदेव (आदिनाथ भगवान) द्वारा जैन धर्म के अहिंसा और अनेकान्त की प्रधानता होने के कारण इसकी महानता को बड़ा आदर्श रूप मानते हुए प्रायः सभी सम्प्रदायों ने इस जैन धर्म को तथा उसके उपदेष्टा तीर्थकरों को बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हुए अपने-अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों में प्रशंसनीय और स्तुत्य माना है। जैसे कि महाभारत में प्रथम तीर्थंकर की स्तुति में लिखा है कि-

पुनस्तत्रैव सर्वज्ञः सर्वदेव नमस्कृतः।
छात्रत्रयाति संयुक्तः पूज्य मूर्तिरसौवहन्॥ 1॥
परमात्मानमात्मानं लसत्केवलनिर्मलम्।
निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महेद् वृषभ॥ 2॥

अर्थात् वृषभदेव सर्वज्ञ थे, सब देवों से नमस्कृत थे, निर्मल केवलज्ञान से सुशोभित थे ऐसे परम निरंजन, निराकार, श्रेष्ठ वृषभ की पूजा करनी चाहिए।

महापुरुष तीर्थंकरों की जन्म भूमि के रूप में देश का नाम भारत कैसे पड़ा इसके संदर्भ में मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि-

अग्नीन्ध्र सूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत सुतो द्विजः।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः॥ 69॥

सोऽभिषिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्राब्राज्यामस्थितः।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमशंसयः॥ 40॥
हिमाव्हं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ।
तस्मास्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः॥ 41॥

अर्थात्- अग्नीन्ध्र के पुत्र नाभि से ऋषभ नामक पुत्र हुआ। ऋषभ से भरत का जन्म हुआ जो कि अपने सौ भाईयों में बड़ा था। ऋषभ देव ने अपने बड़े पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके स्वयं प्रव्रज्या (साधु दीक्षा) ग्रहण की और तप करने लगे। भगवान ऋषभदेव ने भरत को हिमालय पर्वत से दक्षिण का राज्य दिया था, इस कारण उस महात्मा भरत के नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

इसी तरह अग्नि पुराण में भी लिखा है कि-

ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
तस्माद् भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभवत्॥ 12॥

अर्थात्- मरुदेवी मां से ऋषभ का जन्म हुआ। ऋषभ से भरत की उत्पत्ति हुई और भरत से इस देश का नाम भारत वर्ष हुआ। स्वयंभू स्तोत्र में भी ऋषभदेव-वृषभनाथ के सम्बन्ध में भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने इस प्रकार कहा कि- जो स्वयंभू थे- दूसरे के उपदेश के बिना मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस रूप आचरण कर अनन्त चतुष्टय स्वरूप आचरण कर अनन्त चतुष्ट स्वरूप हुये थे, प्राणियों के लिए हितकारक थे, सम्यग्ज्ञान की विभूति रूप नेत्र से युक्त थे और स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति में कारणभूत गुणों के समूह से युक्त किरणों के द्वारा अन्धकार को नष्ट करते हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित होते थे।

जो तीन लोक की समस्त जनता के स्वामी थे, जिन्होंने कर्मभूमि के प्रारम्भ में मति, श्रुत और अवधिज्ञान के द्वारा लोगों के कर्म तथा उनके फलों को जानकर जीवित रहने की इच्छुक जनता को खेती आदि आजीविका के उपयोगी छह कार्यों में शिक्षित किया था और फिर हेय, उपादेय तत्त्व को अच्छी तरह जानकर इन्द्र आदि के द्वारा की हुई आश्चर्यकारी विशिष्ट विभूति को प्राप्त होते हुए जो ममता भाव से परिग्रह विषयक आसक्ति से विरक्त हो गये थे तथा इन सब कारणों से जो श्रेष्ठ ज्ञानी हुए थे। जो मोक्ष के अभिलाषी अथवा संसार-समुद्र से पार उतरने के इच्छुक थे, जितेन्द्रिय थे,

सामर्थ्यवान् अथवा स्वतन्त्र थे, परिषह आदि की बाधाओं को सहन करने वाले थे, गृहीत व्रत से अविचलित रहने वाले थे, इक्ष्वाकु कुल अथवा समस्त राजवंशों में आदि पुरुष थे और जिन्होंने किसी अन्य राजा के द्वारा अभक्त होने से पतिव्रता इस समुद्र के जल रूप वस्त्र को धारण करने वाली समुद्रान्त, धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी रूपी स्त्री को पतिव्रता स्त्री के समान छोड़कर दीक्षा धारण की थी। जिन्होंने अपने काम-क्रोध आदि समस्त दोषों के मूल कारण चार घातिया कर्मों को परम शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा निर्दयता पूर्वक भस्म भाव को प्राप्त कराया है समूल नष्ट कर दिया तथा जिन्होंने तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणी समूह के लिए वास्तविक जीवादि तत्त्वों का स्वरूप कहा और अन्त में जो मोक्ष स्थान के अविनाशी-अनन्त सुख के स्वामी हुए। जिनका केवलज्ञान रूप चक्षु समस्त पदार्थों को विषय करने वाला है, जो इन्द्र आदि सत्पुरुषों के द्वारा पूजित हैं, जीवाजीवादि समस्त पदार्थों के विषय करने वाली बुद्धि ही जिनकी आत्म का स्वरूप है, ज्ञानावरणादि कर्ममल से रहित होने के कारण जो निर्मल हैं, चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं, कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले हैं और जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन को जीत लिया है अथवा जिनका शासन क्षुद्रवादियों के द्वारा नहीं जीता जा सकता है वे धर्म से शोभित रहने वाले वृषभनाथ भगवान मेरे चित्त को पवित्र करें रागादि विकारी भावों से रहित कर निर्मल बनावें। किसी ने सही कहा है कि-

नहीं विश्वास होता है, धरम पर आज मानव को।
न निज में वास हो तबतक, हो दुःख आभास मानव को॥
तहे दिल से करे अनुभव, तभी मजहब समझ आवे।
सिर्फ ये धर्म ही देता है, सभी कुछ आज मानव को॥

तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर और उनका दिव्य संदेश

जयतु जिन वर्धमानस्त्रिभुवन हित धर्मचक्र नीरज बन्धुः।
त्रिदशपति मुकुट भासुर, चूड़ामणि रश्मि रञ्जितारुण चरणः॥

जब इस पृथ्वी पर हिंसा का ताण्डव नृत्य चल रहा था जीवों को यज्ञों में होम कर धर्म माना जा रहा था तब सज्जनों ने कहा कि वर्तमान में वर्द्धमान का आवश्यकता है। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व स्वर्गिक सुखों को भोगकर मनुष्य रूप इस जम्बूदीप के भरत क्षेत्र में अवतरित होने वाले भगवान वर्द्धमान महावीर वर्तमान चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर थे। भगवान महावीर के जैन शासन से हमें अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के कल्याणकारी सूत्र मिले और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय मोक्ष मार्ग के रूप में उत्तम क्षमादि दस धर्म एवं दर्शन व्रत आदि ग्यारह प्रतिमाओं का उपदेश मिला, जिस मार्ग पर चलकर आज भी मुनि तथा श्रावक रूप भव्यात्मायें मोक्ष सुख को हासिल करने के लिए निरन्तर अपनी त्याग तपस्या मय साधना में रत रहते हैं।

वर्द्धमान महावीर के सन्देश आज के वर्तमान परिवेश में भी अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं क्योंकि अगर अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार और हिंसक प्रवृत्ति के बीच भगवान व निःस्वार्थी गुरुओं का संदेश हमें न मिलता तो भारत को गारत होने में और आर्यों को म्लेच्छ बनने में मानव को कोई विलम्ब नहीं रहता अतः वर्तमान को वर्द्धमान महावीर मिले यह हमारा बड़ा सौभाग्य है।

वर्द्धमान महावीर का गर्भ कल्याणक आषाढ़ शुक्ला षष्ठी को हुआ और जन्म कल्याणक लगभग ढई हजार वर्ष पूर्व बिहार प्रान्त के वैशाली राज्यस्थ के कुण्डलपुर में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था। ऐसे मंगलमय वातावरण में देवों ने रत्नमय पुष्पों की खूब वर्षा कर मेरु पर्वत पर तीर्थंकर महावीर का जन्माभिषेक उत्सव मनाया था। उनकी माता का नाम त्रिशाला देवी (प्रियकारिणी) एवं पिता का नाम राजा सिद्धार्थ था। भगवान महावीर के जन्म का नाम वर्धमान था। जीवन की विशिष्ट घटनाओं से आपको देश की जनता वीर, अतिवीर और सन्मति इन नामों से भी पुकारा करती थी।

कुण्डलपुर भूमि और राजभवन में क्रीड़ा करते हुए तीर्थंकर महावीर जब युवावस्था को प्राप्त हुए तब उनके माता-पिता द्वारा उनसे अनेक बार विवाह का आग्रह किये जाने पर भी उन्होंने उस संसार के बंधन में बंधने का आग्रह अस्वीकार कर दिया और मात्र तीस वर्ष तक बाल ब्रह्मचारी रहते हुए सामाजिक अनुभवों को प्राप्त करने के उपरान्त एक शुभ घड़ी में पूर्व-भव की स्मृतियों (जातिस्मरण) के द्वारा सांसारिक भोगों की असारता का चिंतवन करते हुए वैराग्य को प्राप्त हो गये और वन में जा मगसिर कृष्णा दसमी के दिन मुनि दीक्षा लेकर नग्न दिगम्बर साधु भेष धारण कर आत्म-ध्यान रूप तपस्या में लीन हो गये। स्वर्गादिक के देवताओं ने उनके चरणों में उपस्थित होकर उनके दीक्षा (तप) कल्याणक की बड़ी भक्तिभाव से पूजा की।

वर्द्धमान महावीर लगातार बारह वर्षों तक जंगल, उपवन आदि में घोर तपस्या करते रहे और उन्होंने एक दिन अपने शुक्लध्यान के द्वारा वैशाख शुक्ला दसमी के दिन केवलज्ञान को उत्पन्न कर अरिहंत अवस्था प्राप्त कर लिया। ऐसी मंगल बेला में देवों ने उनकी महापूजा की और उनकी मंगलवाणी (दिव्यध्वनि) सुनने हेतु एक योजन की समवसरण सभा का निर्माण किया था, जिस स्वर्णिम मणिमय समवसरण की बारह सभाओं में बैठकर सब जीव उन प्रभु के दिव्य उपदेश को सुना करते थे। ऐसे समवसरण में भगवान महावीर के उपदेश की विस्तृत व्याख्या करने वाले मुनियों में सबसे प्रधान इन्द्रभूति गौतम थे। जो गणधर के रूप में मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्यय ऐसे चार ज्ञानों के धारी होकर द्वादशांग रूप शास्त्रों की रचना किया करते थे। ऐसे भव्य-समवसरण में इन्द्रभूति गौतम को आदि लेकर ग्यारह गणधर तथा अवधिज्ञान आदि के धारी बहुसंख्या में मुनि और चन्दनबाला जैसी प्रधान आर्यिका को लेकर अनेक आर्यिकाएँ, श्रावक-श्राविकाएँ, देव-देवियाँ एवं राजा-महाराजा और यहाँ तक कि हाथी, शेर, गाय आदि प्राणी भी उपस्थित रहते थे। और भगवान के दया धर्म के सातिशय प्रभाव से वे शेर, गाय भी एक जलकुण्ड में एक साथ मिलकर पानी पीने लग जाते थे।

भगवान महावीर के शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। उनका चिन्ह चतुर्मख सिंह था। भगवान के समवसरण का विहार सम्पूर्ण भारत में तीस वर्ष तक होता रहा और उन्होंने हिंसा, अन्याय और अनीति को पराजय दिलाकर न्याय, नीति, सदाचार, सद्विचार और अहिंसा धर्म की पताका लहराई, तदुपरान्त उन भगवान महावीर ने

बहत्तर वर्ष की आयु में कार्तिक कृष्णा अमावस्या की पिछली रात्रि में प्रातःकाल की प्रत्यूष बेला में आत्मध्यान रूप समाधि साधना के द्वारा बिहार प्रांत के पावापुरी के पद्म-सरोज सरोवर के मध्य से कार्माण रूप सम्पूर्ण शरीर को छोड़कर (क्षयकर) निर्वाण रूप मोक्ष अवस्था में सिद्ध परमेष्ठी के परम पद को प्राप्त किया था।

तीर्थंकर वर्द्धमान भगवान महावीर ने '**अहिंसा परमोधर्मः**' कहा है, अहिंसा, दया, अनुकम्पा, प्रेम को ही भगवान ने सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। प्राणी मात्र को प्रेम की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि ''जियो और जीने दो'' क्योंकि सबको अपना प्राण प्यारा होता है। अपने समान दूसरों को कष्ट होता है। कोई भी प्राणी मरना नहीं चाहता। अतः भगवान महावीर कहते हैं कि आत्म समत्व, वीतरागत्व एवं अहिंसा ही भक्त से भगवान बनने का परम साधन है।

भगवान महावीर ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का उपदेश दिया है।

'**अहिंसा परमोधर्म**' और '**जियो और जीने दो**' का संदेश देने वाले भगवान महावीर हिंसा को सबसे बड़ा पाप मानते थे। द्रव्य-हिंसा और भाव-हिंसा के रूप में हिंसा के दो भेद हैं। इसमें भी द्रव्य-हिंसा एवं भाव-हिंसा के दो-दो भेद हैं, एक स्वद्रव्य हिंसा है तो एक पर-द्रव्य हिंसा। अपने शरीर एवं शरीर के अव्ययों का घात करना स्वद्रव्य हिंसा है और दूसरों के शरीर एवं शरीर के अव्ययों का घात करना पर-द्रव्य हिंसा है। स्वयं कषाय करना जैसे क्रोध में संतप्त होना अथवा किसी दूसरे को मारने का भाव करना स्वभाव हिंसा है, दूसरे को कषायों से संतप्त कराना अथवा दूसरे में किसी दूसरे को मारने का भाव जागृत कराना परभाव हिंसा है।

विचार करों कि जयंती पर जन्म बालक का होता है। भगवान का नहीं। हाँ! बालक ही भगवान बनता है। अतः भगवान महावीर ने कहा है कि मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से महान बनता है। एक बार भगवान बनने के बाद पुनः वे लौटकर संसार में नहीं आते। जैसे दूध एक बार घी के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो पुनः वह दूध का रूप नहीं ले सकता है। सत्य और अहिंसा ही इस देश की संस्कृति है।

हमें मात्र भगवान महावीर की जय बोलना ही नहीं, वरन उन भगवान महावीर के समान चलना भी पड़ेगा। तभी हम स्वयं के कल्याण के साथ-साथ परिवार,

समाज, देश को समृद्ध और सुखी बना सकेंगे तथा सारे संसार की सुख-शांति में सहयोग देकर भक्त से भगवान अवश्य बनेंगे और मोक्ष के अनन्त सुख पायेंगे।

किसी ने सच ही कहा है कि -

सच है यदि महावीर प्रभु, संयम का रूप नहीं धरते।
जो अपनी काया से युग का, यदि काया कल्प नहीं करते॥
मानवता मान नहीं पाती, यदि जीवित मंत्र नहीं होते।
यह भारत गारत बना जाता, यदि ये भगवंत नहीं होते॥

मान कषाय छोड़कर गुरु के जीवन में ढल जाना सही आत्मीयता बढ़ा है।

भावना भव नासिनी

देवों के भी देव रहें वे, छियालीस गुण के धारी ।
उत्तम गति वा शिव के कर्त्ता, मंगलकारी उपकारी ॥
अति सुंदर तन निर्मल जिनका, एक हजार आठ लक्षण ।
शुभकर सुंदर मनहर जिनवर, सदा नमन हो मम क्षण-क्षण ॥

अनन्त अलोकाकाश में स्थित 343 घनराजू प्रमाण इस लोक में अनन्तानन्त जीवराशि है जो कर्मों के आश्रित होकर चतुर्गति एवं चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रही है। यह भ्रमण अनादि काल से चल रहा है। अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त तथा भव्य की अपेक्षा अनादि सान्त जानना चाहिए। जैसे बीज वृक्ष की परम्परा तभी तक चलती रहती है जबतक बीज को जलाकर नष्ट न कर दिया जाय और वैसे ही जीव का संसार भ्रमण तभी तक चलता रहता है जबतक अष्टकर्म रूपी बीज को या कार्मण शरीर को ध्यान रूपी अग्नि से नष्ट न कर दिया जाय।

प्रत्येक संसारी प्राणी को ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी आदि अष्टकर्म विभिन्न प्रकार के फल देकर सुखी-दुःखी करते रहते हैं। संसार में जो कर्माधीन सुख होता है वह विनश्वर व दुःखमिश्रित होने से दुःख-सदृश या सुखाभास ही कहा गया है। इन्द्रिय-विषय के सुख के सम्बन्ध में प्रवचनसार में कहा गया है कि-

सपरं बाधासहिदं, विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदियेहिं लद्धं, तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥ 76॥

अर्थ - जो इन्द्रियों से उत्पन्न सुख है वह पराधीन, बाधा से सहित स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाने वाला पापकर्म के बंध का कारण और परिवर्तनशील (क्षणभंगुर) रूप होने से दुःख ही है, ऐसा जानना चाहिए।

ज्ञानावरणीकर्म ज्ञान की उन्नति में बाधा उत्पन्न करता है, दर्शनावरणीकर्म दर्शन में बाधक बनता है। वेदनीयकर्म साता-असाता का वेदन करता रहता है, मोहनीयकर्म अपने स्वरूप को भुलाकर पर में अपनत्व की मूढ़बुद्धि उत्पन्न कराता है या त्याग संयम में बाधक बनता है। आयुकर्म किसी एक गति में जीवन पर्यंत रोके रहता है। नामकर्म विभिन्न तरह के शरीरों में रूप-कुरूप आदि बनाता है। गोत्रकर्म नीच-उच्च कुल आदि में उपजाता है और अन्तरायकर्म दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं शक्ति या सामर्थ्य में

विघ्न उपस्थित करता है। इस तरह कर्मों के आश्रित जीव संसार में गति, गति में इन्द्रियां, इन्द्रियों को विषय, विषयों में राग-द्वेष और राग-द्वेष से कर्मबन्ध को करते रहते हैं। अष्ट कर्मों का नाश सद्भावना व समीचीन ध्यान से संभव है जब तक सम्यक्ध्यान एकाग्र नहीं होता तब तक ध्यान-अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती और जिसके बिना कर्म रूपी पेपर नहीं जलता और जैसे सूर्य की किरणें दूर्बीन से एकत्रित करके एक पेपर पर डाली जायें तो पेपर जल जाता है वैसे ही एक अन्तर्मुहूर्त तक शुक्ल-ध्यान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित होती है तो कर्म रूपी पेपर जलकर और आत्मा मुक्त होकर सिद्धगति को प्राप्त हो जाती है तथा शाश्वत अविनश्वर-सुख में सदा के लिए लोकाग्र में जाकर विराजमान हो जाती है।

उपर्युक्त ध्यान में साधन रूप सोलहकारण आदि सद्भावनाएँ उत्तम ध्यान द्वारा कर्मबन्ध से छुड़ाते हुए आत्मा को परिमल बनाकर मुक्ति-मंजिल की ओर ले जाती हैं। प्रायः लोक में देखा जाता है कि इस जगत में भावना के अनुरूप ही फल की उद्भूति होती है अतः कहावत है कि ''जा की रही भावना जैसी, सुख-दुःख की भरनी हो वैसी'' श्रेष्ठ या धार्मिक भावना वाला प्राणी पापों से विलग हो, भव अर्थात् सांसारिक परिभ्रमण से दूर जाता है, उसके लिए शुभ भावनाएँ भाना आवश्यक है। आज तक संसार का परिभ्रमण अशुभ या पापामय भावनाओं से होता रहा और यह आत्मा दुःख के सागर में गोते खाती रही। जब निकट भव्य जिन-धर्म रूपी नौका के सहारे संसार के किनारे पर पहुँचता है तब उसे ये शुभ भावनाएँ किनारे से भी निकलकर या ऊपर उठाकर मोक्ष-मंजिल पर बिठा देती हैं और ऐसी महान आत्मा ही अनन्तकाल के लिए अनन्त सुखादिक में तल्लीन हो पाती है।

इस तरह तीर्थंकर पद की प्राप्ति में भी ये उत्तम भावनाएँ कारण हैं। तत्त्वार्थसूत्र में **षोडसभावनाएँ** वर्णित है कि-

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौशक्तिस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्तकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य।-24

अर्थात् - दर्शन की निर्मलता, विनय की समृद्धता, शीलों और व्रतों में निरतिचारपना, निरन्तर ज्ञानोपयोग, निरन्तर संवेग, यथाशक्ति त्याग, यथाशक्ति तपस्या, साधुओं के विघ्न निवारण करना, सेवा में तत्परपना, अर्हत्भक्ति,

आचार्यभक्ति, बहुश्रुत (उपाध्याय) भक्ति, शास्त्रभक्ति, नियमित आवश्यक पालन, मोक्षमार्ग की प्रभावना और सहधर्मियों में अकृत्रिम वात्सल्य होना ये षोडसकारण भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव हैं या तीर्थंकर प्रकृति के संचय में कारण हैं।

इन सोलह भावनाओं में सम्यग्दर्शन की मुख्यता है। साथ-साथ लोक कल्याण-उद्धार की भावना इन सभी भावनाओं में निहित है। लोक कल्याण में आत्मकल्याण अवश्यम्भावी है।

तीर्थंकर प्रकृति बंध के समय या प्रारम्भ में केवली द्वय अर्थात् केवली या श्रुतकेवली के मिलने पर उनकी सन्निधि में दर्शन की निर्मलता होती है और किन्हीं-किन्हीं निकट भव्यों को तीर्थंकर प्रकृति का संचय होना प्रारम्भ हो जाता है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है कि-

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि।
तित्थरबंधपारंभया, णरा केवलिदुगंते ॥ 93॥

तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारम्भ प्रथमोपशम सम्यक्त्व में अथवा शेष तीन द्वितीयोपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शनों में अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर चार गुणस्थानवर्ती (अर्थात् सप्तम गुणस्थान तक वाले) मनुष्य केवली और श्रुतकेवली के सन्निकट (पादमूल में) करते हैं।

षोडस भावनाओं की व्यापकता को समझते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने वाली हैं इसलिए इन षोडस भावनाओं के अन्तर्गत एक विशिष्टता की अपेक्षा से सभी आगम कथित भावनाओं का अस्तित्त्व कायम रखते हुए षोडस भावनाओं में अन्य सभी प्रशस्त भावनाएँ समाहित हो जाती हैं और इसी कारण इन विशिष्ट षोडस भावनाओं की व्यापकता स्वयमेव सिद्ध है।

षोडस भावनाओं में गर्भित होने वाली अन्य भावनाएँ- सबसे प्रथम हम भावनाओं के प्रकारों पर विचार करते हैं जैसे कि-

1. अपने व्रतों को निर्दोष बनाने वाली प्रत्येक व्रत की वाङ्मनोगुप्ति आदि पांच-पांच भावनाएँ।
2. दर्शनविशुद्धि आदि षोडस भावनाएँ।
3. अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाएँ।
4. शस्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः आदि सात भावनाएँ।
5. मैत्री, प्रमोद आदि चार भावनाएँ।

6. रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति की भावनाएँ।
7. संवेग, वैराग्य रूप भावनाएँ।
8. अपनी शुद्ध आत्म-प्राप्ति की भावना।

पच्चीस भावनाएँ इस प्रकार हैं-

तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय के 1,2,3 नं. सूत्र में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरक्त होना व्रत कहते हुए व्रत; अणु और महा रूप से दो तरह के कहे हैं तथा उनकी स्थिरता हेतु ''**तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च**'' ऐसा 4 नं. के सूत्र में पांच-पांच भावनाओं के भाने का संकेत किया है। वे भावनाएँ क्रमशः इस प्रकार समझना चाहिए जैसे -

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥4॥

अर्थात् - **वाङ्गुप्ति**-वचन न बोलना, **मनोगुप्ति**-मन की (अशुभ) प्रवृत्ति को रोकना, **ईर्यासमिति**- चार हाथ भूमि देखते हुए दिन में धर्म कार्य वश चलना, **आदान- निक्षेपण समिति**- सावधानी पूर्वक परिमार्जित करते हुए किसी वस्तु को उठाना और रखना और **अलोकितपान भोजन**-सूर्य प्रकाश में देख शोध कर पीना व खाना। इन भावनाओं के भाने से अहिंसा व्रत की रक्षा होती है। और आगे-

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥5॥

अर्थात् - **क्रोधप्रत्याख्यान** - क्रोध का त्याग, **लोभप्रत्याख्यान**- लोभ का त्याग, **भीरुत्वप्रत्याख्यान**- भय का त्याग और **हास्यप्रत्याख्यान**- हास्य का त्याग तथा **अनुवीचिभाषण**- शास्त्रानुसार निर्दोष वचन प्रवृत्ति। इन पांच भावनाओं के भाने से सत्यव्रत की रक्षा होती है। तदुपरान्त-

शून्यागारविमोतावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥6॥

अर्थात् - **शून्यागार**- गृहस्थों या विषयी प्राणियों से दूर एकान्त निर्जन स्थान में वास करना, **विमोचितावास**- दूसरों द्वारा छोड़ दिये गये (खण्डहर आदि) निर्विरोध आवास में वास करना, **परोपरोधाकरण**- अपने ठहरने के स्थान पर किसी अन्य को ठहरने से नहीं रोकना,(स्वयं को बाधा हो तो वहाँ से अन्यत्र ठहर जाना) **भैक्ष्यशुद्धि**- आगमानुसार विधिवत् भिक्षावृत्ति से आहार करना, **सधर्माऽविसंवाद** - सहधर्मी जनों से यह मेरा, यह तेरा आदि रूप कलह नहीं करना ये पांच भावनाएँ

अचौर्यव्रत की रक्षा हेतु कही गईं हैं। इसके बाद–

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कार त्यागाः पञ्च ॥7 ॥

अर्थात् – **स्त्री–राग–कथा श्रवण त्याग** – स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग, **तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग**– स्त्रियों के मनोहर अङ्गों के देखने का त्याग, **पूर्वरतानुस्मरण त्याग**– पूर्वावस्था या अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग, **वृष्येष्टरस त्याग** – कामवर्धक गरिष्ठ और प्रिय रसों का त्याग और **स्वशरीर संस्कार त्याग** – अपने शरीर की सजावट का त्याग करने रूप पांच भावनाएँ ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा में पूर्ण सहायक होती हैं। और अंत में–

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ॥ 8 ॥

अर्थात् – स्पर्शनेन्द्रिय के कोमल–कठोर, रूखा–चिकना, हल्का–भारी, ठण्डा–गरम, ऐसे 8, रसनेन्द्रिय के (खट्टा–मीठा, कषायला, चर्परा और तीखा ऐसे पांच), घ्राणेन्द्रिय के (सुगन्ध और दुर्गन्ध ऐसे दो), चक्षुन्द्रिय के (काला, नीला, पीला, लाल, और सफेद ऐसे पांच) श्रोत्रेन्द्रिय के (स, रे, ग, म,प, द, नि ऐसे सप्त स्वर) इष्ट अनिष्ट रूप ऐसे पांचों इन्द्रियों के (27) विषयों में राग–द्वेष का त्याग करना परिग्रह त्याग व्रत की पांच भावनाएँ कहलाती है जिनके भाने से परिग्रह त्याग व्रत में वृद्धि होती है।

ऐसी पच्चीस भावनाएँ मुनि और श्रावकों के व्रतों की विशुद्धता में साक्षात् कारण हैं तथा इन पच्चीस भावनाओं का अन्तर्भाव षोडस कारण भावना की तीसरी शीलव्रतेष्वनतिचार भावना में हो जाता है।

पूर्व कथित षोडस भावनाओं का भी आपस की एक दूसरी भावनाओं में अन्तर्भाव हो जाता है अर्थात् ये सोलह ही भावनाएँ एक–दूसरी भावनाओं की पूरक हैं, इनके भाने से तीर्थंकर प्रकृति बंध का फल प्राप्त होता है।

बारह भावनाएँ भी तत्त्वार्थसूत्र के नवम अध्याय में इस तरह कही गयी हैं कि–

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभ धर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥ 9 ॥

अर्थात् – अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और जिनेन्द्र कथित जिनधर्म इन सभी का तत्त्व रूप बार–बार चिन्तवन करना अनुप्रेक्षाएँ कहलाती है।

ऐसी बारह भावनाएँ षोडसकारण भावनाओं की त्याग भावना के चिंतवन में चिंतवन की जाती हैं। सांसारिक भोगों के त्याग में बारह भावनाओं का चिन्तवन अपेक्षित है और जिसका फल उदासीनता-सह इन्द्रिय भोगों का त्याग है।

समाधि भक्ति के श्लोक नं. 2 के अनुसार कही गयीं **सात भावनाएँ** इस तरह हैं कि-

शास्त्राभ्यासो, जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां, गुणगणकथा, दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि, प्रियहितवचो, भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां, मम भव-भवे, यावदेतेपवर्गः॥ 2॥

शास्त्राभ्यासः- जिनागम का अभ्यास करना, **जिनपतिनुतिः** जिनेन्द्र देव के चरणों को नमस्कार या स्तुति करना, **संगतिसर्वदार्यैः**- हमेशा आर्य (चारित्रवान) पुरुषों की संगति करना, **सद्वृत्तानां गुणगणकथा**- सच्चारित्र परायण गुणियों की गुणकथा कहना, **दोष वादे मौनं**- दूसरों के दोष व विवाद में मौन रहना, **सर्वस्यापि प्रियहित वचः**- सब जीवों के साथ प्रिय व हितकर वचन बोलना और **आत्मतत्त्वे भावना**- आत्म तत्त्व की भावना रखना और जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक भव-भव में (जन्म-जन्म में) इन सब वस्तुओं की प्राप्ति होती रहे। ये सात भावनाएँ षोडस भावनाओं की साधु समाधि से लेकर आवश्यकापरिहाणि तक सात भावनाओं में यथा अवसर गर्भित हो जाती हैं और इन सात भावनाओं को भाने से मानव का व्यवहारिक जीवन समीचीन बनता है। इसी तरह **चार भावनाएँ**- तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय में कही गई हैं कि-

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु॥11॥

सत्त्व अर्थात् जीव मात्र पर मैत्री अर्थात् कल्याण की भावना रखना। गुणवानों के प्रति प्रमोद अर्थात् प्रसन्नता पूर्वक गुणग्राह्यपना होना। क्लिश्यमान अर्थात् दीन दुःखी पर करुणा व रक्षा का भाव रखना और अविनयी या विपरीत वृत्ति वाले जीवों पर माध्यस्थ या तटस्थ भाव धारण करना। इन मैत्री प्रमोद आदि भावनाओं का प्रवचनवात्सल्य भावना में समावेश हो जाता है और इन भावनाओं के भाने से अपना लोक व्यवहार मंगलमय संपन्न होता है। ऐसे ही-

- **तीन भावनाएँ** भी यहाँ कही जाने वाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय प्राप्ति की भावना या मोक्षमार्ग की प्राप्ति की भावनाएँ

समझना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र के प्रथम अध्याय का प्रथम सूत्र है कि–

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः ॥1॥

अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता का नाम मोक्षमार्ग कहलाता है।

– **सम्यग्दर्शन** अर्थात् तीन मूढ़ता, षट्अनायतन, अष्टशंकादि दोष और अष्टमद ऐसे पच्चीस दोषों से रहित तथा अष्टअंगों से सहित वीतराग देव, शास्त्र और गुरु पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन कहलाता है। इसी तरह सम्यग्दर्शन के साथ **सम्यग्ज्ञान** अर्थात् जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनतारहित अधिकता रहित, विपरीतता रहित और संदेह रहित जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को आगमज्ञ सम्यग्ज्ञान कहते हैं। और अंत में सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के साथ

– **सम्यक्चारित्र** अर्थात् हिंसादिपंच पाप क्रिया से दूर हटकर दान, पूजा, परमेष्ठी के ध्यानादिक में प्रवृत्त होने को जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ व्रत, समिति और गुप्ति रूप सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है।

ऐसी तीन भावनाओं को षोडसकारण भावनाओं की प्रथम तीन दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता और शीलव्रतेष्वनतिचार भावनाओं में समाविष्ठ किया जाता है। इन भावनाओं का चिन्तवन करने से भव्यों को व्यवहार से निश्चय रूप मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। इसी तरह–

– **दो भावनाएँ** भी तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय में कही गयी हैं कि–

जगत्कायस्वभावौ वा संवेग वैराग्यार्थम् ॥12॥

संवेग अर्थात् संसार परिभ्रमण से भय और वैराग्य अर्थात् विषय भोगों से विरक्ति हेतु क्रमशः जगत और काया के स्वभाव का चिन्तवन करे।

इन दो भावनाओं का समावेश अभीक्ष्ण संवेग और शक्तितस्त्याग भावना में हो जाता है। इन संवेग और वैराग्य रूप दो भावनाओं के भाने से प्रशस्त ध्यान की प्रसिद्धि होती है। और अंत में हमें आत्मध्यान रूप तप लीन करे वह है।

– **एक भावना** जो आकिञ्चन्य रूप स्वतन्त्रपने की भावना एक रूप भावना समझना चाहिए। इस भावना में पर वस्तु या संयोगात्मक पदार्थों का सम्बन्ध छूट जाता है। इस आकिञ्चन्य या स्वतन्त्रपने की भावना का समावेश षोडसकारण भावनाओं की तपभावना सम्बन्धी ध्यानरूपी तप में हो जाता है और इस एक भावना को भाकर अकिञ्चन्य रूप स्वतन्त्रता का अनुभव करता हुआ योगी सच्चे आत्मिक सुख को प्राप्त

करता है।

शास्त्रों में कथित व्यापक रूप अभयदान में जैसे सभी तरह के दान (आहार, औषध, उपकरण और आवास दान) गर्भित हो जाते हैं क्योंकि चारों ही दान जीवरक्षा के निमित्त दिये जाते हैं और अभयदान का अर्थ प्राण दान या जीव रक्षा माना गया है। इसी तरह उपकरण दान में शास्त्र, पिच्छिका, कमण्डलु इत्यादि सभी गर्भित होते हैं क्योंकि "**उपकारं करोति उपकरणं**" जो आत्मा का या धर्म का उपकार करते हैं वे सब उपकरण कहे जाते हैं उसी तरह षोडस भावनाओं के अन्तर्गत अन्य सभी भावनायें गर्भित या समाहित समझना चाहिए। इसी व्यापकत्त्व रूप अपेक्षा से अभयदान और उपकरणदान की तरह सभी भावनाओं की अपेक्षा षोडस भावनाओं की व्यापकता सिद्ध हुई। इसी कारण से ये षोडस भावनाएँ तीर्थंकर बनने में साधन हैं। अतः भव्यात्माओं को '**षोडस भावनाओं का वर्तमान परिपेक्ष में व्यवहारिक रूप**' को समझते हुये तथा अपने जीवन में इन्हें अमल में लाते हुए एवं अपने पूर्व संचित अशुभ कर्मों का क्षय करते हुए परम्परा से तीर्थंकर प्रकृति के बंध के संचय का अपूर्व लाभ प्राप्त करना चाहिए तब अपने लक्ष्य बिन्दु रूप मोक्ष सुख की प्राप्ति में ये भावनाएँ भव-नाशनी अवश्य बनेगी और मुक्तिश्री की उपलब्धि भी अचिर (अविलम्ब) अवश्य होगी। इसी भावना के साथ अनेकान्तमय जैन शासन को नमन करते हैं।

अलिप्त जिनवर जग-विषयों से, नहीं राग जग-वैभव में ।
अधर विराजे समवसरण में, जित-इन्द्रिय हैं जिन भव में ॥
गणधर मुनिवर देवेन्द्रों से, पूजित जिनवर सुखी चरम ।
अरहंतों की सदा भक्ति से, मुझे मिले वह मोक्ष परम ॥

संस्कार और कर्म

- बचपन का प्रभावी संस्कार
- संस्कार भावना
- कर्म-विवेचन
- अतिशयकारी प्रतिमा
- दिनचर्या

बचपन का प्रभावी संस्कार

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवावि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

बच्चों को संस्कारित कैसे करें?

एक-एक सीढ़ी पर चढ़ते हुए हम सिद्धालय की ओर अपने मन को ले जाने के लिये और अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिये चन्द्र प्रभु भगवान की स्तुति में कहते हैं कि-

''पूयात् पवित्रो भगवान् मनो मे''

हे भगवन्! आप हमारे मन को पवित्र पुनीत बनाइए, मन को बहुत शुद्ध बना दीजिए। बस; मन जहाँ पर शुद्ध है वहाँ सब कुछ परिमल हो जाता है, मन की निर्मलता ही जगत की निर्मलता है। मन से ही सारे कार्य होते हैं।

आचार्यश्री संस्कार की बात कहते हुए कहते हैं कि संस्कार हमारे जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

संस्कार क्या होता है? जैसे ध्यान की बात कही थी कि इस जगत् में कोई भी आत्मा ऐसी नहीं है कि जो ध्यान करना न जानती हो। इसी तरह से इस संसार में कोई भी आत्मा ऐसी नहीं है कि जो संस्कारित न हो। अनादिकाल से पाप का संस्कार तो इस आत्मा पर है ही लेकिन यहाँ धर्म संस्कार की बात है हम वही आज कहने जा रहे हैं। आज तक जो नहीं सुना न समझा जिन्होंने उनके लिए आज समझने का अच्छा मौका है कि अपनी परम्परा कैसे बनी? तो संस्कार से! अच्छा धर्म का संस्कार तो बचपन में ही दिया जाता है न कि पचपन में और संस्कार देने वाले कौन होते हैं? कौन होते हैं संस्कार देने वाले? तो वे बच्चों के प्राथमिक गुरु माता-पिता हुआ करते हैं और उन माता-पिता में भी पहला गुरु माँ है। कभी भी आप देख लीजिए, माता-पिता बोलते हैं। पिता-माता नहीं बोलते। माता-पिता क्यों बोलते हैं? आपने कभी चिन्तन किया क्या?

माँ बच्चे की प्राथमिक गुरु है, बाद में पिताजी इसके बाद में शिक्षक आदि।

माँ क्यों प्राथमिक गुरु है? क्योंकि माँ बचपन में बच्चे को 24 घंटे देखती है, 24 घंटे अपने पास रखती है। 9 महीने तो पेट में रखा ही था और जन्म लेने के बाद कितने ही महीनों तक22-24 घंटों तक अपने ही पास रखती है। कितना मन जुड़ जाता है उस बच्चे का अपनी माँ के साथ। आपने कभी नहीं सोचा होगा, बड़े हो गए माँ को अब भुला-सा दिया तुमने, माँ का उपकार बहुत बड़ा है, जब 24 घंटे तक माँ अपने बच्चे के साथ रहती है, बचपन में उस बच्चे की एक-एक क्रिया उसके एक-एक भाव को जानती है तब अपना पूरा-पूरा प्रभाव उस पर डालती है वह जैसा चाहे वैसा जीवन बना सकती है। एकान्त से नहीं अनेकान्त से बोल रहा हूँ फिर उसका कर्म है न, बनाना चाहें तो नहीं बनता कई बार, इसलिए एकान्त नहीं है इसमें स्याद्वाद है उसका भी उपादान होना चाहिए केवल निमित्त से भी काम नहीं होता उपादान भी चाहिए पड़ता है। कभी-कभी सोते हुए उपादान को अच्छा प्रेरक निमित्त जागृत कर देता है। तो ऐसी माँ उसे अपने संस्कार डालती है। सुबह से शाम तक आवश्यक कर्त्तव्यों से धर्म-ध्यान करती-कराती है। पिताजी कब आते हैं? कब देखते हैं? आप स्वयं जानते हैं, कोई व्यापार में, तो कोई सर्विस में निकल जाते हैं, जब बच्चा सो करके ही नहीं उठ पाता तब पिताजी निकल जाते हैं और जब बच्चा सो जाता है तब घर में आते हैं तो बच्चे को कब दर्शन होगा पिताजी का? जब रविवार होगा तब होगा अतः सण्डे वाले पिताजी कहलाते हैं। हाँ तो छुट्टी के दिन ही पिताजी का दर्शन हो पाता है, माँ को तो देखता ही रहता है लेकिन पिताजी को नहीं देख पाता।

पिताजी कितनी दूर हैं बोलो? इसलिए ज्यादा नहीं जाता पिताजी के पास, जाए तो भी कई बार रोने लग जाता है लेकिन माँ के पास ज्यादा जाना चाहता है। कितना वात्सल्य देती है माँ और आज तो क्या हो गया है? आज-कल तो माता-पिता दोनों को ही बच्चे भूलने लगे हैं। आज का समय तो बहुत विकट समय आ गया है। आज वे माता-पिता दोनों ही सर्विस करते हैं और क्या करते हैं बच्चे के जन्म होने के बाद उसे एक स्थान पर छोड़ देते हैं। वो है 'धाय', वो 'आया'। अपने-अपने देश की भाषा अलग-अलग हो सकती है। जो बच्चे को खिलाने वाली होती है खिलाती-पिलाती है, सुलाती है, वो एक नौकर बनकर या नौकर के समान माँ बनकर के उस बच्चे को पैसे के पीछे पूरा प्यार देती है। बच्चा उसके पास पढ़ता है और माता-पिता छुट्टी के दिन उसे देखते हैं या रात में ले जाते हैं, जब बच्चा सो जाता है। फिर व्यवस्था

करके चले जाते हैं उसका खाना, पीना, दुनिया का सब कुछ, बच्चा उस 'धाय' से ही सीखता है, जो उसे सम्हालती है। बड़े हो जाने पर वह यही सोचता है कि वही मेरी माँ है, ऐसी माँ के पास जाने के लिए रोता है और वास्तविक माँ के पास जाने से रोता है। धायरूपी माँ के पास आते ही हँसता है। देखो अपनी माँ को अपने पिता को ही भूल जाता है फिर जब बड़ा हो जाता है, चलने लग जाता है तो उसे ले जाते हैं। अपने घर में रखते हैं लेकिन जो संस्कार पड़ गया उसको; वह संस्कार ही हमारे जीवन में बहुत खतरनाक सिद्ध हो जाता है, कि जब बेटा बड़ा होता है और माता-पिता बूढ़े हो जाते हैं तो वह सन्तान क्या कहती है? कि अब आपने कमाना छोड़ दिया, घर में रहते हैं। केवल खाते हैं और सोते हैं; इसलिए अच्छा हो कि आपके लिए जो एक अच्छा आश्रम खुला है वहाँ हम पैसे की व्यवस्था कर देते हैं आप लोग वहाँ जाकर रहिएगा।

ऐसे ही आपने हमारे प्रति मोह छोड़कर के किसी के पास छोड़ा था न, हम भी आज आपको यहाँ से किन्हीं नौकरों के पास छोड़ देंगे। देखो एक ही जीवन में इसका क्या परिणाम होता है। इसलिए बच्चों को पूरा-पूरा संस्कार हमें स्वयं ही देना चाहिए। क्योंकि जिनके माता-पिता जैसे होंगे वैसा ही उसका जीवन बनेगा, माता-पिता धर्मात्मा होंगे तो उनकी सन्तानें भी धर्मात्मा बनेंगी, कोई पिताजी डॉक्टर होते हैं तो बेटा भी डॉक्टर बनने की सोचता है, कोई इंजीनियर होते हैं तो इंजीनियर बनने की सोचता है, कोई वकील होते हैं तो वकील बनने की सोचता है और इसी तरह व्यापारी हैं तो व्यापारी बनने की सोचता है। इस तरह वह अपने माता-पिता के अनुसार ही मार्ग पर जाने की सोचता है। अगर वे क्रूर स्वभाव वाले होंगे, माँसाहारी होंगे तो उस पर भी मांसाहारी होने का संस्कार पड़ जाता है। शाकाहारी होंगे तो शाकाहार का संस्कार पड़ जाता है। चोर होंगे तो चोरी का और धर्मात्मा होंगे मंदिर में जाकर अभिषेक-पूजा करते होंगे तो बच्चों पर भी उस धर्म का बिना बोले ही संस्कार पड़ जाता है।

उत्तरभारत में कहावत है कि -

जाके जैसे नदिया नारे, वाके वैसे भरका।
जाके जैसे बाप-मताई, वाके वैसे लरका।।

क्या अर्थ हुआ - 'जाके जैसे नदिया नारे ...' जिस स्थान के जैसे नदी और

नाले होंगे वैसे ही उनके गड्ढे होंगे। नदी सीधी बहती है कि तिरछी बहती है, पहाड़ी स्थल है कि समतल है वैसे ही उसके गड्ढे वगैरह होते हैं। ऐसे ही 'जाके जैसे बाप मताई ...' जिसके जैसे माता-पिता होंगे वैसी ही उनकी सन्तानें होती हैं। सन्तानों को देखकर माता-पिता को जान सकते हैं और माता-पिता को देखकर संतानों का अनुमान किया जा सकता है कि वे कितने चरित्रवान हैं।

अब आगे आचार्य भगवन् कहते हैं कि संस्कार बचपन में ही क्यों दिया जाता है? यह प्रश्न हमारे सामने है। देखिए एक अंगूर की लता या जिसे छोटा पौधा बोलते हैं वह बढ़ती है, जैसे ही ऊपर आती है, जैसे-जैसे और आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे आप चिन्तित होते हैं कि इसे योग्य दिशा देना अनिवार्य है, अगर अभी हमने इसको नहीं संभाला, इसको कोई सहारा नहीं दिया लकड़ी का या रस्सी का तो वह विपरीत दिशा में चली जाएगी और विपरीत दिशा में जाने के बाद जब मोटी हो जाएगी तो उसको मोड़ना कठिन हो जाएगा। अभी यह पतली है इसे लकड़ी या रस्सी के सहारे से ऊपर ले जाना चाहिए और इसे फैला देना चाहिए। योग्य दिशा में फैल जाएगी तो स्वयं ही हम बड़ी सुविधा के साथ अंगूर तोड़ सकते हैं और वह भी अपना जीवन सुरक्षित करके सब जीव जन्तुओं से दूर रह करके रह सकती है और तभी हम उसके फल अच्छे ढंग से पा सकते हैं। इसी तरह से चिन्तन हमें इन बच्चों के जीवन के बारे में करना चाहिए, बच्चे ज्यों ही बचपन से बड़े होने लगते हैं तो उनके जीवन के बारे में माता-पिता चिन्ता करते हैं कि अभी इनका हृदय कोमल है और अभी जो संस्कार पड़ जाएगा वो जीवन के अन्त तक रहेगा, इसलिए अभी धर्म का संस्कार डालना आवश्यक है क्योंकि, जैसे जब मिट्टी गीली रहती है तो उसको कोई भी आकार दिया जा सकता है, अच्छा सुन्दर आकार भी दिया जा सकता है और वह मिट्टी जब सूखकर कठोर हो जाती है तब यदि गलत आकार पड़ गया हो तो उसे सुधारा नहीं जा सकता है। अगर सुधारने के लिए गए तो वह टूट जाती है। ऐसे ही बच्चे बड़े हो जाने के बाद; अगर हमने संस्कार नहीं दिया है तो फिर बाद में वे आपकी बात सुनते नहीं हैं। आप बोलते हैं कि मंदिर जाओ, पूजा करो, तो वे जवाब देते हैं कि हाँ तुम करो! हमें सब मालूम है। तुम जाओ। हमें सब मालूम है। ज्यादा बोला तो; तुम अपना काम करो हम अपना काम करते हैं ऐसा बच्चे सीधा-सीधा बोल देते हैं। फिर कितना फीका लगता है कि इस बच्चे को जन्म ही न दिया होता तो अच्छा होता; यह सुनता ही

नहीं है। कितना बुरा लगता है आपको, यही बात यदि तुमने उसके बचपन में कही होती, हाथ पकड़कर ले गए होते मंदिर; तो कितना अच्छा होता।

उत्तरभारत में आप देखेंगे तो कैसा वातावरण है हम लोगों ने क्या अनुभव किया था बचपन में? कि जो बच्चे रहते हैं उनमें माता-पिता जन्म से ही सुसंस्कार डालते हैं और हमेशा देखते रहते हैं कि कहीं ये खेल में ही न लग जाएँ और ये कहीं अपना कर्तव्य न भूल जाएँ अतः उन्हें मंदिर भेजते हैं चावल देकर के, चावल लेओ हाथ में, या डब्बी में लेओ और जाओ, मंदिर में जाकर के पुंज चढ़ा करके... आना.. जहाँ-जहाँ वीतराग भगवान हैं बैठकर नमस्कार करना... जाप करना आती हो तो जाप भी करना और गंधोदक लेने के बाद चंदन लगाकर आना; तभी हमें मालूम पड़ेगा कि तुम अब मंदिर जाकर के आए हो।

जब बच्चा जल्दी मंदिर जाता है नमस्कार करता है, द्रव्य चढ़ाता है, चन्दन कहाँ पर रखा है देखता है, चन्दन नहीं लगाया तो रोटी मिलने वाली नहीं है, तो रोटी के लिए मंदिर जाता है और अपना कर्तव्य करके आता है। जिस दिन मंदिर नहीं गया उस दिन रोटी मिलने वाली नहीं है। यह जानता है वह, माँ डाटेगी। कभी नहीं मानता है तो एक चाँटा लगाती है मंदिर जाना ही पड़ेगा तुझे। उसके बिना रोटी नहीं देंगे कहती है। जब वह बड़ा हो जाता है तो पूजा भी करता है, अभिषेक करने लग जाता है। सब कुछ धार्मिक कार्य करने लग जाता है। उसे ऐसा लगता है कि अरे यह उपकार किसका है अगर माँ ने मंदिर जाए बिना रोटी दे दी होती तो आज मैं भगवान की पूजा न करता होता। अच्छा हुआ मेरी माँ ने मुझे एक चाँटा लगाया था। मुझे जबरदस्ती मंदिर भेजा था इस प्रकार रोटी के लोभ में मंदिर जाता रहा। देखिए! और आप चिन्तन करिए कि माँ का कितना करुणा भाव रहता है। चाहे मारे, चाहे कुछ भी करे, उसका मारना क्या है? अरे वो तो गुरु हैं, गुरु तो मारते हैं तो भी "**गुरुजी मारें धम्म-धम्म विद्या आवे छम्म छम्म**"। अतः गुरु जी तो एक कुलाल के समान होते हैं।

गुरु कुलाल शिशु कुम्भ है, गड़-गड़ काढ़े कोठ।
अंदर हाथ पसार के, बाहर मारत चोट।।

गुरु तो कुम्भकार के समान हैं और वह शिष्य घड़े के समान होता है। वे उसमें बहुत अच्छी डिजाइन निकालते हैं। अच्छा सुन्दर बनाते हैं। "अन्दर हाथ पसार

के बाहर मारत चोट'' चोट मारते हैं जरूर, लेकिन कुलाल बिना अन्दर हाथ पसार के चोट मारेगा तो क्या होगा? घड़ा फूट भी न पाए और सुधर भी जाए, इतना ध्यान रखते हैं बड़े लोग, उसको कहीं भागने भी नहीं देते और सुधार भी देते हैं। ध्यान रखो, बच्चा बोलता है कि हम तो जाते हैं, हम नहीं रहते घर में तो फिर बाद में उसे याद करते हैं, चार बार बुलाते हैं, अच्छा मीठा खिला देते हैं उसको सब कुछ अच्छे से समझाकर पीठ पर हाथ पटककर सहला लेते हैं। फिर मान जाता है। कभी-कभी बेटा घर नहीं आया तो चार लोगों से पूछते हैं हमारा बेटा नहीं आया; कहाँ गया? सब लोग बेटे से बोलते हैं कि देखो तुम्हारे माता-पिता पूछ रहे थे, तो याद आता है उसे कि माता-पिता कितनी चिन्ता करते हैं। उनके अन्दर करुणा भाव रहता है। अच्छा सुन्दर जीवन बनाना है ये भाव रहता है उनका। बच्चों का जीवन कितना ही सुन्दर हो तो भी और भी ज्यादा सुन्दर बनाना चाहते हैं। वे अपने जीवन से भी अधिक सुन्दर बनाना चाहते हैं बच्चों का जीवन। क्योंकि उन्हें ख्याल आता है कि बच्चों के अन्दर संस्कार की कोई कमी रह गई हो तो हम उसे सुधार कर अच्छा संस्कार डालेंगे तो वह जगत् के बीच एक अच्छा आदर्श प्रस्तुत करेगा।

अब बचपन में संस्कार देने की बात कही-मात्र बचपन में ही नहीं, संस्कार तो जन्म के पहले से ही शुरु हो जाता है यह ध्यान रहे आपको। अरे वह आत्मा जब पेट में आती है तो उसके पहले से ही माता-पिता अपने भाव निर्मल बनाते हैं, माता-पिता के रक्त का परिणाम उस सन्तान पर होता है, आपका जैसा चिन्तन, जैसे भाव होंगे वैसा परिणाम उस सन्तान पर पड़ेगा, ध्यान से सुन लो यह। इसलिए तो तीर्थंकर की जो माँ होती है न; तीर्थंकर के गर्भ में आने से पहले ही देवियों द्वारा मांगलिक क्रियाएँ होती हैं और वहाँ पर देव लोगों की सुसेवा भावना बड़ी श्रेष्ठ रहती है। ऐसी देवियाँ तीर्थंकर की माँ की सेवा करती हैं। छप्पन कुमारियाँ बोलते हैं, कुमारियाँ क्यों बोला? इसका कारण यही है कि वे यौवन अवस्था के साथ रहती हैं। उनकी भावना भी विशुद्ध रहती है पापमय भावना नहीं रहती। ऐसी देवियाँ वहाँ जाकर के तीर्थंकर की माँ की सेवा करती हैं और सेवा; मात्र हाथ-पैर दबाना ही सेवा नहीं, मन की सेवा सबसे पहले करती हैं मन की सेवा का अर्थ क्या है? मन की सेवा का अर्थ ये है कि मन को प्रशस्त बनाती हैं। मन को प्रशस्त कैसे बनाती हैं? कई प्रकार के प्रश्न पूछती हैं उनमें स्वाध्याय चलता है, ज्ञान बढ़ता है और कई प्रकार से स्तुतियाँ, भक्तियाँ, स्तोत्र,

पाठ पढ़ती हैं उनके सामने; जिससे कि मन बहुत प्रसन्न होता है। इतना विशुद्ध हो जाता है मन कि उसके माध्यम से आने वाली सन्तान के ऊपर उसका परिणाम होता है। ऐसी माताएँ होती थीं पहले, आज भी होती हैं। खूब स्तोत्र पाठ वगैरह पढ़ती थीं कि हमारे लिए सन्तान की प्राप्ति होने वाली है; हम अपने मन को बहुत प्रशस्त बनाएँ जिससे कि वह सन्तान बहुत ही धर्मात्मा हो परमात्मा बने इसलिए धर्मध्यान बहुत करती थीं। वे माताएं, स्तुतिपाठ, भक्ति, पूजा बहुत करती थीं। मुनियों को दान देना, पूजा, स्वाध्याय आदि करना ये सद्गृहस्थ के करने योग्य धार्मिक कार्य हैं। जब सन्तान गर्भ में आ जाती थी तो संतान पर माताएं इन्हीं धार्मिक कर्तव्यों को करती हुई संस्कार डालती हैं।

आचार्यश्री कहते हैं कि जब वे महाराष्ट्र में थे तब वहाँ पर एक जगह दो महीने तक रत्नकरण्डक श्रावकाचार की क्लास चलाई थी, काफी कथाओं व उदाहरणों के प्रसंग उपस्थित हुए, बहुतायत लोग लाभ लेते थे। वहाँ पर उत्तरभारत के भी लोग हैं। परवार समाज व परवार मंदिर भी है और सैतवाल समाज भी थी। एक महिला थोड़े उतने दूर एक खंभा था उस खंभे के पास टिककर बैठती थी कारण टिकने का कोई दूसरा सहारा नहीं था शायद ऐसा लगता था कि उसकी संतान होने वाली थी ऐसा मालूम पड़ता था, उसके शरीर देख करके ही समझ में आता था और उसने; जितने दिन मैं वहाँ रहा उतने दिन तक खंभे के पास बैठकर के सहारा लेकर के उपदेश सुना बहुत प्रसन्न मन के साथ में। मैंने सोचा कि उस उत्पन्न होने वाली आत्मा का भी पुण्य लगता है कोई धर्मात्मा उसके पेट में आया है कि वो माँ को भी प्रेरणा दे रहा है कि तू एक भी उपदेश नहीं छोड़ना। पूरे-पूरे उपदेश सुन लिए उसने। मानो कि उस आत्मा को सुनायें हो। तो मैंने सोचा इन उपदेशों का परिणाम क्या होगा उस आत्मा पर जो गर्भ में आ गई है? किन्हीं-किन्हीं आत्माओं के कैसे-कैसे परिणाम होते हैं देखो, उसको भी कितनी चिन्ता थी कि जब उसको अपना शरीर भी सम्हालना नहीं हो रहा है और वह विचार करती होगी कि फिर कब तक आ सकते हैं हम मंदिर? वो बात आप लोगों को भी मालूम है। उस धर्म वचनों या उपदेशों का उस आत्मा पर कितना प्रभाव हुआ होगा? तब से तो मैं वहाँ वापस गया ही नहीं। इस प्रकार कैसी भावनाएँ रहती हैं? सभी माताओं को ऐसा ही होना चाहिए और धर्मध्यान बढ़ाना चाहिए।

इसके बाद क्या होता था? तीर्थंकर की माताओं की बात को आप जानते ही हैं, पंचकल्याणक तो बहुत देखे हैं आपने; जब सामान्य सन्तान उत्पन्न होती थी तब उत्पन्न होने के बाद उसका शुद्धीकरण वगैरह हो जाने पर उसके कान में माँ ही स्वयं णमोकार मंत्र फूँकती थी। गुरु के पास फुँकवाना अलग है गुरु के पास जायेंगे, 45 दिन के बाद तब अलग गुरु के मुख से भी फुँकवाएँगे। पहले नंबर तो स्वयं ही उसको णमोकार मंत्र देती थी और आज भी देती हैं बहुत अच्छी विशुद्धता के साथ माताएं। आपको शंका हो जाएगी कि - क्या महाराज जी! इतने छोटे बच्चे को णमोकार मंत्र? कोई बड़ा बच्चा हो तो भी ठीक, जो कोई अर्थ भी नहीं समझता वह णमोकार मंत्र सुनकर के क्या करेगा? क्या परिणाम हो जाएगा उस पर? तो इसी बात के लिए हम समझाने हेतु आपको एक उदाहरण देते हैं कि णमोकार मंत्र के सुनाये जाने से जब तिर्यञ्च नाग-नागिन देव गति को प्राप्त हो सकते हैं और एक कुत्ता भी सुदर्शन यक्ष बन सकता है तो तुम्हारे ये बच्चे तो मनुष्य हैं न फिर भी आप बोलते हैं कि ये तो अभी बच्चा है णमोकार मंत्र कैसे समझेगा? लेकिन मैं ये बोलता हूँ कि यहाँ पर जो भगवान बैठे हैं आप उनकी नित्य पूजा कर रहे हैं। अतिशयकारी प्रतिमाएँ रहती हैं। सभी प्रतिमाओं में अतिशय होता है कैसे प्रतिष्ठित हुईं ये? कैसे पूज्य बनीं हैं? मान लो जयपुर से एक प्रतिमा लाए हैं और उसकी प्रतिष्ठा नहीं हुई है अभी, उसमें पैर भी लग जाएं तो कोई बात नहीं है। पैर रखकर या चढ़कर ही तो बनाते हैं लोग उसे। किसी भी जाति के लोग बनाते हैं। लेकिन उसके जब पंचकल्याणक हो चुके होते हैं; बड़ी शुद्धता के साथ उसमें जो केवलज्ञान कल्याणक की विधि होती है उसमें सूरिमंत्र दिया जाता है, अंकन्यास नेत्रोन्मीलन, मुखोद्घाटन आदि तरह-तरह की क्रियाएँ होती हैं। उन सब क्रियाओं में मंत्रों का उपयोग होता है और उन मंत्रों के माध्यम से वह प्रतिमा अतिशयकारी पूज्य बन जाती है हमसे मात्र ही नहीं देवों से भी पूज्य बन जाती है। वह कैसे बनी पूज्य? मंत्रों के माध्यम से! एक पाषाण जो न हिलने-डुलने वाला अचेतन जैसा वह पाषाण भी जब मंत्र के माध्यम से भगवान बन सकता है तो चेतन बालक णमोकार मंत्र से क्या धर्मात्मा नहीं बन सकता? क्या उसमें कोई परिणाम नहीं हो सकता? अरे अचेतन में परिणाम हो सकता है और चेतन में नही? वो पाषाण कुछ नहीं जानता फिर भी अतिशयकारी हो जाता है। ये मंत्र की ही तो महिमा है।

अरे भैया! मंत्र का प्रभाव ऐसा होता है कि अचेतन वस्तु में भी उसका

परिणाम हो जाता है फिर चेतन की तो बात ही अलग है। अब वह मंत्र सुनाना चाहिए कि नहीं सुनाना चाहिए आप बोलिए? समझ में आया कि नहीं? अरे छोटा हो तो भी उसका मन तो बहुत मोटा है न, मराठी में मोटा का अर्थ बड़ा होता है। इस प्रकार से उसे णमोकार मंत्र तो अवश्य सुनाना चाहिए और मात्र इतना ही नहीं, हम आपको और भी कुछ बताते हैं कि जब माँ उसे औषधी पिलाती थी तो आप लोगों ने भी देखा होगा शायद, कभी मैंने तो देखा था कि माताएं अपने पास एक डिब्बा रखा करती थीं, उस डब्बे में तरह-तरह की छोटी-छोटी औषधियाँ कस्तूरी वगैरह भी रखा करती थीं और बालक का जन्म होने के बाद उसे पिलाया करती थीं, उसको आप घूँटी बोलते हैं, घूँटी पिलाया करती थीं। उस घूँटी के माध्यम से कितना परिणाम हुआ करता था उसके जीवन में। मैंने स्वयं देखा है अपनी आँखों से कि कैसे घूँटी पिलाया करती थीं, अपने लिए नहीं देखा होगा, अपना तो ध्यान नहीं, अपने बाद जो हुए कोई उनका मुझे ध्यान है, कि छोटा सा पाषाण रहता था उस पाषाण में तरह-तरह की औषधियाँ डालकर घिसती थीं और कैसे घिसती थीं? क्या बोलती थी माँ? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं इस प्रकार मंत्रों के साथ मानो णमोकारमंत्र से प्रतिष्ठा की जा रही हो उस औषधी में, ऐसे विशुद्ध मन के साथ औषधी को घिस-घिस करके बाद में थोड़ा दूध मिलाकर के उसमें माँ अपना और बच्चे का मुख फाड़ करके पिला देती थी, पी जा! और चला जा! कहाँ चला जा? किसलिए पी जा? ध्यान रखो उसका भाव क्या रहता था कि जो मैं औषधी पिला रही हूँ वह पीकर के अच्छा शक्तिवान बन जाए, किसलिए झगड़ा करने के लिए? पाप करने के लिए ? नहीं-नहीं! अभी आपको मालूम पड़ेगा जब पालने की बात हम करेंगे न, तब मालूम पड़ेगा आपको, तो वह ये सोचती थी कि ऐसी औषधी पीकर के यह ऐसा शक्तिवान बने और शक्तिवान बनकर ऐसा परोपकार करे कि जन-जन का उद्धार हो, इतना ही नहीं यह आगे तपस्या करे, मुनि बने, मुनि बनकर के कर्मों का नाश करे और मुक्ति के द्वार खोले इसके लिए वह घूँटी पिलाती थी। शक्तिवर्धक घूँटी पिलाती थी। आज क्या पिलाते हैं भैया? ''ग्राइप वाटर'' आ गई है कुछ सुनने में तो आ रहा है। वहाँ तो णमोकार मंत्र पढ़ते थे लेकिन इसको बनाते समय क्या पढ़ते हैं भैया ? कौन बनाते है इसे; मांसभक्षी या मद्यपायी या अन्य कोई? उसमें क्या मिलाते हैं, क्या नहीं मिलाते? मालूम नहीं। क्या प्रभाव होगा उसका और पहले की औषधी

देखो कितनी विशेष रहती थी अच्छी औषधी तो पिलाते ही थे और उसके बाद उसे सुलाते भी थे। पालने में लिटाकर के सुलाती थी माँ। बेटा सोया नहीं अभी और माँ थोड़ी दूर चली जाती है कि वह रोने लग जाता वह रोता है तो माँ क्या बोलती है? तुम लोग क्या बोलते हो? कुछ तो बताओ...? कौन सा गाना बोलते हो? नहीं मालूम आपको। तो जब वह रोता था न, तब माँ उससे बोलती थी कि –

तू तो सो जा बारे वीर, तू तो सो जा बारे वीर,
इस झूले में तू क्यों रोवे कौन भई तकलीफ।। टेक।।
तू तो सो जा ... तू तो सो जा.....।
आदिनाथ तीर्थंकर झूले वर्धमान महावीर,
इस झूले में झूल चुके हैं कैसे-कैसे वीर,
तू तो सो जा ... तू तो सो जा .....।
योनि लाख चौरासी झूलों तो न रोयो वीर,
अबकी जतन करो तुम ऐसी, मिटे जगत की पीर।
तू तो सो जा ... तू तो सो जा .....।
माता तेरी समझावे सुन मन धर के धीर,
अब का यतन करो, तुम ऐसा पियो न माँ का क्षीर।
तू तो सो जा ... तू तो सो जा .....।
इस झूले में तू क्यों .....।।

धन्य है, देखो कितनी भावपूर्ण लोरी वह माँ पढ़ती थी। क्या अर्थ है इसका? आप समझे हैं क्या?

बहुत सुन्दर भाव है। इसको मैंने कहीं पढ़ा नहीं है, कभी किसी शाला में भी नहीं सीखा है। करीब 20-25 वर्ष तक इसको बोला भी नहीं, जब किसी को पालने में झुलाया जा रहा था तभी मैंने सुना था। अपने लिए भी यही सुनाया गया होगा, वह तो मुझे याद नहीं है लेकिन उस कुटुम्ब की परम्परा ये ही बोलने को थी क्योंकि मेरे बाद में जिसको बोला गया वह यही मैंने सुना था, वही मुझे याद आ गया आज। मैंने संस्कार के बारे में प्रवचन के बीच जिस लोरी को अभी बोला है वह और भी बड़ी हो सकती है। मुझे मात्र इतनी ही याद है। लेकिन इसमें कितना मार्मिक भाव प्रकट किया गया है क्या बोला कि तू तो सो जा बारे वीर

इस झूले .....

कौन सी तकलीफ है तुझको, क्यों रो रहा है आदिनाथ तीर्थंकर झूले हैं। वर्धमान महावीर भी झूले हैं इस झूले में फिर तू क्यों रो रहा है। अरे! मत रो, 'अब की जतन करो' अब का ऐसा पुरुषार्थ करो कि 'मिटे जगत की पीर' ये संसार का सारा दुःख मिट जाए, मतलब कि तुम मुनि बनो, मुनि बनकर के तुम तपस्या करो, ये भावना भा रही है माँ, कि अब तुम्हें संसार में फिर न भटकना पड़े और अबका तुम ऐसा पुरुषार्थ करना कि 'पियो न माँ का क्षीर' अर्थात् मां का दूध पुनः न पीना पड़े मतलब फिर से जन्म न लेना पड़े तू मोक्ष पहुँच जा कितने बार जनम-मरण हुए हैं? गिनती नहीं कितने आँसुओं को बहाया है? कि समुद्र भी छोटा पड़ जाए। तो माँ को इतना करुणा भाव आ रहा है कि ऐसे जन्म-मरण करते हुए आत्मा कितनी बार भटकती जाएगी। हे आत्मा! अब तो कुछ भावना भा ले। ऐसी आध्यात्मिक भावना को लेकर वे लोरी पढ़ती हैं; कितना उत्तम भाव है उनका। आज के लोगों को क्या आता है मालूम नहीं? कोई सिनेमा के गानों को पढ़ते हैं अथवा क्या पढ़ते हैं? कुछ सीखा ही नहीं होगा तो क्या पढ़ेंगे, आज तो यह रिवाज ही नहीं रहा। दूसरों के पास छोड़ देते हैं, स्वयं सम्हालते हैं नहीं; ऐसे ही आपको वे छोड़ देंगे। अरे! तुम उनके जीवन को बचपन से अच्छा महान बनाओ, उनको अच्छे संस्कार दो, तो कभी भी मरते दम तक तुम्हें नहीं छोड़ेंगे वे। अतः अपने सामने ही उन्हें ध्यान से धार्मिक संस्कार देते हुए रखेंगे ऐसा संकल्प करो।

ध्यान रखो कि गांधी जी ने इस देश को स्वतंत्र कराया तो अहिंसा के ढंग से, इतना त्याग किया इस देश के पीछे। कितना संस्कार था उनकी माँ का; कि उन्होंने एक दिन देखा कि एक महिला तालाब के किनारे स्नान कर रही है। एक ही साड़ी है, आधी साड़ी को धो रही है और उसको सुखा रही है फिर उसी को पहन रही है। फिर आधी धो रही है, गांधी जी दूर से ही देख रहे थे, वे पास में आए और पूछा कि माँ क्या कर रही हो;

बेटा कपड़ा धो रही हूँ,

तुम्हारे पास दूसरा कुछ नहीं है क्या पहनने को?

अगर होता तो ऐसा क्यों करती बेटा, एक ही तो साड़ी है उसी को धोना है

उसी को सुखाना है और उसी को पहिनना है।

गाँधी जी के आँसू आ गए, वे सोचने लगे कि मैं भी इस देश की रक्षा के लिए आज से कभी भी ज्यादा कपड़े अपने पास नहीं रखूँगा। एक ही कपड़ा पहनूँगा और अगले दिन के लिए एक और रखूँगा। आपने देखा होगा कि उनका फोटो जिसमें एक ही कपड़ा तन के ऊपर, दुपट्टा भी नहीं है। उसी को पहने व उसी को ओढ़े हुए हैं, उनका जीवन जो परिवर्तित हुआ, वह उस महिला को देख करके, नहीं तो पहले वे बैरिस्टर थे इंग्लैण्ड में पढ़े थे। सब अच्छा सूट, पेंट, टाई लगाने वाले और उनके मित्र जो नेहरू जी थे उनके कपड़े तो पेरिस से धुलकर आते थे, कितने जोड़ी कपड़े होंगे उनके पास। गांधी जी ने तो नियम ले लिया था कि अगर देश की रक्षा करना है तो महावीर के सिद्धान्त को अपनाना पड़ेगा जो है अपरिग्रहवाद, तब ही हम इस देश की रक्षा कर सकते हैं। उन्होंने करुणावान होकर के देश की रक्षा की है। हम भी शिक्षा लें और परिग्रह को सीमित करें या ध्यान की सिद्धि और निश्चिंतता के लिए परिग्रह की आसक्ति छोड़ें।

आज हमारे देश की बात तो दूर, दूसरे देश के लोगों ने भी गांधीजी को आदर दिया था। जब वे दिवंगत हुए तो फॉरेन के लोगों ने उनका मस्तक माँगा था। हमारे देश के लोगों ने बोला कि ''पैसा हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है, उनका आदर्श जीवन महत्वपूर्ण है, उनकी काया यहाँ जन्मी थी यहीं मिट्टी होगी, हम उसको यहीं रखेंगे। हम आपको पैसों में नहीं बेचेंगे। यह हमारी इज्जत है ध्यान रखो'' और भी देखो एक बार एक पत्रिका में पढ़ा था कि इंग्लैण्ड के एक रेल्वे स्टेशन पर गांधीजी के फोटो का अनावरण-(इनॉगरेशन) महोत्सव किया गया। सुनते ही मुझको आश्चर्यजनक लगा कि वाह! जिन अंग्रेजों को उन्होंने खदेड़ भगाया, लेकिन मारकर तो नहीं भगाया; प्रेम से भगाया और कहते थे कि आपको गाड़ी निकालना है तो निकाल दो मैं लेटा हूँ, कुछ भी करो, लेकिन हमारा देश छोड़ो हमको स्वतंत्र होना है, हमें धर्म रक्षा करना है और संस्कृति को सुरक्षित रखना है, आखिर यह देश उन्हें छोड़ना पड़ा। तो उनके ऐसे आदर्श कार्य से प्रभावित होकर के उनके अहिंसा धर्म को देखकर के उन्होंने उनकी फोटो का इनॉगरेशन किया नहीं तो कोई ऐसा करेगा क्या? अरे ऐसे व्यक्ति को तो शत्रु मानेंगे कोई। इसलिए वे बोलते थे कि हमारी उन्नति के लिए एक वर्ष की अपेक्षा 10 वर्ष लग जाएँ लेकिन हमारे साधन पवित्र होंगे, अपवित्र साधनों से जो उपलब्धि हम

एक वर्ष में तो हासिल कर सकते हैं, लेकिन उस बैर को मिटाने में हम कितने जन्म गंवाएंगे; नहीं मालूम? नहीं, ऐसा नहीं करेंगे हम, हमारे साधन तो पवित्र रहेंगे, थोड़ी देर लग जाए लेकिन हम अनर्थ नहीं करेंगे, देखा उनका जीवन। आज तो संस्कार का प्रवचन है इसमें दूसरा मेटर भी आ रहा है बीच-बीच में। बढ़ जाएगा प्रवचन इसीलिए जल्दी-जल्दी कर रहा हूँ। विषय तो बहुत है सुनाने के लिए। माल खरीदने के लिए लोग और समय होना चाहिए धर्म का माल तो बहुत है दुकान में।

इस प्रकार से ऐसा संस्कार डाला। कैसा संस्कार डाला देखो कि कितना महान जीवन बने इस बेटे का और ये कितनी उन्नति करे, कि वह साधु बनकर के मोक्ष प्राप्त कर ले और फिर कभी न उसे इस दुःख में आना पड़े और न इस दुःख को सहना पड़े ऐसी भावना माँ के अन्दर है। ऐसी कोई अन्य माताएं भी भाती हैं भावना कि मेरा बेटा मुनि बन जाए, मेरा बेटा साधु बन जाए, आप भले न भाएं, हम तो भाते ही रहते हैं हमेशा। पाठशाला में देखो सब बच्चे टाइम से आते हैं। हमने कल बच्चों से पूछा था कि कितने बच्चों को आर्यिका बनना है, कितने बच्चों को मुनि बनना है? माँ के सामने अभी हाथ नहीं उठवाएंगे, कल हमारे सामने कितने बच्चों ने मुनि, आर्यिका बनने को हाथ उठा दिए थे आपके बिना पूछे ही उठा दिए थे उन्होंने, आपसे क्या पूछना है, वो जानते हैं कि कितने ही माता-पिता हो चुके हैं। किससे पूछना हमें, हमें तो महाराज लोग चाहिए, गुरु चाहिए, कितना अच्छा भाव है उनका, कितना पुण्य है उनका, किस जीवन का पुण्य है? कभी तो वे रहे होंगे आर्यिका, मुनि; तभी तो संस्कार परम्परा से आता रहता है, इस जीवन में भी भावना हो जाती है। पाप में जाने की भावना नहीं रहती; आप जबरदस्ती कर देते हैं उनको; तब हो जाता है उनका पुरुषार्थ ढीला, तो ऐसा नहीं करना है, थोड़ा उनके भावों को भी आदर देना है, गुरु महाराज कहते ही हैं कि युवावस्था में वैरागी होना पूर्व जन्म के संस्कार का ही तो फल है, अतः भावना ऐसी भी भाना चाहिए जो झूला झुलाते समय भायी थी। वही भावना अब सजग हो रही है।

वह योग्य संतान जब बचपन से उम्र में आगे-आगे बढ़ती है तब उसे धीरे-धीरे णमोकार मंत्र के साथ-साथ स्तोत्र, भजन, पूजन एवं धर्म कथा भी सुनाते हैं। सुनाते-सुनाते यह संस्कार होता है कि वह भी सुनते-सुनते धीरे-धीरे उसी तरह बोलने और सोचने लग जाता है। फिर उसे मंदिर ले जाने के साथ-साथ बचपन से ही

क्या; बोलने के पहिले से ही गुरुओं के पास भी ले जाते हैं। 48 दिन के बाद निर्ग्रन्थ गुरु के मुखारविन्द से उनके कान में णमोकार मंत्र फुँकवाते हैं, गुरु सद्भावना भाते हैं और वे उसके मंगलमय जीवन की कामनाएँ करते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे जब वह स्वयं मंदिर जाने लग जाता है तब कैसे नमस्कार करना है? नमोस्तु किसको बोलना है? वंदामि किसको बोलना? इच्छामि किसको बोलना? किस-किस को नमस्कार करना? किसको नहीं करना? कौन सरागी? कौन वीतरागी? ये सारी बातें उसे बताते हैं। नेक जीवन का अच्छा संस्कार देते हैं। तीर्थंकरों की कथाएं सुनाते हैं, मोक्ष क्या है? स्वर्ग क्या है? नरक क्या है और कहाँ पर कौन हैं? ये सब कुछ बताते हैं और उन महापुरुषों का जीवन चरित्र सुनाते हैं। महापुरुषों के चरित्र सुनाने से उसमें दृढ़ आस्था उत्पन्न होती है जिससे कि हमारा जैनधर्म कितना महान् है ऐसा जानते हुए उसको यह जिनधर्म नया नहीं लगता, फिर उन्हें कभी बोलना नहीं पड़ता कि मंदिर जाओ ये काम करो इत्यादि अपने आप उसे सब कुछ ध्यान में आ जाता है, कुछ भी नया-सा नहीं लगता है।

आज-कल के फैशनी बच्चों को तो क्या कहें? आपने उन्हें बचपन में तो मंदिर भेजा नहीं, कभी प्रवचन सुने नहीं, आज तक उन्होंने कोई शास्त्र भी पढ़ा नहीं, कॉलेज में पढ़ने लगे सब फिलोस्फी पढ़ ली, इसके बाद अब जैनधर्म छोटा-सा लगने लगा, जैन फिलोस्फी को तो अच्छे से पढ़ा नहीं, अब जो समुदाय ज्यादा संख्या में दिख रहा है उसी को बड़ा मानने लगे। मंदिर में आए तो भगवान को भी गॉड प्रामिस करने लगे, सलूट मारने लगे। एक बार एक बच्चा आया, उसके माता-पिता ने बोला महाराज को नमोस्तु करो, तो वह सलूट मार रहा था नमस्ते महाराज बोल रहा था। तब हमने कहा कि तुम्हारे माता-पिता ने यह भी नहीं सिखाया कि किसको नमोस्तु करना है और किसको नमस्ते करना है? एक बच्चा अभी हाल में आया था वह बच्चा बड़ा था लेकिन उसने पहले ब्रह्मचारी जी को नमस्कार किया। बाद में साधुओं और फिर भगवान को नमस्कार किया, उसको यह नहीं मालूम कि गुणों की अपेक्षा कौन छोटा है, कौन बड़ा? कभी कोई अन्य बच्चे भी आते हैं, अभी इसी गाँव में भी आये थे वे खड़े-खड़े भूमि को स्पर्श कर प्रणाम कर रहे थे। जो कि जैन पद्धति नहीं है। उनको इतना भी नहीं मालूम था कि कैसे बैठकर के नमस्कार करना है जैसे माता-पिता के पैर छूते हैं ऐसा करते हैं। अरे! खड़े-खड़े तो नमस्ते होता है बैठकर नमोस्तु किया

जाता है वीतराग को तो चिंतन करो कि यह संस्कार की बात है क्योंकि अच्छा संस्कार देंगे तो अच्छा बनेगा बेटा, बुरा देंगे तो बुरा बनेगा। बुरा देना नहीं पड़ता है, अच्छा नहीं दिया जाए तो बुरा संस्कार तो अनादिकाल से है ही पंच पाप दिख ही रहे हैं जीवन में। उसका संस्कार तो अपने आप पड़ ही जाता है अच्छा देने की आवश्यकता है, बुरा देने की कोई आवश्यकता नहीं वह तो स्वयं पड़ जाता है।

इसी सन्दर्भ में एक उदाहरण आचार्यश्री कहते हैं कि – एक घर में माँ है, पिताजी भी थे, बहुत गरीब परिवार था, झोपड़ी में रहने वाले जैसे, उनके यहाँ एक सन्तान उत्पन्न हुई। बुरे संस्कार का क्या परिणाम होता है यह सुना रहे हैं आपको। बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता है, बड़ा होते ही पहली क्लास में उसका एडमीशन करा दिया, रोज स्कूल जाने लगा, थोड़े दिन बाद पिताजी का देहान्त हो गया, बहुत दुःख हुआ घर में; अब माँ कैसे अपना जीवन चलाए? कोई वहाँ व्यापार का आधार तो था नहीं, तब घर-घर में जाकर के बर्तन माँजना, कपड़े धोना आदि ऐसे काम करके अपना जीवन चलाती थी। अब वो बच्चा रोज स्कूल जाता, माँ ने कोई अच्छा संस्कार तो दिया नहीं था उसे, पुण्य-पाप क्या है ये भी नहीं समझाया था, एक दिन उसने क्या किया; अपने बाजू वाले बच्चे के बैग से रिसेस के टाइम में एक पेंसिल चुराई, चुरा करके अपने बैग में रख ली और घर आया, घर आकर के अपनी माँ को बताया, माँ पेन्सिल लाया हूँ।

कहाँ से लाया बेटा?

बाजू वाले बच्चे के बैग से लाया हूँ।

क्या उसने देखा नहीं?

नहीं ! अच्छा है रख ले अपने पास। वैसे भी पैसा तो है नहीं अपने पास।

अब बेटे के दिमाग पर क्या संस्कार आ गया देखो? एक मिनिट का संस्कार जीवन भर को बरबाद कर देता है। तब वह संस्कार पड़ गया कि चोरी करना अच्छा है बस। अभिप्राय समझ लिया बेटे ने, अब दूसरे दिन पेन लाता है, फिर धीरे-धीरे पैसे चुराता है, माँ कुछ नहीं कहती है, फिर पढ़ाई छोड़ देता है, जब जवान हो जाता है तो बड़ी-बड़ी चोरी करना, ताले तोड़ना या बैग चुराना, अटैची चुराना और आभूषण चुराना आदि ऐसे ही काम हो गए उसके। एक रात्रि में बहुत बड़ी चोरी की उसने; वैसे

ही पुलिस उसको ढूँढ रही थी। पुलिस स्टेशन पर उसका नाम दर्ज था ही, एक दिन रात्रि के समय एक सेठ की ज्वैलर्स की दुकान में ताला तोड़कर के अन्दर घुस गया, सब सोना चाँदी इकट्ठा करने लग गया उस सेठ का घर बाजू में ही था, खट-खट आवाज आई, आ गए वे। अंदर आते ही उस चोर ने देखा कि ये हमें पकड़ लेंगे हमारा जीवन जाएगा, उसने एक शस्त्र निकाला और सेठ जी को मार दिया, सेठ जी बहुत चिल्लाते हैं और नीचे गिर जाते हैं। इतने में आजू-बाजू के लोग आ गए, आते ही उस चोर को पकड़ लिया, पुलिस को खबर दी, पुलिस आई उसको जेल ले गई और कोर्ट से फाँसी की सजा हो गई। फाँसी की सजा का दिन निश्चित हो गया, टाइम निश्चित हो गया और वो दिन भी आ गया, उसको जेल में रखा था फिर उसे बाहर निकाला और बोला कि तुमको आज फाँसी की सजा मिलना है, कुछ घंटे बाकी हैं बोलो तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है? क्या चाहते हो तुम?

क्या कुछ चाहते हो?

उसने कहा कुछ नहीं चाहते हम, मरना ही तो है बस।

अच्छा कुछ खाना चाहते हो क्या?

क्या खाना अब तो मरना ही है,

और दूसरा क्या चाहते हो अच्छा कुछ पहनना है क्या?

नहीं कुछ नहीं पहनना मुझे।

फिर अंतिम इच्छा बोलो योग्यता अनुसार उसकी पूर्ति की जाएगी।

तो वह बोलता है कि मेरी अंतिम इच्छा यही है कि मेरी उस उपकारी माँ का दर्शन करा दो।

अच्छा! बड़ी उपकारी है तुम्हारी माँ, ले आता हूँ।

पुलिस वाले उसे गाड़ी में ले आए ज्यों ही माँ वहाँ आई उसको भी मालूम हो गया था कि आज फाँसी की सजा है सामने देखते ही रोने लगी, हे बेटा! हे बेटा अब तुम मेरे आँखों के तारे; चले जाओगे, किसको बेटा कहेंगे, किसको बुलायेंगे?

तो बेटा बोलता है माँ रोने-धोने से क्या लाभ है? क्या होता है रोने से? अब तो हम जाने ही वाले हैं कोई बचा तो सकता नहीं।

हाँ बेटा बात तो सही है लेकिन मोह नहीं छोड़ा जाता।

बेटा बोला – माँ अंतिम एक इच्छा है उसकी पूर्ति कर दो?

हाँ बेटा बोलो!

बेटा बोला कि मुझे तुम्हारी गोद में लेटना है।

गोद में लेटना है? इतना बड़ा हो गया, जवान हो गया, अब गोद में लेटने की बात बोलता है।

हाँ माँ यही अंतिम इच्छा है।

माँ पास में चली गई और बेटा पास में आया और माँ की गोद में लेटने लगा कि उसने क्या किया; माँ के मुख को अपने हाथों से पकड़ा और माँ की नाक को अपने दाँतों से काट दिया, खून-खून हो गया, नाक कट गई नीचे गिर गई, माँ रो पड़ी।

ऐ बेटा तूने ये क्या कर दिया, क्यों मेरे जीवन को बर्बाद कर दिया तूने।

माँ कुछ नहीं किया ये तो तुझे सबक दिया है मैंने, दूसरा कुछ भी नहीं किया। तुझे याद है कि जब मैंने पेन्सिल चुराई थी तब तुमने क्या बोला था, ''अच्छा है बेटा रख ले''। आज उसी की ये बदौलत है, उसी का ये परिणाम है कि मेरे गले में ये फाँसी का फंदा पड़ने वाला है। अगर उस समय मेरे गाल पर एक जोर से चाँटा मारा होता तो आज ये फंदा मेरे गले में न पड़ता; इसका कारण तू ही है। तू मेरी माँ नहीं है, तू मेरी शत्रु है, चली जा यहाँ से। आगे से कभी ऐसी माँ नहीं बनना ये तुझे सबक दिया है सबक।

माँ रोती-रोती घर की ओर चली, दूर से ही पीछे मुड़कर बोली कि वास्तव में बेटा मैंने बहुत बड़ी गलती की है अब क्या? क्षमा करना, कभी किसी को भी ऐसी कुसंस्कार देने वाली माँ नहीं बनना चाहिए।

ध्यान रखो उसको तो फाँसी की सजा हो गई वो चला गया। वह माँ भी चली गई नाक भी कट गई। इसी तरह अगर हमने सन्तान उत्पन्न की है तो हमारा क्या कर्त्तव्य होता है? इसका ध्यान रखो, क्योंकि जैसे आपकी कोई वस्तु आपके पास है और उसका सदुपयोग आप करते हैं तो अच्छा है; वरना किसी सदुपयोग करने वाले को दे दें तो भी अच्छा है। अगर कोई उसका दुरुपयोग करता है तो पाप का भाग किसको आएगा? आपको ही ज्यादा आएगा क्योंकि आपकी वस्तु है ना। ऐसे ही

सोचो कि हमारी सन्तानें अगर बुरा काम करेंगी तो उसका भाग हमको भी मिलेगा और आपका नाम बदनाम भी होगा। इसलिए ध्यान रखो, सन्तानों को अगर धर्म का संस्कार नहीं दे सकते हैं, या उन्हें मंदिर नहीं भेज सकते हैं, उन्हें गुरुओं के उपदेश सुनने की प्रेरणा नहीं दे सकते हैं और शास्त्र पढ़ने की बात नहीं कर सकते हैं, तो उन्हें जन्म देना ही ठीक नहीं है क्योंकि पाप का संस्कार तो उन पर गहरा पड़ता ही जाएगा और एक दिन तुम्हारे नाम पर भी काला धब्बा लग जाएगा। तुम्हारे कुल को भी बदनाम करेंगी वे सन्तानें।

आज के कुछ लोग बच्चों को मंदिर जाने के लिए तो बोलते नहीं हैं और यदि वे जाते हैं तो उन्हें नियम, संयम से डराते हैं। साथ में भी लेकर नहीं जाते। लेकिन आज कॉलेज जाने को अकेला छोड़ते हैं, फारेन जाने को छोड़ते हैं। वहां देखो कॉलेज में को-एजूकेशन होता है, बच्चे-बच्चियाँ एक साथ पढते हैं वही तो बाद में शादी भी करा लेते हैं और कैसी हो गई शादी जैन बनाये बिना? मालूम नहीं, उस गलती की वजह से फिर उन्हें धर्म करना, दान देना-आहार देना भी मुश्किल हो जाता है और माता-पिता का भी, क्योंकि अब इन्द्र कैसे बन पाएँगे? कुल बदनाम हो गया। ये सब क्यों हो जाता है? क्योंकि हमने उन्हें धर्म से वंचित किया है न, अगर हमने धर्म सिखाया होता, मंदिर भेजा होता, पाठशाला भेजा होता तो वे पाप से डरते, पाप क्या है? उसे जानते वे। भय भी खाते पाप से। दुर्गति क्या है? नरक क्या है? निगोद क्या है? पाप क्या है और आगे उसका फल क्या होता है? यह सब उन्हें मालूम होता है। लेकिन लोग किसको प्रेरणा देते हैं? टी.वी. देखने के लिए, लोग नहीं डरते गन्दी बातों से, वे स्वयं बैठते हैं और अपने बच्चों को भी बिठाते हैं। पहला एक जमाना था कि जब टी.वी. तो था ही नहीं, हमने भी नहीं देखा टी.वी., जब तक हम घर में थे तब तक टी.वी. वहाँ आया ही नहीं था। उस समय अगर कोई बच्चा सिनेमा (टॉकीज) चला गया तो माता-पिता डाँटते व मारते थे। बोलते थे कि घर आने में देर क्यों हुई? तू बिगड़ने वाला है, तू व्यसनी बन जाएगा। बिल्कुल लिमिट में उसे पैसा देते थे और कभी-कभी पूछते थे कि पैसे का क्या किया है तूने? आज तो क्या है वह सिनेमाघर तुम्हारे घर में ही आ गया है। सारे पाप घर में ही हो रहे हैं वहाँ इतना ही नहीं उन एक्टरों का जीवन तो देखो कितना पापमय है एक पाप भी बाकी नहीं है जो वे ना करते हों, वे व्यसनी लोग तुम्हारे घर में पैर भी नहीं रख सकते। आप लोग उनको देखते हैं

और हँसते हैं उनके बुरे कार्यों को बच्चे भी देखते हैं अब सारी धर्म-मर्यादाएँ समाप्त हो रही हैं। अब बच्चों को कैसे बोलोगे कि ये गन्दा काम है, तुम स्वयं भी तो इन्ट्रेस्ट ले रहे हो उसमें। एक बार ऐसा ही मैंने सुनाया था तो एक माता-पिता बोले महाराज जी घर में बच्चों का टी.वी. अलग है और हमारा अलग है। तो मैंने बोला कि कोई पाप तो छूट नहीं गया ये मर्यादा नहीं गई तो भी पाप कुछ कम नहीं हो गया है। पाप बढ़ाने वाले सीरियल छोड़ ही दो अच्छा हो जाएगा। बच्चे भी अपने-आप उसमें रुचि कम कर देंगे।

आचार्यश्री कहते हैं कि अमेरिका के लोगों के बारे में उन्होंने बहुत सुना है अमेरिका में क्रिकेट नहीं खेलते थे वे लोग वैसे ही टी.वी. ज्यादा नहीं देखते वे टी.वी. देखते हैं; तुमसे भी ज्यादा देखते हैं लेकिन टी.वी. से पढ़ते हैं, शिक्षा प्राप्त करते हैं, अध्ययन करते हैं, वहाँ साफ्टवेयर लगा रखे हैं ऊपर से, इन्टरनेट से सारा अध्ययन होता है पूरा विषय है उसमें; गणित पढ़ना है तो गणित है, इंग्लिश पढ़ना है तो इंग्लिश है, जो भी पढ़ना हो, उसके बारे में पूरा विषय साफ्टवेयर में होता है और उसके माध्यम से अच्छी पढ़ाई करते हैं वे लोग। आज भारत की उन्नति और भी हो सकती है लेकिन हमारे लोग इन साधनों से पढ़ाई नहीं करते, विषयकांक्षा या केवल मनोरंजन करते हैं। अरे! मनोरंजन तो अभी भी हो रहा है, जहाँ तुम्हारा मन लगे वहां मनोरंजन है। यदि धर्म में रुचि आने लगे तो वह भी मनोरंजन है। मैंने देखा है गाँव में, कि कोई-कोई बच्चे तो टी.वी. से धार्मिक सीरियल देखने में लीन होते हैं, जब मैं मंदिर जाता हूँ तब कोई-कोई बच्चे-बच्चियाँ पूजन करते रहते हैं। हमने उनको नहीं बोला था पूजन करने के लिए, लेकिन वे पूजन स्वतः ही करते रहते हैं। तब मैंने सोचा कि इनको किसने सिखाया ये सब, कभी तो उन्होंने जान लिया होगा कि इसमें इतना आनंद है। वे नित्य पूजा करते हैं आपके यहाँ भी अभिषेक, पूजा करते हैं। आप सबको इसमें आनन्द आने लगा तो यह ही धर्म का मनोरंजन है चाहे ध्यान और स्वाध्याय भी क्यों न हो हमारा जहाँ-जहाँ धर्म में मन लगता है वही मनोरंजन होता है। हमारे गुरु महाराज के गुरु ने एक पुस्तक लिखी है-

'मुनि मनोरंजनाशीति' अशीति का मतलब है 80 श्लोक, उन श्लोकों में मुनियों को मनोरंजन कैसे करना? इसके बारे में संस्कृत में बतलाया है। उसको जब मैंने सुना तो सोचा कि ये क्या लिख दिया महाराज ने? अरे! जब उसको अन्दर पढ़ा तो

उसमें इतना अच्छा विषय पाया कि मुनियों के 28 मूलगुणों के बारे में चिन्तन है। उनकी चर्या उसमें बतलाई गयी है कि मुनि महाराज कैसे अपने गुणों का, धर्म का पालन करके अपना मनोरंजन करते हैं। तो ध्यान रखो मनोरंजन का अर्थ ये नहीं कि गलत काम करना या पंच पाप को करना ही मनोरंजन है, गार्डन घूमना ही मनोरंजन है, ऐसा नहीं है जहाँ आपका मन लगने लग जाए वहीं मनोरंजन है। अभी हमारा कितना बड़ा मनोरंजन चल रहा है पूरा पुण्य अर्जन कर रहे हैं कितने कर्मों का क्षय कर रहे हैं आप लोग। यह बात ध्यान रखो कि इस प्रकार से जो लोग अपना समय पापों में बर्बाद कर रहे हैं, अगर धर्म करें तो कितना अच्छा हो, मात्र गन्दे सीरियल में क्या रखा है। धर्म कार्य के लिए प्रेरणा भी नहीं देते हैं कि जाओ मंदिर, जाओ पाठशाला पढ़ो। मैंने देखा है अभी एक गाँव में पाठशाला प्रारंभ हुई थी। जहाँ लगभग 150-200 घर है, कम से कम 150-200 बच्चे थे। बच्चे-बच्चियाँ जो भी थे शादी होने से पहले तक सब आते थे। इतनी व्यवस्था कर दी थी कि ज्यादा बड़े जवान बच्चे हों तो बच्चे-बच्चियाँ एक साथ नहीं रहें, बड़े बच्चों को अलग से पढ़ाने की व्यवस्था कर दी अनुशासन गड़बड़ न हो जाए इसलिए यह व्यवस्था ठीक है और पाठशाला सम्हालने के लिए एक समिति बन गई तथा पढ़ाने के लिए बहु बेटियां शिक्षिकाएं बन गईं, क्योंकि समाज के लोग सामने रहेंगे तो उन्हें ट्रेनिंग मिलेगी। थोड़े दिनों बाद ब्रह्मचारी जी या कोई अन्य भी इस कार्य को थोड़ा कभी-कभी सजेशन देते जाते हैं और काम चलता चला जाता है तो वहाँ कुछ बड़े लोग भी उत्साहित होकर सम्हालते हुए गिफ्ट वगैरह देते रहते हैं। इस प्रकार से कितना संस्कार हुआ 4-6महीने में, पाठशाला ने अच्छी गति पकड़ ली, नाम अच्छा कमाया एक-दो महीने में, मैंने उनको शिष्टाचार की अनेक बातें सिखाने का उपदेश भी दिया कि मंदिर कैसे आना? पूजा कैसे करना? गुरु के सामने कैसे रहना? ये सब कुछ उनको सिखाया गया। एक-एक धार्मिक कार्य की विधि उनको बताई गयी थोड़े समय में ही बहुत सारा सिखा दिया गया। अभी तक कई शास्त्र पढ़ना सीख लिए हैं। कई महिलाएं एवं बड़े बच्चों ने भी 10-10 अध्याय याद किये तत्त्वार्थसूत्र के और स्वर्णपदक के पुरस्कार प्राप्त किए थे दीपावली पर। इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, छहढ़ाला और स्वयंभूस्तोत्र जो 150 पद्यों में है वो भी याद करके सुनाया। इसी तरह बारसाणुवेक्खा जो प्राकृत में हैं 91 गाथाएँ हैं उसमें, उसको भी कण्ठ पाठ करवाया गया था और भी भक्तामर आदि ऐसे 18विषयों पर

प्रतियोगिता हुई थी। सोने-चांदी के पुरस्कार रखे गये थे समाज के द्वारा। कितना उत्साह होता है देखो पूरा पाप का सीरियल ही बंद हो जाता है। महाराज जी आ गये हैं; मतलब पूरा ले लो लाभ, कितना लूटना है धर्म का आनंद लूट लो। यहाँ तो धर्मरूपी रत्न मिल रहे हैं, ऐसी दुकान फिर खुलने वाली नहीं है, फिर कब खुलेगी? नहीं मालूम। इतना समय देकर के माता-पिता बच्चों को स्वयं लेकर के आते थे और कहते थे कि महाराज जी ये देखो पाठशाला के लिए मना करता है इसको डाँटिएगा। हम इसको लेकर आए हैं हम भी यहीं बैठेंगे। हम उसके साथ आएंगे। अतः माँ वगैरह भी उनको साथ लेकर पाठशाला में बैठाती थीं।

वहाँ देखो बुरे संस्कार का क्या परिणाम हुआ था मालूम है कि नाक ही कट गई थी, ऐसा मंजूर है आपको? आपका जीवन कैसा हो, आपकी संतानें कैसी हों; तो बच्चों से पूछता हूँ बोलो बच्चों आज अपने माता-पिताओं में मुझे ऐसे माता-पिता चाहिए कि मैं अगर कोई गलती करूँ तो मुझे समझाने या दण्ड देने वाले हों अथवा बोलो कि पेन चुराने पर अच्छा है बेटा, अच्छा है ऐसा बोलने वाले हों? पहला प्रकार चाहिए कि दूसरा प्रकार चाहिए बोलो? अच्छा पहले वाले चाहिए। तो देखो बच्चों! कभी भी माता-पिता दंड दें तो बुरा नहीं मानना 'अन्दर हाथ पसार के, बाहर मारत चोट' के समान तो वे अपने बच्चों के जीवन को सम्हालते हैं, वे बहुत अच्छा सहारा देते हैं तुम्हारे लिए, अच्छे ढंग से उन्नति चाहते हैं ऊपर से मारते हैं, लेकिन उनका भाव गलत नहीं रहता है; हमें ऊँचे उठाने का रहता है, बच्चों को चाहिए कि वे धार्मिक माता-पिताओं की आज्ञा पालें तभी उनका भविष्य उज्ज्वल होगा। लोक में कहावत है कि 'पूत का लक्षण पालने में' अर्थात् पुत्र का लक्षण पालना झुलाते समय देखा जा सकता है अथवा दूसरा अर्थ इस प्रकार भी ले सकते हैं कि योग्य माता-पिता की आज्ञा पालन करते समय पुत्र की योग्यता या लक्षण का ज्ञान किया जा सकता है। माता-पिता भी धार्मिक, निष्पक्ष एवं मात्सर्य भाव से रहित होना चाहिए, तभी तो पुत्र भी उनकी निर्दोष परम्परा का निर्वाह कर सकेगा।

आज के कुछ लोग केवल धर्म कार्य से दूर निश्चिंत होकर भोग विलास में लगे हुए हैं जैसे अपने अन्दर धर्म के प्रति आदर नहीं वैसे ही अन्य किसी को भी धर्म की उपलब्धि न हो। तो 'चोर-चोर मौसेरे भाई' वाली बात बनी रहेगी और कोई हमारे धार्मिक कार्य की कमजोरी नहीं पकड़ पायेगा। और भी सुनो! कई लोगों ने तो अपना

सिद्धान्त ये बना लिया है कि –

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भष्मी भूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।।

जितना जीना है सुख से जिओ और उधारी करके भी घी पियो क्योंकि देह के नष्ट हो जाने पर फिर कब संसार में आना है? अर्थात् वे नास्तिकवादी बनकर बैठे हैं। कोई-कोई माता-पिता तो मात्र धन कमाने में ही लगे हुए हैं। थोड़ा धार्मिक जीवन से चलें और धर्म कार्य पूजन आदि में लाभ लें तो बच्चों पर भी अच्छा संस्कार पड़े। धन मात्र की कमाई से क्या प्रयोजन है क्योंकि कहा गया है कि –

'पूत सुपूत हो तो का धन संचय और पूत कपूत हो तो का धन संचय'

अर्थात् अच्छा पुत्र होगा तो अपने भाग्य से स्वयं धन कमा लेगा और पुत्र कुसंस्कारित होगा तो कमाया हुआ धन भी अपने दुर्भाग्य से व्यसनादिक में गँवा देगा। अतः धर्म की कमाई श्रेष्ठ है और धार्मिक संस्कार माता-पिताओं के जीवन का अंग होना चाहिए।

माँ की ममता की बात कहूँ तो कभी-कभी ऐसा भी होता कि बेटा यदि समय से घर न आए तो माँ को भोजन रुचता नहीं है ऐसी उसके अंदर करुणा रहती है। वैसे तो कभी-कभी मार भी देती है धर्म सिखाने के लिए और बाद में बहुत फील (कष्ट) होता है उसे। तो ध्यान रखो बच्चों! कि कभी भी भूलना नहीं अपने माता-पिताओं का ऐसे धर्म संस्कार का सदुपकार।

अब आगे नाक काटने वाले उदाहरण के अपोजिट उदाहरण सुनाते हुए गुरुदेव कहा कि एक बार एक माँ बोलती है भगवान के सामने; जो माँ ऐसी साधारण नहीं थी, एक राजा की पत्नी थी। अभी सन्तानें नहीं थीं उसके पास, कुछ समय पहले ही शादी हुई होगी लेकिन पति राजा थे, वह यह बोलती है भगवान के सामने कि हे भगवान! मुझे मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं है, मैं स्त्री पर्याय में हूँ, पूरा परिग्रह नहीं छोड़ सकती, मैं आपको छू भी नहीं सकती, क्योंकि मेरा शरीर ही ऐसा है जिसके बारे में आगम में कहा गया है कि महिलाओं के शरीर में हमेशा कई जगहों पर सम्मूर्छन जीवों की उत्पत्ति होती रहती है ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द ने बताया है, इसलिए महाव्रतियों को छुए बिना, दूर से ही जो कुछ सेवा है कर लेते हैं। लेकिन हम आपकी पुरुषों के समान अभिषेक, पूजा के साथ वैयावृत्ति नहीं कर सकते। दूर से ही

पूजा कर सकते हैं। इन्द्राणी जिन बालक को छूती है लेकिन उस समय वह बालक है महाव्रती नहीं। यह भावना भाती है कि हे भगवान! मुझे कब पुरुष पर्याय प्राप्त हो और मैं वीतरागी निर्ग्रन्थ साधु बनकर मोक्ष भी प्राप्त कर सकूं या साक्षात् पंच परमेष्ठी की वैयावृत्ति अपने हाथों से कर सकूं, ऐसा कब सौभाग्य प्राप्त होगा मुझे। क्या पाप कर्म है मेरा कि मुझे ऐसा जीवन मिला। देखो राजा की पत्नी रानी हो करके भी वह बोल रही है वहाँ क्या कमी है वैभव में? कोई कमी नहीं है, लेकिन उसको सबसे बड़ी कमी यह लग रही है कि मुझे जीवन में संयम नहीं मिल सकता, तब वह ये सोचती है कि पुण्य कैसे बढ़ाना चाहिए मुझे समझ में नहीं आ रहा है? पुण्य शीघ्र बढ़े इसके लिए उसने एक उपाय सोचा। देखो उपाय अनेक होते हैं जैसे कमाने के अनेक उपाय सोचते रहते हैं लोग। ऐसे ही उसने क्या उपाय सोचा? कहा कि हे भगवान! मेरे जितने भी पुत्र होंगे मैं सभी को मुनि बनाऊँगी जिसके फलस्वरूप मेरा पुण्य बढ़ जाए बस; जिससे कि आगे मुझे पुरुष पर्याय प्राप्त हो। कितना अच्छा सोचा, ज्यादा पुत्र उत्पन्न नहीं करूँगी ऐसा नहीं, जितने भी पुत्र उत्पन्न होंगे मैं उन सभी को मुनि बनने का संस्कार देऊँगी, तब मुनि बनाने के बाद कितना पुण्य मिलेगा मुझे? ऐसा बोलते हैं कि हम किसी को धर्म में सहायता देते हैं तो जो लोग धर्म करते हैं वे हमारी सहायता से जितने पुण्य का अर्जन करते हैं, उसके छठवें भाग के समान पुण्य सहायता देने वाले को मिलता है। इसी संदर्भ में एक उदाहरण याद आ गया कि अजमेर में बहुत अच्छी नसिया बनी है। पंचकल्याणक आदि की रचना वहाँ सोने से बनाई गई है। नसिया बनवाने वाले सोनी जी सेठ मंदिर में झाड़ू लगा रहे थे, आचार्य श्री ज्ञानसागर जी वहाँ चातुर्मास कर रहे थे। तब आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी ने पूछा कि क्यों सेठ जी आप झाड़ू लगा रहे हैं आपके यहाँ तो बहुत सारे नौकर लोग हैं न, आप ही क्यों लगा रहे हैं झाड़ू? ऐसी परीक्षा की सेठ जी की, तो वे बोले महाराज जी आप ही तो बोलते हैं; कि धर्म में जो सहायता देता है और उसके कारण जो लोग वहाँ धर्म पुण्य करेंगे तो उसका छठवें भाग के बराबर पुण्य सहायता देने वाले को मिलेगा। मैं झाड़ू लगाऊँगा तो सबका बैठने का मन होगा, बैठेंगे तो जितना पुण्य करेंगे लोग, उसके छठवें भाग के बराबर भाग मुझे मिल जाएगा, तब महाराज जी बोले कि यही तो मैं परीक्षा कर रहा था, कि तुम्हें इसका महत्त्व मालूम है कि नहीं, कुछ डर से तो नहीं कार्य कर रहे हो तुम। डर से नहीं कर रहा हूँ, मुझे तो धर्म चाहिए।

आज हम छोटी-छोटी बातों में आर्डर चलाते हैं, तू कर ले, तू भर ले, तू चला जा आदि बोलते हैं। अरे! स्वयं भागा-दौड़ी करना चाहिए, अरे! भगवान के सामने स्वयं ही पुजारी, स्वयं ही सेवक बन जाना चाहिए। भगवान का सेवक तो इन्द्र बन जाता है तो तुम कौन हो? कितना वैभवशाली है वह; भले ही व्रत-संयम में आगे नहीं है वह, लेकिन वैभव में तो है फिर भी उसको भगवान के सामने मान नहीं होता। आपको क्यों मान आ रहा है; ध्यान रखना चाहिए, इन सब बातों में, पंच परमेष्ठी की वैयावृत्ति में नौकरों का काम नहीं होता। स्वयं करना चाहिए धर्म सेवा। इस प्रकार अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखिए। वह महिला बोलती है कि हम पूरे बच्चों को मुनि बनने का संस्कार देंगे, इसके बाद उसका पुण्य तो था ही। थोड़े दिनों के बाद वह गर्भवती हो गई और संस्कार चालू हो गया बच्चे की आत्मा पर, भजन, स्तोत्र पाठ, मुनियों की भक्ति और तीर्थयात्रा करने लगी तब इतना पुण्य उसने बढ़ाया कि जब पुत्र का जन्म हुआ तो बस आनंद ही आनंद छा गया। उस माँ का नाम क्या था? उस माँ का नाम था 'मंदालसा'। उसने बालक के कानों में मंत्र फूँका, ऐसी अच्छी मंत्रित घूँटी पिलाई और झूला झुलाते समय जैसे कहा था कि - 'तू तो सो जा बारे वीर' ये तो आज पढ़ते हैं, उसने तो संस्कृत में पढ़ा था जो कि वह कई पुस्तकों में दिया है ''शुद्धोसी बुद्धोसी निरंजनोसी'' ऐसी लोरी पढ़ती थी।

सिद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि, संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टा, मन्दालसावाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ - हे पुत्र! तुम सिद्ध हो, बुद्ध हो, निरंजन हो, संसारी माया से रहित हो और शरीर से भिन्न हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? तो सर्वचेष्टाओं को छोड़ दो।

ज्ञातासि द्रष्टासि परामत्मरूपोऽखण्ड स्वरूपोऽसि गुणालयोऽसि।
जिनेन्द्रयस्त्वं त्यजमानमुद्रां, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ - हे पुत्र तुम ज्ञाता हो, दृष्टा हो, परमात्मा रूप हो, अखंड स्वरूप हो, गुणों के आलय हो और इन्द्रिय विजेता हो। तुम मंदालसा की बात मानते हो न? तो मान मुद्रा को छोड़ दो।

एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि चिद्रूपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि।
अलक्ष्यभावो जहि देहमोहं, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ – हे पुत्र! तुम एक हो, मुक्त हो, चिदात्मक हो, चिद्रूपभाव हो, चिरन्तन हो और अलक्ष्य भाव अर्थात् अतीन्द्रिय हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? तो शरीर का मोह छोड़ दो।

निकामधामासि निकर्मरूपो रत्नत्रयात्मासि परं पवित्रः।
वेत्तासि चेतोसि विमुञ्चकामं, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ – हे पुत्र! निष्कामधाम हो, कर्मरूप नहीं हो, रत्नत्रयमयी हो, परमपवित्र हो, वेत्ता हो, तुम मन्दालसा की बात को मानते हो न? तो काम को छोड़ दो।

प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि अनंतबोधादिचतुष्टयोऽसि।
ब्रह्मासि रक्ष स्वचिदात्मरूपं, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ – हे पुत्र! तुम प्रमाद (4 विकथा, 4 कषाय, 5 इन्द्रिय, निद्रा और स्नेह) से रहित हो, अत्यन्त निर्मल हो, अनंतज्ञानादि – चतुष्टय वाले हो ब्रह्मा हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? तो चिदात्मरूप की रक्षा करो।

कैवलस्यभावो निवृत्तयोगो, निरामयो ज्ञातसमस्त तत्त्वः।
परात्मवृत्तिः स्मर चित्स्वरूपं, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ – हे पुत्र! तुम कैवल्यभाव हो योगमुक्त (मन, वचन और काय की क्रिया से रहित) हो व रोगमुक्त हो, सर्वतत्त्ववेत्ता हो और उत्कृष्ट आत्म चरित्र स्वरूप हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? तो आत्मस्वरूप का स्मरण करो।

चैतन्यरूपोऽपि विमुक्तमाये, भावदिकर्त्तासि समग्रवेदी।
ध्यानप्रकामं परमात्मरूपं, मन्दालसा वाक्य मुपासि पुत्र!।।

अर्थ – हे पुत्र! तुम चैतन्य रूप हो, माया से मुक्त हो, ज्ञानभावादि के कर्त्ता हो और सर्वज्ञ हो। तुम मन्दालसा की बात मानते हो न? तो अभीष्ट परमात्मस्वरूप का ध्यान करो।

कितना अच्छा भाव था उसका और ऐसा पढ़ते-पढ़ते, फिर धीरे-धीरे बच्चा बड़ा हुआ, उसको सब संस्कार दिए गए, कथाएँ सुनाईं, जैनधर्म पर बहुत अच्छी आस्था पैदा की। संसार क्या है? मोक्ष क्या होता है? आदि सब बताया। प्रतिदिन उसको मंदिर ले जाना, नमस्कार की क्रिया इत्यादिक के द्वारा पूरा सक्षम कर दिया उसको। दिनभर उसको धर्म ही सुनाती थी और इसके बाद फिर गुरुकुल में भेज

दिया। गुरुकुल में जाकर के शास्त्रों का अच्छा धर्म ज्ञान प्राप्त किया। विद्याओं में पारंगत हो गया वह। पहले गुरुकुल चलते थे; नहीं तो घर में गुरु आते थे, ऐसे आज जैसे स्कूल नहीं थे उस समय। पहले एक-एक विषय की शिक्षा पाने गुरु के पास भेजना पड़ता था। जंगलों में रहते थे कई गुरु लोग। उसको वहाँ भेज दिया जब और थोड़ा बड़ा हुआ अर्थात् 8-10 वर्ष का हो गया तो मुनि महाराज जी के पास ले गई वहाँ मुनि महाराज जी का दर्शन कराया और उनसे बोला महाराज जी आप जैसा जीवन बने इसका। गुरु बोले अच्छा! बहुत अच्छा है भाव तुम्हारा, बच्चा भी कहता है कि महाराज जी आप जैसा कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे हमें तो भगवान बनना है। गुरु कहते हैं - अच्छा है संसार में तो वासनाएँ और पाप के संस्कार हो जाते हैं इसका जितना जीवन गुरुओं के चरणों में बीतेगा उतना अच्छा नेक बनेगा यह। माँ बोली कि ठीक है महाराज अभी हम आपकी शरण में रखने को तैयार हैं। गृह में रहकर के इसने सारे मोक्षमार्ग के संस्कार प्राप्त किए हैं तथा अच्छी साधना कर ली और अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया है देखा लो भाई हम लोग तो 16-17 वर्ष की उम्र में दीक्षित हो गए थे लेकिन वह तो और भी पहले हो गया, 8-10 वर्ष की उम्र में ही मुनि बन गया। ऐसे ही दूसरे बेटे को संस्कार दिया। बाद में फिर गुरुकुल में भेजा और मुनि महाराज के पास भेजा। कुछ वर्ष बाद वह भी मुनि महाराज के पास पढ़ करके मुनि बन गया। दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ ये सब मुनि बनते चले गये। अंतिम एक बेटा था उसको भी मुनि बनाना था लेकिन सास बोलती है कि अरे! बहू ये क्या कर रही है? बाद में पिता के राजपद को कौन सम्हालेगा? एक को तो रहने दे घर में, इसी तरह राजन भी समझाते हैं लेकिन वह कहती है कि नहीं-नहीं सबको मुनि बनाना है। वह अन्तिम बेटा भी अपने भाई जो मुनि बन गये तो उनके दर्शन को गया और दर्शन करके एक प्रवचन सुनते ही कपड़े उतर गये और वह भी मुनि बन गया; देखो! सभी बेटों को उसने मुनि बना दिया। एक मुनि महाराज हजारों, लाखों लोगों को उपदेश देते हैं और व्रत, संयम देते हैं, त्याग, तप देते हैं, कितना पुण्य कमाते हैं। हमारे पास से व्रत लेकर के जितने लोग तप, त्याग से पुण्य कमाते हैं उन सबका छठवें भाग के बराबर पुण्य हमें मिलता है। मनीआर्डर जैसा आ जाता है। ध्यान रखना कोई उसे लूट नहीं सकता बीच में। हमने जो यहाँ पर प्रवचन दिया डेढ़ घंटा और आप लोगों को पाप से बचाया, यहाँ पर आप लोग जो समय दे रहे हैं, इस पुण्य में आपको जो सहायक बन रहे हैं

उन्हें सबके छठवें भाग के बराबर पुण्य मिल रहा है ध्यान रखो।

उस मन्दालसा महिला ने सब बच्चों को मुनि बनाने का जो भाव किया था और जिनको बनाया भी था, उन मुनि महाराजों ने कितना पुण्य कमाया होगा एवं उनकी तपस्या के पुण्य के छठवें भाग के बराबर पुण्य उस महिला को मिला होगा। अगले जीवन में नियम से उसे पुरुष पर्याय पाकर के मोक्ष का लाभ कोई दुर्लभ बात नहीं है ध्यान रखो, उसका यह कितना बड़ा पुरुषार्थ है। तो कौन सी माँ बनना है आप लोगों को थोड़ा बताओ? मैंने तो तत्त्वार्थसूत्र, छहढाला, भक्तामर आदि घर में ही पढ़ लिए थे, घर में ही मुझे गुरु जैसे मिल गए थे जैसी आपकी माँ होती है न; वैसे ही उन्होंने मुझे धर्म का सारा प्राथमिक ज्ञान करा दिया था। सब धर्म कथाएँ हम सुनते थे। सोने के पहले भी सुनते थे। हम उनसे पूछते थे कि आपको किसने पढ़ाया ये सब? तो वे बोलती थीं कि देखो बेटा! जब हमारी शादी नहीं हुई थी तब मंदिर में एक महाराज जी आए थे, क्षुल्लक जी थे वे प्रौढ़-ज्ञानी थे उनका नाम था चिदानंद महाराज, उन्होंने हमको पढ़ाया था, हमको मात्र नहीं; सारे गाँव के स्त्री-पुरुष सभी को धर्म पढ़ाया था और वे शास्त्र सब संस्कृत, प्राकृत में थे जो हम तुम्हें पढ़ाते हैं और हम जब चौका लगाते थे तब गाँव का पानी खारा होने से हम एक, डेढ़ किलोमीटर दूर से कुएं का मीठा पानी सिर पर रखकर लाते थे और चौका लगाते थे। देखो आज के लोग छोटे-छोटे काम करने के लिए नौकर ढूंढते हैं। ऐसा करना भक्ति की कमी है। शास्त्र क्या कहता है? तदनुसार संस्कार डालना चाहिए; उसे ही आज मैंने आपको कुछ सुनाने का प्रयास किया है। जब मैं छहढाला पढ़ता था तब मेरा हृदय करुणा से भर जाता था। वैराग्य का कारण छहढाला भी बन सकता है क्योंकि जब मैं पंच-परावर्तन का वर्णन पहली ढाल में पढ़ता था तो मेरे आँसू आ जाते थे, रोम -रोम खड़े हो जाते थे, इतना कष्टप्रद दुर्गति का जो वर्णन है उसे पढ़कर के बड़ा भय लगता था संसार से, संवेग भाव आ जाता था। शास्त्र पढ़ने से कितना श्रेष्ठ संस्कार हुआ घर में माता-पिता से। संस्कार देकर ही बड़ा पुण्य अर्जन किया जाता है। ऐसे ही तीर्थंकर के माता-पिता जो होते हैं, इतने संस्कार देते हैं कि बेटा तीर्थंकर भगवान बनता है और असंख्यात आत्माओं का कल्याण करता है। अगली मनुष्य पर्याय में उनके माता-पिता स्वर्ग से आकर मुनि बन जाते हैं और मोक्ष चले जाते हैं। एक जगह ऐसा भी लिखा था कि उसी भव में पिताश्री मुनि दीक्षा लेकर के मोक्ष चले गए, माँ नहीं जाती क्योंकि माँ तो स्त्री

पर्याय से मोक्ष नहीं जा सकती। धन्य हैं उनके माता-पिता कि वे एक भव के बाद मोक्ष प्राप्त करते हैं, ये पुण्य कहाँ से मिलता है उनको? ये तीर्थंकर का लोक कल्याण की भावना रूप इतना महान् पुरुषार्थ और इतने जीवों का कल्याण करते हैं, उसके छठवें भाग के बराबर पुण्य उनको मिलता है। तो मैं अब आपको ये बोल रहा हूँ कि आप अपनी संतानों से पुण्य का भाग चाहते हैं कि पाप का भाग चाहते हैं? पुण्य का महाराज! लेकिन पाप के चित्र वाले टी.वी. नहीं छुड़ाना चाहते। मंदिर नहीं भेजना चाहते हम। फिर कैसे मिल जाएगा? तो आज से आप संकल्प कीजिए कि अगर हम संतानों को जन्म देंगे या जिनको जन्म दिया है उन्हें धर्म संस्कार अवश्य देंगे। उन्हें पूरा बचपन में जैसे महाराज जी ने संस्कार बताए हैं वैसे ही हम उनको देंगे क्योंकि बचपन में उनका हृदय कोमल होता है इसलिए संस्कार बचपन में होता है न कि पचपन में। बचपन का संस्कार ही जीवन के अंत तक क्या, मुक्ति तक साथ देता है। बचपन में जो उनका धार्मिक जीवन बन जाता है और कोमल हृदय में जो छाप पड़ जाती है तो जैसे कोरी स्लेट में अच्छा लिख जाता है वह उत्तम है, नहीं तो कुछ और लिख गया हो तो बड़ा कठिन है, मिटाना, इसलिए संसार या पाप का जब कुछ नहीं लिखा हो तब उसके पहले यही धर्म का लिख देना चाहिए।

आचार्यश्री ने बताया एक बार एक माँ हमारे पास शिकायत लेकर आई और बोली महाराज जी हमारा बेटा बहुत बुरा काम करता है,

क्या करता है?

बोली जुआ खेलता है।

वह माँ प्रतिमाधारी थी महाराष्ट्र की थी। माँ 7 प्रतिमाधारी है वह सफेद साड़ी पहने है और बोलती है कि हमारा बेटा जुआ खेलता है,

तो मैंने बोला तुम्हारा बेटा जुआ कैसे खेलेगा?

नहीं महाराज; खेलता है, आप इसे समझा दीजिए।

हाँ समझाना हमारा कर्त्तव्य है, वात्सल्य से समझाना चाहिए और उससे मैंने बोला कि तुम्हारी माँ इतनी बड़ी धर्मात्मा और तुम जुआ खेलते हो।

महाराज जी क्या करना बुरी आदत पड़ गई है और इसमें हमारी कोई गलती नहीं है, इसमें हमारी माँ की गलती है।

ऐसी क्या बात है?

ऐसा बोला तो;

बोलता है कि महाराज जी हमारे नगर के पास में एक क्षेत्र है मुक्तागिरि है; आज से दस वर्ष पहले वहाँ पर आचार्य श्री का संघ आया था, तब हमारी माँ ने हमारे लिए आचार्य श्री के पास ले जाकर के सप्त व्यसन के त्याग का नियम क्यों नहीं दिलवाया, यह माँ की गलती है; कि मेरी?

अब बोलो भैय्या किसकी गलती है? मालूम पड़ गया न, कि माँ की गलती है, वह बेटा बोला कि माँ ने मुझे सप्तव्यसन के त्याग का नियम दिलवा दिया होता तो मैं आज जुआ न खेलता होता।

आपके इस गाँव में आपने नहीं दिलवाया तो भी हमने उनको दे ही दिया पाठशाला में पूछ लो सब बच्चों को सप्त व्यसन का त्याग दे दिया, अभी से उनको बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा के त्याग का भी नियम दे दिया है, उन्हें खाने का नहीं छोड़ने का, पूछ लो उनको देते समय बच्चे हँसते थे कि महाराज जी क्या नियम दे रहे हैं आप। अरे अभी हँस रहे हो, बाद में तुम मेरी सुनोगे नहीं, किसी की भी नहीं सुनोगे तुम्हें हेबिट पड़ जाने के बाद। तुम्हारे माता-पिता को अभी ध्यान नहीं है वो बात मुझे ध्यान है, मैं इस बात को समझता हूँ, मुझे इसका अनुभव है आप त्याग के पीछे बच्चों को मंदिर नहीं भेजना चाहते हो, लेकिन मैंने उनको त्याग दिलाया उनका जीवन देखना कैसा बनता है? कुछ ही दिनों में सुंदर जीवन बनेगा। कभी पाप की ओर ध्यान नहीं जाएगा; फिर भी जाए तो समझना उनका महापाप कर्म है। लेकिन मैंने तो उनका पाठशाला के मंगलाचरण में नियम दिलवाकर वह कर्त्तव्य पूरा किया है। आगे से आप लोगों को ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को महाराज जी के पास ले जाकर के बुरी वस्तुओं का त्याग करवाना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। नहीं तो जीवन यूँ ही विषय भोगों में निकल जाने वाला है जैसे कि कहा ही है-

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यौ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।

बचपन का संस्कार भक्त से भगवान बना सकता है। इसीलिए तो कहा गया है कि -

साधना अभिशाप को वरदान बना देती है।
भावना पाषाण को भगवान बना देती है।।
सच कहाँ तक कहूँ कि संस्कार के अभाव में।
वासना इन्सान को शैतान बना देती है।।

संस्कार-भावना

दीक्षा ले यह महा पुण्य है, या हों श्रावक भाग्य रहा।
धर्म संतति चले भाव बस, यही परम सौभाग्य रहा॥
संतानें गर मोक्षमार्ग में, जायेंगी रथ धर्म चले।
अथवा जैनी-पन पालन हो, कर्तव्यों में आत्म ढले॥ 1॥

★★★

गर्भकाल में भोज्य शुद्ध जब, धार्मिक होते शुद्ध होते विचार।
जिन-दर्शन पूजन सु-पाठ हो, जपे मंत्र माता नवकार॥
मेरी संतति मुनि, आर्यिका-बने मात सुविचार करे।
होनहार हो सद् विचार हों, -पुत्र, जगत् उपकार करे॥ 2॥

★★★

मम सुत जन्मा मंत्र सुनाती, माँ सहलाती उर में देख।
बड़ा होय तब साधु बनेगा, तीर्थंकर सम इसकी रेख।
ऐसा लगता नाम करेगा, जग में कुल का भारी यह।
जिनवर पूजा कर,- मुनि सेवा, महा पुण्य का भागी यह॥ 3॥

★★★

मेरी संतति मातृभूमि में, संस्कारों को पायेगी।
माँ की आज्ञा शिरोधार्य कर, पिता कुलीन कहायेगी॥
उत्तम कृषि, मध्यम व्यापारी-, बने, दान में आगे हो।
नहीं नौकरी कर, नौकर हो, गांव छोड़ न भागे वो॥ 4॥

★★★

मात-पिता की नजरों में रह, शुद्ध भोज्य व जल होगा।
जल गालन, दिन में भोजन कर, जिन कुलीन उज्ज्वल होगा॥

गृह परिजन व मात पिता की, सेवा में तत्पर होगा।
धर्म गुरु की रक्षा में सुत, कहे बिना ही रत होगा॥ 5॥

★★★

मात-पिता गर नौकर रखते, सुत रक्षा नौकर करते।
न स्नेह मिले माता का, बाह्य गमन फिर सुत करते॥
रहता न स्नेह उन्हें भी, मात-पिता व स्वजनों से।
मात्र वासना रुपया पैसा, बड़ा ही लगता स्वजनों से॥ 6॥

★★★

बाहर जा, बाहर के होते, निज घर को ही वे भूलें।
संस्कार को भी भूलें वे, व्यसनों में रत हों फूलें॥
मात-पिता गर कष्टों में हों, न परवाह उन्हें रहती।
कहें वहीं से टाटा वे तो, उनमें करुणा न पलती॥ 7॥

★★★

बच्चे कहते मुझे आपने, नौकर के कर सौंपा था।
आज मुझे भी नौकर भाते, मिला नेह न मौका था॥
बाहर आकर नाता मुझको, यही किसी से भाया है।
यही रहूँगा निश्चित, मैं तो, ऐसा मन में आया है॥ 8॥

★★★

मेरा जीवन साथी मैंने, यहीं देखकर बना लिया।
मेरे वस में पैसा अब तो, जो मैंने यह कमा लिया॥
मात-पिता से दूर ही मुझको, रहना अच्छा लगाता है।
बाहर का वह फास्ट-फूड ही, रुचिकर मुझको लगता है॥ 9॥

★★★

जैन लोग तो बहुत ही कम हैं, अजैन अच्छे लगते हैं।
भौतिकता के युग में अब तो, धर्मी फीके लगते हैं॥

जैन धर्म से आस्था उनकी, पूर्ण खत्म हो जाती है।
बीबी, टी.वी., मोबाइल-धुन, सवार जब हो जाती हैं॥ 10॥

★★★

सारे सपने मात पिता के, झूठे वे हो जाते हैं।
दुःख दर्द में या मृत्यु में, नहीं काम सुत आते हैं॥
लगता ऐसो सुत को मैंने, ना ही जन्म दिया होता।
ना सेवा ना खर्चा होता, ना ही कर्ज लिया होता॥ 11॥

★★★

क्यों मैंने ये लगन रचायी, किसके खातिर कमाई की।
किससे मैंने आस लगाई, किसके संग ही रुलाई की॥
ना कोई सुत-सुता दूर हो, अपने मात-पिता से जान।
मातृ ग्राम रह धर्म-कर्म हों, सबका गृह हो स्वर्ग समान॥ 12॥

★★★

संस्कारों का खूब हो, हर गृह में शुभ मेल।
कभी न फिर रहती वहाँ, भौतिकता की जेल॥ 13॥

★★★

भौतिकता में सुख नहीं, सुख देता है धर्म।
पूज्य-गुरु का अनुशरण, होय करो वह कर्म॥ 14॥

★★★

संस्कार का नित्य ही, पालन हो तब जान।
शुभ-गति पाकर शीघ्र ही, होगा शिव-कल्याण॥ 15॥

★★★

मात-गुरु फिर धर्म गुरु, रहें सभी के पास।
'आर्जव' बन भव पार हों, प्रभु रहे फिर पास॥ 16॥

कर्म-विवेचन

अनादि कालीन पंच परावर्तन रूप लोक में अनन्तानन्त जीव द्रव्य की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ज्ञात होता है कि जीव की विविध अवस्थाएँ नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव, एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय होती हैं। जीव राशि कर्मों के आश्रित चतुर्गति एवं चौरासी लाख योनियों में जन्म-मरण कर अनादिकाल से संसार परिभ्रमण कर रही है। **'संसरतीति संसारः'** संसरतीति अर्थात् चतुर्गति भ्रमण, जिसका अर्थ संसार होता है। अनादिकाल से यह आत्मा संसार में है, कर्मों से सहित है। कभी मुक्त थी, बाद में संसारी बनी, ऐसा नहीं है, क्योंकि अनादिकाल से कर्मों का संयोग लगा हुआ है।

कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई धनवान, कोई गरीब, कोई दीर्घायु, कोई अल्पायु, कोई रोगी, कोई निरोगी, कोई साधन सम्पन्न, कोई असम्पन्न, कोई अपंग, कोई कुरूप, कोई सर्वांग सुन्दर, कोई विद्वान, कोई मूर्ख आदि अनेक विध जीव की अवस्थायें दृष्टिगत होती हैं। ज्ञानी जनों के हृदय में सहज ही इनका कारण जानने की जिज्ञासा होती है। जैसे एक परिवार में एक ही माता-पिता के दो बच्चे उत्पन्न होते हैं, उनमें एक तो सुन्दर गोरा सबको भाने वाला प्रीतिकर है, वहीं दूसरा असुन्दर कुरूप, किसी को भी न सुहाने वाला। यह देखने पर विचार उठता है कि यह अन्तर क्यों है? माता-पिता एक, सभी स्थितियाँ समान हैं, फिर इसका क्या कारण है? तब प्रतीत होता है कि कोई विचित्र शक्ति काम कर रही है, क्योंकि सभी बातें समान होने पर भी ऐसा क्यों, वह शक्ति क्या है? वह है 'कर्म'। कर्म दिखता नहीं है, अदृश्य होता है। कर्म को किसी यन्त्र से नहीं देख सकते, जान सकते। जैसे शब्द को हम नहीं देख सकते, ऐसी ही वस्तु है कर्म। अपनी आत्मा में कर्म को कैच कर सकते हैं। हमारी आत्मा में जैसा शुभ और अशुभ भाव उत्पन्न होता है, वैसा ही कर्म भी शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप रूप में बंध जाता है। आत्मा में कुछ काल तक वह रहता है, अपने को सुख-दुःख पहुँचाता है। जब तक कर्म रहेगा, तब तक हमें पूर्ण रूपेण शांति नहीं मिलेगी। मोक्ष भी नहीं मिलेगा। पुण्य से जीव को सुख मिलता है और

सुख के साधन भी मिलते हैं, जीवन सुखमय प्रतीत होता है। जब अशुभ भाव करते हैं तब उस समय पाप रूप बंध होता है। इससे जीव को दुःख मिलता है।

अज्ञानी, लोक में परिग्रह, इन्द्रियों के विषयों में लीन होकर तरह-तरह के हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह आदि पाप करके आत्मा में पाप का बंध करते रहते हैं। पाप कर्म के कारण जीव अपंग, असुन्दर, कुरूप, अप्रीतिकर, आदि होता है। जो अपने पापों से दूर होकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रतों का पालन करते हैं, पुण्य कर्म के कारण जीव को सुन्दरता, प्रीतिकारता, शक्तिवर्धकता, सम्पन्नता आदि प्राप्त होते हैं। उसको सदाचरण ही सच्चे सुख को प्राप्त कराता है ऐसा तीर्थंकरों की दिव्य ध्वनि में निर्झरित हुआ और गुरुओं ने उपदेश दिया है। कर्म के साक्षात् फल को हम लोक में देखते हैं। यह सब अपने-अपने पूर्वकृत पुण्य-पाप कर्मों का फल होता है। इसी कारण लोक के हर एक व्यक्ति में बहुत अंतर दिखता है।

कर्म क्या हैं, कहाँ रहते हैं कर्म? तो समस्त लोकाकाश में 23 प्रकार की पुद्गल वर्गणायें व्याप्त हैं, उन वर्गणाओं में से एक तरह की ऐसी वर्गणायें विद्यमान हैं जिसमें कर्म बनने की शक्ति होती है। अर्थात् जो पुद्गल वर्गणायें कर्म रूप में परिणत होने की योग्यता रखती हैं उन्हें कार्मण वर्गणा कहते हैं और जो शरीर रूप में परिणत होती है उन्हें नोकर्म वर्गणा कहते हैं। जैसे-हम शब्दों को देख नहीं सकते, लेकिन सुन सकते हैं, अनुभव से जान सकते हैं, शब्द सब जगह भरे हुए हैं। इनमें कुछ शब्द तो आप सुनते हैं और कुछ तो आपको सुनने में नहीं आते हैं। जैसे कि दृष्टांत स्वरूप टी.वी. या रेडियो को लेते हैं, आप जो चैनल या रेडियो का स्टेशन लगाते हैं उसी से सम्बन्धित भाषा वर्गणाओं के शब्द आपको सुनाई देते हैं, अन्य नहीं जबकि अन्य चैनल या स्टेशन रेडियो पर भाषा वर्गणा के शब्द रहते हैं लेकिन आप उन्हें सुन नहीं सकते। जैसे ही आप चैनल या रेडियो का बैण्ड बदलते हैं तो आप उनको सुन सकते हैं। आस्था या संस्कार वाला चैनल तथा विविध भारती या सीलोन लन्दन आदि स्टेशन हैं पर जब आस्था चैनल लगायेंगे तब संस्कार वाला चैनल नहीं आयेगा, रेडियो में विविध

भारती लगाओगे तो सीलोन, लन्दन स्टेशन नहीं आयेगा, जब संस्कार वाला आयेगा, तब आस्था नहीं आयेगा, सीलोन, लन्दन आयेगा तो विविध भारती नहीं सुन पाओगे। आप इन्हें अलग-अलग ही सुन सकते हैं लेकिन शब्द रहते हुए हमारे कानों में नहीं आते, हम सुन नहीं पाते हैं, वैसे ही कार्मण वर्गणायें सब जगह फैली हैं, वे हमें दिखायी नहीं देती हैं। वे एक पुद्गल रूप ही हैं। जो तेईस प्रकार की वर्गणाओं में से कार्मण वर्गणायें विस्रसोपचय के रूप में अपने आत्मप्रदेशों के चारों ओर विद्यमान रहती हैं। जैसे चुम्बक में लोहे को आकर्षित कर खींचने की शक्ति होती है उसी प्रकार संसारी आत्मा में कार्मण वर्गणाओं को सब ओर खेंचकर कर्म योग्य बनाने की शक्ति होती है। अतः संसारी जीव, पुद्गलों को प्रतिसमय आकृष्ट कर ग्रहण करते रहते हैं। ये अष्टकर्म हमेशा परमात्मा बनने के पहले आत्मा से बँधकर अपना फल चखाते रहते हैं।

राग-द्वेष आदि से युक्त संसारी जीव में प्रति समय मन, वचन, काय से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पांच निमित्तों से तथा प्रत्येक कर्म के विशिष्ट कारणों से होने वाली परिस्पन्दन रूप क्रिया से आत्मा के प्रति आकृष्ट होकर कार्मण वर्गणा के पुद्गल आते हैं। राग-द्वेष रूपी भावों का निमित्त पाकर ये पुद्गल आत्मप्रदेशों से बद्ध हो चिपक जाते हैं और कर्म के लक्षण को प्राप्त होते हैं। मन, वचन, काय की प्रवृत्ति भी तभी होती है जब पूर्व से जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध हो। जीव के साथ कर्म का तभी संबंध होता है, जब मन, वचन, काय की प्रवृत्ति हो। अतएव प्रवृत्ति से कर्म और कर्म से प्रवृत्ति की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है।

कर्मों के बन्ध से आत्मा अनादिकाल से इस संसार में भ्रमण कर रही है। राग-द्वेष रूप परिणामों से कर्मों का बन्ध होता है, बन्ध से गति से शरीर मिलता है, शरीर में इन्द्रियाँ मिलती हैं, इन्द्रियों को विषय भोग मिलते हैं, विषय भोग में राग-द्वेष होता है, राग-द्वेष से कर्म बन्ध होता है और कर्मों से पुनः गति ऐसा चक्र अनादिकाल से चल रहा है। संसार में कर्म और कर्म से संसार भ्रमण चलता रहता है। महामनीषी आचार्य कु न्द-कुन्द स्वामी पंचास्तिकाय ग्रन्थ में

लिखते हैं–

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दुहोदि परिणामो।
परिणामादो कम्मा कम्मादो होदि गदि सुगदी।। 128।।
गदि मधिगदस्स देहो देहादो इंदियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं तत्तो रागो व दोसो वा।। 129।।
जायदि जीवस्वसेवं भावो संसार चक्क वालम्मि।
इति जिणवरेंहि भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा।। 130।।

अर्थात्–जो संसारी जीव है वह राग–द्वेष आदि भावों को उत्पन्न करता है, जिनसे कर्म आते हैं, और कर्मों से मनुष्य, पशु आदि गतियों में उत्पत्ति होती है। गतियों में जाने पर शरीर की प्राप्ति होती है, शरीर से इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं, इन्द्रियों द्वारा विषयो ं का ग्रहण होता है, जिससे राग और द्वेष होते हैं। इस प्रकार के भाव, संसार चक्र में भ्रमण करते हुए जीव के संतति की अपेक्षा अनादि अनन्त और पर्याय की दृष्टि से सान्त भी होते रहते हैं।

जैसे कोई प्रश्न करे कि बीज पहले था या वृक्ष? कभी कोई ऐसा समय नहीं था, जब पहले वृक्ष या बीज उत्पन्न हुआ और उससे वृक्ष तथा बीज की परम्परा चल पड़ी। यह परम्परा अनादि है। अभव्य की अपेक्षा अनादि अनन्त तथा भव्य की अपेक्षा अनादि सान्त हैं। अनादि कालीन परम्परा को तोड़ा भी जा सकता हैं। बीज वृक्ष की परम्परा तभी चल सकती है जब तक बीज को जलाकर नष्ट न कर दिया जाये। वैसे ही जीव संसार भ्रमण तभी तक चलता है जब तक कि समस्त कर्म रूपी बीज को या कार्मण शरीर को शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से नष्ट न कर दिया जाये। जैसा कि तत्त्वार्थसार में आचार्य अमृतचन्द्र जी कहते हैं कि–

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुरः ।।7।।

अर्थात्– जैसे बीज के जल जाने पर पुनः नवीन वृक्ष के निमित्त बनने वाला अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म बीज के भस्म होने पर भवांकुर उत्पन्न नहीं होता। कर्म प्रवाह भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से अनादि तो है परन्तु अनन्त नहीं है क्योंकि व्यक्ति नवीन कर्मों का बन्ध रोक सकता है। जब व्यक्ति में राग–

द्वेष कषाय का अभाव हो जाता है तो नये कर्मों का बन्ध नहीं होता और कर्म प्रवाह की परम्परा समाप्त हो जाती है। साधना के द्वारा संचित कर्मों का क्षय करने पर आत्मा कर्म मुक्त हो जाती है।

इस जगत में प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है, वह परमात्मा बन सकती है लेकिन उसे भव्य होना चाहिए। जैसे कि स्वर्ण पाषाण जमीन से निकलता है और उससे स्वर्ण निकलता है। एक ऐसा भी पाषाण होता है जिसको अन्ध पाषाण कहते हैं, उससे स्वर्ण कदापि नहीं निकलता है। उसके अन्दर उपादान इतना सशक्त नहीं होता कि अपने अन्दर की शक्ति को व्यक्त कर सके। लोग कहते हैं कि मयूर के पंख में स्वर्ण होता है, लेकिन उसको कोई बाहर नहीं निकाल सकता और किसी भी प्रक्रिया से बाहर नहीं निकाला जा सकता है। उसी प्रकार कुछ ऐसे दूरानदूर भव्य जीव इस संसार में होते हैं जिसमें मोक्ष पाने की शक्ति तो होती है पर कभी उसका व्यक्तिकरण नहीं कर पाता है। शक्ति होने पर भी व्यक्तिकरण के लिए तद्योग्य निमित्त चाहिए और यदि वैसे निमित्त मिल भी जायें तो उपादान सशक्त नहीं होने से वह कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता है।

उपादान जहाँ सशक्त होता है तो कई बार स्वतः ही निमित्त मिलने लग जाते हैं। जैसे बीज में वृक्ष की कल्पना कर सकते हैं। लेकिन वर्तमान में बीज को वृक्ष नहीं बोल सकते। शक्ति की अपेक्षा से उसमें वृक्ष और फल सब कुछ छुपे हुए हैं। दूध में घी रूप शक्ति है। वह शक्ति कब बाहर आती है? जबकि उसके साथ वैसे निमित्त भी मिलें और उस प्रकार की प्रक्रिया की जाये तब घी रूप में उसकी अभिव्यक्ति होती है, तब एक अलग ही स्वाद मिलता है। घी को पाने के लिए दूध को तपाना पड़ता है, फिर खटाई डालकर जमाना पड़ता है और नवनीत बनाना पड़ता है फिर पुनः उसे तपाना पड़ता है तब वह घी बनता है। जैसे ही घी की शक्ति युक्त दूध पीकर भी आप घी का स्वाद नहीं ले सकते, वैसे वर्तमान में शुद्धात्मा का स्वाद नहीं ले सकते। इसी तरह बीज को आप जब भूमि में डालोगे तब उसके पूर्व उस भूमि को साफ सुथरी करनी पड़गी। कंकड़, पत्थर रहित करनी पड़ेगी। भूमि जल के द्वारा मृदु हो ताकि उसमें खाद डालकर उसकी रक्षा

कर उसमें बीज अंकुरित हो सके और धीरे-धीरे वह वृक्ष रूप लेकर फल भी दे सके। ऐसी ही वर्तमान में इस आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति कह सकते हैं, परन्तु योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के बिना व्यक्तिकरण नहीं है, और निर्ग्रन्थ बने बिना उसका अनुभव नहीं कर सकते।

समयसार में आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी कहते हैं कि- बीज और वृक्ष की संतति की तरह जीव और कर्मों का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक संबंध हैं। जीव के अशुद्ध परिणामों से पुद्गल वर्गणायें कर्म रूप परिणत हो जाती है तथा पुद्गल कर्मों के निमित्त से जीव के अशुद्ध परिणाम होते हैं। फिर भी लक्षण रूप से जीव कर्म रूप नहीं होता तथा कर्म, जीव रूप नहीं होता। दोनों के अस्थायी संबंध रूप निमित्त से संसार चक्र चलता रहता है।

आत्मा अमूर्त है और कर्म मूर्त। अमूर्त आत्मा के साथ मूर्त कर्म का संबंध कैसे स्थापित होता है? इसके उत्तर में आचार्यों ने कहा है कि-कर्म पुद्गलों द्वारा आत्मा के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है और आत्मा के द्वारा कर्म पुद्गलों के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है । दोनों में नीर-क्षीर वत् संशलेष संबंध कृत परिवर्तन अवश्य होता है। आत्मा का उपादान अपना है और कर्म पुद्गलों का अपना उपादान है। उपादान में कोई परिवर्तन नहीं होता है,केवल निमित्तों कृत परिवर्तन होता रहता है। आत्मा के उपादान को (अन्तरंग कारण को) कुछ परिवर्तित करने में कर्म निमित्त बन सकते हैं और कर्म पुद्गलों के कुछ परिवर्तन में आत्मा निमित्त बन सकती है। ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति आत्मा के उपादान हैं। ये कभी नष्ट नहीं होते, कितने ही कर्म परमाणु लग जायें, इनमें लक्षण रूप परिवर्तन नहीं ला सकते। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श गुण युत होना यह पुद्गल का उपादान है। आत्मा इनमें कोई परिवर्तन नहीं ला सकती है। कर्म का निमित्त मिलते रहने से अमूर्त आत्मा व्यवहार से मूर्त रूप में कहलाता है। कर्म क्षय से आत्मा का मूर्त रूप जिस दिन पूर्ण रूपेण टूट जायेगा तब मात्र अमूर्त ही शेष रहेगा।

कर्मों का आत्मा के साथ संबंध होने से जो अवस्था उत्पन्न होती है, उसे

बन्ध कहते हैं। इस बन्ध पर्याय में जीव और पुद्गल की एक ऐसी नवीन अवस्था होती है जो न तो शुद्ध जीव में पायी जाती है और न शुद्ध पुद्गल में। जीव और पुद्गल अपने-अपने गुणों से सहित होते हुए भी एक नवीन अवस्था को प्राप्त होते हैं। राग-द्वेष युक्त आत्मा पुद्गल पुंज को अपनी ओर आकर्षित करता है। जिस प्रकार फोटोग्राफर चित्र खींचते समय अपने कैमरे को व्यवस्थित तरीके से रखता है और उस समय कैमरे के समीप आने वाले पदार्थ की आकृति लेन्स के माध्यम से प्लेट पर अंकित हो जाती है, उसी प्रकार राग-द्वेष रूपी पुद्गल पुंज आत्मा में विकृति उत्पन्न कर देते हैं, जो पुनः आगामी रागादि भावों को उत्पन्न करता है, पंचाध्यायी में लिखते हैं :

जीवस्याशुद्ध रागादि-भावानां कर्म कारणम्।
कर्मणस्तस्य रागादि भावाः प्रत्युपकारिवत्।। 2/41।।

अर्थात्-''जीव के राग-द्वेषादि अशुद्ध भावों का कारण कर्म है तथा उस कर्म का कारण रागादि भाव हैं। इस प्रकार भावकर्म तथा द्रव्यकर्म में परस्पर प्रत्युपकारीपना है।'' वे परस्पर में निमित्त कारण हैं। कर्म के निमित्त से भाव होते हैं और भाव के निमित्त से कर्म बन्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं। अपने भाव से कारण भेद बनते हैं। एक वाटर टैंक बहुत बड़ा है जिसमें लबालब पानी भरा है, वह एक ही प्रकार का पानी है उसमें किसी भी प्रकार की क्वालिटी नहीं है, वह पानी पाइप के माध्यम से नीचे आ रहा है, उसी पाइप में एक आड़ा पाइप लगा है जिसमें भी वही पानी आ रहा है। जिसमें कोई क्वालिटी भेद नहीं है। इस पाईप में एक-एक कर आठ प्रकार से नल लगे हुए हैं, उनके मुख पर विशेष प्रकार की टेबलेट लगाई जाती है जिससे टच करके पानी आता है। तो क्वालिटी बदल जाती है, उसमें से खट्टा, मीठा, खारा, कसैला, चरपरा, गर्म, ठण्डा, रंग-बिरंगा आदि रूप में पानी आ रहा है, उसी प्रकार समझो कार्मण वर्गणा में क्वालिटी नहीं है, प्रति समय अनन्तानन्त कार्मण वर्गणाओं का बन्ध हो रहा है, जब वे वर्गणायें जिस भावों से टच होकर हमारी ओर खिंचती हैं तब उसी प्रकार के कर्मों का बन्ध हो जाता है।

प्रत्येक संसारी प्राणी को ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, आदि अष्ट कर्म विभिन्न प्रकार के फल देकर सुखी-दुःखी करते रहते हैं। संसार में जो कर्माधीन सुख होता है वह विनश्वर व दुःख मिश्रित होने से दुःख सदृश या सुखाभास ही कहा गया है। इन्द्रिय विषय के सुख के सन्दर्भ में आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी प्रवचनसागर ग्रंथ की गाथा 76 में कहते हैं :-

सपरं बाधा सहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इन्दियेहिं लद्धं तं सौख्यं दुःखमेव तहा।।

जो इन्द्रियों से उत्पन्न है वह पराधीन, बाधा से सहित स्वल्प काल में ही समाप्त हो जाने वाला पाप कर्म के बंध के कारण और परिवर्तनशील (क्षणभंगुर) रूप होने से दुःख ही है, ऐसा ही जानना चाहिए।

जिन-धर्म द्रव्यकर्म और भावकर्म ऐसे दो प्रकार के कर्म बतलाये हैं। द्रव्यकर्म के मूल आठ भेद हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय तथा भावकर्म के दो भेद हैं- एक राग, दूसरा द्वेष जो कि मोहनीय कर्म में गर्भित है। इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया कर्म हैं शेष चार कर्म अघातिया कर्म हैं जब घाति कर्म नष्ट हो जाते हैं तब आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन का धारक अरिहन्त बन जाता है और जब अघातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तब विदेह, सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है और सिद्धालय में जाकर सदा अनन्त सुख का अनुभव करता है।

अष्टकर्मों का नाश सद्भावना व समीचीन ध्यान से सम्भव है। जब तक ध्यान एकाग्र नहीं होता तब तक ध्यानिग्न प्रज्जवलित नहीं होती, कर्मों का नाश सम्भव नहीं है। ध्यान द्वारा कर्मबन्ध से छुड़ाते हुए आत्मा को परिमल बनाकर मुक्ति मंजिल की ओर ले जा सकते हैं कि पहले भी कहा था कि जैसे सूर्य की किरणें सब जगह पड़ रही हैं और बहुत तेज गर्मी का समय है लेकिन वे किरणें सामान्यतः एक पेपर को भी जलाने में समर्थशाली नहीं होती हैं जबकि पेपर धूप में पड़े रहते हैं, फिर भी धूप की किरणों से वे जलते नहीं हैं। जब उन किरणों

को एक लेन्स के माध्यम से संगृहित करके एक प्वाइंट बिन्दु पर छोड़ते हैं तो पेपर जलने लगता है। ध्यान रूपी किरणें विश्व के समस्त विषयों की ओर फैल रही हैं और न जाने कहाँ-कहाँ से संबंध जोड़े हुए हैं, इस कारण से आत्मा में एकाग्र नहीं हो पाते हैं। जिस प्रकार लेन्स के माध्यम से सारी किरणों को एक प्वाइंट पर छोड़ा गया उसी प्रकार अगर सभी ओर से ध्यान हटा करके उसे एक जगह केन्द्रित करके अपनी आत्मा पर छोड़ेंगे तो एक अन्तर्मुहूर्त्त में शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि प्रज्जवलित हो जायेगी तब ही कर्म रूपी पेपर जल उठेगा और समस्त कर्मों के नष्ट होने से आत्मा मुक्त होकर सिद्ध गति को प्राप्त हो जायेगी। जगत् की सर्व भव्यात्मायें ऐसे ध्यान रूपी पुरुषार्थ के माध्यम से कर्मों से मुक्त होकर शाश्वत् अविनश्वर सुख प्राप्त कर लोकाग्र में जाकर सदा के लिये विराजमान हो सकती हैं, परमात्मा बन सकती हैं। इस प्रकार जैन धर्म में कर्म सिद्धांत की विशिष्ट प्रक्रिया है जो नियतिवाद व स्वछन्दतावाद से परे है।

मात्र किताबी अध्ययन ही ज्ञान नहीं; अपनी चर्या में निखरता आना ही सही ज्ञान है।

-सद्विचार मालिका
(आचार्य आर्जवसागर जी)

अतिशयकारी प्रतिमा का रहस्य

तमिलनाडु में भूगर्भ से प्राप्त भगवान महावीर

जब सन् 1995 के अप्रैल माह में तमिलनाडु के पोन्नूरमलै से होते हुए तच्चामबाड़ी ग्राम से तिरुमलै क्षेत्र की ओर गमन कर रहे थे तब तच्चामबाड़ी से 8–10 कि.मी. दूर स्थित एक अरुमबलौर नामक अजैनों की बस्ती में मकान बनाते समय उसकी नीव की खुदाई में किसी अजैन व्यक्ति को यह प्रतिमा उपलब्ध हुई थी और उसने रास्ते के बाजू में मकान के सामने इस प्रतिमा का रख रखाव कर रखा था। उसने तच्चामवाड़ी के श्रावकों के साथ हमें अपने गृह के सामने से विहरते देखकर इशारा किया कि आपके मत की प्रतिमा मुझे इस नीव से प्राप्त हुई है। आप दर्शन कीजिये। मैंने दर्शन किये और कायोत्सर्ग कर कहा कि आप इस प्रतिमा का क्या करेंगे? तब उस भव्य ने कहा कि आप जो कहें वही करेंगे, तब मैंने कहा कि यह प्रतिमा मुझे दे दो। तब उस भव्य ने कहा ऐसा ही हो, तब मैंने उससे बोला कि जब हम लोगों को भेजेंगे तब तुम सहर्ष सादर इस प्रतिमा को मेरे निकट भेज देना। उसने कहा स्वीकार है गुरुदेव।

इस प्रतिमा का अतिशय लोगों ने साक्षात् देखा क्योंकि जिस रास्ते से हम लो जा रहे थे वह रास्ता जंगल और काँटों का था जब तच्चामवाड़ी ग्राम से चले थे तब लोगों ने कहा था कि गुरुवर तिरुमलै क्षेत्र को जाने के लिए दो रास्ते हैं, एक पक्के रोड़ वाला; जो देविकापुरम होकर जाता है और दूसरा कच्चा रास्ता जो जंगल में से कुछ छोटे–छोटे गाँव होते हुए पहुँचता है अतः आपको निर्बाध रूप पक्के रास्ते से चलना उचित होगा। श्रावकों के आग्रह से पक्का रास्ते पर एक दो फर्लांग चलकर मेरा मन पीछे मुड़कर जंगल वाले कच्चे रास्ते पर चलने का हुआ। मेरे पैर कुछ देर थमे और पीछे मुड़कर पुनः जंगल के कच्चे रास्ते की ओर चलने लगे। तब लोगों ने भी हाँ मिलाते हुए मेरे पीछे चलना शुरू कर दिया। करीब 5–7 कि.मी. चलने के उपरांत अमरुमबलौर नामक ग्राम में पहुँचे और वहाँ के लोगों ने भूगर्भ से प्रतिमा निकलने की बात बतलाई। तब श्रावक लोगों को अपार खुशी हुई तथा मैंने प्रतिमा के पास जाकर कहा कि यह अतिशय घटित

होना होगा तभी मेरा मन इस मार्ग से आने का बना यही प्रतिमा बड़ी प्राचीन और अतिशयकारी है। मैंने उस प्रतिमा को आचार्य कुन्द कुन्द की तपोस्थली पोन्नूरमलै पहाड़ पर जहाँ एलाचार्य के चरण चिह्न बने हुए हैं वहाँ विराजमान कराने का मार्गदर्शन दिया। सन् 1995 के पोन्नूरमलै वर्षायोग के बीच षोडशकारण पर्व में ऐसी अतिशयकारी प्रतिमा जी को लाया गया और प्रतिमा जी के आने से क्षेत्र की काफी उन्नति हुई तथा सारे भारत या विश्व में उसका प्रभाव फैला और जिसका लघु पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठा उसी वर्षायोग के सम्पूर्ण होने पर 5/11/95 को सोल्लास सैकड़ों भव्यों के बीच सम्पन्न हुई। इसी अवसर पर देशभूषण महाराज के क्षु. सोमकीर्ति ने मोक्षमार्ग पर आगे कदम बढ़ाये; जिनका नाम सुभद्रसागर जी रखा गया। आज भी सारे भारत के भव्यगण ऐसे क्षेत्र पर अतिशयकारी महावीर भगवान के दर्शन कर अपने आप को बड़ा सौभाग्यवान मानते हैं और गुरुओं की असीम अनुकम्पा और प्रभावना को स्मृति में लाते रहते हैं।

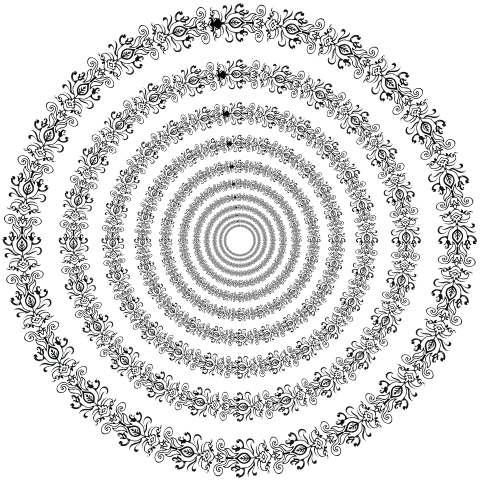

दिनचर्या

मन को प्रशस्त और जीवन को नेक बनाने हेतु मानव को अपनी दैनिक चर्या में हमेशा व्यस्त रहना चाहिए। अच्छे कार्य करना ही हमारा कर्त्तव्य है क्योंकि लोक में कहावत चरितार्थ है कि **''खाली मन शैतान का घर''** और **''खाली घर भूतों का डेरा''**। अगर अपने मन को पुरुषार्थ पूर्वक धार्मिक कार्य या चिन्तन में न लगाकर खाली छोड़ रखेंगे तो मन शैतान बन बुरे (अशुभ) चिन्तनों में लगकर पाप का बंध कराएगा और गृह को खाली छोड़ने वाले का गृह एक दिन भूतों का आवास बनेगा। अतः हमें चाहिए कि हम पुण्य कर्म से उपलब्ध हुए मन, शरीर आदिक सम्पदाओं को कर्म निर्जरा एवं पुण्यानुबंधी पुण्य हेतु धार्मिक कार्यों या षडावश्यकों में लगाकर उसका वास्तविक उपयोग करें।

जो व्यक्ति निष्काम होता है वह निकम्मा कहलाता है। मन और तन दोनों सक्रिय होते हुए भी जो मानव उसे विषयों की निद्रा में गमाता है वह पृथ्वी पर भार होते हुए पशु सदृश कहलता है जैसे कि कहा भी गया है –

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

– नीति शतक

जिनके पास विवेक (बुद्धि) नहीं, बारह प्रकार के तप नहीं, चार दान नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, सप्त शील नहीं, समीचीन गुण नहीं और रत्नत्रय या दश धर्म नहीं वे मनुष्य इस लोक में भूमि को भार होते हुए मनुष्य के रूप में तिर्यञ्चों के समान विचरण करते हैं। ऐसा निर्ग्रन्थ पूर्वाचार्यों का कथन सदुपदेश है।

आचार्य गुणभद्र ने अपनी आत्मानुशासन कृति में मन की चंचलता को बतलाते हुए कहा है कि मन एक बंदर के समान है उसे श्रुत वृक्ष पर रमाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर हम बंदर के समान मन को धार्मिक कार्यों में या षडावश्यकों में नहीं रमायेंगे तो धर्म या पुण्य सम्पदा रूप खेती सम्पूर्ण नष्ट हो जायेगी। अतः मन को बेकाम नहीं छोड़ना चाहिए।

इस संदर्भ में एक उदाहरण याद आ गया कि एक व्यक्ति ने झटपट काम करने हेतु एक भूत को वश में कर लिया, भूत वश में होते ही बोलता है कि मुझे काम बताओ! उस व्यक्ति ने काम बताया तो भूत ने झटपट कर दिखाया और फिर पूछा काम बताओ! तो पुनः काम बताते ही उस भूत ने तुरंत काम निपटा दिया अन्य कोई कार्य बाकी नहीं बचा। अब भूत कहता है कि काम नहीं बताया तो तुम्हारा गला दबाऊँगा। तब वह व्यक्ति घबड़ा गया और भय के मारे भागकर एक ज्ञानी के पास पहुंचा और कहता है कि भूत मेरा गला दबादेगा, क्या करूँ ? वह काम पूछता है लेकिन काम कुछ बाकी नहीं, क्या बताऊँ? तब ज्ञानी ने कहा कुछ तो भी काम जल्दी से बता दो उसे खाली मत छोड़ो नहीं तो तुम्हारी जीवन लीला समाप्त कर देगा। तो क्या बताऊँ? अरे इतना भी नहीं समझते! सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना ही बता दो यह काम जल्दी समाप्त नहीं होगा और तुम्हारा जीवन बच जाएगा।

इसी तरह अपने मन रूपी भूत को जो हमें बार-बार दुःख देता है पाप कर्म का बंध कराके दुर्गति में ले जाता है, एक के बाद एक आशा (इच्छा) उत्पन्न कराता है एवं पुण्य की सम्पदा नष्ट करता है उसे मोक्षमार्ग की सीढ़ियों पर चढ़ना बता देंगे, षडावश्यक में लगा देंगे तो हम निष्काम बनकर निर्बाध होते हुए, पाप धोते हुए, ध्यान में लीन होते हुए, मुक्तिधाम पहुँच जाएंगे। अतः मन भूत को वश में करने से मोक्ष मिलता है।

आज हमारी उपवास, उत्सव आदिक प्रभावना मात्र इस जीवन में सम्पूर्ण प्रभावना नहीं यह तो व्यावहारिक प्रभावना समझना चाहिए। बस यही मात्र हमारा लक्ष्य नहीं, इसके ऊपर भी श्रृद्धा रखते हुए मुनि बनकर मन को वश में करके निश्चय प्रभावना को भी करना आवश्यक है। निर्ग्रन्थ बनकर मन को वश में किये बिना न सच्चा ध्यान होता है और न ही वास्तविक (निश्चय) रत्नत्रय की प्राप्ति की जा सकती है, फिर मोक्ष कहाँ ? अतः कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने समयसार में निर्जरा अधिकार में कहा है कि -

विज्जारहमारूढ़ो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ स.सा.॥

भावार्थ - जो जीव विद्यारूपी रथ पर आरूढ़ होकर मन रूपी रथ के वेग को रोकता है

वह जिनेन्द्र देव के ज्ञान की प्रभावना करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

अतः चपल मन के वेग को वश में करने हेतु जैसे मुनि लोग अपने समता, स्तुति, वंदना, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग इन षडावश्यकों को नियमित रूप से करते हैं वैसे ही श्रावक लोगों को भी आत्मशुद्धि के साधन रूप श्रावकों के षडावश्यकों को नियमित रूप से करना चाहिए। पद्मनन्दी पञ्चविंशतिका शास्त्र में पद्मनन्दी आचार्य ने श्रावकों के लिए प्रतिदिन करने योग्य षडावश्यकों का उत्तम कथन किया है–

देव पूजा गुरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

वीतराग देव पूजा, गुरु भक्ति–सेवा, शास्त्र स्वाध्याय, संयम (व्रतनियम), उपवास, तप, आहार आदिक दान ये श्रावकों को दिन प्रतिदिन करना चाहिए।

इसी तरह श्रावकों, अणुव्रतियों को अपने बारह व्रतों में लगे अतिचारों हेतु प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त आदि के द्वारा उत्तम दिनचर्या से आत्म शुद्धि को करते हुए, विशुद्धि के माध्यम से कर्मों का क्षयोपशम करते हुए मुनियों के व्रतों को प्राप्त कर मन को वश में करते हुए एक दिन उत्तम ध्यान द्वारा कर्मों का क्षयकर अन्तरात्मा से परमात्मा बनना चाहिए और अपने जीवन को नेक बनाना चाहिए। यही मेरी भावना एवं आशीर्वाद है।

आचार्य पद की प्राप्ति आ. सीमंधरसागर द्वारा

–आचार्य श्री आर्जवसागर जी

1. कर्नाटक में बेलगाँव के, हलगे में था जन्म लिया ।
साह मलप्पा पिता, मात उन – पद्मावती को धन्य किया॥
नाम 'जिनप्पा' पाकर गृह में, धार्मिक सुख में लगा सु–मन ।
सरल–स्वभावी, समताधारी, सीमंधर आचार्य नमन॥

2. बाल–ब्रह्मचारी रह करके, भव–भोगों को त्याग दिया।
कार्तिक शुक्ला दोज सोम दिन, इस जग से मुख मोढ़ लिया ॥
सन् उन्निस सौ त्रेपन में ही, देवरसिंगी किया गमन ।
वीरसागराचार्य शरण पा, ब्रह्मचर्य में किया रमण ॥
(सरल स्वभावी.....)

3. इन्हीं गुरु से क्षुल्लक पद धर, ऐलक पद भी तब पाया ।
शांति, वीर की परम्परा के, सुपार्श्वसूरि को जब पाया ॥
नगर जालना ऐलक पद ले, कुंथलगिरि जा किया नमन।
सुपार्श्व सूरि से सन् अंठावन, मुनि पद पर था किया गमन ॥
(सरलस्वभावी.....)

4. चारित चक्री परम्परा में, सीमंधर विख्यात हुए।
सीमंधरसागर की छबिलख, अनेक भव्य भी साथ हुए ॥
पावन प्रवचन, आचारों का पालन इन्द्रिय किया दमन ।
सुबाहुसागर, सु – सिद्धसागर, आदि संघ से सजे श्रमण ॥
(सरल स्वभावी.....)

5. उन्निस सौ चौहत्तर सन् में, फाल्गुन शुक्ला एकम को ।
विहार देश के त्रिलोकपुर में, पाया गुरु पद उत्तम को ॥
चउविध संघ समक्ष आपको, महाचार्य पद मिला श्रमण।
शुभ मुहूर्त्त में जयकारों से, सबने गुरु को किया नमन ॥
(सरल स्वभावी....)

6. कई प्रान्तों में विहार करके, प्रकाश धर्म का फैलाया।
तीर्थक्षेत्र भी सर्व देखकर जिन महिमा को दर्शाया ॥
शिखर सम्मेद व ऊर्जयन्त के, किये अनेक हि शुभ दर्शन ।
बहुत व्रतों व उपवासों से, किये आपने कर्मक्षपण ॥
(सरल स्वभावी.. .)

7. दीक्षा देकर शिष्य गणों का अनुग्रह तुमने बहुत किया ।
सुमति सु-सागर, नेमीसागर, दे दीक्षा हि साथ लिया ॥
मल्लि सु- सागर, सिद्ध सु-सागर, इनको मुनिपद दिया परम।
सुशीलमति वा राजमति को, दिया आर्यिका नियम धरम ॥
(सरल स्वभावी.....)

8. जीवन के नब्हे वर्षों में, सल्लेखन-ली-बारह वर्ष ।
शक्कर, नमक रसों के त्यागी, निद्रा - विजयी तप में हर्ष ॥
ऐसे सीमंधराचार्य को, पद प्रदान का आया मन।
विद्यासागर सूरि शिष्य वे, आर्जवसागर भाये श्रमण॥
(सरल स्वभावी.....)

9. माघ शुक्ल षष्ठी के शुभ दिन, दो हजार पन्द्रह सन् में।
मध्य देश इंदौर नगर के, निकटोद्यानसु-परिसर में ॥
चिर दीक्षित आर्जवसागर को सूरि पद कीना अर्पण।
जयकारें भक्तों की गूंजी, कहते तव जीवन दर्पण ॥
(सरल स्वभावी.....)

10. मुनिवर संघ व श्रावक जन को, सेवा भाग्य मिला सबको।
नवाचार्य आर्जवसागर ने, मार्गदर्श दीना जन को ॥
फाल्गुन कृष्णा तृतिया को शुभ, दो हजार पंद्रह था सन् ।
उपवासों सह सल्लेखन हुई, सीमंधर गये स्वर्गश्रमण ॥
(सरल स्वभावी.....)

11. स्वर्गलोक से विदेह में जा, तीर्थंकर का दर्शन हो।
हम सबका भी नमन जहाँ पर, -पहुँचे, यह भव सुमरण हो॥
जयवन्तों जय, जयवन्तो जय, सर्व भक्त हैं करें नमन।
आर्जव इस मोक्षमार्ग से, जग प्रकाश मय होय चमन॥
(सरल स्वभावी.. .)

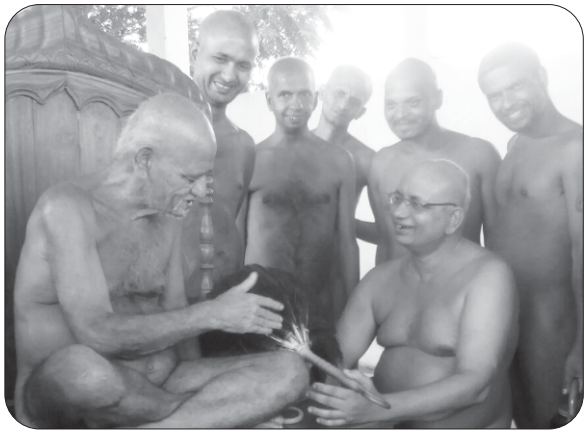

आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज से गुरुवर आर्जवसागर जी महाराज का मिलन 2014

गुरुवर आर्जवसागर जी के लिए आचार्य पद से अलंकृत करते हुए आचार्य सीमंधरसागर जी महाराज 2015

आचार्य श्री आर्जवसागर जी महाराज ससंघ की जानकारी एवं साहित्य हेतु

You Tube- Aarjavvani

इस यूट्यूब चैनल पर अहिंसा, संस्कार, शिक्षा आदि अनेक विषयों पर प्रवचन एवं जैनागम ग्रंथों की विभिन्न कक्षाएँ अपलोड हैं।

Instagram- aarjavvani1/vaniaarjav

इस इंस्टाग्राम पेज पर आचार्य भगवन् के सान्निध्य में आयोजित संपूर्ण कार्यक्रमों की फोटोज, वीडियो आदि अपलोड होते हैं।

Facebook- Aarjav vani

इस पर आचार्य श्री ससंघ के सान्निध्य में आयोजित कार्यक्रमों को लाइव किया जाता है एवं कार्यक्रम की फोटोज, वीडियो आदि अपलोड होते हैं।

Website- www.aarjavvani.com

इस वेबसाइट पर गुरुदेव रचित संपूर्ण साहित्यएवं कृतियाँ उपलब्ध हैं।

Whatsapp No.- 9174843674

इस नं. से आप आर्जव वाणी व्हाट्सप चैनल से जुड़कर का अहिंसा, प्रवचन डेली अपडेट एवं प्रभावना आदि की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

Play Store- aarjavvani

इस एप्लिकेशन को डाउनलोड कर इसका साहित्य पढ़कर पुण्य का कोश भर सकते हैं।